भा० दि० जैनसंघग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पस्य पञ्चमो दलः

श्रीयतिवृषभाचार्यरचितचूर्णिसूत्रसमन्वितम्

श्रीभगवद्गुणधराचार्यप्रणीतम्

कसायपाहुडं

तयोश्च

श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका

[पंचमोऽधिकारः अणुभागविहत्ती]

सम्पादकौ

पं० फूलचन्द्रः
सिद्धान्तशास्त्री
सम्पादक महाबन्ध, सहसम्पादक
धवला

पं० कैलाशचन्द्र
सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ
प्रधान अध्यापक स्याद्वाद महाविद्यालय
काशी

प्रकाशक

मंत्री साहित्य विभाग

भा० दि० जैन संघ, चौरासी मथुरा

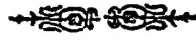
वि० सं० २०१३] वीरनिर्वाणाब्द २४८३ [ई० सं० १९५६

मूल्यं रूप्यकद्वादशकम्

भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,
साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना



सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १-५

प्राप्तिस्थान
मैनेजर
भा० दि० जैन संघ
चौरासी, मथुरा

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय, नया संसार प्रेस, वाराणसी।

स्थापनाब्द] प्रति ८०० [वी० नि० सं० २४६८

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala No. 1-V

KASĀYA-PĀHUDAM

V

(ANUBHAG VIHATTI)

BY

GUNADHARACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF

VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY

Pandit Phulachandra Siddhantashastri,

EDITEOR MAHABANDHA

JOINT EDITOR DHAVALA,

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirtha, Sidhantaratna,

Pradhanadhyapak, Syadvada Digambara Jain

Vidyalaya, Banaras.

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT.

THE ALL-INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA

CHAURASI, MATHURA.

VIRA-SAMVAT 2483] VIKRAMA S. 2013 [1956 A. C.

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—] [—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:—

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana, Purana, Sahitya and other Works in Prakrit, Samskrit etc. Possibly with Hindi Commentary and Translation.

DIRECTOR :—

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. VOL. V.

To be had from :—

THE MANAGER

SRI DIG. JAIN SANGHA.

CHAURASI, MATHURA,

U. P. (INDIA)

Printed by—S. N. UPADHYAYA,

AT THE NAYA SANSAR PRESS, BANARAS.

800 Copies,

Price Rs. Twelve only

प्रकाशक की ओरसे

कसायपाहुडके पाँचवें भाग अनुभाग विभक्तिको एक वर्ष पश्चात् ही प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष होना स्वाभाविक है। यह भाग भी डोंगरगढ़के उदारमना दानवीर सेठ भागचन्द्र जी के द्वारा दिये गये द्रव्यसे ही प्रकाशित हुआ है और आगेके भाग भी उन्हींके द्रव्यसे प्रकाशित हो रहे हैं इसके लिये सेठ जी व उनकी धर्मपत्नी सेठानी नर्वदाबाई जी दोनों धन्यवादके पात्र हैं।

सम्पादन आदिका भार पूर्ववत् पं० फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री और हम दोनोंने वहन किया है। प्रेस सम्बन्धी सब झंझटोंको पं० फूलचन्द्रजी ने उठाया है। एतदर्थ मैं पंडितजीका भी आभारी हूँ।

काशीमें गङ्गा तट पर स्थित स्व० बाबू छेदीलाल जी के जिन मन्दिरके नीचेके भागमें जयधवला कार्यालय अपने जन्म कालसे ही स्थित है और यह स्व० बाबूसाहबके सुपुत्र बाबू गणेशदास जी और पौत्र बा० सालिगराम जी तथा बा० ऋषभचन्द्जीके सौजन्य और धर्मप्रेमका परिचायक है, अतः मैं उनका भी आभारी हूँ।

नया संसार प्रेसके स्वामी पं० शिवनारायण जी उपाध्याय तथा उनके कर्मचारियोंने इस भागका मुद्रण बहुत शीघ्र करके दिया, एतदर्थ वे भी धन्यवादके पात्र हैं।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, काशी
दीपावली–२४८२

कैलाशचन्द्र शास्त्री
मंत्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैनसंघ

विषय-परिचय

प्रस्तुत अधिकारका नाम अनुभागविभक्ति है। अनुभाग फलदानशक्तिको कहते हैं। यह दो प्रकारका है—बन्धके समय जो अनुभाग प्राप्त होता है एक वह और बन्धके बाद द्वितीयादि समयोंमें जो अनुभाग रहता है एक वह। बन्धके समय प्राप्त होनेवाले अनुभागका विचार महाबन्धमें किया है। मात्र उसका यहाँ अधिकार नहीं है। यहाँ तो ऐसे अनुभागका विचार किया गया है जो सत्ताके रूपमें बन्ध समयसे लेकर अवस्थित रहता है। वह बन्धकालमें जितना प्राप्त हुआ है उतना भी हो सकता है और क्रियाविशेषके कारण अन्यप्रकार भी हो सकता है। मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ अट्ठाईस हैं। एकबार उत्तर भेदोंका आश्रय लिए बिना और दूसरी बार इनका आश्रय लेकर प्रस्तुत अधिकारमें अनुभागका सांगोपांग विचार किया गया है, इसलिए इसका अनुभागविभक्ति नाम सार्थक है। तदनुसार इस अधिकारके दो भेद हैं—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति। उसमें भी चूर्णिकार आचार्य यतिवृषभने मूलप्रकृति अनुभागविभक्तिकी सूचनामात्र की है। वीरसेनस्वामीने उसका विशेष व्याख्यान उच्चारणावृत्तिके अनुसार तेईस अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर किया है। वे तेईस अनुयोगद्वार ये हैं—संज्ञा, सर्वानुभागविभक्ति, नोसर्वानुभागविभक्ति, उत्कृष्टानुभागविभक्ति, अनुत्कृष्टानुभागविभक्ति, जघन्यानुभागविभक्ति, अजघन्यानुभागविभक्ति, सादिअनुभागविभक्ति, अनादिअनुभागविभक्ति, ध्रुवानुभागविभक्ति, अध्रुवानुभागविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति एक है, इसलिए उसका विचार करते समय सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है।

संज्ञा—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। जीवके अनुजीवी गुणोंका घात करनेवाला होनेसे मोहनीयकर्मकी घातिसंज्ञा है। उसमें भी यह दो प्रकारकी है—सर्वघाति और देशघाति। अपनेसे सम्बन्ध रखनेवाले जीवगुणका जो पूरी तरहसे घात करता है उसे सर्वघाति कहते हैं और जो पूरी तरहसे घात करनेमें समर्थ न होकर एकदेश घात करता है उसे देशघाति कहते हैं। यहाँ मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग सर्वघाति ही होता है, क्योंकि उसका उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणामोंसे संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव बन्ध करता है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभाग सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकारका होता है, क्योंकि उसमें जघन्य अनुभाग भी सम्मिलित है। जघन्य अनुभाग देशघाति होता है, क्योंकि इसमें एकस्थानिक अनुभागकी उपलब्धि होती है और अजघन्य अनुभाग देशघाति और सर्वघाति दोनों प्रकारका होता है, क्योंकि इसमें एकस्थानिकसे लेकर चतुःस्थानिक पर्यन्त चारों प्रकारका अनुभाग उपलब्ध होता है।

कुल अनुभाग चार प्रकारका होता है—एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक। जहाँ केवल लतारूप अनुभाग होता है उसकी एकस्थानिक संज्ञा है। जहाँ लता और दारुरूप अनुभाग होता है उसकी द्विस्थानिक संज्ञा है। जहाँ लता, दारु और अस्थिरूप अनुभाग होता है उसकी त्रिस्थानिक संज्ञा है और जहाँ लता, दारु, अस्थि और शैलरूप अनुभाग होता है उसकी चतुःस्थानिक संज्ञा है। इस प्रकार स्थानसंज्ञाके चार भेद हैं। यहां इतना विशेष समझ लेना चाहिए कि उत्तर अनुभागमें पूर्व अनुभाग गर्भित मान कर भी ये द्विस्थानिक आदि संज्ञाएं व्यवहृत होती हैं। यद्यपि लता, दारु, अस्थि और शैल ये उपमाएं मानकषायके लिए दी जाती हैं, क्योंकि उत्तरोत्तर इस प्रकारकी कठोरताका भाव उसमें सम्भव है फिर भी यहाँ अनुभागकी उत्तरोत्तर तीव्रताको देखकर ये संज्ञाएं आरोपित की गई हैं। इनमेंसे लतारूप अनभाग और दारुरूप अनुभागका अनन्तवाँ भाग देशघाति माना गया है और शेष अनुभाग सर्वघाति माना गया है। मोहनीय कर्म घातियोंमें पठित है, इसलिए संज्ञाके ये भेद शेष घातिकर्मोंमें भी सम्भव

हैं। अघाति कर्मोंमें स्थानसंज्ञाके चार भेद तो किये जाते हैं पर उनके नाम अपने अवान्तर भेदोंके साथ पुण्यकर्म और पापकर्मके भेदसे अन्य हैं।

मोहनीय कर्मके कुल भेद अट्ठाईस हैं। उनकी अपेक्षा संज्ञाका विचार इस प्रकार है– सम्यक्त्व प्रकृतिके जितने देशघाति स्पर्धक हैं वे सब सम्भव हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके प्रथम सर्वघाति स्पर्धकसे लेकर दारु समान स्पर्धकोंके अनन्तवें भागतक ही स्पर्धक उपलब्ध होते हैं। मिथ्यात्वके जहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तिम स्पर्धक समाप्त होता है वहाँसे लेकर आगेके सब सर्वघाति स्पर्धक पाये जाते हैं। चार संज्वलनोंको छोड़कर शेष बारह कषायोंके द्विस्थानिक सर्वघाति स्पर्धकसे लेकर आगेके सब स्पर्धक होते हैं। चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके देशघाति और सर्वघाति सब स्पर्धक होते हैं। यहाँ मिथ्यात्वादि कर्मोंके अनुभागस्पर्धक यद्यपि आगे अन्ततकके कहे हैं फिर भी उनमें तारतम्य है जिसका विशेष ज्ञान महाबन्धके अल्पबहुत्वसे कर लेना चाहिए। इस प्रकार इन प्रकृतियोंकी स्पर्धक रचनाका परिज्ञान करके इनमें घाति-संज्ञा और स्थानसंज्ञाका ऊहापोह कर लेना चाहिए। खुलासा इस प्रकार है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषायोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य चारों प्रकारका अनुभाग सर्वघाति ही होता है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग भी सर्वघाति होता है। यहाँ छह नोकषायों का जघन्य और अनुत्कृष्ट अनुभाग भी चूर्णिसूत्रकारने विवक्षाभेदसे सर्वघाति स्वीकार किया है। शेष रहीं चार संज्वलन और तीन वेद ये सात प्रकृतियाँ सो इनका उत्कृष्ट अनुभाग सर्वघाति ही होता है, क्योंकि वह चतुःस्थानिक होता है। अनुत्कृष्ट अनुभाग सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकारका होता है, क्योंकि इसमें एकस्थानिक जघन्य अनुभाग भी सम्मिलित है। तथा इनका जघन्य अनुभाग देशघाति होता है, क्योंकि क्षपकश्रेणिमें अपने अपने योग्य स्थानमें वह एकस्थानिक ही उपलब्ध होता है। तथा इनका अजघन्य अनुभाग सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकारका होता है। कारणका विचार कर कथन कर लेना चाहिए। स्थान संज्ञाकी दृष्टिसे विचार करनेपर कहाँ किस स्थानरूप अनुभाग प्राप्त होता है इसका परिज्ञान कोष्ठकद्वारा कराया जाता है—

प्रकृति	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	जघन्य	अजघन्य
मिथ्यात्व, बारह-कषाय छह नोकषाय	चतुःस्था०	चतुः, त्रि०, द्वि०	द्विस्था०	द्वि०, त्रि०, च०,
सम्यक्त्व	द्विस्था०	द्वि०, एक०	एकस्था०	एक०, द्वि०
सम्यग्मिथ्यात्व	द्विस्था०	द्विस्था०	द्विस्था०	द्विस्था०
चार संज्वलन, पुरुषवेद	चतुः	च०, त्रि०, द्वि०, एक०	एकस्था०	एक०, द्वि०, त्रि०, चतुः
स्त्रीवेद, नपुंसक-वेद	चतुः	च०, त्रि०, द्वि०, एक०	एकस्था०	द्वि०, त्रि०, चतुः

स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ने पर अन्तिम निषेकके उदय समयमें एकस्थानिक जघन्य अनुभाग होता है, इसलिए इन दोनों वेदोंका अजघन्य अनुभाग एकस्थानिक नहीं कहा है।

सर्वविभक्ति-नोसर्वविभक्ति—सर्वविभक्तिमें सब अनुभाग और नोसर्वविभक्तिमें उससे कम अनुभाग विवक्षित है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे यह यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टविभक्ति—सर्वोत्कृष्ट अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाका अनुभाग उत्कृष्टविभक्ति कहलाता है और उससे न्यून अनुभाग अनुत्कृष्ट विभक्ति कहा जाता है। यह भी अपने अपने अनुभागका विचार कर घटित कर लेना चाहिए।

जघन्य-अजघन्यविभक्ति—सबसे जघन्य स्थानकी अन्तिम वर्गणाका अनुभाग या अन्तिम कृष्टिका अनुभाग जघन्यविभक्ति है और इससे अधिक अनुभाग अजघन्यविभक्ति है जो मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवविभक्ति—मूल प्रकृतिकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके होता है, अतः जघन्य अनुभाग सादि और अध्रुव कहा है। इसके पूर्व सब अनुभाग अजघन्यरूप रहता है, इसलिए अजघन्य अनुभाग अनादि तो है ही साथ ही वह भव्यकी अपेक्षा अध्रुव और अभव्यकी अपेक्षा ध्रुवरूप होनेसे सादिविकल्पके सिवा तीन प्रकारका कहा है। उत्कृष्ट अनुभाग और अनुत्कृष्ट-अनुभाग कदाचित् होते हैं, इसलिये इनमें सादि और अध्रुव ये दो ही विकल्प बनते हैं। उत्तरप्रकृतियों की अपेक्षा विचार करनेपर चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका अजघन्य अनुभाग तो अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे तीन प्रकारका है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होनेसे अजघन्य अनुभागमें सादि विकल्पके सिवा शेष तीन विकल्प बन जाते हैं। तथा इन १३ प्रकृतियोंका शेष तीन प्रकारका अनुभाग और इनके सिवा शेष प्रकृतियोंका चारों प्रकारका अनुभाग कादाचित्क होनेसे सादि और अध्रुव है।

स्वामित्व—स्वामित्व दो प्रकारका है—उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका स्वामित्व और जघन्य अनुभाग-विभक्तिका स्वामित्व। मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव करता है, इसलिए वह तो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका स्वामी है ही। साथ ही उसका घात हुए विना ऐसे जीवके एकेन्द्रिय आदि अन्य पर्यायोंमें मरकर उत्पन्न होने पर एकेन्द्रिय आदि अन्य जीव भी मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिके स्वामी हैं। मात्र भोगभूमिके तिर्यञ्च और मनुष्य तथा आनतादिकके देव उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिके स्वामी नहीं होते, क्योंकि एक तो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंकी इनमें उत्पत्ति नहीं होती। दूसरे इन जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध नहीं होता। सामान्यसे मोहनीयका जघन्य अनुभाग क्षपक-श्रेणिमें प्राप्त होता है, इसलिए अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक जीव जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी है। मोहनीयके अवान्तर भेदोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट अनुभाग, विभक्तिका स्वामी मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा जो स्वामित्व कहा है उसके ही समान है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका स्वामी उनकी सत्तावाले सब जीव हैं। मात्र दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव उत्कृष्ट अनुभागका घात करनेके बाद उसका स्वामी नहीं है। तथा मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव होता है, क्योंकि मिथ्यात्वके अनुभागका घात होकर सबसे जघन्य अनुभाग इसीके शेष रहता है, और वह घात किये गये उक्त अनुभागके साथ अन्य एकेन्द्रियोंमें व द्वीन्द्रिय आदिमें उत्पन्न होकर जब तक उसे नहीं बढ़ाता है तब तक ये जीव भी मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिके स्वामी होते हैं। देव, नारकी और असंख्यातवर्षकी आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य जघन्य अनुभागविभक्तिके स्वामी नहीं होते, क्योंकि इनमें सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंकी मरकर उत्पत्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मध्यकी आठ कषायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामित्व जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला अन्तिम समयवर्ती क्षपक जीव होता है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय अपने अन्तिम

अनुभागकाण्डकका पतन करनेवाला जीव होता है। अनन्तानुबन्धीकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी विसंयोजनाके बाद उससे संयुक्त होनेके प्रथम समयमें होता है। यद्यपि इस समय शेष कषायोंका अनुभाग अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रात होता है फिर भी वह उस समय बँधनेवाले अनुभागरूप परिणम जाता है, इसलिए वह अनुभाग सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तके अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है। यही कारण है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका स्वामित्व सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवको न देकर अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनाके बाद पुनः संयोजना होनेवाले जीवको संयोजना होनेके प्रथम समयमें दिया है। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ और तीन वेदोंका जघन्य अनुभाग स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवके अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है, इसलिए उस उस अवस्था विशिष्ट जीव इनकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी है तथा छह नोकषायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी भी उनकी अन्तिम फालिका पतन करनेवाला क्षपक जीव होता है। यह स्वामित्वका विचार गति आदि मार्गणाओंका आश्रय लिए विना किया है। गति आदि मार्गणाओंमें जहाँ ओघप्ररूपणा सम्भव है वहाँ ओघके समान जानना चाहिए। अन्यत्र अन्य विशेषताओंको जानकर घटित कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ नरकमें और देवोंमें असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होते हैं इसलिए वहाँ उत्पन्न हुए हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले ऐसे जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामित्व कहा है। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामित्व पूर्ववत् है। सम्यग्मिथ्यात्व का जघन्य स्वामित्व वहाँ सम्भव नहीं, क्योंकि क्षपणाको छोड़कर अन्यत्र उसका अनुभागकाण्डकघात नहीं होता। अनन्तानुबन्धीका जघन्य स्वामित्व भी पूर्ववत् है। अपनी अपनी विशेषताको जानकर इसीप्रकार अन्यत्र भी स्वामित्व घटित कर लेना चाहिए।

काल—सामान्यसे मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इसके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध होनेके बाद उसका अन्तर्मुहूर्तमें नियमसे घात हो जाता है। इसके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अनुभागके अनुत्कृष्ट होने पर बन्धद्वारा उसके उत्कृष्ट होनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि एकेन्द्रियोंमें उक्तकाल तक परिभ्रमण करने पर वहाँ उत्कृष्ट अनुभागकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका काल पूर्वोक्त प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर उनकी क्षपणा सम्भव है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है, क्योंकि इतने काल तक इनकी सत्ता बनी रहनेमें कोई बाधा नहीं आती। यहाँ साधिकसे कितना काल लिया जाय इस विषयमें आचार्योंमें मतभेद है। इसके लिए मूलग्रन्थ पृ० १८८ देखिए। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इनकी क्षपणाके समय प्रथम काण्डक घातसे लेकर इनकी क्षपणामें इतना काल अवश्य लगता है। मोहनीयके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें इसकी प्राप्ति होती है। तथा इसके पहले वह अजघन्य होता है, इसलिए अजघन्य अनुभागको अभव्योंकी अपेक्षा अनादि-अनन्त और भव्योंकी अपेक्षा अनादि-सान्त इस तरह दो प्रकारका कहा है। उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि हतसमुत्पत्तिक कर्मके अवस्थानका इतना काल है। इसके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जघन्य अनुभाग सत्कर्मवाला जीव अजघन्य अनुभागको प्राप्त होकर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक इस अनुभागके साथ अवश्य ही रहता है। तथा उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है, क्योंकि अनुभागबन्धाध्यवसान परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण बतलाए हैं। मिथ्यात्वके समान ही सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिए। सात-

सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भाग अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण है। सम्यक्त्वके अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। मात्र सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि इसकी क्षपणाके अन्तिम समयमें इसका जघन्य अनुभाग उपलब्ध होता है। इसी प्रकार अपने अपने स्वामित्वके अनुसार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और तीन वेदोंके जघन्य अनुभागका काल एक समय घटित कर लेना चाहिए। इनमेंसे अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागके अनादि-अनन्त, अनादि सान्त और सादि-सान्त ये तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं। सादि-सान्तका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। कारण स्पष्ट है। चार संज्वलन, तीन वेद और छह नोकषायोंके अजघन्य अनुभागके दो भङ्ग होते हैं—अनादि-अनन्त और अनादि सान्त। तथा आठ कषायोंके अजघन्य अनुभागका काल मिथ्यात्वके समान है। इस प्रकार यह सामान्यसे कालका विचार किया है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता जानकर काल ले आना चाहिए।

अन्तर—सामान्यसे मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात होकर अन्तमुहूर्तमें पुनः उसकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल प्रमाण है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियके एकेन्द्रियादि पर्यायमें इतने काल तक रहने पर उत्कृष्ट अनुभागका इतना अन्तर देखा जाता है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त प्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है, क्योंकि घात द्वारा अनुत्कृष्ट अनुभाग होकर कमसे कम अन्तमुहूर्त कालमें पुनः उसकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि कोई पञ्चेन्द्रिय उत्कृष्ट अनुभागका घात कर अधिक से अधिक इतने काल तक एकेन्द्रियोंमें परिभ्रमण करनेके बाद संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होकर पुनः उसका बन्ध करता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़ कर इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त बतलाया है। अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर प्रमाण है, क्योंकि इसकी विसंयोजना होकर इतने काल तक इसका अभाव रहता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि इनकी उद्वेलना होकर कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल तक उनका अभाव देखा जाता है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर सम्भव नहीं है, क्योंकि उसकी प्राप्ति इनकी क्षपणाके समय होती है। सामान्यसे मोहनीयके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं होता, क्योंकि मोहनीयका जघन्य अनुभाग क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय के अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसका तो अन्तर हो ही नहीं सकता और इसके पहले अजघन्य अनुभाग रहता है, इसलिए उसका भी अन्तर सम्भव नहीं है। अलग अलग प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार करने पर सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन कषाय और नौ नोकषायोंके जघन्य अनुभागका तो अन्तर सम्भव नहीं है, क्योंकि क्षपणाके पूर्व इनकी सत्ता नियमसे बनी रहती है। हाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि उद्वेलना होकर इनका उक्त काल तक अन्तर देखा जाता है। मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है, क्योंकि जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव अजघन्य अनुभागका बन्धकर अन्तमुहूर्तमें घात द्वारा पुनः उसे जघन्य कर सकता है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है, क्योंकि जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव अजघन्य अनुभागका बन्धकर असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान परिणामोंमें उतने ही काल तक परिभ्रमण

करके यदि अन्तमें जघन्य अनुभागको प्राप्त होता है तो इनके जघन्य अनुभागका उक्त कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर देखा जाता है। इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इनके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतला आये हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, क्योंकि इनके संयुक्त होनेके प्रथम समयसे लेकर पुनः विसंयोजनाकर संयुक्त होनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व पूर्वक इनकी विसंयोजना करके मिथ्यात्वमें जाकर इनसे संयुक्त होता है उसके पुनः उपार्धपुद्गल परिवर्तनमें कुछ काल शेष रहने पर इस क्रियाके करने पर उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण देखा जाता है। इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम दो छ्यासठ सागरप्रमाण है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक कुछकम दो छियासठ सागर काल तक अभाव रहकर मिथ्यात्वके प्राप्त होनेपर द्वितीय समयमें पुनः इनका अजघन्य अनुभाग देखा जाता है। इसप्रकार यह सामान्यसे अन्तरका विचार किया है। गति आदिकी अपेक्षा अपने अपने स्वामित्वको देखकर अन्तर ले आना चाहिए।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय—मोहनीयसामान्यकी अपेक्षा कदाचित् एक भी जीव उत्कृष्ट अनुभागवाला नहीं होता, कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट अनुभागवाला होता है और कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं इसलिए उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा तीन भङ्ग होते हैं। यथा—१ कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं, २ कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं और एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे युक्त होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं और नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं। किन्तु अनुत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा इन तीन भङ्गोंसे विपरीत भङ्ग जानने चाहिए। यथा—१ कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव अनुत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे रहित होता है तथा ३ कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं और बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं। कारण स्पष्ट है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी इसी प्रकार भङ्ग जानने चाहिए। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा १ कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं और एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं और नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा १ कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे युक्त होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं और नाना जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं इस प्रकार ये तीन भङ्ग होते हैं। जघन्य अनुभागकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यका विचार करने पर १ कदाचित् सब जीव जघन्य अनुभागसे रहित होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव जघन्य अनुभागसे रहित होते हैं और एक जीव जघन्य अनुभागसे युक्त होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव जघन्य अनुभागसे रहित होते हैं और नाना जीव जघन्य अनुभागसे युक्त होते हैं। अजघन्यकी अपेक्षा १ कदाचित् सब जीव अजघन्य अनुभागसे युक्त होते हैं। कदाचित् अनेक जीव अजघन्य अनुभागसे युक्त होते हैं और एक जीव अजघन्य अनुभागसे रहित होता है तथा ३ कदाचित् अनेक जीव अजघन्य अनुभागसे युक्त होते हैं और अनेक जीव अजघन्य अनुभागसे रहित होते हैं। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार करने पर मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी अपेक्षा तो जघन्य अनुभागवाले भी बहुत जीव होते हैं और अजघन्य अनुभागवाले भी बहुत जीव होते हैं। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग और अजघन्य अनुभागवालोंके मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा जो तीन तीन भङ्ग

कहे हैं वे ही यहाँपर कहने चाहिए। इस प्रकार यह सामान्यसे विचार किया है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता व स्वामित्वको जानकर भङ्ग ले आना चाहिए।

भागाभाग—मोह सामान्यका उत्कृष्ट अनुभाग संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं, इसलिए इनके और ये इस अनुभागके साथ अन्य एकेन्द्रियादिमें जाते हैं उनके मात्र उत्कृष्ट अनुभाग सम्भव है, अतः मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण होते हैं। मोहनीयकी छब्बीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका यही भागाभाग जानना चाहिए, क्योंकि स्वामित्वकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यसे यहाँ कोई भेद नहीं है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले कुल जीव ही असंख्यात होते हैं, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले असंख्यात एक भागप्रमाण होते हैं यह भागाभाग घटित होता है। कारण इनका अनुत्कृष्ट अनुभाग क्षपणाके समय ही सम्भव है, इसलिए वे संख्यात ही होते हैं। शेष असंख्यात जीव उत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं। जघन्य अनुभागकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं, क्योंकि मोहनीयका जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होता है और अजघन्य अनुभागवाले अनन्त बहुभाग-प्रमाण होते हैं। उत्तर प्रकृतियोंका विचार करने पर अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका भागाभाग इसी प्रकार जानना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार स्वामित्वको देखकर भागाभाग ले आना चाहिए।

परिमाण—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा यही परिमाण जानना चाहिए। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव संख्यात हैं। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव संख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। चार संज्वलन और नौ नोकषायों की अपेक्षा इसी प्रकार परिमाण जानना चाहिए। मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले दोनों प्रकारके जीव अनन्त हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले जीव संख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। तथा भागाभागमें भी हम कारणका उल्लेख कर आये हैं, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए। मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर परिमाण ले आना चाहिए।

क्षेत्र—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि ये स्वल्प होते हैं, अतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं हो सकता और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका सर्व लोक क्षेत्र है। कारण स्पष्ट है। उत्तर छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इनका इसी प्रकार क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि इनकी सत्ता जो सम्यक्त्वको प्राप्त कर मिथ्यादृष्टि हो गये हैं, जो वर्तमानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके पूर्व सम्यक्त्वको प्राप्त कर रहे हैं या जो उपशम तथा वेदकसम्यक्त्व सहित हैं उनके ही होती है। उसमें भी जिन्हें मिथ्यादृष्टि हुए पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक काल नहीं हुआ है उनके ही उनकी सत्ता होती है। मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य

अनुभागविभक्तिवालोंका क्षेत्र सर्व लोक है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिए। मिथ्यात्व और आठ कषायवालोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका सर्व लोक क्षेत्र है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्ववालोंमें जघन्य और अजघन्य दोनों अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सर्वत्र कारण स्पष्ट है। मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार क्षेत्र ले आना चाहिए।

स्पर्शन—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंने वर्तमानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागका, विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ भागका और मारणान्तिक तथा उपपादपदकी अपेक्षा सर्वलोकका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। मोहनीयकी छब्बीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका भी मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंके समान स्पर्शन बन जाता है पर अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय ही यह अनुभाग सम्भव है। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए उससे युक्त जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागवालोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि ये सर्व लोकमें पाये जाते हैं। चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्पर्शन है। कारण पूर्वोक्त ही है। मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। कारण सुगम है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय यह अनुभाग होता है। इनके अजघन्य अनुभागवालोंने वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागका, विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ भागका तथा मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागवालोंने वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागका और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ भागका स्पर्शन किया है। तथा अजघन्य अनुभागवालोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार अपनी अपनी विशेषताको जानकर स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

काल—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि नाना जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक उत्कृष्ट अनुभागके साथ रहें और उसके बाद अन्तर पड़ जाय यह सम्भव है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि निरन्तर यदि नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागको प्राप्त होते रहें तो इतने काल तक ही वे उत्कृष्ट अनुभागको प्राप्त होते हैं। उसके बाद उत्कृष्ट अनुभागवालोंका नियमसे अन्तर हो जाता है। मोहनीयके अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका सर्वदा काल है यह स्पष्ट ही है। मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका भी यही काल जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका सर्वदा काल है, क्योंकि ये जीव सर्वदा पाये जाते हैं। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका अन्तर्मुहूर्त काल है, क्योंकि अनुत्कृष्ट अनुभागकी प्राप्ति क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय ही सम्भव है। मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि यह सम्भव है कि नाना जीव एक साथ क्षपकश्रेणिमें इसके जघन्य अनुभागको प्राप्त हों और बादमें अन्तर पड़ जाय तथा उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि लगातार नाना जीव यदि मोहनीयके जघन्य अनुभागको प्राप्त होते हैं तो संख्यात समय तक ही प्राप्त हो सकते हैं। कारण स्पष्ट है। मोहनीयके अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। सम्यक्त्व, चार संज्वलन और तीन वेदोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका इसी प्रकार काल ले आना चाहिए। मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके उक्त

अनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इसके अन्तिम काण्डकके पतनमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और अजघन्य अनुभागवालोंका सर्वदा काल है, क्योंकि इसके इस अनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। छह नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका काल सम्यग्मिथ्यात्वके समान ही है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्कके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि इनकी संयोजनाके प्रथम समयमें ही इनका जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि निरन्तर यदि नाना जीव इनके जघन्य अनुभागको प्राप्त होते हैं तो इतने काल तक ही प्राप्त होते हैं। तथा इनके अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। नाना जीवोंकी अपेक्षा मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार काल अपने अपने स्वामित्वके अनुसार घटित कर लेना चाहिए।

अन्तर—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि कोई भी जीव इतने काल तक उत्कृष्ट अनुभागको न प्राप्त हो यह सम्भव है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल नहीं है, क्योंकि इस अनुभागके साथ जीव सदा उपलब्ध होते रहते हैं। मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीवोंका इसी प्रकार अन्तरकाल जानना चाहिए। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता क्योंकि इन प्रकृतियोंकी क्षपणाके सिवा अन्यत्र इनका उत्कृष्ट अनुभाग ही उपलब्ध होता है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, क्योंकि इनकी कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक छह महीनाके अन्तरसे क्षपणा सम्भव है। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, क्योंकि कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक छह महीनाके अन्तरसे क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है। मोहनीयके अजघन्य अनुभागवालोंका अन्तर नहीं होता, क्योंकि अजघन्य अनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिए। मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इनके दोनों प्रकारके अनुभागवाले जीव सदा उपलब्ध होते रहते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि जिन्होंने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसे नाना जीव एक समयके अन्तरसे उससे पुनः संयुक्त हों यह सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी संयोजनाके कारणभूत परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, इसलिए यह सम्भव है कि जिस परिणामसे जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है वह इतने काल बाद होवे। अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इसके अजघन्य अनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, क्योंकि इन वेदवाले जीवोंका एक समयके अन्तरसे भी क्षपकश्रेणि पर आरोहण करना सम्भव है और वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे भी क्षपकश्रेणी पर आरोहण करना सम्भव है। इनके अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। कारण स्पष्ट है। तीन संज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य अनुभागवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके उदयसे एक समयके अन्तरसे भी जीव क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर सकते हैं और अधिकसे अधिक साधिक एक वर्षके अन्तरसे आरोहण करते हैं। इनके अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। गति आदि मार्गणाओंमें अपने अपने स्वामित्वको जानकर यह अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए।

भाव—मोहनीय सामान्य और उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका सर्वत्र औदायिक भाव है, क्योंकि मोहनीय कर्मके उदयमें ही इनका बन्ध आदि सम्भव है। यद्यपि उपशान्तमोहमें मोहनीयके उदयके बिना भी इनका सत्त्व देखा जाता है पर वहां पर नवीन बन्ध होकर इनकी सत्ता नहीं होती, इसलिए सर्वत्र औदयिकभाव कहनेमें कोई दोष नहीं है।

सन्निकर्ष—मोहनीयसामान्यकी अपेक्षा सन्निकर्ष सम्भव नहीं है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा जो मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागवाला जीव है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टिके और जिसने इनकी उद्वेलना कर दी है उसके इनका सत्त्व नहीं होता, अन्यके होता है। यदि सत्त्व होता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्ववाला होता है, क्योंकि यह सन्निकर्ष मिथ्यादृष्टिके ही सम्भव है और मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका मात्र उत्कृष्ट अनुभाग होता है। मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीवके सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे सत्त्व होता है। किन्तु उसके इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है तो वह छह हानियोंमेंसे किसी एक हानिको लिए हुए होता है। कारण स्पष्ट है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंमेंसे एक एकको मुख्यकर इसीप्रकार सन्निकर्ष घटित कर लेना चाहिए। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग नियमसे होता है। मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट अनुभाग भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है तो वह छह प्रकारकी हानिको लिए हुए होता है। इसके अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता है। यदि सत्त्व होता है तो उत्कृष्ट अनुभाग भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है तो वह छह प्रकारकी हानिको लिए हुए होता है। सम्यग्मिथ्यात्वको मुख्यकर सम्यक्त्वके समान ही सन्निकर्ष जानना चाहिए। मात्र सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवालेके सम्यक्त्वका सत्त्व होनेका कोई नियम नहीं है। कारण कि सम्यक्त्वकी उद्वेलना सम्यग्मिथ्यात्वसे पहले हो जाती है। पर यदि उद्वेलना नहीं हुई है तो नियमसे सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अनुभाग ही पाया जाता है।

मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागवालेके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता। यदि सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तमें उत्पन्न होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके पूर्व मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागको प्राप्त होता है तो उनका सत्त्व होता है अन्यथा नहीं होता। यदि सत्त्व होता है तो नियमसे अजघन्य अनुभागका ही सत्त्व होता है जो अपने जघन्यसे अनन्तगुणा अधिक होता है। इसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका नियमसे सत्त्व होता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। कारण कि इनका जघन्य अनुभाग सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तके सम्भव नहीं है। आठ कषायोंका सत्त्व होता है जो जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो नियमसे छह वृद्धियोंको लिए हुए होता है। मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागका स्वामी एक है, इसलिए यहाँ ऐसा सम्भव है। आठ कषायोंमेंसे प्रत्येक कषायको मुख्यकर सन्निकर्षका कथन मिथ्यात्वके समान ही करना चाहिए। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागवालेके बारह कषाय और नौ नोकषायोंका अपने सत्त्वके साथ अजघन्य अनुभाग होता है जो अपने जघन्यकी अपेक्षा अनन्तगुणा अधिक होता है। इसके अन्य प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होता, क्योंकि सम्यक्त्वकी क्षपणाके अन्तिम समयमें उसका जघन्य अनुभाग होता है, इसलिए उसके उक्त इक्कीस प्रकृतियोंका ही सत्त्व पाया जाता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्वका भी सत्त्व होता है जो सम्यक्त्वका सत्त्व अजघन्य अनन्तगुणे अनुभागको लिए हुए होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके जघन्य अनुभागवालेके

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषाय नियमसे अजघन्य अनन्तगुणे अनुभाग-वाले होते हैं, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी संयोजनाके समय इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग सम्भव नहीं है। इसके अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका सत्त्व तो अवश्य होता है पर उनका अनुभाग उस समय जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है क्योंकि संयोजनाके प्रथम समयमें जिस प्रकृतिके जघन्य अनुभागके योग्य परिणाम होते हैं उसका जघन्य अनुभाग होता है और शेषका अजघन्य अनुभाग होता है। यदि उस समय इन तीनका अजघन्य अनुभाग होता है तो वह छह वृद्धियोंको लिए हुए होता है। जिस प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोधके जघन्य अनुभागकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभके जघन्य अनुभागकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष कहना चाहिए। क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागवालेके तीन संज्वलन कषायोंका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है, क्योंकि क्षपणाके समय जब संज्वलन क्रोधका जघन्य अनुभाग होता है उस समय अन्य तीन संज्वलन प्रकृतियां अजघन्य अनुभागवाली होती हैं। संज्वलन मानके जघन्य अनुभागवालेके संज्वलन माया और लोभका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है, क्योंकि इनकी क्षपणा संज्वलन मानके बाद होती है। संज्वलन मायाके जघन्य अनुभागवालेके संज्वलन लोभका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। यहां संज्वलन क्रोध आदि के जघन्य अनुभागके समय अन्य प्रकृतियां नहीं होतीं, इसलिए उनका सन्निकर्ष नहीं कहा है। संज्वलन लोभके जघन्य अनुभागवालेके एक भी प्रकृतिकी सत्ता नहीं होती, इसलिए यहां अन्य प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्षका अभाव है। स्त्रीवेदवालेके चार संज्वलन और सात नोकषायोंका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागवालेके चार संज्वलनोंका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागवालेके पुरुषवेद और चार संज्वलनका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। किन्तु उस समय छह नोकषायोंका परस्पर नियमसे जघन्य अनुभाग होता है। यहां स्त्रीवेद आदि के जघन्य अनुभागवालेके जिन प्रकृतियोंका सत्त्व होता है उन्हींका सन्निकर्ष कहा है, शेषका सत्त्व नहीं होता, क्योंकि उनकी पूर्वमें ही क्षपणा हो जाती है।

अल्पबहुत्व—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव सबसे थोड़े हैं तथा इनसे अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्तगुणे हैं। उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षा चूर्णिकारने जीव अल्पबहुत्वका निर्देश न करके स्थिति अल्पबहुत्वका निर्देश किया है। उच्चारणाकी अपेक्षा भी वीरसेन स्वामीने चूर्णिसूत्रके अनुसार जाननेकी सूचना की है। यहां इतना निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते समय चूर्णिकारने यह सूचना की है कि जिस प्रकार बन्धमें प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका अल्पबहुत्व है उसी प्रकार जानना चाहिए। तथा सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दोनों बन्ध प्रकृतियां न होनेसे इनके उत्कृष्ट अनुभागका पूर्व अनुभागके अल्पबहुत्वसे तारतम्य बिठलाते हुए स्वतन्त्र-रूपसे अन्तमें अल्पबहुत्व कहा है।

भुजगारविभक्ति

भुजगारविभक्तिके चार पद हैं—भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य। पिछले समयमें जितना अनुभाग हो उससे वर्तमान समयमें अधिक अनुभागका होना भुजगार अनुभाग विभक्ति है। पिछले समयमें जितना अनुभाग हो उससे वर्तमान समयमें हीन अनुभागका होना अल्पतर अनुभाग-विभक्ति है। पिछले समयमें जितना अनुभाग हो, वर्तमान समयमें उतना ही अनुभागका होना अवस्थित विभक्ति है। और सत्ता प्राप्त होनेके प्रथम समयमें जो अनुभाग प्राप्त हो उसका नाम अवक्तव्य अनुभाग

विभक्ति है। यहाँ इस अनुयोगद्वारका समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा प्रतिपादन किया गया है। इन सब अधिकारोंकी जानकारीके लिए तो मूल ग्रन्थके स्वाध्यायकी आवश्यकता है। मात्र यहाँ इतना निर्देश कर देना उचित प्रतीत होता है कि मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन ही पद होते हैं, अवक्तव्यपद नहीं होता, क्योंकि जिसने मोहनीय कर्मका नाश कर लिया है उसके पुनः उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके भी मोहनीय सामान्यके समान तीन ही पद होते हैं। कारण पूर्वोक्त ही है। सम्यक्त्व, और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य ये तीन पद होते हैं। इनके प्रारम्भके दो पद होते हैं यह तो स्पष्ट ही है। तथा इनकी एक तो प्रथमबार सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय सत्ता होती है। दूसरे उद्वेलना होकर पुनः सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय सत्ता प्राप्त होती है इसलिए इनका अवक्तव्यपद भी बन जाता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगारपद न होनेका कारण यह है कि सत्तासे इनका उत्कृष्ट अनुभाग ही प्राप्त होता है, इसलिए उसमें वृद्धि सम्भव नहीं है। अनन्तानुबन्धीके चार पद होते हैं। अवक्तव्यपद होनेका कारण यह है कि इसकी विसंयोजना होकर पुनः संयोजना हो सकती है।

पदनिक्षेप

पदनिक्षेपमें भुजगारविभक्तिके अवान्तर भेदोंका विशेष रूपसे विचार किया जाता है। यथा—जो भुजगारविभक्ति होती है वह उत्कृष्ट वृद्धिरूप होती है या जघन्य वृद्धिरूप होती है। जो अल्पतरविभक्ति होती है वह उत्कृष्ट हानिरूप होती है या जघन्य हानिरूप होती है। तथा इन उत्कृष्ट वृद्धि आदिके बाद जो अवस्थान होता है वह भी उत्कृष्ट और जघन्यके भेदसे दो प्रकारका होता है। यदि उत्कृष्ट वृद्धि उत्कृष्ट हानिके बाद अवस्थान होता है तो वह उत्कृष्ट अवस्थान कहलाता है और जघन्य वृद्धि और जघन्य हानिके बाद अवस्थान होता है तो वह जघन्य अवस्थान कहलाता है। इसके तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और अवस्थानपद होते हैं। तथा जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और अवस्थान ये तीन पद भी होते हैं। इसी प्रकार मोहनीयकी अवान्तर प्रकृतियोंमें भी जान लेना चाहिए। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें भुजगारविभक्ति सम्भव न होनेसे यहाँ इनकी उत्कृष्ट वृद्धि और जघन्य वृद्धिका निर्देश नहीं किया है। अर्थात् इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि, जघन्य हानि और इनके अवस्थान ये पद ही होते हैं। यद्यपि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्यपद भी होता है पर इसका निर्देश भुजगार विभक्तिमें कर आये हैं। यहाँ इस पदकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं आती है, इसलिए पदनिक्षेपमें इसका अलगसे निर्देश नहीं किया है। स्वामित्व और अल्पबहुत्वका विचार मूल ग्रन्थको देखकर कर लेना चाहिए। यहाँ काल आदि अन्य अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर विचार नहीं किया गया है। मालूम पड़ता है कि पदनिक्षेपके कथनकी तीन अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर ही प्रवृत्ति रही है, अतः काल आदिका आश्रय लेकर प्ररूपणा नहीं की गई है।

वृद्धि

पदनिक्षेपमें जो उत्कृष्ट वृद्धि आदिका और उत्कृष्ट हानि आदिका निर्देश किया है वे कितने प्रकारकी होती हैं इत्यादिका आश्रय लेकर यह अनुयोगद्वार प्रवृत्त होता है, इसलिए इस अनुयोगद्वारमें छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थानका विचार किया जाता है। अनुभाग जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अनन्त अविभाग-प्रतिच्छेदोंको लिए हुए होता है, इसलिए इसमें सभी वृद्धियाँ और सभी हानियाँ सम्भव हैं। तथा उनके

बाद अवस्थान भी सम्भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसके तेरह अनुयोगद्वार हैं। नाम वे ही हैं जिनका निर्देश भुजगारविभक्तिके समय कर आये हैं। उनमेंसे समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यकी छह वृद्धियाँ, छह हानियाँ और अवस्थान ये पद होते हैं। इसीप्रकार छब्बीस उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षासे भी जानना चाहिए। मात्र यहाँ अनन्तानुवन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद भी जानना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनन्तगुणहानि, अवस्थान और अवक्तव्य ये तीन पद ही जानने चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय ही हानि होती है। वह भी केवल अनन्तगुण-हानिरूप ही होती है, इसलिए इसकी हानि एक प्रकारकी ही वतलाई है। शेष अनुयोगद्वारोंका विचार मूलको देखकर कर लेना चाहिए।

स्थानप्ररूपणा

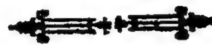
कर्मके अनुभागका विचार अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और स्थान इन पाँच विशेषताओंके साथ किया जाता है। इन पाँचों विशेषताओंकी चरचा मूलमें पृष्ठ २४१ के विशेषार्थमें की गई है, इसलिए इसे वहांसे जान लेनी चाहिए। यहां मुख्यरूपसे जो विचार करना है वह यह है कि अलग अलग कर्मोंकी अलग अलग फलदानशक्ति और एक ही कर्मकी हीनाधिक फलदानशक्ति क्यों होती है। एक उदाहरण यह दिया जाता है कि जिस प्रकार एक ही प्रकारका भोजन पाककालमें अनेक प्रकारके रस मज्जा आदि धातु उपधातु रूपसे परिणमन करता है उसीप्रकार कर्मका वन्ध होने पर वह भी पाककालमें अनेक प्रकारके फलोंको जन्म देता है। पर इस समाधानसे मूल बात पर बहुत ही कम प्रकाश पड़ता है, क्योंकि कर्मका बन्ध होने पर उसमें जो स्थिति और अनुभाग प्राप्त होता है उसीके अनुसार उसका पाक (फल) देखा जाता है। वन्धके बाद उसमें अन्य पाचनक्रिया नहीं होती। यह कहा जा सकता है कि वन्धके वाद भी उसमें संक्रमण, उत्कर्षण व अपकर्षण क्रिया होती ही है, इसलिए बन्धके वाद अन्य पाचनक्रिया नहीं होती यह मानना ठीक नहीं है। पर इस प्रश्नका समाधान यह है कि यह संक्रमण आदिरूप क्रिया भी वन्धका ही एक भेद है। जिस प्रकार कषाय आदि परिणामोंसे नवीन कर्मका वन्ध होता है उसी प्रकार वे परिणाम वँधे हुए कर्ममें भी अपनी जातिके भीतर परिवर्तन, रसोत्कर्ष व रसहानि करते हैं। उसे कर्मका पाक नहीं कहा जा सकता। पाक शब्दका प्रयोग दो अर्थोंमें होता है—एक आत्मसात करने अर्थमें और दूसरा भोग अर्थमें। भोजनको ग्रहण करते समय उसका सात्मीकरण नहीं होता। उसके उदरस्थ होने पर ही पाचन क्रिया व्यापारके द्वारा सात्मीकरण होता है। किन्तु कर्मके विषयमें ऐसी बात नहीं है। उसे जिस समय जीव ग्रहण करता है उसी समय सात्मीकरण हो जाता है। यह सम्भव है कि जिस रूपमें उसे ग्रहण किया है उसी रूपमें वह फल दे। यह बात अन्य है कि एक बार सात्मीकरण हो जानेके वाद भी जीव कालान्तरमें नवीन कर्मके समान पुनः पुनः उसका सात्मीकरण करता रहता है। जीवके द्वारा की गई इस क्रियाका नाम ही संक्रमण और उत्कर्षण आदि है। इसलिए हमें यह जानना आवश्यक है कि कर्ममें यह विविध प्रकारकी फलदानशक्ति क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होती है? यह तो प्रत्येक विचारक जानता है कि जीव अमूर्तिक है और कर्म मूर्तिक। अमूर्तिक और मूर्तिकका वन्ध नहीं होना चाहिए, क्योंकि दो द्रव्योंके परस्पर अनुप्रविष्ट होकर स्पर्श विशेषका नाम वन्ध है, अतः वन्ध उन्हीं दो द्रव्योंका हो सकता है जिनमें स्पर्शगुण हो। आत्मामें स्पर्शगुण तो होता नहीं फिर उसका कर्मके साथ बन्ध कैसा? प्रश्न मार्मिक है। शास्त्रकारोंने इस प्रश्नका यह समाधान किया है कि जीव अनादिसे कर्मवद्ध है। कर्मको वह अपने परिणामोंसे ही ग्रहण करता है, इसलिए दोनों मिलकर एकक्षेत्रावगाही हो कर रहते हैं और दोनोंकी क्रिया प्रतिक्रियाका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। तथा इस क्रिया प्रतिक्रियाके अनुसार प्रति समय नये नये कारणकूट मिलते रहते हैं। जहां तक हलन चलन रूप क्रियाका सम्बन्ध है वहां

तक उस द्वारा नये नये कर्मोंका ग्रहण होता है। हमारे सामने यह प्रश्न बहुत दिनसे था कि योग क्रिया द्वारा कर्मका ग्रहण हो यह तो ठीक है पर उसका ज्ञानावरणादि रूपसे विभाजन होकर क्यों ग्रहण होता है, क्योंकि यह कर्म ज्ञानका आवरण करे और यह दर्शनका आवरण करे यह विभाग योग क्रियासे सम्भव नहीं हो सकता है। यदि इसे भी कषायका कार्य माना जाय तो प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण योग है इस आगम वचनमें बाधा आती है। किन्तु हमारे इस प्रश्नका समाधान धवला वर्गणाखण्डसे हो जाता है। वहां वर्गणाओंका विशेषरूपसे ऊहापोह किया गया है। इस सम्बन्धमें वहां लिखा है कि प्रत्येक कर्मकी वर्गणाएँ ही अलग अलग हैं। प्रारम्भमें जो भी इस बातको सुनेगा उसे आश्चर्य अवश्य होगा पर समीचीन बात यही प्रतीत होती है। कारण कि जिसप्रकार हम अलग अलग पुद्गल स्कन्धोंमें अलग अलग प्रकारके कार्य करनेकी क्षमता देखते हैं। कोई पुद्गल स्कन्ध मारक होता है, कोई पुद्गल स्कन्ध मादकता उत्पन्न करता है और कोई पुद्गलस्कन्ध संजीवनीका कार्य करता है। यह उस पुद्गलस्कन्धके अमुक प्रकारके स्पर्श रस आदि युक्त हो कर बन्धनविशेषका ही कार्य होता है। इसी प्रकार कर्मवर्गणाएँ भी अपने अपने बन्धन विशेषके कारण ऐसी बनती हैं जिनमेंसे कोई बन्ध होने पर आवरणका कार्य करनेमें सहायक होती हैं, कोई मोहनका कार्य करनेमें सहायक होती हैं और कोई सुख-दुखका वेदन करानेमें सहायक होती हैं। जीवके कषाय आदि परिणामोंका यह कार्य नहीं कि कौन वर्गणाएँ उससे सम्बद्ध हो कर किस प्रकारका कार्य करें। वर्गणाएँ नियत हैं और वे सम्बद्ध हो कर नियत कार्य ही करती हैं। यहां नियत कार्यसे तात्पर्य कार्य सामान्यसे है। यही कारण है कि बद्ध कर्ममें ज्ञानावरणका दर्शनावरण आदि रूपसे और दर्शनावरणका ज्ञानावरण आदिरूपसे संक्रमण नहीं हो सकता। आत्माके रागादि परिणामोंका कार्य इससे आगेका है। आत्माके रागादि परिणाम क्या कार्य करते हैं इसके लिए यह दृष्टान्त उपयुक्त होगा। मान लीजिए किसीको आतिसबाजीके निर्माण करनेका ज्ञान है, अतः वह उसकी सामग्रीको प्राप्त कर किसीसे फुलझड़ी बनाता है और किसीसे अन्य खेलकी सामग्री तैयार करता है। विस्फोट करनेके स्वभाव वाली एक प्रकारकी इस सामग्रीसे वह अपने परिणामोंके अनुसार उसका तदनुरूप विविध प्रकारके कार्य रूपसे निर्माण करता है उसी प्रकार जब जीव योगक्रिया द्वारा कर्मोंको ग्रहण करता है तब उनका परिणाम विशेषके कारण स्पर्शके तारतम्य और विशिष्ट प्रकारके आकार को लिए हुए उसी प्रकारका बन्धन होता है जिससे उस बन्धनके अलग होते समय अपनी विस्फोट क्रिया (उदय) द्वारा वह आत्मामें उन संस्कारोंको उद्बुद्ध करता है जिन कार्योंके करनेसे उसके कर्ममें वैसे संस्कार पड़े थे। उदाहरणार्थ एक आदमीने किसी दूसरे आदमी की हत्या की, इसलिए हत्या करनेवालेके उस समय मोहनीय कर्मके उपयुक्त वर्गणाओंका ऐसा बन्धनविशेष होगा जो यदि तदनुरूप बना रहा। अर्थात् अपनी जातिके भीतर अन्य कार्यरूपसे नहीं बदला तो अपने वियोगके समय उन संस्कारोंको उद्बुद्ध करता है जिससे वह भी दूसरेके द्वारा हननक्रियाका पात्र होता है। प्रश्न यह है कि उसने हननक्रिया विवक्षित समयमें की थी किन्तु उस क्रियासे सम्बद्ध संस्कारवाले कर्मोंका विस्फोट (उदय) किसी एक समयमें तो होता नहीं किन्तु दीर्घ कालतक होता रहता है, इसलिए उसके वे हननक्रियाके योग्य संस्कार कब उद्बुद्ध होंगे। समाधान यह है कि जब तदनुरूप निमित्त मिलेगा तब उन संस्कारोंके योग्य कर्मका विशेष रूपसे (उदय) विस्फोट होगा। उदीरणाका रहस्य भी यही है। विवक्षित विषयको स्पष्ट करनेके लिए हमने एक दृष्टान्तमात्र दिया है। कर्मप्रक्रियाको देखकर इसकी संगति बिठला लेनी चाहिए। इसप्रकार इतने विवेचनसे हमें कर्मोंकी अलग अलग फलदान शक्तिका और एक ही कर्मकी न्यूनाधिक फलदान शक्तिका ज्ञान हो जाता है। तात्पर्य यह है कि योगसे उस उस प्रकृतिवाले कर्मोंका ही ग्रहण होता है। ज्ञानको जो वर्गणाएँ आवृत्त करती हैं वे अलग हैं और दर्शनको आवरण करनेवाली वर्गणाएँ अलग हैं। योगद्वारा वे आत्माके साथ बन्धनके लिए सन्मुख कर दी जाती हैं। इसी प्रकार अन्य कर्मोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिए। योगद्वारा मूलमें ऐसे स्वभाववाली वर्गणाओंका ग्रहण होता है पर उनका ग्रहण

होनेपर वे आत्माके साथ किस प्रकारके स्पर्शको (बन्धको) प्राप्त हों यह कार्य कषायका है। कषायके कारण ही उनके स्पर्शकी हीनाधिकता और स्पर्शमें तारतम्य व आकार निश्चित होता है जिसे क्रमसे स्थिति और अनुभाग कहा जाता है। इस प्रकार अनुभागका ज्ञान हो जानेपर वह किस क्रमसे रहता है इस प्रक्रियाको बतलानेके लिए स्थानोंका निरूपण किया गया है। स्थान तीन प्रकारके हैं – बन्धसमुत्पत्तिकस्थान, हतसमुत्पत्तिकस्थान और हतहतसमुत्पत्तिकस्थान। बन्धके समय जो अनुभागकी क्रमिक रचना होती है उस सबको बन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। तथा सत्तामें स्थित अनुभागका घात होकर जो स्थान उत्पन्न होते हैं वे यदि बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंके समान होते हैं तो उन्हें भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान कहते हैं। किन्तु जो स्थान घातसे उत्पन्न होकर बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंसे भिन्न होते हैं उन्हें हतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। तथा इन हतसमुत्पत्तिकस्थानोंका भी घात होकर जो अन्य स्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें हतहतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। इनमें बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे थोड़े हैं। हतसमुत्पत्तिकस्थान इनसे असंख्यातगुणे हैं और हतहतसमुत्पत्तिकस्थान इनसे भी असंख्यातगुणे हैं। इनका विशेष ऊहापोह मूलमें किया ही है, इसलिए वहांसे जान लेना चाहिए।



विषय-सूची



कसायपाहुडस्स

अणुभागविहत्ती

चउत्थो अत्थाहियारो



सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

अणुभागविहत्ती णाम चउत्थो अत्थाहियारो



णिट्ठवियअट्ठकम्मं वीरं णमियूण पत्तसव्वट्ठं ।
अणुभागस्स विहत्तिं जहोवएसं परूवेमो ॥१॥

जिन्होंने आठों कर्मोंका नाश कर दिया है और समस्त अर्थोंको प्राप्त कर लिया है उन श्री वीर जिनदेवको नमस्कार करके शास्त्रानुसार अनुभागविभक्तिको कहते हैं ॥ १ ॥

*** एत्तो अणुभागविहत्ती दुविहा—मूलपयडिअणुभागविहत्ती चेव उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती चेव।**

§ १. को अणुभागो? कम्माणं सगकज्जकरणसत्ती अणुभागो णाम। तस्स[1] विहत्ती भेदो पवंचो जम्हि अहियारे परूविज्जदि सा अणुभागविहत्ती णाम। तिस्से दुवे अहियारा—मूलपयडिअणुभागविहत्ती उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती चेदि। मूलपयडि-अणुभागस्स जत्थ विहत्ती परूविज्जदि सा मूलपयडिअणुभागविहत्ती। उत्तरपयडीण-मणुभागस्स जत्थ विहत्ती परूविज्जदि सा उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती। एवमेत्थ वे चेव अत्थाहियारा; तदियस्स णिव्विसयत्तेण अभावादो। ण दोण्हमहियाराणं समूहो विसओ; समूहित्तदिरित्तसमूहाभावादो तेहिंतो चेव तदवगमादो वा।

*** एत्तो मूलपयडिअणुभागविहत्ती भाणिदव्वा।**

§ २. एदम्हादो णिवंधणादो मूलपयडिअणुभागविहत्ती भाणिदूर्ण[2] गेण्हदव्वा। संपहि एदस्स सुत्तस्स उच्चारणाइरियकयवक्खाणं वत्तइस्सामो। तत्थ इमाणि तेवीसं

*** यहाँ से अनुभागविभक्ति का कथन प्रारम्भ होता है। उसके दो भेद हैं—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति।**

§ १. शङ्का—अनुभाग किसे कहते हैं?

समाधान—कर्मोंके अपना कार्य करनेकी शक्तिको अनुभाग कहते हैं, अर्थात् कर्मोंमें अपना अपना फल देनेकी जो शक्ति रहती है उसे ही अनुभाग कहा जाता है।

उस अनुभागकी विभक्ति अर्थात् भेद या विस्तार जिस अधिकारमें कहा जाता है उसका नाम अनुभागविभक्ति है। उसके दो अधिकार हैं—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृति अनुभागविभक्ति। जिस अधिकारमें मूल प्रकृतियोंके अनुभागका विभाग कहा जाता है वह मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति है और जिसमें उत्तर प्रकृतियोंके अनुभागके विस्तारको कहा जाता है वह उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति है। इस प्रकार यहाँ दो ही अधिकार हैं। तीसरे अधिकारका अभाव है; क्योंकि उसका कोई विषय नहीं है। शायद कहा जाय कि दोनों अधिकारोंका समूह उसका विषय है अर्थात् तीसरे अधिकारमें मूल प्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति का कथन रह सकता है सो भी ठीक नहीं है; क्योंकि समूहवालोंसे अतिरिक्त समूहका अभाव है और समूहवालोंका ज्ञान हो जानेसे ही उनके समूहका भी ज्ञान हो जाता है। सारांश यह है कि जब पहले अधिकारमें मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका और दूसरेमें उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन हो ही चुकता है तो उनका ज्ञान हो जानेसे उनके समूहका भी ज्ञान हो ही जाता है, क्योंकि दोनों विभक्तियोंका समूह उनसे कोई पृथक् वस्तु नहीं है, अतः तीसरे अधिकारमें कथन करनेके लिये कोई विषय ही नहीं है इसलिये यहाँ तीसरे अधिकारका अभाव है।

*** यहाँसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन कराना चाहिये।**

§ २. इस सूत्रसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन कराके उसे ग्रहण करना चाहिये। अब इस सूत्रके उच्चारणाचार्यकृत व्याख्यानको कहेंगे। मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिके विषयमें ये

---

१. आ० प्रतौ अणुभागो। तस्स इति पाठः। २. ता० प्रतौ भणिदूण इति पाठः।

अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—सण्णा सव्वाणुभागविहत्ती णोसव्वाणुभागविहत्ती उक्कस्साणुभागविहत्ती अणुक्कस्साणुभागविहत्ती जहण्णाणुभागविहत्ती अजहण्णाणुभागविहत्ती सादियअणुभागविहत्ती अणादियअणुभागविहत्ती धुवाणुभागविहत्ती अद्धुवाणुभागविहत्ती एग जीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुअं चेदि। सण्णियासो णत्थि; एक्किस्से पयडीए तदसंभवादो। भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढिविहत्ति-ट्ठाणाणि चेदि अण्णे चत्तारि अत्थाहियारा होंति।

§ ३. तत्थ एदेहि कमेण मूलपयडिअणुभागविहत्तीए परूवणं कस्सामो। तं जहा—सण्णा दुविहा—घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा चेदि। घादिसण्णा दुविहा—जहण्णा उक्कस्सा चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सअणुभागविहत्ती सव्वघादी। सव्वघादि त्ति किं? सगपडिवद्धं जीवगुणं सव्वं णिरवसेसं घाइउं विणासिदुं सीलं जस्स अणुभागस्स सो अणुभागो सव्वघादी[1]। अणुक्कस्सअणुभागविहत्ती सव्वघादी देवघादी वा। एवं मणुसतिण्णि-

तेईस अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं—संज्ञा, सर्वानुभागविभक्ति, नोसर्वानुभागविभक्ति, उत्कृष्टानुभागविभक्ति, अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति, जघन्य अनुभागविभक्ति, अजघन्य अनुभागविभक्ति, सादिअनुभागविभक्ति; अनादिअनुभागविभक्ति, ध्रुवअनुभागविभाक्ति, अध्रुवअनुभागविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। यहाँ सन्निकर्ष अनुयोगद्वार नहीं है, क्योंकि एक प्रकृतिमें सन्निकर्ष संभव नहीं है। यहाँ भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धिविभक्ति और स्थान ये चार अधिकार और होते हैं।

§ ३. अब इनके द्वारा क्रमसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन करेंगे। वह इस प्रकार है—संज्ञा दो प्रकारकी है—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। घातिसंज्ञा दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे पहले उत्कृष्ट घातिसंज्ञाका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभाग विभक्ति सर्वघाती है।

शंका—सर्वघाति इस पदका क्या अर्थ है?

समाधान—अपने से प्रतिवद्ध जीवके गुणको पूरी तरह से घातनेका जिस अनुभागका स्वभाव है उस अनुभागको सर्वघाती कहते हैं।

मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती भी है और देशघाती भी है। इसी

---

१. जो घाएइ सविसयं सयलं सो होइ सव्वघाइरसो।
सो निच्छिद्दो निद्धो तणुओ फलिहब्भहरविमलो ॥ १४८ ॥ श्वेताम्बर पंचसंग्रहद्वार ३
व्याख्या—'यो घातयति स्वविषयं संकलं स भवति सर्वघातिरसः।
सर्वं स्वघात्यं केवलज्ञानादिलक्षणं गुणं घातयतीति सर्वघातीति।
कर्मप्रकृतिग्रन्थ संक्रमकरणे गाथा टीका ४४

स्वविषयं कार्त्स्न्येन घ्नन्ति यास्ताः सर्वघातिन्यः। कर्मप्रकृतिग्रन्थ टीका १०१

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियकाय०-चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ ४. आदेसेण णेरइएसु उक्क० अणुक्क० सव्वघादी । एवं सव्वणिरय-सव्व-तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेव-सव्वेइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-सव्वपंच-काय--तसअपज्ज०--ओरालियमिस्स०--वेउव्विय०--वेउ० मिस्स०--कम्मइय०--आहार०-आहारमिस्स०-तिण्णिवेद-तिण्णिअण्णाण-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०--पंचले०-अभवसि०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति[1] ।

प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक में जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मके अनुभागका वर्णन करनेके लिये जो तेईस अनुयोगद्वार बतलाये हैं उनमेंसे पहले संज्ञाके द्वारा अनुभागका वर्णन किया है । संज्ञाके दो भेद कहे हैं—एक घाती दूसरा स्थान । मोहनीय कर्म घाती है; क्योंकि वह आत्माके गुणोंको घातता है । इसलिये उसके अनु-भागकी घाति संज्ञा है। वह अनुभागकी हीनाधिकताको लिए हुए अनेक प्रकारका होता है । सबसे अधिक फलदानकी शक्तिको उत्कृष्ट अनुभाग कहते हैं और उसके सिवा शेषको अनुत्कृष्ट कहते हैं । हीन फलदानकी शक्तिको जघन्य अनुभाग कहते हैं और उसके सिवा शेषको अजघन्य कहते हैं । इस प्रकार घाती मोहनीय कर्मके अनुभागके चार प्रकार हो जाते हैं—उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य । इन चार भेदों में से उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती ही होती है परन्तु अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिमें जघन्य भी सम्मिलित है. इस लिए वह सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकार की होती है । जो अनुभागविभक्ति आत्माके गुणोंको पूरी तरहसे घातती है वह सर्वघाती है और जो उन्हें एकदेशसे घातती है वह देशघाती है ।

अनुभागके भेद प्रभेदोंको सर्वघाती और देशघातीकी तरह एक दूसरे प्रकारसे भी विभाजित किया जाता है और वह प्रकार है स्थानसंज्ञाका । मोहनीय कर्मके अनुभागस्थानों को चार हिस्सोंमें बाटा जाता है—एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक । एकस्थानिक स्पर्धक देशघाती ही होते हैं और द्विस्थानिक स्पर्धक देशघाती भी होते हैं और सर्व-घाती भी होते हैं । किन्तु शेष अनुभाग स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं ।

§ ४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्ति सर्वघाती है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्तक, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब तेज-कायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, तीनों वेदी, कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धसंयमी, संयतासंयत, असंयत, शुक्लके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—उक्त सब मार्गणाओंमें मोहनीयकर्मका एक स्थानिक अनुभाग नहीं रहता है

---

1. ता० प्रतौ आहारि त्ति इति पाठः ।

§ ५. अवगद० उक्क० सव्वघादी। अणुक्क० सव्वघादी देसघादी वा। एवमाभिणि०-सुद०--ओहि०--मणपज्ज०--संजम०--सामाइय--छेदो०--सुहुम०--ओहिदंस०-सुक्कले०--सम्मादिट्ठि०--खइयसम्मादिट्ठि० त्ति। अकसाइ० उक्क० अणुक्क० सव्वघादी०। एवं जहाक्खाद०संजदे त्ति।

एवमुक्कस्ससण्णाणुगमो समत्तो।

§ ६. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेणं[1] मोह० जहण्णाणुभागविहत्ती देसघादी। अजहण्णाणु० देसघादी सव्वघादी वा। एवं मणुसतिय--पंचिंदिय--पंचिंदियपज्ज[2]०--तस--तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालियकाय०--अवगदवेद०--चत्तारिकसाय--आभिणि०--सुद०--ओहि०--मणपज्ज०-संजद०-सामाइय--छेदो०--सुहुम०सांपराइय--चक्खु०--अचक्खु०--ओहिदंसण-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि-आहारि त्ति।

जैसा कि आगेके स्थानसंज्ञा अनुयोगद्वारसे स्पष्ट है। तथा द्विस्थानिक अनुभागका भी वही अंश रहता है जो सर्वघाती है अतः इनमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती होती है।

§ ५. वेद रहित जीवकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती है और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती अथवा देशघाती है। इसीप्रकार आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयमी, सामायिकसंयमी, छेदोपस्थापनासंयमी, सूक्ष्मसाम्परायसंयमी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके जानना चाहिये। अकषायिक जीवकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती है। इसी प्रकार यथाख्यातचारित्रसंयतमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मूलमें कही गई क्षायिकसम्यग्दृष्टि पर्यन्त मार्गणाओंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति तो सर्वघाती ही होती है किन्तु अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती भी होती है और देशघाती भी होती है। इसका कारण यह है कि इनके क्षपकश्रेणीमें एकस्थानिक अनुभागकी भी सत्ता रहती है। अकषायिक और यथाख्यातसंयत जीवोंके मोहनीयके सर्वघाती अनुभागकी ही सत्ता रहती है, क्योंकि उपशमश्रेणीकी अपेक्षा ही इन मार्गणाओंमें मोहनीयका सत्त्व सम्भव है। अतः उनके दोनों ही अनुभाग सर्वघाती होते हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट संज्ञानुगम समाप्त हुआ।

§ ६. अब जघन्य अनुभागविभक्तिका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति देशघाती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति देशघाती अथवा सर्वघाती है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, पंचेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, चारों कषायवाले, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयमी, छेदोपस्थापनासंयमी, सूक्ष्मसांपरायसंयमी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारकोंमें समझना चाहिये।

---

१. ता० प्रतौ य। ओघेण इति पाठः। २. आ० प्रतौ मणुसतिय पंचिंदियपज्ज० इति पाठः।

§ ७. आदेसेण णेरइएसु जहण्ण० अजहण्ण० सव्वघादी। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०--सव्वदेव--सव्वएइंदिय--सव्वविगलिंदिय--पंचेंदियअपज्ज०[1] सव्वपंचकाय०--तसअपज्ज०--ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०[2]-कम्मइय०-आहार०-आहारमिस्स०-तिण्णिवेद०-अकसा० -तिण्णिअण्णा०--परिहार०-जहाक्खाद०-संजमासंजम--असंजम---पंचले०--अभवसि०--वेदग०--उवसम०--सासण०--सम्मामि०--मिच्छादि०--असण्णि०-अणाहारि त्ति।

एवं जहण्णसण्णाणुगमो समत्तो।

§ ८. द्वाणसण्णा दुविहा—जहण्णिया उक्कस्सिया चेदि। उक्कस्सियाए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागद्वाणं चदुद्वाणियं। अणुक्क० चदुद्वाणियं तिद्वाणियं विद्वाणियं एगद्वाणियं वा। एवं मणुसतिण्णि-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालियकाय०-

§ ७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्ति सर्वघाती है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्यअपर्याप्त, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब तेजस्कायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, त्रसअपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, तीनों वेदवाले, अकषायिक, कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयमी, यथाख्यातचारित्रसंयमी, संयमासंयमी, असंयमी, शुक्ललेश्याके सिवा शेष पांचों लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यामिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकमें समझना चाहिये।

विशेषार्थ—मूलमें कही गई आहारक पर्यन्त मार्गणाओं में क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा एक स्थानिक अनुभाग का भी सत्त्व पाया जाता है। अतः उनमें जघन्य अनुभाग देशघाती और अजघन्य अनुभाग देशघाती तथा सर्वघाती होता है। तथा शेष अनाहारक पर्यन्त मार्गणाओं में सर्वघाती अनुभागका ही सत्त्व पाया जाता है अतः उनमें जघन्य और अजघन्य दोनों अनुभाग सर्वघाती ही होते हैं। यहां यह स्मरण रखनेकी बात है कि अनुभागके ये उत्कृष्ट आदि भेद ओघ और आदेश दो प्रकारसे किये हैं। इसलिए जहाँ जो सम्भव हों उस अपेक्षा से उन्हें घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार जघन्य संज्ञानुगम समाप्त हुआ।

§ ८. स्थानसंज्ञा दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे यहां उत्कृष्ट का प्रकरण है। निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक और एकस्थानिक होता है। इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्य, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-

१. आ० प्रतौ सव्वविगलिंदियअपज० इति पाठः। २. ता० प्रतौ ओरालियमिस्स० वेउव्विय-मिस्स० इति पाठः।

चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति।

§ ९. आदेसेण णेरइएसु उक्कस्स० चउट्ठाण०। अणुक्क० वेट्ठा० तिट्ठा० चदुट्ठाणियं वा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव भवणादि जाव सहस्सार सव्वेइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०--सव्वपंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालयमिस्स०-वेउव्विय०--वेउव्वियमिस्स०--कम्मइय०--तिण्णिवेद--तिण्णिअण्णाण--असंजद-पंचले०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्क० अणुक्क० वेट्ठाणियं। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अकसाय-परिहार०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-वेदगसम्माइट्ठि-उवसम०-सासण०-सम्मामि०दिट्ठि त्ति। अवगदवेदेसु मोह० उक्क० वेट्ठाणियं। अणुक्क० वेट्ठाणियमेगट्ठाणियं वा। एवमाभिणि०-सुद०--ओहि०--मणपज्जव०--संजद०--सामाइय-च्छेदो०--सुहुमसांपराइय०--ओहिदंस०-

---

योगी, चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारकमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—घातिकर्मोंकी अनुभागशक्ति लता, दारु, अस्थि और शैल इस प्रकार चार प्रकारकी मानी गई है। जिसमें यह चारों प्रकारकी शक्ति होती है उसे चतुःस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें शैलरूप शक्तिके सिवा तीन प्रकारकी शक्ति होती है उसे त्रिस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें लता और दारुरूप शक्ति होती है उसे द्विस्थानिक अनुभाग कहते हैं और जिसमें केवल लतारूप शक्ति होती है उसे एकस्थानिक अनुभाग कहते हैं। उत्कृष्ट अनुभागशक्ति चतुःस्थानिक होती है यह स्पष्ट ही है और उससे हीन सब अनुभाग शक्ति अनुत्कृष्ट कहलाती है, इसलिए अनुत्कृष्ट अनुभागशक्तिको चतुःस्थानिक आदि चारों प्रकारका कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि एकस्थानिक अनुभागशक्ति क्षपकश्रेणिके सिवा अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती। यही कारण है कि यहाँ जिन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणि सम्भव है उनका कथन ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा चतुःस्थानिक होता है। इसी प्रकार सब नारकियों, सब तिर्यञ्चों, मनुष्य अपर्याप्तक, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियअपर्याप्त, सब पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, शुक्ललेश्याके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहरकमें जानना चाहिये। अर्थात् उनमें उत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा द्विस्थानिक होता है। आनतस्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक ही होता है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, परिहारविशुद्धिसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जानना चाहिये। अर्थात् उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक ही होता है। अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक अथवा एकस्थानिक होता है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत,

सुक्कले०-सम्मादिट्ठि-खइय०दिट्ठि त्ति।

एव उक्कसिया ट्ठाणसण्णा समत्ता।

§ १०. जहण्णियाए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण-मोह० जहण्णाणुभागविहत्ती एगट्ठाणिया। अज० एगट्ठा० विट्ठा० तिट्ठा० चउट्ठाणिया वा। एवं मणुसतिग-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०--ओरालिय०--चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०--भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति।

§ ११. आदेसेण णेरइएसु ज० वेट्ठाणियं। अज० वेट्ठा० तिट्ठा० चउट्ठाणियं वा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव भवणादि जाव सहस्सार सव्व-

---

छेदोपस्थापनासंयत, सूक्ष्मसांपरायसंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिये। अर्थात् उनमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक अथवा एकस्थानिक होता है।

विशेषार्थ—आदेशसे प्ररूपणा करते समय यहाँ निर्दिष्ट सब मार्गणाओंको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है। प्रथम प्रकारमें वे मार्गणाएँ आती हैं जिनमें ओघ उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है। या उसका घात किये बिना जिनमें ऐसे जीवोंकी उत्पत्ति सम्भव है। दूसरे प्रकारमें वे मार्गणाएँ आती हैं जिनमें क्षपकश्रेणि तो सम्भव नहीं पर अन्तरङ्ग विशुद्धिके कारण न तो द्विस्थानिक अनुभागसे ऊपरके या नीचके अनुभागका बन्ध ही होता है और न इससे आगेके या नीचेके अनुभागकी सत्ता ही रहती है। तथा तीसरे प्रकारमें वे मार्गणाएँ आतीं हैं जिनमें परिणामोंकी विशुद्धिके कारण द्विस्थानिक अनुभागसे आगेके अनुभागका न तो वन्ध ही होता है और न सत्ता हीं रहती है। परन्तु इन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होने से यहाँ एकस्थानिक अनुभाग भी वन जाता है। मार्गणाओंका नामनिर्देश मूलमें किया ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थानसंज्ञा समाप्त हुई।

§ १०. अव जघन्य स्थानसंज्ञाका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा चतुःस्थानिक होती है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यिनी, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारकमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—एकस्थानिकमें भी जो सबसे हीन अनुभागशक्ति होती है वह जघन्य अनुभागशक्ति है और इसके सिवा शेष सब अजघन्य अनुभागशक्ति है। इनमेंसे मोहनीयकी जघन्य अनुभागशक्ति क्षपकसूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होती है। इसके सिवा अन्यत्र अजघन्य होती है। ओघसे तो यह सम्भव है ही। पर जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्वादि क्षपक सूक्ष्मसापराय तक गुणस्थान सम्भव हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः मूलमें निर्दिष्ट मार्गणाओंका कथन ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ११. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनियकर्मका जघन्य अनुभागस्थान द्विस्थानिक होता है और अजघन्य अनुभागस्थान द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा चतुःस्थानिक होता है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार

एइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-सव्वपंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०--कम्मइय०-तिण्णिवेद-तिण्णिअण्णाण--असंजद--पंचलेस्सा-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति जहण्णाजहण्णअणुभागविहत्ती वेट्ठाणिया। एवं आहार०-आहारमि०-अकसा०-परिहार०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०दिट्ठि त्ति। अवगदवेदेसु मोह० ज० एगट्ठाणिया। अज० एगट्ठाणिया विट्ठाणिया वा। एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०--मणपज्ज०--संजद०--सामाइय--छेदो०--सुहुमसांपराय०--ओहिदंस०--सुक्कले०-सम्मादि०-खइय०दिट्ठि त्ति।

एवं जहण्णिया द्वाणसण्णा समत्ता।

§ १२. सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघे० मोह० सव्वफद्दयाणि सव्वविहत्ती। तदूणं णोसव्वविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

स्वर्ग तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, शुक्ललेश्याके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहरकमें जानना चाहिये। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्ति द्विस्थानिक ही होती है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, परिहारविशुद्धिसंयत, यथाख्यात-संयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टिमें जानना चाहिये। अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है और द्विस्थानिक होती है। इसी प्रकार आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिये। अर्थात् इनमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक और द्विस्थानिक होती है।

इस प्रकार जघन्य स्थानसंज्ञा समाप्त हुई।

§ १२. सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्तिकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके सब स्पर्धक सर्वविभक्ति हैं और उनसे न्यून स्पर्धक नोसर्वविभक्ति हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—सर्वविभक्तिसे आशय है सब भेद-प्रभेद। अर्थात् सब भेद-प्रभेदोंके समूहको सर्वविभक्ति कहते हैं और उस समूहमेंसे यदि एक भी भेद कम हो तो उसे नोसर्वविभक्ति कहते हैं। अतः मोहनीयकर्मके जितने स्पर्धक हैं उनका समूह सर्वविभक्ति कहा जाता है और उस समूहमेंसे यदि एक भी स्पर्धक कम हो तो उसे नोसर्वविभक्ति कहते हैं। सारांश यह है कि सर्वविभक्ति केवल सब स्पर्धकोंका समूह ही है और उस समूहसे कम स्पर्धक नोसर्वविभक्ति हैं। सब मार्गणाओंमें सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्तिका यही क्रम समझना चाहिये।

§ १३. उक्कस्साणुक्कस्साणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० सव्वुक्कस्सओ अणुभागो उक्कस्सविहत्ती। तदूणमणुक्कस्सविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति; आदेसुक्कस्सस्स सव्वत्थ संभवादो।

§ १४. जहण्णाजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० सव्वजहण्णओ अणुभागो जहण्णविहत्ती। तदुवरिमा अजहण्णविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति; आदेसजहण्णस्स सव्वत्थ संभवादो।

§ १५. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। ओघे० मोह० उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्णअणुभागविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किद्धुवा वा ? सादि—अद्धुवा। अज० किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा वा ? अणादिया धुवा अद्धुवा वा। आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० अणुक्क० ज० अज० [किं सादि०] किमणादि० किं धुवा किमद्धुवा ? सादि-अद्धुवा।

---

§ १३. उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सर्वोत्कृष्ट अनुभाग उत्कृष्टविभक्ति है और उससे न्यून अनुभाग अनुत्कृष्टविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिये; क्योंकि आदेश उत्कृष्ट अनुभाग सब जगह सम्भव है।

§ १४. जघन्य अनुभागविभक्ति और अजघन्य अनुभागविभक्तिकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सबसे जघन्य अनुभाग जघन्यविभक्ति है और उससे ऊपरके अनुभाग अजघन्य विभक्ति हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये, क्योंकि आदेश जघन्य अनुभाग सब जगह संभव है।

विशेषार्थ—यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका विचार करते समय आदेश उत्कृष्टकी और जघन्य-अजघन्य अनुभाग विभक्तिका विचार करते समय आदेश जघन्यकी सम्भावना प्रकट की है सो उसका यही अभिप्राय है कि जिन मार्गणाओंमें ओघ उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति और ओघ जघन्य अनुभागविभक्ति सम्भव नहीं है वहां जो सबसे उत्कृष्ट अनुभाग हो उसे आदेश उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति और जो सबसे कम अनुभाग हो उसे आदेश जघन्य अनुभाग विभक्ति जानना चाहिए। उदाहरणस्वरूप आभिनिबोधिक ज्ञानमें एकस्थानिक और द्विस्थानिक यह दो प्रकारकी अनुभागविभक्ति ही सम्भव है, इसलिए यहां उत्कृष्ट से आदेश उत्कृष्ट द्विस्थानिक अनुभागविभक्ति ली गई है। तथा सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य अनुभागविभक्ति भी द्विस्थानिक सम्भव है, इसलिए वहां जघन्यसे आदेश जघन्य अनुभागविभक्ति ली गई है। इसी प्रकार सर्वत्र जहाँ जो सम्भव हो उसे घटित कर लेना चाहिए।

§ १५. सादि अनुभागविभक्ति, अनादि अनुभागविभक्ति, ध्रुवअनुभागविभक्ति और अध्रुव-अनुभागविभक्ति की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघ की अपेक्षा मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि है क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि अध्रुव है। अजघन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि है क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है, क्योंकि

पदपरिवत्तणेण णिग्गमणपवेसेहि य तदुवलंभादो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारमग्गणा त्ति।

§ १६. सामित्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि ताव सो एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णिपंचिंदिओ वा अण्णदरस्स जीवस्स अण्णदरगदीए वट्टमाणस्स[1]। असंखेज्ज-वस्साउअतिरिक्ख-मणुस्सेसु मणुसोववादियदेवेसु[2] च णत्थि। अणुक्कस्साणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स।

पदपरिवर्तनकी अपेक्षा और नरकसे निकलने और नरकमें प्रवेश करनेका अपेक्षा उत्कृष्ट आदि चारोंका सादि और अध्रुवभाव बन जाता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें होता है, अतः वह सादि और अध्रुव है। उससे पहले अजघन्य अनुभाग होता है अतः जो सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक नहीं हुए उनके अजघन्य अनुभाग अनादि है। भव्य की अपेक्षा वह अध्रुव है और अभव्य की अपेक्षा ध्रुव है। तथा उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टिके होता है और तब तक ही उसका सत्त्व रहता है जब तक उसका घात नहीं करता, अतः वह सादि और अध्रुव है। उत्कृष्ट अनुभागबन्धके पश्चात् जो बन्ध होता है उसे अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध कहते हैं, अतः अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी सादि और अध्रुव ही होता है। मार्गणाओंमें उत्कृष्ट आदि चारों पद सादि और अध्रुव ही होते हैं, क्यों कि एक तो मार्गणाएँ बदलती रहती हैं और दूसरे कोई मार्गणा नहीं भी बदलती है जैसे अभव्य तो उनमें उत्कृष्ट आदि पद बदलते रहते हैं, अतः मार्गणाओंमें उत्कृष्ट आदि चारोंके सादि और अध्रुव ये दो पद ही सम्भव हैं।

§ १६. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। यहाँ उत्कृष्ट स्वामित्वसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जो जीव उसका जब तक घात नहीं करता है तब तक वह एकेन्द्रिय हो या दोइन्द्रिय हो या तेइन्द्रिय हो या चौइन्द्रिय हो अथवा असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय हो किसी भी गतिमें वर्तमान किसी भी जीवके उत्कृष्ट अनुभाग होता है। किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्योंमें तथा मनुष्योंमें ही जिनकी उत्पत्ति होती है उन देवोंमें उत्कृष्ट अनुभाग नहीं होता है। अनुत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? किसी भी जीवके होता है।

---

१. उक्कोसगं पबंधिय आवलियमइच्छिऊण उक्कस्सं। जाव ण घाएइ तयं संकामइ आमुहुत्तंता ॥५२॥ मिथ्यादृष्टिरुत्कृष्टमनुभागं बद्ध्वा तत आवलिकामतिक्रम्य-बन्धावलिकायाः परत इत्यर्थः। तमुत्कृष्टमनुभागं संक्रमयति तावद्यावन्न विनाशयति। कियन्तं कालं यावत् पुनर्न विनाशयतीति चेत् उच्यते—आमुहूर्तान्तः—अन्तमुहूर्तं यावदित्यर्थः,। परतो मिथ्यादृष्टिः शुभ-प्रकृतीनामनुभागं संक्लेशेन अशुभ-प्रकृतीनां तु विशुद्ध्याऽवश्यं विनाशयति ॥ ५२ ॥ कर्मप्र० संक्र०।

"मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा। असंखेज्जवस्साउएसु मणुस्सोववादियदेवेसु च णत्थि।" चू० सु०

२. "असंखेज्जवस्साउएसु इदि वुत्ते भोगभूमियतिरिक्खमणुस्साणं गहणं।..............मणुस्सोव-वादियदेवेसु त्ति वुत्ते आणदादि उवरिमसव्वदेवाणं गहणं मणुस्सेसु चेव तेसिमुप्पत्तीदो।..............एदेसु

§ १७. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणु० कस्स ? अण्णदर० उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव सो ण हणदि ताव। अणुक्क० कस्स ? अण्णद०। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-देव० भवणादि जाव सहस्सार० पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०--ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-तिण्णिअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०--अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-सण्णि--आहारि त्ति। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्कस्साणुभागविहत्ती कस्स ? अण्णद० मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा [पंचिंदियतिरिक्ख-

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध चारों गतिके उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीव करते हैं। करने पर जब तक उसका घात नहीं किया जाता तब तक वह जीव मरकर जहां भी उत्पन्न होगा वहीं उसके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व पाया जायेगा। इसी कारणसे एकेन्द्रियादिकमें उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध न होने पर भी उसका सत्त्व कहा है। किन्तु भोगभूमियां जीवोंके मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व नहीं होता, क्योंकि न तो वहाँ मोहनीय का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध ही होता है और न उसकी सत्तावाला जीव वहां जन्म ही लेता है। इसी प्रकार आनतादि स्वर्गके देवोंके भी मोहनीय के उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व नहीं होता, उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला कोई जीव यदि भोगभूमि या आनतादि स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाला होता है तो उत्कृष्ट अनुभागका घात करके ही उत्पन्न हो सकता है। उत्कृष्ट अनुभागसे अतिरिक्त अनुभाग को अनुत्कृष्ट अनुभाग कहते हैं और ऐसा अनुभाग प्रायः सभी मोही जीवों के पाया जाता है।

§ १७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीककर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक किसी भी जीवके मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग होता है। अनुत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? किसी भी जीवके होता है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदी, चारों कषायवाले, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्याके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टानुभागविभक्ति किसके होती है ? जो मनुष्य, मनुष्यिनी,

---

उक्कस्साणुभागसंतकम्मं णत्थि तं घादिय विट्ठाणियं करिय पच्छा एदेसुप्पत्तीदो। ण च तत्थ उक्कस्साणुभाग-बंधो वि अत्थि, तेउपम्मसुक्कलेस्साहि तिरिक्ख-मणुस्सेसु सुक्कलेस्सियाए देवेसु च उक्कस्साणुभागबंधभावादो।" ज० ध० अनु० वि०।

तथा चोक्तं पञ्चसंग्रहमूलटीकायाम्—'सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोर्नोत्कृष्ट-मनुभागं विनाशयन्ति अपि तु क्षपकः सम्यग्दृष्टिर्विनाशयति उभयोरपि दृष्टयोरिति। मिथ्यादृष्टिः पुनः सर्वासा-मपि शुभप्रकृतीनां संक्लेशेनाशुभप्रकृतीनां तु विशुद्ध्या अन्तर्मुहूर्तात्परतः उत्कृष्टमनुभागमवश्यं विनाशयति ॥ ५६ ॥ कर्मप्र० संक्र०

अणुभागं अन्नयरो सुहुमअपज्जत्तगाइ मिच्छो उ। वज्जिय असंखवासाउए य मणुओववाए य ॥५३॥ केवलमसंख्येयवर्षायुषो मनुष्यतिर्यञ्चो ये च देवाः स्वभवाच्च्युत्वा मनुष्येषु उत्पद्यन्ते तांश्च मनुष्योपपातान् आनतप्रमुखान् देवान् वर्जयित्वा। एते हि मिथ्यादृष्टयोऽपि नाशुभप्रकृतीनामुत्कर्षस्वरूपेणामुत्कृष्टमनुभागं बध्नन्ति, संक्लेशाभावात् ॥ कर्मप्र० संक्र०।

जोणियो वा] पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ वा उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि ताव जो पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-सव्वपंचकाय-तसअपज्ज० ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-असण्णि-अणाहारि त्ति।

§ १८. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति मोह० उक्कस्स० कस्स? अण्णदरस्स जो तप्पाओग्गउक्कस्सअणुभागसंतकम्मिओ दव्वलिंगी मदो अप्पप्पणो देवेसु उववण्णो सो जाव ण हणदि ताव तस्स उक्कसाणुभागविहत्ती। हदे अणुक्कस्सा। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्कस्साणुभागविहत्ती कस्स? अण्णदरस्स जो तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ वेदगसम्मादिट्ठी अप्पप्पणो देवेसु उववण्णो सो जाव ण हणदि ताव उक्कस्साणुभागविहत्ती। हदे अणुक्कस्साणुभागविहत्ती।

§ १९. आहार०-आहारमिस्स० उक्कस्साणुभाग० कस्स? जो संजदो वेदगसम्माइट्ठी अट्ठावीससंतकम्मिओ तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागसंतकम्मेण उट्ठाविदाहारसरीरो तस्स उक्कस्सिया अणुभागविहत्ती। अण्णस्स अणुक्कस्सिया। अवगद० उक्क०

पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके उसका घात किये विना ही यदि पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है तो उस पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। इसी प्रकार मनुष्यअपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रयोगी, वैक्रियिक मिश्रयोगी, कार्मणकाययोगी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मूलमें नारकीसे लेकर आहारक पर्यन्त जो मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है, अतः उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उसका घात नहीं किया जाता तब तक उक्त मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभाग रहता है। तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकमें और मूलमें गिनाई गई मनुष्य अपर्याप्तकसे लेकर अनाहार मार्गणापर्यन्त मार्गणाओंमें यद्यपि मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तो नहीं होता है, किन्तु कोई मनुष्य आदि यदि उसका बन्ध करके उक्त मार्गणाओंमें आजाते हैं तो उनमें भी उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व पाया जाता है।

§ १८. आनत स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है? जिसके आनतादि स्वर्गके योग्य मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ता है ऐसा जो द्रव्यलिङ्गी मरकर अपने योग्य उक्त देवोंमें उत्पन्न होता है वह जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है और उत्कृष्ट अनुभागका घात कर देने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक उत्कृष्टानुभागविभक्ति किसके होती है? अनुदिश आदिके योग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि अपने योग्य उक्त देवोंमें उत्पन्न होता है वह जब तक उत्कृष्ट अनुभागका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्टानुभागविभक्ति होती है, और उत्कृष्ट अनुभागका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है।

§ १९. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति किसके होती है? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि संयमी तत्प्रयोग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताके रहते हुए आहारकशरीरको उत्पन्न करता है उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है,

कस्स ? जो अवगदवेदअणियट्टिउवसामओ पढमाणुभागकंडए वट्टमाणओ तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती। हदे अणुक्कस्सा। एवमकसाय-जहाक्खादसंजदाणं। णवरि उवसंतकसायपढमादिसमए तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागसंतकम्मेण वट्टमाणस्स वत्तव्वं; तत्थ अणुभागस्स घादाभावादो।

§ २०. णाणाणु० आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० कस्स? जेण मिच्छादिट्ठिणा अट्ठावीससंतकम्मिएण तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागेण सह वेदगसम्मत्तं पडिवण्णं जाव तं ण हणदि ताव तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती। तम्मि हदे अणुक्कस्सा। एवं संजद।संजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदग०-सम्मामि०दिट्ठि त्ति। मणपज्जव० आहार०-भंगो। एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०संजदा त्ति। सुहुमसांपराय० उक्क० कस्स? सुहुमसांपराइयउवसामयस्स सगउक्कस्साणुभागेण सह वट्टमाणस्स। तम्हि हदे अणुक्कस्सो। सुक्कले० आभिणि०भंगो। उवसमसम्मा० मोह० उक्क० कस्स? जो मोहतप्पाओग्गउक्कस्ससंत्तकम्मेणं[1] सह वट्टमाणो उवसमसम्मादिट्ठी जाव पढमाणुभागखंडयं ण हणदि ताव तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती। तम्मि हदे अणुक्कस्सा। खइयसम्मा०

अन्यके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। अपगतवेदमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति किसके होती है? जो अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके अवेद भागवर्ती उपशमश्रेणिवाला जीव प्रथम अनुभागकाण्डक में विद्यमान है उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। तथा उसका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। इसीप्रकार अकषाय और यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उपशान्तकषाय गुणस्थानके प्रथम आदि समयमें उसके योग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तासे युक्त जीवके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति कहनी चाहिये, क्योंकि वहां अनुभागका घात नहीं होता है।

§ २०. ज्ञानकी अपेक्षा आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानीमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस मिथ्यादृष्टिने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ वेदकसम्यक्त्व प्राप्त किया है, जब तक वह उस अनुभागका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। तथा उत्कृष्ट अनुभागका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होवी है। इसी प्रकार संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानमें आहारककाययोगी के समान जानना चाहिये। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयतोंके जानना चाहिये। सूक्ष्मसाम्परायसंयतमें उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है? जो सूक्ष्मसाम्परायसंयत उपशामक जीव अपने उत्कृष्ट अनुभागके साथ विद्यमान है उसके उत्कृष्ट अनुभाग होता है और उसका घात होने पर अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है। शुक्ललेश्यावालेके आभिनिबोधिकज्ञानी की तरह भंग होता है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है? जो उपशमसम्यग्दृष्टि मोहनीयकर्मके अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तासे युक्त होता हुआ जब तक प्रथम अनुभागकाण्डकका घात नहीं करता है, तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। और उसका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय

१. अ० प्रतौ मोहतप्पाओग्गसंतकम्मेण इति पाठः।

मोह० उक्क० कस्स ? जेण दंसणमोहणीयं खवेंतेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंतेण सव्वजहण्णो अणुभागो घादिदो अणुवसामिदचारित्तमोहणीयो तस्स उक्कस्सओ अणुभागो। [अण्णस्स अणुक्कस्सो]। सासण० मोह० उक्क० कस्स ? जो उवसमसम्मादिट्ठी उक्कस्साणुभागेण सह सासणं पडिवण्णो तस्स उक्कस्सा। अवरस्स अणुक्कस्सा।

एवमुक्कस्ससामित्ताणुगमो समत्तो।

§ २१. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० ज० अणुभागो कस्स० ? अण्णदर० खवगस्स[1] चरिमसमयसकसायस्स। एवं मणुसतिय--पंचिंदिय---पंचिं०पज्ज०--तस--तसपज्ज०--पंचमण---पंचवचि०---कायजोगि-ओरालिय०--अवगदवेद०--लोभक०--आभिणि०---सुद०--ओहि०--मणपज्ज०--संजद०-सुहुमसांपराय०--चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादिट्ठि०-खइय०-सण्णि०-आहारि त्ति।

कर्मका उत्कृष्ट अनुभाग जिसके होता है ? दर्शनमोहनीयकी क्षपणा और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करते समय जिस क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवने सबसे जघन्य अनुभागका घात किया है तथा चारित्रमोहनीयका उपशम नहीं किया है उसके उत्कृष्ट अनुभाग होता है और इसके सिवा अन्य क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? जो उपशमसम्यग्दृष्टि उत्कृष्ट अनुभागके साथ सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट अनुभाग होता है और अन्यके अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है।

विशेषार्थ—यहां आभिनिबोधिकज्ञान आदि जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्व गुणस्थानसे जाना सम्भव है उनमें मिथ्यात्व गुणस्थानसे ले जाकर उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति प्राप्त करनी चाहिए। और आहारककाययोग आदि जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्व गुणस्थानसे जाना सम्भव नहीं है उनमें ऐसे जीवको ले जाना चाहिए जिसके तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ उस मार्गणामें जाना सम्भव हो। इसी प्रकार सर्वत्र उत्कृष्ट स्वामित्वका विचार करना चाहिए।

इसप्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

§ २१. अब जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। ओघ की अपेक्षा मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? सकषाय क्षपकके अन्तिम समयमें अर्थात् दसवें गुणस्थानके अन्तमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है। इसी प्रकार तीनों मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, लोभकषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिये।

1. लोभसंजलणस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमयसकसायिस्स।' चू० सु० ज० ध०, अनु० वि०।

§ २२. आदेसेण णेरइएसु मोह० ज० अणुभागो कस्स ? अण्णद० जो हदसमुप्पत्तियअणुभागसंतकम्मंसिओ असण्णिपच्छायदो[2] णेरइएसु उववण्णो पुणो जाव सो बंधेण ण वड्ढदि[3] ताव तस्स जहण्णिया अणुभागविहत्ती। एवं पढमाए पुढवीए। विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स उक्कस्सपरिणामेहि अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइदसम्माइट्ठिस्स। एवं जोदिसियदेवाणं पि वत्तव्वं।

§ २३ तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णद० जो [4]सुहुमेइंदिओ अपज्जत्तो कदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मो जाव जहण्णाणुभागसंतकम्मस्सुवरि बंधेण ण

विशेषार्थ—अनुभागकाण्डकघात आदि क्रियाविशेषके कारण क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें मोहनीयका सबसे जघन्य अनुभाग उपलब्ध होता है, इसलिए अन्तिम समयवर्ती क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवको जघन्य अनुभागका स्वामी कहा है। मूलमें गिनाई गई अन्य मार्गणाओंमें यह अवस्था सम्भव है, अतः उनका कथन ओघके समान किया है।

§ २२. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक अनुभाग सत्कर्मवाला जीव असंज्ञी पर्यायसे आकर नारक पर्यायमें उत्पन्न हुआ है वह जब तक पुनः बन्धके द्वारा अनुभागको नहीं बढ़ा लेता है तब तक उसके जघन्य अनुभागविभक्ति होती है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो सम्यग्दृष्टि उत्कृष्ट परिणामोंसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कको विसंयोजना कर चुका है उसके होता है। इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंमें भी कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—सत्तामें स्थित अनुभागका घात करनेके बाद जो अनुभाग शेष बचता है उसे हतसमुत्पत्तिक अनुभागसत्कर्म कहते हैं। ऐसे अनुभागवाले असंज्ञीके नरकमें उत्पन्न होने पर उस नारकीके शरीर ग्रहणके पूर्व तक मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है। इसलिए सामान्यसे नरकमें ऐसे जीवको जघन्य अनुभागका स्वामी कहा है। प्रथम नरकमें ऐसा जीव उत्पन्न होता है, इसलिए उसका कथन सामान्य नारकियोंके समान किया है। किन्तु द्वितीयादि नरकोंमें संज्ञीके योग्य अनुभाग ही सम्भव है, इसलिए वहाँ जघन्य अनुभागका स्वामित्व जिसने उत्कृष्ट परिणामोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्कको विसंयोजना की है ऐसे जीवको दिया है। ज्योतिषी देवोंमें इसी प्रकार जघन्य स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए उनका कथन द्वितीयादि नरकोंके नारकियोंके समान किया है।

§ २३. तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव जब तक जघन्य अनुभाग सत्कर्मके ऊपर बन्धके

---

१. 'हते घातिते समुत्पत्तिर्यस्य तद् हतसमुत्पत्तिकं कर्म। अणुभागसंतकम्मे घादिदे जमुव्वरिदं जहण्णाणुभागसंतकम्मं तस्स हदसमुप्पत्तियकम्ममिदि सण्णा ति भणिदं होदि।' ज० ध० अनु० वि०। '...हतं विनाशितं प्रभूतमनुभागसत्कर्म येन स हतसत्कर्मा ॥२१॥ कर्मप्र० सं०

२. "णिरयगदीए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? असण्णिस्स हदसमुप्पत्तियकम्मेण आगदस्स।" चू० सू०, ज० ध०, अनु० वि०। ३. आ० प्रतौ वट्टदि इति पाठः।

४. "मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? सुहुमस्स। हदसमुप्पत्तियकम्मेण अण्णदरो एइंदिओ वा बेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा सुहुमो वा बादरो वा पज्जत्तो वा अपज्जत्तो वा जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ होदि।" चू० सू०, ज० ध०, अनु० वि०।

वड्ढदि[1] ताव तस्स जहण्णओ अणुभागो। एवमेइंदिय-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियअपज्जत्त०-वणप्फदि-णिगोद-सुहुमवणप्फदि-सुहुमणिगोद तेसिं चेव अपज्जत्त० ओरालियमिस्स०-दोण्णिअण्णाण-असंजद०-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि त्ति।

§ २४. पंचिंदियतिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणुभागो कस्स? अण्णदरस्स जो पंचिंदियतिरिक्खो कदहदसमुप्पत्तियसुहुमेइंदियचरो जाव जहण्णसंतकम्मस्सुवरि वड्ढिदूण ण बंधदि[2] ताव तस्स जहण्णओ अणुभागो। एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता-पज्जत्त-पंचिं०तिरि०जोणिणि-मणुसअपज्ज०--सव्वबादरेइंदिय--सुहुमेइंदियपज्ज०--सव्व-विगलिंदिय--पंचिंदियअपज्ज०--सव्वचत्तारिकाय--सव्वबादरवणप्फदिकाइय--सव्वबादर-णिगोद-सुहुमवणप्फदि--सुहुमणिगोदपज्ज०-तसअपज्ज०-कम्मइय०-अणाहारि त्ति।

§ २५. देव-भवण०--वाण०-वेउव्वियमिस्स[3]० णेरइयभंगो। सोहम्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मोह० जहण्णाणुभागो कस्स? अण्णद० जो एकम्हि भवे दोवार-

---

द्वारा अनुभागको नहीं बढ़ा लेता है तबतक उसके जघन्य अनुभाग होता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, वनस्पतिकायिक, निगोदिया, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म निगोदिया और उनके अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, असंयत, तीनों अशुभ लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञीमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तके ये सब मार्गणाएँ सम्भव हैं इसलिए इनमें जघन्य अनुभागका स्वामित्व तिर्यञ्चोंके समान कहा है।

§ २४. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है? जिसने अनुभाग हतसमुत्पत्तिक किया है तथा जो सूक्ष्म एकेन्द्रियसे आकर पंचेन्द्रिय तिर्यँच पर्यायमें उत्पन्न हुआ है ऐसा जो पंचेन्द्रिय तिर्यँच जघन्य सत्कर्मके ऊपर जब तक अनुभाग बढ़ा कर नहीं बाँधता है तब तक उसके जघन्य अनुभाग होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, मनुष्य अपर्याप्तक, सब बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब तेजस्कायिक, सब वायुकायिक, सब बादर वनस्पतिकायिक, सब बादर निगोद, सूक्ष्म वनस्पति, पर्याप्तक, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, कार्मणकाययोगी और अनाहारकमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इन सब मार्गणाओंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों की उत्पत्ति सम्भव है और यथासम्भव शरीर ग्रहणके पूर्व तक उनके वह अनुभाग बना रहता है, इसलिए इनका कथन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान किया है।

§ २५. सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर और वैक्रियिकमिश्रकाययोगीमें नारकियोंकी तरह भंग होता है। अर्थात् जैसे पहले नरकमें मोहनीयका जघन्य अनुभाग बतलाया है वैसे ही इनमें भी होता है, क्योंकि हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी जीव इनमें भी जन्म ले सकता है। सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है? जो

---

१. आ० प्रतौ वट्टदि इति पाठः। २. आ० प्रतौ वड्ढिदूण बंधदि इति पाठः। ३. आ० प्रतौ वाण० वेउ० वेउव्वियमिस्स० इति पाठः।

मुवसमसेढिमारुहिय पच्छा दंसणमोहणीयं खविय पुणो अप्पिददेवेसु उववण्णस्स । एवं वेउव्वियकायजोगीणं ।

§ २६. आहार०-आहारमिस्स० मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? जेण दोवार-मुवसमसेढिमारुहिय हेट्ठा ओदरिय दंसणमोहणीयं खविय पच्छा आहारसरीरमुट्ठाविदं तस्स जहण्णओ अणुभागो । एवं परिहार०-संजदासंजदाणं ।

§ २७. इत्थिवेदेसु मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? चरिमसमयसवेदस्स खवयस्स । एवं पुरिस०-णवुंस०वेदाणं०[१] । तिण्हं कसायाणमेवं चेव । णवरि अप्प-प्पणो चरिमसमयसकसायस्स जहण्णाणुभागो ।

§ २८. अकसाईसु जहण्णाणुभागो कस्स ? एगवारमुवसमसेढिमारुहिय ओयरिदूण पुणो उवसमसेढिं चडिय उवसंतकसायत्तमावण्णस्स । एवं जहाक्खाद-संजदाणं। विहंग० मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णद० दोवारमुवसमसेढिं चडिय

एक भवमें दोवार उपशमश्रेणिपर चढ़कर, पश्चात् दर्शनमोहनीयका क्षपण करके पुनः विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है । इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगियोंमें जानना चाहिये ।

§ २६. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगीमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जिसने दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़कर नीचे उतरकर दर्शनमोहनीयका क्षपण करके पीछे आहारकशरीर उत्पन्न किया है उसके जघन्य अनुभाग होता है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतमें जानना चाहिये ।

§ २७. स्त्रीवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? क्षपकश्रेणि वाले सवेदी जीवके अन्तिम समयमें होता है । इसी प्रकार पुरुषवेदी और नपुंसकवेदीके जानना चाहिये । तीनों कषायोंमें भी इसी प्रकार जघन्य अनुभाग होता है। इतनी विशेपता है कि सकषाय जीवके अपने अपने कपायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। अर्थात् जैसे वेदकी अपेक्षा क्षपकश्रेणिवाले सवेदीके अन्त समयमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है वैसे ही क्रोधकपायकी अपेक्षा क्षपकश्रेणिवाले सकपाय जीवके क्रोधकपायके अन्तिम समयमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है, मान कषायकी अपेक्षा मान कषायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है आदि ।

§ २८. अकषाय जीवोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? एक बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर उतरकर पुनः उपशमश्रेणि पर चढ़कर जो जीव उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त हुआ है उसके मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग होता है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । विभंगज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो

---

१. 'इत्थिवेदस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदस्स ।' "पुरिसवेदस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? पुरिसवेदेण उवट्ठियस्स चरिमसमयअसंकामयस्स ।"

चू० सू० ज० ध०, अनु० वि० ।

२. "णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स ।"

चू० सू०, ज० ध०, अनु० वि० ।

हेट्ठा ओदरिदूण समयाविरोहेण विहंगणाणं पडिवण्णस्स। सामाइय-छेदो० मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? चरिमसमयअणियट्टिस्स खवगस्स। तेउ०-पम्म० सोहम्म-भंगो। वेदग० मोह ज० कस्स ? दोवारमुवसमसेढिं चडिय ओदरिदूण दंसणमोहणीयं खविय पढमसमयकदकरणिज्जभावं गदस्स। एवमुवसम०। णवरि उवसंतकसायद्धाए हेट्ठा वा ओदरिय वट्टमाणउवसमसम्मादिट्ठिस्स। एवं सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठीणं।

एवं जहण्णसामित्ताणुगमो समत्तो।

दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर उससे नीचे उतरकर आगमके अनुसार विभंगज्ञानको प्राप्त करता है अर्थात् मरकर उपरिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वको प्राप्त करके विभंगज्ञानी हो जाता है उसके मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग होता है। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयतोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? क्षपक अनिवृत्तिकरणगुणस्थानके अन्तिम समयवर्ती जीवके होता है। तेजोलेश्या और पद्मलेश्यामें सौधर्म स्वर्गकी तरह भंग जानना चाहिये। अर्थात् जो दो वार उपशमश्रेणि पर चढ़कर पीछे दर्शनमोहनीयका क्षय करके देवोंमें उत्पन्न हो और वहाँ उसके तेज या पद्मलेश्या हो तो तेजोलेश्या या पद्मलेश्याकी अपेक्षा उस जीवके मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग होता है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो दो वार उपशमश्रेणिपर चढ़कर, उतरकर, दर्शन मोहनीयका क्षय करके कृतकृत्यपनेको प्राप्त हुआ है उसके प्रथम समयमें मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टिके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उपशान्तकषाय गुणस्थानके कालमें विद्यमान अथवा नीचे उतरकर विद्यमान उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग होता है। अर्थात् वह उपशमसम्यग्दृष्टि ग्यारहवें गुणस्थानमें हो या उससे नीचे उतर गया हो, उसके मोहनीय-कर्मका जघन्य अनुभाग होता है। इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ऊपर सौधर्म स्वर्गसे लेकर जिन मार्गणाओंमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभाग का स्वामित्व बतलाया है उनमें यदि क्षपकश्रेणि संभव है तो क्षपकश्रेणिमें अपने अपने क्षयकालके अन्तिम समयमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागका स्वामित्व जानना चाहिये। जैसे स्त्रीवेदी आदिमें। किन्तु जिनमें क्षपकश्रेणि संभव नहीं है उनमें यदि उपशमश्रेणि हो सकती है तो दूसरी बार उपशमश्रेणि पर चढ़े हुए जीव यथायोग्य जघन्य अनुभागके स्वामी होते हैं। किन्तु जिनमें उप-शमश्रेणि भी संभव नहीं है उन मार्गणाओंमें दूसरी बार उपशमश्रेणि पर चढ़कर नीचे गिरकर दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाला जीव विवक्षित मार्गणावाला होने पर जघन्य अनुभागका स्वामी होता है। किन्तु दर्शनमोहनीयका क्षपण करके जिन मार्गणाओंमें जाना शक्य नहीं है जैसे विभंगज्ञान, उपशमसम्यग्दर्शन आदि तो उनमें दूसरी बार उपशमश्रेणि पर चढ़कर नीचे गिरनेवाला जीव ही दर्शनमोहनीयका क्षपण किये विना विवक्षित मार्गणावाला होने पर जघन्य अनुभागका स्वामी होता है। सारांश यह है कि जिस मार्गणामें जिस प्रकारसे जिस जीवके जघन्य अनुभागकी सत्ता रह सकती है उस मार्गणामें उस प्रकारसे उस जीवके जघन्य अनुभागका स्वामित्व जानना चाहिये। उससे अतिरिक्त प्रकारके जीवोंके उसी मार्गणामें अजघन्य अनुभाग होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जिस मार्गणामें मोहनीयका जो सबसे कम

§ २९. कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकाल-मसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । एवं तिरिक्ख-एइंदिय-वणप्फदि--कायजोगि-णवुंसयवेद-मदि--सुदअण्णाण--असंजद--अचक्खु०--भवसि०--मिच्छादि०--असण्णि त्ति । णवरि तिरिक्ख०-कायजोगि०--णवुंसयवेदेसु उक्क० अणुक्क० जह० एयसमओ । एइंदिय-वणप्फदि-असण्णीसु उक्क० जह० एगसमओ[1] ।

अनुभाग पाया जाता है उस मार्गणामें वही जघन्य अनुभाग है, उससे अतिरिक्त शेष अनुभाग अजघन्य अनुभाग है ।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ २९. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अनन्त काल अर्थात् असंख्यात पुद्गल परावर्तन है। इसी प्रकार तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, काययोगी, नपुंसकवेदी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च, काययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और असंज्ञी जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है ।

विशेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त ही है; क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करके काण्डकघातके विना वहुत कालतक रहने पर भी अन्तमुहूर्त-से अधिक काल तक रहना संभव नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल तो अन्त-मुहूर्त ही है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अन्तमुहूर्त कालके बाद पुनः उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध कर सकता है। परन्तु उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ पञ्चेन्द्रियपर्यायमें अपने योग्य उत्कृष्ट काल तक रहकर पुनः एकेन्द्रियपर्यायमें चला जाने पर और वहाँ असंख्यात पुद्गल परिवर्तन विताकर पुनः पञ्चेन्द्रिय होकर उत्कृष्ट अनुभाग करने पर उतना काल वन जायेगा । इसी प्रकार तिर्यञ्चसे लेकर असंज्ञी पर्यन्त जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च, काययोगी और नपुंसकवेदीमें दोनों विभक्तियोंका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका अवस्थान काल एक समय प्रमाण शेष रहने पर यदि कोई अन्य गतिका जीव मरकर तिर्यञ्च हो या अन्य वेदवाला जीव मरकर नपुंसकवेदी हो तो तिर्यञ्च और नपुंसकवेदीके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल एक समय होता है। इसीप्रकार वचनयोग या मनोयोगमें स्थित उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताके एक समय प्रमाण शेप रहने पर काययोगी हुआ या काययोगमें वर्तमान कोई मिथ्यादृष्टि एक समय तक उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके दूसरे समयमें वचनयोगी या मनोयोगी हो गया तो उसके काययोगमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल एक समय होता है इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनु-

---

१. आ० प्रतौ जह० उवसम० एइंदिय इति पाठः ।

§ ३०. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणुभाग० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०--सव्वमणुस०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार० सव्ववादरेइंदिय-सव्वसुहुमेइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-सव्वचत्तारिकाय०---सव्वबादरसुहुमवणप्फदि--सव्वणिगोद--तसअपज्ज०---पंचमण०--पंचवचि०-ओरालिय०--ओरालियमिस्स०--वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-चत्तारिकसाय-विभंगणाण-किण्ह-णील-काउलेस्सिया त्ति ।

§ ३१. संपहि जहाकममेदेसिमणुक्कस्सकालाणुगमं कस्सामो । तं जहा—णेरइय० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं सव्वणेरइयाणं । णवरि

भागविभक्तिका भी जघन्य काल एक समय बनता है। एकेन्द्रिय, वनस्पति और असंज्ञीमें भी उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल इसी प्रकार एक समय होता है, किन्तु इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय नहीं है, क्योंकि इनमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता है।

§ ३०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार पर्यन्त तकके देव, सब बादर एकेन्द्रिय, सब सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब तेजकायिक, सब वायुकायिक, सब बादर सूक्ष्म वनस्पति, सब निगोदिया, त्रस अपर्याप्तक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लाभी, विभंगज्ञानी, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले और कापोतलेश्यावालोंमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—कोई मनुष्य या संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके और उत्कृष्ट अनुभागके कालमें एक समय शेष रहने पर यदि नारक आदिमें जन्म लेता है तो उनमें उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। इसी प्रकार त्रसपर्याप्तक तक जानना। मनोयोग, वचनयोग या औदारिककाययोगमें स्थित कोई जीव अपने अपने योगका काल एक समय शेष रहने पर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके दूसरे समयमें अन्य योगवाला हो गया तो उसके उस उस योगमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। या उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला कोई जीव मनोयोगसे वचनयोग या औदारिककाययोगमें या वचनयोगसे किसी दूसरे योगमें आ जाता है और वहाँ एक समय बाद उत्कृष्ट अनुभागका परिघात कर देता है तो उस उस योगमें उत्कृष्ट अनुभागका काल एक समय बन जाता है। इसी प्रकार कोई मनुष्य या संज्ञी पञ्चेन्द्रिय-पर्याप्त तिर्यञ्च उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके मरकर औदारिकमिश्रकाययोगी या वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ और एक समय तक उस योगमें उत्कृष्ट अनुभागके साथ रहकर दूसरे समय उत्कृष्ट अनुभागका घात कर दिया तो उन योगोंमें उत्कृष्ट अनुभागका काल एक समय बन जाता है। शेष विवक्षित मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। इन सब मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है।

§ ३१. अब क्रमानुसार इनके अनुत्कृष्ट कालका अनुगम करते हैं, जो इस प्रकार है—नारकियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारकियोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रत्येक नरकमें

सगसगुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । पंचि०तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अणुक्क० ज० उक्क० अंतोमु० । एवं मणुसअपज्ज०-पंचिंदियअपज्ज०--सव्वविगलिंदियअपज्ज०--तसअपज्जत्ताणं । देव-भवणादि जाव सहस्सार त्ति अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्कस्स-अणुक्कस्सअणुभागाणं जहण्णेण अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी ।

अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। अर्थात् पहले नरकमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल एक सागर है, दूसरेमें तीन सागर है, तीसरेमें सात सागर है, चौथेमें दस सागर है, पाँचवेंमें सत्रह सागर है, छठेमें बाईस सागर है और सातवेंमें तेतीस सागर है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्तक और पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिनी जीवोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य प्रमाण है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यिनीके कहना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त सब विकलेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रसअपर्याप्तकोंके जानना चाहिये। सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गपर्यन्तके देवोंके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—जिन पर्यायोंमें मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है, उनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय बन जाता है। किन्तु यदि उन पर्यायोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध न हुआ हो और पिछले भवसे भी उत्कृष्ट अनुभागको न लाया गया हो तो जीवनभर अनुत्कृष्ट अनुभागकी ही सत्ता रह सकती है। इसीसे नरकगतिमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च आदिमें तथा तीन प्रकारके मनुष्योंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है अतः उनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तथा इन मार्गणाओंकी कायस्थिति तीन पल्य अधिक पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है, अतः इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल भी इतना ही कहा है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक आदिमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता है, तथा एक जीवकी अपेक्षा इन मार्गणाओंका काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त ही कहा है। भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्तके देवोंमें भी यदि उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हुआ तो अनुत्कृष्ट अनुभागका काल एक समय अन्यथा अपनी अपनी स्थिति प्रमाण होता है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट अनुभागका घात न होने पर वह जीवन भर रह सकता है और घात होने पर उसका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है। तथा जीवनके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर उत्कृष्ट अनुभागका घात होने पर अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें अनुत्कृष्ट अनुभाग पाया

§ ३२. इंदियाणुवादेण बादरेइंदिएसु अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तूणं, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। बादरेइंदियपज्जत्तएसु अणुक्क० जह० उक्कस्साणुभागकालेणूणमंतोमुहुत्तं, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। बादरेइंदियअपज्जत्तएसु अणुक्क० ज० उक्कस्साणुभागकालेणूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० अंतोमु०। सुहुमेइंदिएसु अणुक्क० जह० उक्कस्साणुभागकालेणूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सुहुमेइंदियपज्जत्तएसु अणुक्क० ज० उक्कस्साणुभागकालेणूणमंतोमुहुत्तं, उक्क० सयलमंतोमु०। सुहुमेइंदियअपज्जत्ताणं बादरेइंदियअपज्जत्तभंगो। विगलिंदिय-विगलिंदियपज्जत्ताणं अणुक्क० ज० उक्कस्साणुभागकालेणूणं खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि। पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु उक्कस्साणुभागो जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं।

जाता है और जो अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ इन देवोंमें उत्पन्न होता है उनके जीवन भर अनुत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है। इसीसे यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों प्रकारके अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है।

§ ३२. इन्द्रियकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो कि असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाण होता है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभाग कालसे कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे कम क्षुद्र भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तके समान भंग है। विकलेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हीन क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। पञ्चेन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर और सौ पृथक्त्व सागर है।

विशेषार्थ—बादर एकेन्द्रियका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है, जो जीव उत्कृष्ट अनुभागको लेकर बादर एकेन्द्रियमें उत्पन्न होता है वह एक अन्तर्मुहूर्तमें उसका घात कर देता है, अतः उसके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम क्षुद्रभवप्रमाण बतलाया है तथा उत्कृष्ट काल बादर एकेन्द्रियकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बतलाया है। आगे भी विकलेन्द्रिय पर्याप्तक

---

१. ता० प्रतौ अणुक्क० जहण्णुक्कस्साणुभाग- इति पाठः।

§ ३३. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउकाइएसु मोह० अणुक्क० जह० उक्कस्साणुभागकालेणूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा। एवमेदेसिं बादराणं। णवरि उक्क० कम्मट्ठिदी। बादरपुढवि०-बादरआउ०-बादरतेउ०-बादरवाउ०पज्जत्तएसु अणुक्क०जह० अंतोमु०,उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। एदेसिमपज्जत्ताणं बादरेइंदिय-अपज्जत्तभंगो। सुहुमपुढवि०-सुहुमआउ०-सुहुमतेउ०-सुहुमवाउकाइएसु मोह० अणुक्क० ज० देसूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा। एदेसिं पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तभंगो। बादरवणप्फदिकाइयाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं च बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताण भंगो। सुहुमवणप्फदिकाइय० तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं सुहुमेइंदिय०सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तभंगो। बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं बादर-पुढविभंगो। तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरपुढविपज्जत्तापज्जत्तभंगो। णिगोदेसु मोह० अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टा। बादरणिगोदाणं

पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल तो उत्कृष्ट अनुभागके कालसे रहित अपनी अपनी जघन्य भवस्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय सामान्य और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकमें उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल पूर्ववत् एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है। तथा उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रिय सामान्य और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तककी कायस्थिति प्रमाण है।

§ ३३. कायकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिकोंमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हीन क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लाक है। इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वायुकायिकोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक, बादर जलकायिक पर्याप्तक, बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक और बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। तथा इन्हीं अपर्याप्तकोंमें बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग है। सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक और सूक्ष्म वायुकायिकोंमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इनके पर्याप्तक और अप-र्याप्तकोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग है। बादर वन-स्पतिकायिकोंमें बादर एकेन्द्रियके समान, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकोंमें बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके समान और बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकोंमें बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमें क्रमसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भङ्ग है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरी जीवोंमें बादर पृथिवीकायके समान भंग है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरी पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकके समान भङ्ग है। निगोदिया जीवोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है। और उत्कृष्ट काल ढाई पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। बादर निगोदिया

बादरपुढविभंगो। तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरपुढविपज्जत्तापज्जत्तभंगो। सुहुमणिगोदाणं सुहुमपुढविभंगो। तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मोह० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-ब्भहियाणि [बेसागरोवमसहस्साणि]

§ ३४. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचिजोगीसु मोह० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। ओरालियकायजोगीसु मोह० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० बावीस वस्ससहस्साणि देसूणाणि। ओरालियमिस्सकायजोगीसु मोह० अणुक्क० ज० खुद्दा-भवग्गहणं देसूणं, उक्क० अंतोमुहुत्तं। वेउव्वियकायजोगीसु मोह० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। वेउव्वियमिस्स० मोह० अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। कम्मइय० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि समया। आहार०-आहारमिस्स० मोह० उक्क० अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। णवरि आहारकायजोगीसु जह० एगस०।

जीवोंमें बादर पृथिवीकायिकके समान भङ्ग है और बादर निगोदिया पर्याप्तक तथा अपर्याप्तकोंमें बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तकके समान भङ्ग है। सूक्ष्म निगोदिया जीवोंमें सूक्ष्म-पृथिवीकायिकके समान भङ्ग है। त्रसकायिक तथा त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और दो हजार सागर है।

विशेषार्थ—ऊपर कही गई स्थावरकायसम्बन्धी मार्गणाओंमें भी पहलेके समान ही अनुत्कृष्ट अनुभाग का जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हीन अपनी अपनी भवस्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है। सामान्य त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्ववत् जानना चाहिए। तथा इनमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकनेके कारण अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है, इसलिए इन सबमें उक्त प्रमाण काल कहा है।

§ ३४. योगकी अपेक्षा पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। औदारिककाययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। वैक्रियिककाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीय कर्म की अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। कार्मणकाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि

१. ता० प्रतौ उक्क० बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि च जोगाणुवादेण, आ० प्रतौ उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि जोगाणुवादेण इति पाठः।

§ ३५. वेदाणुवादेण इत्थि०--पुरिस० मोह० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० परिवाडीए पलिदोवमसदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं। अवगदवेदएसु मोह० उक्क० जह० एगसमओ, मरणेणुवलंभादो। उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। कसायाणुवादेण कोधकसाई० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं माण-माया-लोहाणं। अकसाय० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं जहाक्खाद०-सुहुमसांपरायसंजदाणं।

आहारककाययोगियोंमें जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—कोई एक मनोयोगी या वचनयोगी उत्कृष्ट अनुभागका विनाश करके उस समय अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हुआ जब उसके मनोयोग या वचनयोगका काल एक समय शेष रहा। इस प्रकार एक समय तक विवक्षित योगके साथ अनुत्कृष्ट अनुभागमें रहा और दूसरे समयमें योग बदल गया तो विवक्षित वचनयोग या मनोयोगमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है। अथवा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला कोई जीव मनोयोगी या वचनयोगी हुआ। एक समय तक विवक्षित योगमें रहकर उसने दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर लिया अथवा दूसरे समयमें मरकर अन्य काययोगी हो गया तो भी एक समय काल बन जाता है। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त इसलिये है कि मनोयोग और वचनयोगका उत्कृष्ट काल इतना ही है। औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष एकेन्द्रिय जीवोंमें सबसे अधिक स्थिति वाले खरपृथिवीकायिक जीवके होता है। अतः उनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है। जो जीव उत्कृष्ट अनुभागके साथ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ और उत्कृष्ट अनुभागका काल बीतने पर वह अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया उसके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और जो अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ ही वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ उसके उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त होता है। कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है, अतः उसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी उतना ही होता है। आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा आहारकमिश्रका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः उनमें रहनेवाले उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी उतना ही काल जानना चाहिये।

§ ३५. वेदकी अपेक्षा स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमशः स्त्रीवेदियोंमें सौ पृथक्त्वपल्य और पुरुषवेदियोंमें सौ पृथक्त्वसागरप्रमाण है। अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि यह मरणकी अपेक्षा उपलब्ध होता है। और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कषायकी अपेक्षा क्रोध कषायवालोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मान, माया और लोभमें जानना चाहिये। कषायरहित जीवोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार यथाख्यातसंयत और सूक्ष्म साम्परायसंयतोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें उत्कृष्टका बन्ध करके क्रमशः आयुके अन्तमें एक समय तक अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ रहकर अन्य वेदके साथ उत्पन्न हो गया उसके अनुत्कृष्ट अनु-

§ ३६. णाणाणु० विहंगणाणीसु मोह० अणुक० जह० एगस०, उक० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक० जह० एगसमओ, उक० अंतोमुहुत्तं। अणुक० ज० अंतोमु०, उक० छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। मणपज्ज० मोह० उक० ज० अंतोमु०, उक० पुव्वकोडी देसूणा। एवमणुक्कस्सं पि।

§ ३७. संजमाणुवादेण संजदेसु मोह० उक० जह० अंतोमु०, उक० पुव्वकोडी देसूणा, किरियाए विणा अणुभागघादाभावादो। अणुक० ज० अंतोमु०, उक० पुव्व-

---

भागका जघन्य काल एक समय होता है। तथा उत्कृष्ट काल दोनों वेदोंकी अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। क्रोधादि कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। कषायोंके समान ही अकषायी; सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके घटित कर लेना चाहिए।

§ ३६. ज्ञानकी अपेक्षा विभंगज्ञानियोंमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक छियासठ सागर है। मनःपर्ययज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका भी काल होता है।

विशेषार्थ—जो नारकी विभङ्गज्ञानी होनेके दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला हो जाता है उसके विभङ्गज्ञानमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा सातवें नरकमें विभङ्गज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर होनेसे अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। आभिनिबोधिकज्ञान आदि तीनों ज्ञानोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। इन तीनों ज्ञानोंमें उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है यह तो स्पष्ट ही है। मात्र इसका जघन्य काल जो एक समय कहा है सो उसका यह कारण है कि जो जीव उत्कृष्ट अनुभागमें एक समय रहने पर आभिनिबोधिकज्ञानी आदि होते हैं उनके यह एक समय काल देखा जाता है। मनःपर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, इसलिए इसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है। यहां उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय सम्भव नहीं। कारण कि जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न करता है उसका वह उत्कृष्ट अनुभाग कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक अवश्य रहता है। तथा उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल जो कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है उसका कारण यह है कि क्रियाके विना उत्कृष्ट अनुभागका घात न होकर उसका इतने काल तक अवस्थान सम्भव है।

§ ३७. संयमकी अपेक्षा संयतोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, क्योंकि क्रियाके विना अनुभागका घात नहीं होता। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम

कोडी देसूणा। एवं सामाइय--छेदो०-परिहार०--संजदासंजदाणं। णवरि सामाइय-छेदो० अणुक्क० ज० एगस०।

§ ३८. दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि। ओहिदंसणी० ओहिणाणिभंगो।

§ ३९. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० मोह० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरो० सादिरेयाणि। तेउ०-पम्म० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वे-अट्ठारससागरोवमाणि सादिरेयाणि। सुक्कलेस्साए मोह० उक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि।

पूर्वकोटि है। इसी प्रकार सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदोपस्थानासंयतोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—यहाँ सब कालका स्पष्टीकरण मनःपर्ययज्ञानके समान कर लेना चाहिए। मात्र सामायिकसंयम और छेदोपस्थापनासंयमका जघन्य काल एक समय होनेसे इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है।

§ ३८. दर्शनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है। अवधिदर्शनियोंमें अवधिज्ञानीके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—जो चक्षुदर्शनी भवके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभाग करके मरकर द्वितीय समयमें अचक्षुदर्शनी हो जाता है उस चक्षुदर्शनीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ३९. लेश्याकी अपेक्षा कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक तेतीस सागर, कुछ अधिक सतरह सागर और कुछ अधिक सात सागर है। तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है। शुक्ललेश्यामें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—जो कृष्णादि पाँच लेश्यावाला जीव अपने अपने लेश्याके प्रारम्भमें एक समय तक अनुत्कृष्टविभक्तिवाला होता है उसके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय होता है। इसी प्रकार पीत आदि तीन लेश्याओंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिए। मात्र शुक्ललेश्यामें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इस लेश्यामें अनुत्कृष्टके बाद पुनः उत्कृष्टकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। शेष कथन

§ ४० सम्मत्ताणु० सम्मादि० मोह० उक्क० अणुक्क० आभिणि०भंगो। वेदग० एवं चेव। णवरि अणुक्क० सगट्ठिदी। खइय० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि। एवमणुक्कस्सं पि। उवसम० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवमणुक्कस्सं पि। सासण० मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० छ आवलियाओ। एवमणुक्कस्सं पि। सम्मामि० मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं।

स्पष्ट ही है।

§ ४०. सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें भी इसी प्रकार होता है। इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल वेदकसम्यक्त्वकी स्थितिप्रमाण अर्थात् छियासठ सागर होता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका भी काल होता है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका भी काल होता है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छ आवली है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका भी काल होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसका क्रियान्तरके पूर्व कमसे कम एक अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल तक अवश्य ही अवस्थान रहता है, इसलिए यहाँ उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। इसी प्रकार जो अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है या, क्रिया द्वारा उत्कृष्ट अनुभागका घातकर अनुत्कृष्ट अनुभाग कर लेता है उसे उसका अभाव करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल लगता है इसलिए यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागका भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और इतने काल तक दोनों प्रकारके अनुभागका अवस्थान सम्भव है तथा यहाँ भी क्रियान्तर अन्तर्मुहूर्त कालके पूर्व सम्भव नहीं, इसलिए इसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारका काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सासादनसम्यक्त्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि होनेसे इसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। जिस मिथ्यादृष्टि जीवके तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागमें एक समय शेष रहने पर सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान होता है उस सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उत्कृष्ट अनुभाग एक समय तक देखा जाता है और जो मिथ्यादृष्टि तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर वहाँ उसके साथ ही रहता है उस सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तर्मुहूर्त काल तक उत्कृष्ट अनुभाग देखा जाता है। यही कारण है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ४१. सण्णि० मोह० उक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं ।

§ ४२. आहारणुवादेण मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । अणाहरीसु कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

§ ४३. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे० । तत्थ ओघे०[1] मोह० जहण्णाणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अज० अणादि-अपज्जवसिदो अणादि-सपज्जवसिदो वा ।

यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

§ ४१. संज्ञियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर है।

विशेषार्थ—जो संज्ञी भवके अन्तमें एक समय तक उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ रहकर दूसरे समयमें असंज्ञी हो जाता है उस संज्ञीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ४२. आहारककी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग है जो कि असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ आहारकोंमें संज्ञियोंके समान कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। मात्र इनकी कायस्थिति अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। कार्मणकाययोगी अनाहारक ही होते हैं, इसलिए अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान काल कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

§ ४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका काल अनादि—अनन्त और अनादि-सान्त है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्ति क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अजघन्य अनुभागविभक्ति अभव्योंके अनादिसे अनन्त काल तक और भव्योंके अनादिसे सान्तकाल तक होती है, क्योंकि जघन्य

---

१. आ० प्रतौ आदेसे० ओघे० इति पाठः ।

§ ४४. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अजहण्णाणु० ज० दस वाससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं पढमाए । णवरि अजहण्णाणु०[1] सगट्ठिदी । एवं देव०--भवण०--वाणवेंतर० । णवरि अजहण्णाणु०[1] सगट्ठिदी । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी संपुण्णा । एवं जोदिसिया० । णवरि सगट्ठिदी वत्तव्वा ।

अनुभागविभक्तिके प्राप्त होनेके पूर्वतक वह अजघन्य होती है, इसलिए उसका काल उक्तप्रमाण कहा है।

§ ४४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण होता है। इसी प्रकार सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोंमें होता है किन्तु इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल अपनी स्थिति प्रमाण होता है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति प्रमाण है। इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंमें कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ—जो हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाला असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मरकर नरकमें जन्म लेता है उसके तब तक जघन्य अनुभाग रहता है जब तक वह सत्तामें स्थित अनुभागसे अधिक अनुभागबन्ध नहीं करता है। अतः यदि वह दूसरे समयमें ही अनुभागको बढ़ा लेता है तो उसके जघन्य अनुभागका काल एक समय होता है अन्यथा अन्तर्मुहूर्त होता है। अन्तर्मुहूर्तके बाद हुआ अजघन्य अनुभागका सत्त्व आयुके अन्त समय तक रहता है, अतः अजघन्य अनुभाग का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष होता है। और यदि अजघन्य अनुभागके साथ नरकमें जन्म लिया गया तो उसका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर होता है, क्योंकि नरकमें इतनी ही उत्कृष्ट स्थिति है। पहले नरक, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए, क्योंकि हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाला असंज्ञी उनमें जन्म ले सकता है। अन्तर केवल इतना है कि इनमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण लेना चाहिये। जैसे पहले नरकमें एक सागर। दूसरे आदि नरकोंमें तथा ज्योतिषी देवोंमें असंज्ञी तो जन्म ले नहीं सकता। अतः अजघन्य अनुभागवाला जो जीव उक्त स्थानोंमें जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्तके बाद सम्यक्त्वको ग्रहण करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करता है उसके जघन्य अनुभाग होता है। यदि वह जीव विसंयोजना करके अन्तर्मुहूर्तके बाद सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है या मर जाता है तो उसके जघन्य अनुभागका काल अन्तर्मुहूर्त होता है, अन्यथा कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है। किन्तु सातवें नरकमें सम्यग्दृष्टि अवस्थामें मरण नहीं होता, अतः कुछ और अधिक कम कर लेना चाहिये। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल स्पष्ट ही है।

---

१. ता० प्रतौ अजहण्णुक्क० इति पाठः ।

§ ४५. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। मणुसतियम्मि मोह० जहण्णाणु० ओघं। अज० ज० खुद्दा-भवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सगसगट्ठिदी। सोधम्मादि जाव सव्वसिद्धि त्ति मोह० जहण्णाजहण्णाणुभागाणं जहण्णुक्कस्सेण सगसगजहण्णुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा।

§ ४५. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। अजघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्यानुभागविभक्तिका काल ओघके समान है और अजघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्यके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है और शेष दो के अन्तमुहूर्त है, उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें जो सूक्ष्म निगोदिया एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव अजघन्य अनुभागका घात कर देता है उसके तब तक जघन्य अनुभागकी सत्ता रहती है जब तक वह बन्धद्वारा उसे बढ़ा नहीं लेता। यदि एक समयमें ही उसने जघन्य अनुभागसे अधिकका बन्ध कर लिया तो जघन्य अनुभागका काल एक समय होता है, अन्यथा अन्तमुहूर्त होता है। इसी प्रकार जिस तिर्यञ्चने एक समयके लिए अजघन्य अनुभाग प्राप्त किया और दूसरे समयमें मर कर वह मनुष्य हो गया तो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है, अन्यथा अनुत्कृष्ट अनुभागकी तरह असंख्यात लोक होता है। यहाँ पर अनन्त काल न कहनेका कारण यह है कि एक तो सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें निरन्तर रहनेका काल असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए जिसने सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायके प्रारम्भमें और अन्तमें जघन्य अनुभाग करके मध्यमें वह अजघन्य अनुभागका स्वामी रहा तो अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक देखा जाता है। दूसरे पृथिवीकायादिमें निरन्तर रहनेका काल भी असंख्यात लोक है, इसलिए किसी सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकने जघन्य अनुभाग किया और दूसरे समयमें वह अन्य कायवाला होकर असंख्यात लोकप्रमाण काल तक अजघन्य अनुभागका स्वामी बना रहा। पुनः इतने कालके बाद वह सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त होकर जघन्य अनुभागका स्वामी हुआ तो भी अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण देखा जाता है। हतसमुत्पत्तिकर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागके साथ जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें बढ़ा लेता है तो जघन्य अनुभागका काल एक समय होता है. अन्यथा अन्तमुहूर्त होता है। इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है, क्योंकि इनकी जघन्य भवस्थिति ही इतनी है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यत्रिकमें क्षपकश्रेणि सम्भव होनेसे इनमें जघन्य अनुभागका काल ओघके समान बन जाता है। तथा सामान्य मनुष्योंकी भव-

§ ४६. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु मोह० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । बादरेइंदिएसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०-भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । एवं बादरेइंदियपज्जत्ताणं । णवरि अजहण्णाणु० उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । बादरेइंदियअपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० अंतोमु० । सुहुमेइंदिएसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सुहुमेइंदियपज्ज० मोह० जहण्णाणुभाग० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० उक्क० अंतोमु० । सुहुमेइंदिए अपज्ज० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तेसिं चेव पज्जत्ताणं च मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणमंतोमुहुत्तं देसूणं, उक्क० संखेज्जाणि वस्स-

---

स्थिति क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और शेषकी अन्तमुर्हूर्तप्रमाण होनेसे इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल उक्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है। सौधर्मादिक देवोंमेंसे उन्हीं देवोंके जघन्य अनुभाग होता है जो पिछले भवमें क्रिया द्वारा सबसे जघन्य अनुभाग कर चुके हैं और शेषके अजघन्य अनुभाग होता है। यही कारण है कि सौधर्मादि सब देवोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य भवस्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट भवस्थितिप्रमाण कहा है।

§ ४६. इन्द्रियकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। बादर एकेन्द्रियोंमें मोहनीय-कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुर्हूर्त है। अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुर्हूर्त और उत्कृष्ट अंगुलके असंख्यातवें भाग है जो कि असंख्याता-संख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अजघन्यानुभागका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। तथा अजघन्यानुभागका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। सामान्य दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय तथा उन्हींके पर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हूर्त है। तथा

सहस्साणि । एदेसिमपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्ताणं च पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ४७. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ।

§ ४८. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । बादरपुढवि-बादरआउ०-बादरतेउ०-बादरवाउ० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० कम्मट्ठिदी । एदेसिं चेव पज्जत्ताणं जहण्णाणु०

सामान्य दोइन्द्रियादिकके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तक दोइन्द्रियादिकके कुछ कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और सबके उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकके समान भङ्ग होता है।

विशेषार्थ—सब प्रकारके एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागवाले सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे उनमें जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, इसलिए वह तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। पूर्वोक्त अन्य जीवोंमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी अपनी भवस्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण बतलाया है यह तो ठीक है परन्तु एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें जो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय बतलाया है उसका कारण यह है कि ये भवके अन्तमें एक समयके लिए अजघन्य अनुभागवाले होकर दूसरे समयमें यदि अन्य कायवाले हो जाते हैं तो इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है।

§ ४७. सामान्य पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा सामान्य पञ्चेन्द्रियोंके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर है। और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर है।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनकी भवस्थिति और कायस्थितिको ध्यानमें रखकर इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है।

§ ४८. कायकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिकमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वायुकायिक जीवके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थिति प्रमाण है। इन्हीं पर्याप्तकोंके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । एदेसिमपज्जत्ताणं बादरेइंदियअपज्जत्तभंगो । सुहुमपुढवि०-सुहुमआउ०-सुहुमतेउ०-सुहुमवाउ० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एदेसिं चेव पज्जत्तापज्जत्तएसु जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु० देसूणं खुद्दा० देसूणं, उक्क० अंतोमु० । वणप्फदिकाइयाणं एइंदियभंगो । बादरवणप्फदिकाइय--बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्तापज्जत्ताणं बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं भंगो । सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्तापज्जत्ताणं सुहुमेइंदिय--सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तभंगो । सव्वणिगोदाणं सव्वेइंदियभंगो । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरेसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० कम्मट्ठिदी । बादरवणप्फदिपत्तेयपज्जत्तएसु मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० देसूणमंतोमु०, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो । तस०-तसपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०, अज[1]० ज० खुद्दाभवग्गहणं

है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष है । इन्हीं अपर्याप्तकोंके बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग होता है । सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक और सूक्ष्म वायुकायिक जीवोंके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट असंख्यात लोक है । इन्हीं जीवोंके पर्याप्तक और अपर्याप्तक अवस्थामें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैं । तथा उक्त पर्याप्तकोंके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम अन्तर्मुहूर्त है और अपर्याप्तकोंके कुछ कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है और दोनोंके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । वनस्पतिकायिकोंके एकेन्द्रियके समान भंग है। सामान्य बादर वनस्पति कायिकके बादर एकेन्द्रियके समान, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकके बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके समान और बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकके बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग होता है । सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकोंके क्रमसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तककी तरह भंग होता है। सब निगोदिया जीवोंके सब एकेन्द्रियोंके समान भंग होता है । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरी जीवोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण है । बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर पर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष है । बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर अपर्याप्तकोंके पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग होता है । त्रस और त्रसपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय

1. आ० प्रतौ जहण्णुक० अज० इति पाठः ।

अंतोमु०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि वेसागरोवम-सहस्साणि। तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।

§ ४६. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगसमओ। अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। कायजोगि० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ओरालियकाय० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० बावीसवाससहस्साणि देसूणाणि। ओरालियमिस्स० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। वेउव्वियकाय० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। वेउव्वियमि० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० जहण्णुक्क०

तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल त्रसोंमें क्षुद्रभवग्रहण और त्रस पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्त है। और उत्कृष्ट त्रसोंमें पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रस पर्याप्तकोंमें केवल दो हजार सागर है। त्रसकायिक अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग होता है।

विशेषार्थ—पृथिवी आदि चारों कायोंके भेद-प्रभेदोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्ववत् एकेन्द्रियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। जिनमें जघन्य काल कुछ कम कहा है उनमें जघन्य अनुभागके कालको दृष्टिमें रखकर कहा है। अर्थात् जघन्य अनुभागवाला उनमें जन्म लेकर यदि अनुभागको बढ़ा ले तो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी-अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण होता है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिकमें जानना चाहिए। त्रस और त्रस पर्याप्तकके क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ४६. योगकी अपेक्षा पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। काययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभाग विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। औदारिक-काययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिककाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकमिश्र-काययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

अंतोमु० । कम्मइय० मोह० जहण्णाणु० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णिसमया । एवमजहण्णं पि । आहारकायजोगी० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज०ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० मोह० जहण्णाजहण्ण० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।

§ ५०. वेदाणु० इत्थिवेदएसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं । पुरिस० मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस० ।

काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । कार्मणकाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । इसी प्रकार अजघन्य का भी है । आहारककाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंके क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान सम्भव है, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा पाँचों मनोयोग और पाँचों वचनयोगोंका मरण और व्याघातकी अपेक्षा तथा औदारिककाययोगका मरणकी अपेक्षा एक समय काल होता है, इसलिए इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय कहा है । जो दसवें क्षपक गुणस्थानमें जघन्य अनुभागको प्राप्त करनेके एक समय पूर्व काययोगी होता है उसके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है । सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियोंके जिस प्रकार काल घटित करके बतला आये उसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें घटित कर लेना चाहिए । वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय होनेसे इनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा इन दोनों योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगी प्रथम समयमें जघन्य अनुभागके साथ रहता है और दूसरे समयमें उसे बढ़ा लेता है उसके जघन्य अनुभागका एक समय काल उपलब्ध होनेसे वह एक समय कहा है । इसमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है यह स्पष्ट ही है । साथ ही जो असंज्ञी मर कर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होता है उसीके जघन्य अनुभाग होता है, अन्यके नहीं, इस लिए अजघन्य अनुभागका भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय होनेसे इसमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है । यहाँ जिन योगोंमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल घटित नहीं किया है वह उन योगोंके उत्कृष्ट काल प्रमाण जानना चाहिए ।

§ ५०. वेदकी अपेक्षा स्त्रीवेदियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्वपल्योपम है । पुरुषवेदियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य

अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । णवुंसयवेद० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं । अवगद० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एसगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।

§ ५१. कसायाणुवादेण कोधकसाएसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं माण-माया-लोभाणं । अकसाएसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमजहण्णं पि ।

§ ५२. णाणाणुवादेण मदि-सुदअण्णाणीसु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । विहंगणाणीसु मोह०

और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्वसागर है । नपुंसकवेदियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है । वह अनन्त काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अपगतवेदियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—तीनों वेदोंमें मोहका जघन्य अनुभाग अपने अपने सवेदभागके अन्तिम समयमें होता है, अतः इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य काल एक समय और पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तमुहूर्त होने से इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल उक्त प्रमाण कहा है । तथा इनमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । अपगतवेदमें सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होनेसे इसमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । मोहकी सत्तावाले अपगतवेदीका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त होनेसे इसमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है ।

§ ५१. कषायकी अपेक्षा क्रोधकषायवालोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मान, माया और लोभमें भी जानना चाहिये । कषायरहित जीवोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका भी काल जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—चारों कषायोंमें मोहका जघन्य अनुभाग अपने अपने क्षयके अन्तिम समयमें होता है, अतः इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा प्रत्येक कषायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त होनेसे इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है । उपशान्तकषायका भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, अतः अकषायी जीवोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है ।

§ ५२. ज्ञानकी अपेक्षा मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त

जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। आभिणि०--सुद०--ओहि० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० छासट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। मणपज्जव० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा।

§ ५३. संजमाणु० संजदेसु मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं सामाइय-छेदो०संजदाणं। णवरि अज० जह० एगस०। परिहार० मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी

और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। विभंगज्ञानियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक छियासठ सागर है। मनःपर्ययज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—दोनों अज्ञानोंमें एक बार जघन्य या अजघन्य अनुभाग होने पर वह कमसे कम अन्तमुहूर्त अवश्य रहता है। इसीसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा है। इनमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें घटित करके बतला आये हैं वैसे ही यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। जो मनुष्य जघन्य अनुभागको करके अनन्तर नीचे उतर कर यथाविधि एक समय तक विभङ्गज्ञानमें जघन्य अनुभागके साथ रह कर अजघन्य अनुभाग कर लेता है उसके विभङ्गज्ञानमें जघन्य अनुभाग एक समय तक उपलब्ध होता है, इसलिए विभङ्गज्ञानमें जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा जो जघन्य अनुभागके साथ उपरिम-उपरिम नवग्रैवयकमें उत्पन्न होता है उसके विभङ्गज्ञानमें कुछ कम इकतीस सागर काल तक जघन्य अनुभाग देखा जाता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इसमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। मात्र अजघन्य अनुभागका यह एक समय काल यथाशास्त्र घटित करना चाहिए। आभिनिबोधिक आदि चारों ज्ञानोंमें क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान सम्भव होनेसे इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५३. संयमकी अपेक्षा संयतोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है। इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना संयतोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। परिहारविशुद्धिसंयतोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट

देसूणा। एवमजहण्णं पि। सुहुमसांपरायि० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। जहाक्खाद० अकसायभंगो। संजदासंजद० मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवमजहण्णं पि। असंजद० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा।

§ ५४. दंसणाणु० चक्खु० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि। अचक्खु० मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज०[1] ज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो। ओहिदंसणी० ओहिणाणिभंगो।

काल कुछ कम पूर्वकोटी है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल भी जानना चाहिये। सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। यथाख्यातसंयतोंमें कषायरहित जीवोंके समान भंग होता है। संयतासंयतोंमें मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका भी काल जानना चाहिए। असंयतोंमें मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन संयमोंमें क्षपकश्रेणी सम्भव है उनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। कारण कि उस उस संयमके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। मात्र संयतोंके सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। सूक्ष्मसाम्परायसंयम, सामायिकसंयम और छेदोपस्थापनासंयमका जघन्य काल एक समय होनेसे इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय कहा है। इन सबमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यथाख्यातसंयम अकषायी जीवोंके होता है, इसलिए इसमें कालका विचार अकषायी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। अब शेष तीन रहे परिहारविशुद्धिसंयम, संयमासंयम और असंयम सो इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि इनका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इनका उत्कृष्ट काल प्रारम्भके दोका कुछ कम पूर्वकोटि होनेसे उनमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है और असंयतोंमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार मत्यज्ञानियोंमें असंख्यात लोकप्रमाण घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

§ ५४. दर्शनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है। अचक्षुदर्शनियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अनादि अनन्त और अनादि सान्त है। अवधिदर्शनवालोंमें अवधिज्ञानियोंके समान भङ्ग होता है।

---

१. आ० प्रतौ एगस० उक्क० अंतोमु० अज० इति पाठः।

§ ५५. लेस्साणु० किण्ह--णील--काउ० मोह० ज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि[1]। तेउ०-पम्म० मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० वे--अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० वे-अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि । सुक्क० मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि।

§ ५६. भवियाणु० भवसि० ओघं। अभवसि० मोह० ज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा ।

विशेषार्थ—क्षपक सूक्ष्मसाम्परायमें भी चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन होते हैं, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । चक्षुदर्शनका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है, अतः इसमें अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है । अचक्षुदर्शन भव्य और अभव्य दोनोंके होनेसे उसमें अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अभव्योंके अनादि-अनन्त और भव्योंके अनादि-सान्त कहा है । अवधिदर्शनवालोंका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५५. लेश्याकी अपेक्षा कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक तेतीस सागर, कुछ अधिक सतरह सागर और कुछ अधिक सात सागर है । तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है । शुक्ललेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—कृष्णादि तीन लेश्याओंमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एकेन्द्रिय की तरह घटित कर लेना चाहिए । तथा अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल प्रत्येक लेश्याके उत्कृष्ट काल की तरह है यह स्पष्ट ही है । एक जीव की अपेक्षा तेजोलेश्या और पद्मलेश्याका जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल है उतना ही उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है । शुक्ललेश्यामें क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल शुक्ललेश्याके एक जीव की अपेक्षा काल को ध्यानमें रखकर कहा है ।

§ ५६. भव्यकी अपेक्षा भव्योंमें ओघके समान भङ्ग है । अभव्योंमें मोहनीयकर्म की जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है।

विशेषार्थ—ओघसे जिस प्रकार कालको घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार भव्योंमें

१. ता० प्रतौ सादिरेयाणि··········तेउ० इति पाठः ।

§ ५७. सम्मत्ताणु० सम्मादिट्ठी० मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० णवणउइसागरो० सादिरेयाणि छासट्ठिसागरो० सादिरेयाणि वा । खइय० मोह० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । वेदग० मोह० जह० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० छासट्ठिसागरोवमाणि । उवसम० मोह० जहण्णाणु० जहण्ण० उक्क० अंतोमु० । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । सासण० मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० छ आवलियाओ । एवमजहण्णं पि । सम्मामि० मोह० ज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवमजहण्णं पि । मिच्छादिट्ठी० मोह० ज० ज० उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा ।

घटित कर लेना चाहिए। एकेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभाग होनेके बाद वह अन्तमुहूर्त काल तक अवश्य रहता है, इसलिए इसका अभव्योंमें जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है। इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५७. सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक निन्यानवे सागर है। अथवा कुछ अधिक छियासठ सागर है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छ आवलिका है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल भी है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका भी काल है। मिथ्यादृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैं। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात लोक है।

विशेषार्थ–सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल मोटे तौरपर दोनोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी तरह जानना चाहिए। वेदकसम्यक्त्वमें दोवार उपशमश्रेणीपर चढ़कर, उससे उतरकर दर्शनमोहनीयका क्षय करके कृतकृत्यभावको प्राप्त हुए जीवके प्रथम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उपशमसम्यक्त्वमें दुबारा उपशम श्रेणीपर चढ़कर ग्यारहवें गुणस्थानमें वर्तमान जीवके जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल

§ ५८. सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मोह० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । असण्णि० मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा ।

§ ५९. आहारीसु मोह० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं जहण्णओ कालाणुगमो समत्तो ।

§ ६०. अंतराणुगमेण दुविहमंतरं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे० । ओघे० मोह० उक्कस्साणुभागमंतरं केवचिरं ? ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

मोटे तौरपर दोनों सम्यक्त्वोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी तरह जानना चाहिए । सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल है उतना ही उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है। जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे मिथ्यादृष्टिके उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा मिथ्यात्वमें अजघन्य अनुभाग कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक रहता है यह देखकर यहाँ वह उक्त प्रमाण कहा है ।

§ ५८. संज्ञित्वकी अपेक्षा संज्ञियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर है। असंज्ञियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है।

विशेषार्थ—संज्ञीके क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान सम्भव होनेसे इसमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा संज्ञियोंका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्व होनेसे इसमें अजघन्य अनुभागका उक्त प्रमाण काल कहा है। असंज्ञियोंमें जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें काल घटित करके बतला आये हैं इस प्रकार घटित कर लेना चाहिए।

§ ५९. आहारकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अंगुलका असंख्यातवां भाग है जो कि असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण है। अनाहारकोंमें कार्मणकायके समान भंग होता है।

इस प्रकार जघन्य कालानुगम समाप्त हुआ।

§ ६०. अन्तरानुगमकी अपेक्षा अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल है। वह अनन्त काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनु-

एवं तिरिक्खोघं।

§ ६१. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणुभागमंतरं केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० देसूणाणि। अणुक्क० ओघं। एवं सव्वणेरइयाणं। णवरि सग-सगट्ठिदी देसूणा। पंचिंदियतिरिक्खतिएसु मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडि-पुधत्तं। अणुक्क० ओघं। मणुस्सतियस्स पंचिंदियतिरिक्खतियभंगो। पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं मणुस्सअपज्ज० आणदादि जाव सव्वट्ठ-सिद्धि त्ति। देवेसु मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि। अणुक्क० ओघं। एवं भवणादि जाव सहस्सार त्ति। णवरि सग-सगट्ठिदी वत्तव्वा।

भागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इस प्रकरणमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरकालका विचार किया गया है। जैसे एक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिने उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके उसका घात कर दिया। तथा पुनः अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है। और यदि वह एकेन्द्रिय पर्यायमें उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनन्त कालतक एकेन्द्रिय ही रहा आवे और उसके बाद संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके उत्कृष्ट अनुभागवाला हो जाय तो उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन होता है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं उपलब्ध होता।

§ ६१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें अन्तर काल होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी इन तीनोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघकी तरह है। सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकके समान भङ्ग है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकों और आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भी समझ लेना चाहिए। सामान्य देवोंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अठाहर सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार भवन-वासी से लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रत्येकमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति लेनी चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे जो अन्तर काल घटित करके बतलाया है उसी प्रकार सामान्य नारकी, सातों पृथिवियोंके नारकी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक और मनुष्यत्रिकमें घटित कर लेना चाहिए। मात्र उत्कृष्ट अनुभागके उत्कृष्ट अन्तरमें विशेषता है। बात यह है कि इन सब मार्गणाओंकी स्थिति भिन्न भिन्न है, इसलिए जहाँ जो स्थिति हो उससे कुछ कम वहाँ उत्कृष्ट

§ ६२. इंदियाणु० एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएसु सव्वविगलिंदियपज्जत्ता-पज्जत्तएसु च मोह० उक्कस्साणुक्कस्साणुभागंतरं णत्थि। पंचिंदिय-पंचिं०पज्जत्तएसु मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवम-सदपुधत्तं। अणुक्क० ओघं। पंचिंदियअपज्ज० मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं।

§ ६३. कायाणु० पंचण्हं कायाणमेइंदियभंगो। तस--तसपज्जत्तएसु मोह० उक्क० केव० ? जहण्णेण अंतोमु०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-ब्भहियाणि वेसागरोवमसहस्साणि। अणुक्क० ओघं। तसअपज्ज० पंचिंदियअपज्जत्तभंगो।

§ ६४. जोगाणु० पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-आहार०--आहारमिस्स० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। णवरि कायजोगीसु अणुक्क० ओघभंगो।

अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त आदि मार्गणाओंमें अन्य पर्यायसे उत्कृष्ट अनुभाग लेकर आता है, वहाँ उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरका निषेध किया है। देवोंमें और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें नारकियोंके समान स्पष्टीकरण है।

§ ६२. इन्द्रियकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, उनके सभी बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रियोंमें तथा विकलेन्द्रियोंमें और उनके सभी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। पंचेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मोहनीय-कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टसे पञ्चेन्द्रियोंमें पूर्वकोटि-पृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर है और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें सौ पृथक्त्वसागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समानहै। पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और उनके भेद-प्रभेदोंमें तथा पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें उसी पर्यायमें उत्कृष्ट अनुभागकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिए यहाँ भी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरका निषेध किया है। पञ्चेन्द्रियद्विकमें नारकियोंके समान स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। मात्र इनकी कायस्थिति भिन्न होनेसे इनमें उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण कहना चाहिए। इसी प्रकार आगे भीं मार्गणाओंमें यथासम्भव अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए। जहाँ विशेषता होगी उसका स्पष्टीकरण करेंगे।

§ ६३. कायकी अपेक्षा पाँचों स्थावरकायोंमें एकेन्द्रियके समान भङ्ग होता है। त्रस और त्रसपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर त्रसोंमें पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रसपर्याप्तकोंमें केवल दो हजार सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान है। त्रस अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग होता है।

§ ६४. योगकी अपेक्षा पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, सामान्य काययोगी, औदा-रिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, आहारककाययगी और आहारकमिश्रकाययोगीमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-भागका अन्तर नहीं है। इतनी विशेषता है कि काययोगियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर

§ ६५. वेदाणु० इत्थिवेदएसु मोह० उक्क० केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदोवमसदपुधत्तं। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। पुरिसवेद० मोह० उक्क० केव० ? जह० अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। णवुंस० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। अवगदवेदे[1] उक्क०-अणुक्क०अणुभागविहत्तियाणं णत्थि अंतरं।

§ ६६. कसायाणुवादेण कोध-माण-माया-लोहकसाईसु मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं। एवमकसाईणं।

§ ६७. णाणाणु० मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मोह० उक्क० केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं।

ओघके समान है।

विशेषार्थ—एक योगके रहते हुए दो बार उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभाग सम्भव नहीं है, इसलिए इनमें अन्तरका निषेध किया है। मात्र काययोगमें अनुत्कृष्ट अनुभागकी प्राप्ति दो बार सम्भव होनेसे इसमें अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान बन जाता है।

§ ६५. वेदकी अपेक्षा स्त्रीवेदियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पृथक्त्वपल्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। पुरुषवेदियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पृथक्त्व सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। नपुंसकवेदियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अवगतवेदियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय अपगतवेद अवस्थामें प्रथम अनुभागकाण्डकके रहते हुए उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। यतः अपगतवेदी जीवके इस अवस्थाकी प्राप्ति दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए अपगतवेदी जीवके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

§ ६६. कषायकी अपेक्षा, क्रोध, मान, माया और लोभ कषायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार कषायरहित जीवोंमें भी जानना चाहिये।

§ ६७. ज्ञानकी अपेक्षा मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। वह अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट

---

[1] आ० प्रतौ -परिवट्टा। अवगदवेदे इति पाठः।

विहंगणाणीसु मोह० उक्क० केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं।

§ ६८. संजमाणु० संजद-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद० मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं। असंजद० मोह० उक्क० जह० अंतोमुहु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं।

§ ६९. दंसणाणु० चक्खु० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि देसूणाणि। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। अचक्खु० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। ओहिदंसणी० ओहिणाणिभंगो।

अन्तर ओघकी तरह है। विभंगज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघकी तरह है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके आभिनिबोधिक आदि तीन ज्ञानोंमें उत्कृष्ट अनुभाग होता है। तथा जो वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत मनःपर्ययज्ञानको प्राप्त करता है उसके मनःपर्ययज्ञानमें उत्कृष्ट अनुभाग होता है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

§ ६८. संयमकी अपेक्षा संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, यथाख्यातसंयत और संयतासंयतोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है। असंयतोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है।

विशेषार्थ—संयत आदि जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागके स्वामित्वका जो निर्देश किया है उसे देखनेसे विदित होता है कि इनमें भी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर सम्भव नहीं है, इसलिए उसका निषेध किया है। मात्र असंयत जीवोंके वह बन जाता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है।

§ ६९. दर्शनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असंख्यात पुद्गल परावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अवधिदर्शनवालोंमें अवधिज्ञानियोंके समान भंग होता है।

§ ७०. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरो० देसूणाणि। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। तेउ०-पम्म० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० वे-अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। सुक्क० मोह० उक्कस्साणुक्कस्सा० णत्थि अंतरं।

§ ७१. भवियाणु० भवसि० मोह० उक्क० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। अभवसि०-भवसिद्धियाणमोघंभंगो[1]।

§ ७२. सम्मत्ताणु० सम्मादिट्ठि-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं। मिच्छादिट्ठीसु भवसिद्धियभंगो।

§ ७३. सण्णियाणु० सण्णीसु मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं। अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं। असण्णीसु मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं।

§ ७४. आहाराणु० आहारीसु मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अंगुलस्स

---

§ ७०. लेश्याकी अपेक्षा कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सतरह सागर और कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। शुक्ललेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।

§ ७१. भव्यत्वकी अपेक्षा भव्योंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अभव्योंमें भव्योंके समान भंग होता है।

§ ७२. सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। मिथ्यादृष्टियोंमें भव्योंके समान भंग होता है।

§ ७३ संज्ञित्वकी अपेक्षा संज्ञियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पृथक्त्वसागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। असंज्ञी जीवोंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।

§ ७४. आहारकी अपेक्षा आहारकोंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर

---

१. आ० प्रतौ भवसि० भंगो इति पाठः।

असंखे०भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । अणुक० जहण्णुक० ओघं । अणाहारि० मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं ।

एवमुक्कस्साणुभागंतराणुगमो समत्तो ।

§ ७५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्दे सो—ओघे० आदेसे० । ओघेण मोह० [जहण्णा-] जहण्णाणुभागविहत्तियाणं णत्थि अंतरं । एवं णिरयओघं पढमपुढवि-सव्व-पंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस० देवोघं भवण०-वाण० सोहम्मादि जाव० सव्वट्ठसिद्धि त्ति।

§ ७६. आदेसेण णेरइएसु विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० सग-सगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अज० ज० अंतोमु०,उक्क० सग-सगुक्कस्स-

---

अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग है, जो असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीकालके बराबर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अनाहारियोंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागको लेकर अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्या, सब सम्यक्त्व, असंज्ञी और अनाहारक मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए इनमें अन्तरका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ ७५. अब जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य नारकी, पहली पृथिवीके नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासी, व्यन्तर तथा सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणिके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें होता है। उससे दूसरे समयमें उस जीवके मोहनीयका सर्वथा अभाव हो जाता है, अतः ओघसे जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं कहा है। आगे आदेशकी अपेक्षासे भी जिन जिन मार्गणाओंमें उक्त अवस्थामें जघन्य अनुभाग होता है उनमें अन्तरकालका अभाव जानना चाहिये। जैसे कि तीन प्रकारके मनुष्योंमें। सामान्य नारकी, पहले नरकके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोंमें जो हतसमुत्पत्तिककर्मवाला असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जन्म लेता है उसके तब तक जघन्य अनुभागकी सत्ता रहती है जब तक वह उसे बढ़ाता नहीं है। इसी प्रकार जो हतसमुत्पत्तिककर्मवाला एकेन्द्रिय जीव पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तमें जन्म लेता है उसके जघन्य अनुभाग होता है। इस जघन्य अनुभागमें वृद्धि होने पर पुनः इन पर्यायोंमें उसी जीवके जघन्य अनुभाग नहीं हो सकता अतः इनमें दोनों प्रकारके अनुभागका अन्तर नहीं कहा है। तथा दुबारा उपशमश्रेणि पर चढ़कर वहांसे गिरकर पीछे दर्शनमोहनीयका क्षपण करके जो मनुष्य सौधर्मादिकमें उत्पन्न होता है उसके जघन्य अनुभाग होता है। वह जघन्य अनुभाग यावज्जीवन रहता है, अतः सौधर्मादिकमें भी अन्तरकाल नहीं कहा है।

§ ७६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तक मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी

ट्ठिदी देसूणा। एवं जोदिसिय०। तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा[1] लोगा। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०।

§ ७७. इंदियाणु० एइंदिय०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० जह० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। णवरि अपज्जत्तएसु अंतोमु०। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। सुहुमेइंदियपज्ज०-बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-पंचिंदियअपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं। पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं।

§ ७८. कायाणु० पुढवि० आउ०-तेउ० [वाउ०-] बादर[2]-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-

---

उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है।

विशेषार्थ—दूसरे आदि नरकमें जन्म लेकर जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धी चतुष्कका क्षपण कर लेता है उसके जघन्य अनुभाग होता है। अन्तमुहूर्तके पश्चात् सम्यक्त्वसे च्युत होकर यदि वह जीव पुन: मिथ्यादृष्टि हो जाता है तो अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त होता है। और अन्तमुहूर्त तक अजघन्य अनुभागवाला रहकर सम्यग्दृष्टि होकर यदि पुनः अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके जघन्य अनुभागवाला हो जाता है तो जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त होता है। इसी प्रकार उत्कृष्ट अन्तर भी घटा लेना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें कोई सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अजघन्य अनुभागका घात करके जघन्य अनुभागवाला हुआ। यतः उसके यह जघन्य अनुभाग अन्तमुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं रहता, अतः अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है। और यदि अन्तमुहूर्तके बाद उस अजघन्य अनुभागका घात करके पुन: जघन्य अनुभागवाला होजाता है तो जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूत होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा परिणामोंके अनुसार असंख्यात लोक कालका अन्तर प्राप्त होनेसे उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है।

§ ७७. इन्द्रियकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा इन सबके अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, समस्त विकलेन्द्रिय, समस्त विकलेन्द्रिय पर्याप्तक, समस्त विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है। पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है।

§ ७८. कायकी अपेक्षा पृथिवीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय तथा इनके बादर,

---

1. ता० प्रतौ संखेज्जा इति पाठः। 2. ता० प्रतौ तेउ० [वाउ०] बादर०, आ० प्रतौ तेउ० बादर० इति पाठः।

सुहुमवणप्फदिकाइयपज्ज०—बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्त--बादरणिगोद--पज्जत्तापज्ज०--सुहुमणिगोदपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णं० णत्थि अंतरं। वणप्फदिकाइय—सुहुमवणप्फदिकाइय०-सुहुमणिगोदेसु मोह० ज० अज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवमेदेसिमपज्जत्तएसु वि। णवरि जहण्णुक्क० अंतोमु०। तस०-तसपज्जत्तापज्जत्तएसु[1] मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं।

§ ७६. जोगाणु० पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०--वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-आहा०-आहारमिस्स० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं। ओरालियमिस्स० सुहुमेइंदियअपज्जत्तभंगो।

§ ८०. वेदाणुवादेण इत्थि०-पुरिस०-णवुंसय० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं। एवमवगद०-चत्तारिकसाय—अकसाय—आभिणि०-सुद०—ओहि०—मण-

सूक्ष्म, पर्याप्तक, और अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्तक, बादर वनस्पतिकाय प्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्तक, और अपर्याप्तक, बादर निगोद तथा इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक और सूक्ष्म निगोद पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्मनिगोदया जीवोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार इनके अपर्याप्तकोंमें भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें दोनों प्रकारका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। त्रस, त्रसपर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तकोंमें मोहनीय-कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें तिर्यञ्चोंके समान स्पष्टीकरण है। किन्तु सूक्ष्म अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही है, क्योंकि बार बार जन्म लेने पर भी कोई जीव अपर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक लगातार जन्म नहीं ले सकता। शेष सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक आदिमें अन्तर नहीं है, क्योंकि हतसमुत्पत्तिककर्म द्वारा जघन्य अनुभाग करनेवाला जीव उनमें जन्म तो ले सकता है किन्तु उन मार्गणाओंमें जघन्य अनुभाग करना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार पृथिवीकायादिकमें भी अन्तरका अभाव जानना चाहिए। केवल वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदिया जीवोंमें अन्तर होता है जो सूक्ष्म एकेन्द्रियकी तरह समझ लेना चाहिए।

§ ७९. योगकी अपेक्षा पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-योगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग है।

§ ८०. वेदकी अपेक्षा स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मोहनीय कर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार अपगतवेदी चारों कषायवाले, कषायरहित जीव, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक

1. ता० प्रतौ तस० तसपज्जत्तएसु इति पाठः।

पज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०--संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०--ओहिदंस०-सुक्कले०--भवसि०--सम्मादिट्ठि--वेदग०-खइय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति ।

§ ८१. मदि-सुदअण्णाणीसु मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । विहंगणाणीसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । असंजद० मोह० ज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । किण्ह-णील-काउ०-तेउ०-पम्म० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । अभवसि० मोह० ज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं मिच्छादिट्ठि-असण्णीणं ।

एवं जहण्णाणुभागअंतराणुगमो[1] समत्तो ।

संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, आहारी और अनाहारी जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ८१. मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंमें मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । विभंगज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभाग विभक्तिका अन्तर नहीं है असंयतोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । कृष्ण, नील, कापोत, तेज और पद्मलेश्यामें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है । अभव्योंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है । अजघन्य अनुभाग विभक्तिवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असज्ञियोंमें भी जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—योगकी अपेक्षा मनोयोग, वचनयोग, काययोग और औदारिककाययोगवालोंके क्षपक दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है अतः अन्तर नहीं कहा है । वैक्रियिककाययोगमें सौधर्मादिककी तरह अन्तर नहीं है । वैक्रियिकमिश्रमें नरकमें जन्म लेने वाले हतसमुत्पत्तिककर्मा असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग होता है अत: उसमें भी अन्तर नहीं है । आहारक और आहारकमिश्रमें दुवारा उपशमश्रेणि पर चढ़कर, उससे उतर कर दर्शनमोहनीयका क्षपण करके जो आहारककी उत्पादना करता है उसके जघन्य अनुभाग होता है अत: उनमें भी अन्तर नहीं प्राप्त होता । कार्मणका काल थोड़ा है, अत: उसमें भी अन्तरकी संभावना नहीं है । अपने अपने योग्य इसी प्रकारके कारणोंसे शेष मार्गणाओंमें अन्तरका अभाव लगा लेना चाहिये । केवल औदारिकमिश्र, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयमी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञीमें अन्तरकाल होता है जो एकेन्द्रियकी तरह लगा लेना चाहिये ।

इस प्रकार जघन्य अनुभागका अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

---

1. ता० प्रतौ जहण्णाजहण्णाणुभागअंतराणुगमो इति पाठः ।

§ ८२. णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागविहत्तीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया १। सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च २। सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ३। एवमणुक्कस्सं पि। णवरि विहत्तिपुव्वं भाणिदव्वा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसतिय-देव०-भवणादि जाव सहस्सार त्ति। मणुस-अपज्ज० उक्कस्साणुक्कस्साणुभागविहत्तियाणमट्ठ भंगा। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्कस्साणुक्कस्स० णियमा अत्थि।

§ ८३. इंदियाणु० एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-सव्व-पंचिंदिएसु सिया सव्वे अणुक्कस्सविहत्तिया १। सिया अणुक्कस्सविहत्तिया च उक्क-स्सविहत्तियो च २। सिया अणुक्कस्सविहत्तिया च उक्कस्सविहत्तिया च ३। एवं छकाय-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-कम्मइय०-तिण्णि-वेद०-चत्तारिकसाय०-तिण्णिअण्णाण०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-सम्मादिट्ठि-वेदग०-मिच्छादिट्ठि-सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति।

---

§ ८२. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अनेक जीव अविभक्तिवाले और एक जीव विभक्तिवाला होता है २। कदाचित् अनेक जीव अविभक्ति-वाले और अनेक जीव विभक्तिवाले होते हैं ३। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट में भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि विभक्तिको पहले रखकर कथन करना चाहिये। अर्थात् कदाचित् सब जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्टविभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्टविभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्ति-वाले हैं ३। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिनी, देव, और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जानना चाहिये। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंके आठ भंग होते हैं। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं।

§ ८३. इन्द्रियकी अपेक्षा सामान्य एकेन्द्रिय और उनके बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त सब भेदोंमें तथा सब विकलेन्द्रियों और सब पञ्चेन्द्रियोंमें कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट विभक्ति-वाला है २। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले और अनेक जीव उत्कृष्ट विभक्तिवाले हैं ३। इसी प्रकार छहों काय, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी, औदा-रिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, चार कषायवाले, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्याके सिवाय शेष पाँचों लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी आहारी और अनाहारी

§ ८४. वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०--अकसा०-सुहुमसांपराय०--जहाक्खाद०--उवसम०--सासण०--सम्मामिच्छादिट्ठीणं मणुसअपज्ज० भंगो। संजद-सामइय-छेदो०-परिहार०--संजदासंजद--मणपज्ज०-सुक्के०-खइय० सम्मादिट्ठीण-माणदभगो।

एवं णाणाजीवेहि उक्कस्सभंगविचयाणुगमो समत्तो।

जीवोमें जानना चाहिए।

§ ८४. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अपर्याप्त मनुष्यके समान भंग है। संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, मनःपर्ययज्ञानी, शुक्ललेश्यावाले और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें आनत कल्पके समान भंग है।

विशेषार्थ—इस अनुयोगद्वारमें नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका विचार किया है। ओघसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके तीन तीन भंग ही घटित होते हैं। यतः उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताका काल और जीव बहुत कम हैं, इसलिये कदाचित् ऐसा समय आता है जब उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला कोई जीव न हो और सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागवाले हों। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित और एक जीव सहित हो। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे सहित और एक जीव उससे रहित हो। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित और अनेक जीव उससे रहित हों। इस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके रहने न रहने की अपेक्षासे ६ भंग होते हैं। आदेशसे भी चारों गतियोंमें यही ६ भंग बनते हैं। केवल मनुष्य अपर्याप्तके आठ भंग होते हैं जो इस प्रकार हैं—कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं। कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित होते हैं। कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होता है। कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित होता है। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित और अनेक जीव उससे रहित होते हैं। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित और एक जीव उससे रहित होता है। कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित और एक जीव उससे रहित होता है। कदाचित अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित और एक जीव उससे सहित होता है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागके भी आठ भंग होते हैं। मनुष्य अपर्याप्तमें ये आठ भंग होनेका कारण यह है कि यह सान्तर मार्गणा है। इसमें कदाचित् एक भी जीव नहीं पाया जाता और कदाचित् एक या अनेक जीव पाये जाते हैं, अतः उक्त आठ आठ भंग बन जाते हैं। अन्य भी वैक्रियिकमिश्र आदि सान्तर मार्गणाओंमें इसी प्रकार आठ आठ भंग होते हैं। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक तथा संयत आदिमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं। कारण कि इनमें यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जन्म लेते है तो उनके तो नियमसे अनुत्कृष्ट अनुभाग ही बना रहता है और यदि उत्कृष्ट अनुभागवाले जन्म लेते हैं तो उनके जब तक क्रियान्तरके द्वारा उसका घात नहीं होता तब तक वही बना रहता है। संयत, सामायिक संयत आदिके आनतादिकके समान ही जानना चाहिए। तथा शेषमें ओघके समान घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टभंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

§ ८५. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० जहण्णाणुभागस्स सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया १। सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च २। सिया० अविहत्तिया च विहत्तिया च ३। अजहण्णस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया १। सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च २। सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च १। एवं णिरयओघं पढमपुढवि--सव्वपंचिंदियतिरिक्ख--मणुसतिय-देवोघं भवण०-वाण०--सव्वविगलिंदिय--सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवि०पज्ज०-बादरआउ०-पज्ज०--बादरतेउ०पज्ज०--बादरवाउ०पज्ज०--बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०--तस-तसपज्जत्तापज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०--कायजोगि०ओरालि०--तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइय-छेदो०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहि-दंस०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठि-वेदगसम्मा०-सण्णि-आहारि त्ति।

§ ८६. विदियादि जाव सत्तमि त्ति जहण्णाजहण्णं णियमा अत्थि। एवं तिरिक्ख-जोदिसियादि जाव सव्वट्ठसिद्धि-एइंदिय--बादरेइंदिय-[बादरेइंदियअपज्ज०]-सुहुमेइंदिय--पज्जत्तापज्जत्त--पुढवि०--बादरपुढवि०--बादरपुढवि०अपज्ज०--सुहुमपुढवि०-

§ ८५. अब जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागअविभक्ति वाले हैं १। कदाचित् अनेक जीव मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिसे रहित हैं और एक जीव मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिसे रहित हैं और अनेक जीव जघन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं ३। कदाचित् सब जीव मोहनीयकर्मकी अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं १। कदाचित् अनेक जीव मोहनीयकर्मकी अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं और एक जीव अजघन्य अनुभाग विभक्तिसे रहित है २। कदाचित् अनेक जीव मोहनीय कर्मकी अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं और अनेक जीव अजघन्य अनुभागविभक्तिसे रहित हैं ३। इसी प्रकार सामान्य नारकी, पहली पृथिवीके नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यिनी, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीपर्याप्तक, बादर अप्कायपर्याप्तक, बादर तेजकायपर्याप्तक, बादर वायुकायपर्याप्तक, बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीरपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, त्रसअपर्याप्तक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, पुरुषवेदी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यक्दृष्टि, संज्ञी और आहारी जीवोंमें जानना चाहिये।

§ ८६. दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक जघन्य अनुभागविभक्तिवाले और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले नियमसे होते हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्च, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक और उसके पर्याप्त अपर्याप्त, अप्कायिक, बादर

सुहुमपुढवि०पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०--सुहुमआउ०--सुहुम-आउपज्जत्तापज्जत्त--तेउ०--वादरतेउ०--वादरतेउअपज्ज०--सुहुमतेउ०--सुहुमतेउ०पज्जत्ता-पज्जत्त०--वाउ०-वादरवाउ०--वादरवाउ०अपज्जत्त--सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त--सव्ववणप्फदि--सव्वणिगोद--ओरालियमिस्स०--वेउव्विय०--कम्मइय०--मदिअण्णाणि--सुदअण्णाणि-विहंग०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-किण्ह-णील-काउ--तेउ-पम्म०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ८७. मणुसअपज्ज० जहण्णाजहण्ण० अट्ठ भंगा । एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०--अवगद०--अकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

§ ८८. भागाभागाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे० । ओघे० मोह० उक्कस्साणुभागविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । अणुक्कस्स०विहत्तिया सव्वजीणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्खोघं सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदिकाइय-

---

अप्कायिक, वादर, अप्कायिक, अपर्याप्तक सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक, तेजकायिक, वादर तैजस्कायिक, वादर तैजस्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, सव वनस्पति, सव निगोदिया, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, कार्मणकाययोगी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कपोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारी जीवोंमें जानना चाहिए ।

§ ८७. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य विभक्तिके आठ आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिकी अपेक्षा ओघ और आदेशसे जिस प्रकार स्पष्टीकरण किया है उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए । मात्र जिन मार्गणाओंमें विशेषता है उनमें जघन्य स्वामित्वको ध्यानमें रख कर वह घटित कर लेनी चाहिए ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ८८. भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । अर्थात् सब जीवोंमें अनन्तका भाग देने पर एक भागप्रमाण उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं

सव्वणिगोद--कायजोगि--ओरालि०--ओरालिमिस्स०--कम्मइय०--णवुंस०--चत्तारिक०-दोअण्णाण०-असंजद०--अचक्खु०-किण्ह--णील-काउ०--भवसि०--अभवसि०--मिच्छादिट्ठि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति।

§ ८९. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणुभाग० सव्वजीवाणं केव० ? असंखे०-भागो। अणुक्क० विहत्ति० सव्वजी० केव० ? असंखे० भागा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदि० तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वविय-लिंदिय--सव्वपंचिंदिय--सव्वचत्तारिकाय--बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्त-सव्वतसकाइय-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वि०-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ-पम्म-सुक्क०-सम्मादि०-वेदग०-खइय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति।

§ ९०. मणुसपज्ज०-मणुसिणी० उक्कस्साणुभाग० सव्वजी० केव० ? संखे० भागो। अणुक्क० संखेज्जा भागा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-

---

और शेष बहु भागप्रमाण अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदिया, सामान्य काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारी और अनाहारी जीवोंमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यात और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले अनन्त होते हैं। इसीसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले अनन्तवें भाग और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले अनन्त बहुभाग कहे हैं। यहाँ मूलमें अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जानेसे उनकी प्ररूपणा ओघके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ८९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर अपराजित अनुत्तर तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब तैजस्कायिक, सब वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर तथा उनके पर्याप्त अपर्याप्त, सब त्रसकायिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए।

§ ९०. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी,

मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०संजदे त्ति।

§ ९१. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। ओघे० मोह० जहण्णाणु० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। अज० सव्वजी० केव०? अणंता भागा। एवं कायजोगि० ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति।

§ ९२. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहण्णाणु० सव्वजीव० केव०? असंखे०-भागो। अज० असंखेज्जा भागा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद० सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्व-छक्काय-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०मिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वि०मिस्स०-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि०-सुद०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-असंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-छलेस्सा०-अभवसि०-छसम्मत्त०-सण्णि०-असण्णि०-अणाहारि

अपगतवेदी, कषायरहित, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकी आदि मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले यद्यपि असंख्यात हैं फिर भी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यावें भाग ही हैं। इसीसे इनमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं। मनुष्यपर्याप्त आदिमें दोनों विभक्तिवाले संख्यात हैं, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले संख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले संख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं।

§ ९१. अब जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है-ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवेंभाग हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तबहुभाग ब हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे और उक्त मार्गणाओंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवाले संख्यात हैं और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले अनन्त हैं, अत: उक्त प्रकारसे भागाभाग बन जाता है। आगे भी इसी प्रकार संख्या जान कर भागाभाग घटित कर लेना चाहिए।

§ ९२. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? असंख्यातवें भाग हैं और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य-अपर्याप्त,सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विक-लेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब अप्कायिक, सब तैजस्कायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, सब त्रसकायिक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेश्यावाले, अभव्य, छहों सम्यग्दृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी,

त्ति। मणुसपज्जत्तादिसंखेज्जरासीसु जहण्णाणु० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो। अज० संखेज्जा भागा।

एवं जहण्णओ भागाभागाणुगमो समत्तो।

§ ९३. परिमाणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्द सो—ओघे० आदेसे०। ओघेण उक्कस्साणुभागविहत्तिया केवडिया ? असंखेज्जा। अणुक० दव्वपमाणेण के० ? अणंता। एवं तिरिक्खोघं सव्वेइंदिय-सव्ववणप्फदिकाइय०-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-दोण्णिअण्णाणि-असंजद०-अचक्खु०-किण्ह-णील-काउ०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि०-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति।

§ ९४. आदेसेण णेरइएसु उक्कस्स-अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया जीवा दव्वपमाणेण के० ? असंखेज्जा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद० सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वचत्तारिकाय-वादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वतसकाइय-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-

---

और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्त आदि संख्यात राशियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।

इस प्रकार जघन्य भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

§ ९३. परिमाणानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च तथा सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदिया, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारकोंमें जानना चाहिए।

§ ९४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब तैजस्कायिक, सब वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब त्रसकायिक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधि-

चक्खु०-ओहिदंस०--तेउ-पम्म-सुक०--सम्मादिट्ठि--वेदय०--खइय०-उवसम०--सासण०-सम्मामि०--सण्णि त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० उजस्साणुकस्साणुभाग० केव० ? संखेज्जा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०--संजद-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०संजदे त्ति।

एवमुकस्साणुभागपरिमाणाणुगमो समत्तो।

§ ९५. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० जहण्णाणुभागविहत्तिया केत्तिया ? संखेज्जा। [अजहण्ण०] दव्वपमाणेण केव० ? अणंता। एवं कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०--चत्तारिकसाय०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति।

दर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदगसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, कषायरहित, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, और यथाख्यातसंयत जीवोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पहले अनुयोगद्वारमें यह बतलाया है कि ओघ और आदेशसे अमुक अनुभागवाले जीव समस्त जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं और इस अनुयोगद्वारमें उनका परिमाण बतलाया है। ओघसे मोहनीयकर्मके अनुभागसे युक्त जीवराशि अनन्त है। किन्तु उसमें उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव केवल असंख्यात ही हैं, क्योंकि एक तो मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं। दूसरे अन्य इन्द्रियवालोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभाग उन्हींके पाया जाता है जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय इसका घात नहीं करके उनमें उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनका प्रमाण असंख्यात कहा है। शेष सब मोहनीयकी सत्तावालोंके अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है अतः उनका प्रमाण अनन्त कहा है। सामान्य तिर्यञ्चसे लेकर अनाहारक पर्यन्त जिन मार्गणाओंमें जीवराशिका प्रमाण अनन्त है उनमें ओघ की तरह ही परिमाण होता है। नरकगतिसे लेकर संज्ञी पर्यन्त असंख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों ही विभक्तिवाले जीव असंख्यात होते हैं। तथा मनुष्य पर्याप्तसे लेकर यथाख्यातसंयत पर्यन्त संख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें दोनों विभक्तिवालोंका परिमाण संख्यात ही होता है। किन्तु उनमें भी एक भागप्रमाण उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव होते हैं और बहु भागप्रमाण अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव होते हैं जैसा कि भागाभाग अनुयोगद्वारमें बतलाया है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभाग परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ ९५. प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। द्रव्यप्रमाणसे अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिए।

§ ९६. आदेसेण णेरइएसु जहण्णाजहण्णाणुभाग० केव० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणिरय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख--मणुसअपज्ज०-देव० भवणादि जाव अवराइद० सव्वविगलिंदिय--पंचिंदियअपज्ज०--सव्वपुढवि०--सव्वआउ०--सव्वतेउ०--सव्ववाउ०--बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्त--तसअपज्ज०--वेउव्विय०--वेउव्वियमिस्स-विहंग०-तेउ-पम्मलेस्सिया त्ति । तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु जहण्णाजहण्णाणुभाग० केव० ? अणंता । एवं सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदिकाइय-सव्वणिगोद-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-असंजद--किण्ह-णील-काउ०-अभव०--मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ९७. मणुसगईए मणुस्सेसु जहण्णाणुभाग० केव० ? संखेज्जा । अज० असंखेज्जा । एवं पंचिंदिय--पंचिंदियपज्ज०--तस-तसपज्ज०--पंचमण०--पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०--आभिणि०--सुद०--ओहि०--संजदासंजद०-चक्खु०--ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादिट्ठि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०सम्मामि०-सण्णि त्ति । मणुस्सपज्ज०-मणुसिणीसु जहण्णाजहण्णाणु० केव० ? संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०--सुहुमसांपराय०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

---

§ ९६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव,भवनवासीसे लेकर अपराजित नामक अनुत्तर तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय-अपर्याप्त, सब पृथिवीकायिक, सब अप्कायिक, सब तैजसकायिक, सब वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त,वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावालोंमें जानना चाहिए । तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदिया, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोंमें जानना चाहिए ।

§ ९७. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि,वेदकसम्यग्दृष्टि,उपशमसम्यग्दृष्टि,सासादनसम्यग्दृष्टि,सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परि-

§ ९८. खेत्ताणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्दे सो—ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखे०भागे। अणुक्क० सव्वलोगे०। एवं तिरिक्खोघं एइंदिय-बादरेइंदिय-[बादरेइंदियपज्जत्तापज्ज०-सुहुमेइंदिय-] सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-पुढवि०बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०--सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०--बादर-आउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त०-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०--सुहुमतेउपज्जत्तापज्ज०--वाउ०--बादरवाउ०--बादरवाउअपज्ज०--सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि--बादरवणप्फदि--बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुम-

---

हारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे क्षपकश्रेणिके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग रहता है और ऐसे जीवोंकी संख्या संख्यात है, अतः ओघसे जघन्य अनुभागवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है और शेष अनन्त जीव अजघन्य अनुभागवाले होते हैं। काययोगी आदि जिन मार्गणाओंमें विवक्षित जीवराशिका प्रमाण अनन्त है और क्षपकश्रेणिके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है, उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालों का परिमाण ओघके समान ही जानना चाहिये। तिर्यञ्चगति आदि जिन मार्गणाओंमें जीवराशिका प्रमाण अनन्त है और जघन्य अनुभाग हतसमुत्पत्तिककर्मा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके होता है उनमें दोनों ही अनुभागवालोंका परिमाण अनन्त कहा है। तथा नरकगतिसे लेकर पद्मलेश्यापर्यन्तकी असंख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें दोनों अनुभागवालोंका परिमाण असंख्यात कहा है। सामान्य मनुष्य आदि संज्ञी मार्गणा पर्यन्त जिन मार्गणाओंमें जीवराशिका प्रमाण तो असंख्यात ही है, किन्तु जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणिमें या उपशमश्रेणिसे गिरे हुए जीवोंके होता है, उनमें जघन्य अनुभागवालोंका परिमाण संख्यात कहा है और अजघन्य अनुभागवालोंका परिमाण असंख्यात कहा है। तथा मनुष्यपर्याप्त आदि संख्यात जीवराशिवाली मार्गणाओंमें दोनों अनुभागवालोंका परिमाण संख्यात कहा है। विशेष इतना है कि इन सब मार्गणाओंमें अलग अलग स्वामित्वका विचार कर यह परिमाण ले आना चाहिए। यहाँ अलग अलग स्वामित्वका उल्लेख न कर सूचनामात्र की है।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ ९८. क्षेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त,

वणप्फदि-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-अपज्ज०-णिगोद०-बादरणिगोद०-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद-सुहुमणिगोद-पज्जत्तापज्जत्त-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारि-कसाय-मदिअण्णाण०-सुदअण्णा०-असंजद-अचक्खु०-किण्ह-णील-काउ०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ ९९. सेसमग्गणासु उक्कस्साणुक्कस्सअणुभागविहत्तिया जीवा लोग० असंखे०-भागे । णवरि बादरवाउपज्जत्तएसु उक्कस्साणुभागविहत्तिया जीवा लोगस्स असंखे० भागे । अणुक्क०अणुभाग० जीवा लोग० संखे०भागे ।

एवमुक्कस्साणुभागखेत्ताणुगमो समत्तो ।

§ १००. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे० । ओघेण मोह० जहण्णाणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखे०भागे । अज० सव्व-

---

वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर, बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, निगोदिया, बादर निगोदिया, बादर निगोदिया पर्याप्त, बादर निगोदिया अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोदिया, सूक्ष्म निगोदिया पर्याप्त, सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारी और अनाहारियोंमें जानना चाहिए ।

§ ९९. शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-वालोंका क्षेत्र लोकका संख्यातवां भाग है ।

विशेषार्थ—वर्तमानमें उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं, क्योंकि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव ही मोहका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करते हैं । और घात किये बिना इनके अन्य इन्द्रियवालोंमें उत्पन्न होने पर वहाँ उत्कृष्ट अनुभाग देखा जाता है, इसलिये ओघसे इनका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र सर्वलोक है यह स्पष्ट ही है । इसी प्रकार आदेशसे जिन जीवोंका क्षेत्र सर्व लोक है उनमें ओघकी ही तरह क्षेत्र होता है । शेष मार्गणाओंमें दोनों ही अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है । केवल बादर वायुकायिकपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकका संख्यातवाँ भाग है, क्योंकि ये जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्टानुभाग क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ १००. अब प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्या-

लोगे । एवं कायजोगि०--ओरालिय०--णवुंस०--चत्तारिकसाय-अचक्खु०--भवसि०-आहारि त्ति।

§ १०१. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणुभाग० केव० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय--सव्वपंचिंदिय--बादरपुढविपज्ज०--बादरआउपज्ज०--बादरतेउपज्ज०-बादर--वणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०--सव्वतसकाय०--पंचमण०--पंचवचि०--वेउव्विय०--वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद--सामाइय-छेदो०-परिहार०--सुहुमसांपराय-जहाक्खाद०-संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०--सम्मादिट्ठि०-वेदग०-खइय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति ।

§ १०२. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाजहण्णाणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । एवमेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त--पुढवि०-- बादरपुढवि०-- बादरपुढविअपज्ज०--सुहुमपुढवि०--सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त--आउ०--बादरआउ०--बादरआउअपज्ज०--सुहुमआउ०--सुहुमआउ-

---

तवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिए।

§ १०१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक पर्याप्त, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सब त्रसकायिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अकषायी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए।

§ १०२. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अप्का-

पज्जत्तापज्जत्त--तेउ०--बादर०--तेउबादरतेउअपज्ज०--सुहुमतेउ०--सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०--बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त--सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि--सुदअण्णाणि०--असंजद०--किण्ह-णील-काउ०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि०--अणाहारि त्ति । बादरवाउपज्ज० ज० अज० लोगस्स संखे०भागो ।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो ।

§ १०३. पोसणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कसे पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे० । ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा । अणुक्क० सव्वलोगो ।

यिक अपर्याप्त, तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सव वनस्पतिकायिक, सव निगोदिया, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मति-अज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोंमें जानना चाहिए। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण है।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य अनुभागका सत्त्व क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समय में होता है, अतः ओघसे जघन्य अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग और अजघन्य अनुभागवालोंका क्षेत्र सर्वलोक कहा है। जिन मार्गणाओंमें जीवोंका क्षेत्र सर्व लोक है तथा जघन्य अनुभाग भी ओघकी तरह होता है उनमें ओघकी तरह क्षेत्र कहा है। जैसे काय-योगी आदि। आदेशसे नरकगतिसे लेकर संज्ञी पर्यन्त जिन मार्गणाओंमें जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है। तथा सामान्य तिर्यञ्चोंमें और एकेन्द्रियसे लेकर अनाहारक पर्यन्त जिन मार्गणाओं में जीवोंका क्षेत्र सर्व लोक है तथा जघन्य अनुभाग हतसमुत्पत्तिककर्मा एकेन्द्रिय जीवके पाया जाता है उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका क्षेत्र सर्व लोक कहा है। केवल बादर वायुकायिकपर्याप्तक जीवोंमें दोनों विभक्तियोंका लोकका संख्यातवाँ भाग क्षेत्र कहा है, क्योंकि इस मार्गणाका क्षेत्र ही इतना है।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ १०३. स्पर्शनानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, लोकके चौदह भागों मेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने सब लोकका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट अनुभागवालोंने मारणान्तिक और उपपादकी अपेक्षा सर्व लोक

§ १०४. आदेसेण णेरइएसु उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० केव० ? लोग० असंखे०-भागो छचोद्दसभागा वा देसूणा। पढमपुढवि० खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो एग०--वे--तिण्णि--चत्तारि--पंच-छ-चोद्दस० देसूणा।

§ १०५. तिरिक्खेसु मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अणुक्क० ओघं। सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-सव्वमणुस्स० उक्कस्साणुक्कस्स० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा। णवरि पंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्सअपज्जत्ताणमुक्क० खेत्तभंगो। देव० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० केव० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णव चोद्दसभागा देसूणा पोसिदा। एवं सव्वदेवाणं। णवरि सग-सगपोसणं जाणिय वत्तव्वं।

क्षेत्रका स्पर्शन किया है, तथा वेदना, कषाय, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है और अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागवाले चूँकि सर्व लोकमें पाये जाते हैं, अतः उन्होंने सम्भव पदोंके द्वारा सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ १०४. आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भंग है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह भागोंका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें वर्तमान स्पर्शन तो इतना ही है और अतीत स्पर्शन क्रमसे कुछ कम एक बटे चौदह राजुप्रमाण आदि है। यतः इन दोनों प्रकारके स्पर्शनके समय मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, अतः इनका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान ही है, अतः इसमें दोनों प्रकारकी विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

§ १०५. तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन ओघके समान है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें स्पशन कहना चाहिये। इतनी विशेपता है कि अपने अपने स्पर्शनको जानकर कथन करना चानिये।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके समय भी मोहनीयकी

§ १०६ एइंदिएसु मोह० उक्कस्साणु० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । अणुक्कस्साणु० सव्वलोगो । एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्ता-पज्जत्त-सुहुमेइंदिय--सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं । सव्वविगलिंदिय--पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्जत्ताणं च पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ०चोद्दस० सव्वलोगो वा । एवं तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहकर भी सब लोक कहा है। इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन ओघके समान सब लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें दोनों प्रकारका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें ऐसे जीवोंके ही उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है जो अनुभागका घात किये बिना इन पर्यायोंमें उत्पन्न हुए हैं। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक सम्भव नहीं है, अतः इन दोनों मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें और उनके अवान्तर भेदोंमें जो उनका अपना स्पर्शन है वह यहाँ दोनों विभक्तियोंकी अपेक्षा बन जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है।

§ १०६. एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये। सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियअपर्याप्त और त्रसअपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंके समान भंग है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले पञ्चेन्द्रियों और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग, चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंमें स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो मनुष्य या तिर्यञ्च उत्कृष्ट अनुभागका बन्धकर तथा उसका घात किये बिना उक्त एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके उत्कृष्ट अनुभाग सम्भव है। ऐसे जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। किन्तु ऐसे एकेन्द्रियोंका अतीत स्पर्शन सब लोक है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। विकलत्रय और त्रस अपर्याप्तकोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंके समान है यह भी स्पष्ट है। यों तो पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, किन्तु विहारादिकी अपेक्षा इनका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण बन जाता है, इसलिए इनमें मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त तीन प्रकारका कहा है। इसी प्रकार त्रस आदि जो शेष मार्गणाएँ मूलमें गिनाई हैं उनमें भी यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। इन पञ्चेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें मोहनीयके अनुत्कृष्ट

§ १०७. कायाणुवादेण पुढवि० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अणुक्क० सव्वलोगो। एवं सुहुमपुढवि-सुहुमपुढवि-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-सुहुमआउ०--सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त--तेउ०--सुहुमतेउ०--सुहुमतेउ-पज्जत्तापज्जत्त--वाउ०--सुहुमवाउ०--सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्ता त्ति। वादरपुढवि०-वादर-पुढविअपज्ज० मोह० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो तेरहचोद्दसभागा वा देसूणा पोसिदा। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं वादरपुढविपज्जत्ताणं। वादरआउ०--वादरआउपज्जत्तापज्जत्ताणं उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एव-मणुक्कस्साणुभागस्स वि वत्तव्वं। वादरतेउ-वादरतेउअपज्जत्ताणं वादरपुढविभंगो। वादरतेउपज्ज० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो। सव्व-पुढवीसु अत्थित्तं भणंताणं अहिप्पाएण तेरहचोद्दसभागा। वादरवाउ-वादरवाउ-अपज्ज० वादरआउभंगो। वादरवाउ०पज्ज० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा। अणुक्क० लोगस्स संखे०भागो सव्वलोगो वा। सव्ववणप्फदि-

अनुभागके वन्धक जीवोंका यह स्पर्शन उत्कृष्टके समान ही घटित कर लेना चाहिये।

§ १०७. कायकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले पृथिवीकायिक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिकअपर्याप्त, अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिकपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिकअपर्याप्त, तैजसकायिक, सूक्ष्म तैजसकायिक, सूक्ष्म तैजसकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजसकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकोंने कितने क्षेत्रका स्पशन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर अप्कायिक और वादर अप्कायिक पर्याप्तक तथा वादर अप्कायिक अपर्याप्तकोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका भी स्पर्शन कहना चाहिये। वादर तैजसकायिक और वादर तैजसकायिक अपर्याप्तकोंमें वादर पृथिवीकायिकोंके समान भंग है। उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-वाले वादर तैजसकायिक पर्याप्तकोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। जो सब पृथिवियोंमें उनका अस्तित्व मानते हैं उनके मतसे चौदह भागोंमेंसे तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वादर वायुकाय और वादर वायुकाय अपर्याप्तकोंमें वादर अप्कायके समान भंग है; उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर वायुकायिक पर्याप्तकोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके संख्यातवें भाग और सब लोकका

काइय-सव्वणिगोदाणमेइंदियभंगो । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ताणं बादरपुढविकाइयभंगो ।

§ १०८. जोगाणु० कायजोगि० उक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा । अणुक्क० सव्वलोगो । एवमोरालियकायजोगि० । णवरि अट्ठचोद्दसभागा णत्थि । ओरालियमिस्स० उक्कस्साणु० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अणुक्कस्साणु० सव्वलोगो । एवं कम्मइय०-णवुंस-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-किण्ह-णील-काउ०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति । वेउव्विय० उक्कस्साणुक्कस्साणु० के० खे० पो० ? लोग०

स्पर्शन किया है । सब वनस्पतिकायिक और सब निगोदियोंमें एकेन्द्रियके समान भंग है । बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्तोंमें बादर पृथिवीकायिकके समान भंग है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका जिस प्रकार स्पर्शन घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिकोंमें तथा इन चारोंके सूक्ष्मोंमें और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्तकोंमें घटित कर लेना चाहिये । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिसे युक्त बादर पृथिवीकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन नीचे कुछ कम छह और ऊपर कुछ कम सात राजु कुल कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु सम्भव होनेसे यह उक्तप्रमाण कहा है । इनके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ तक जो स्पर्शन घटित करके बतलाया है उसे ध्यानमें लेकर स्थावरकायिक जीवोंके शेष भेदोंमें भी स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । मात्र बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंका स्पर्शन दो प्रकारसे बतलाया है । प्रथम तो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन बतलाया है । सो यह स्पर्शन बतलाते समय बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीव सब पृथिवियोंमें उपलब्ध होते हैं यह दृष्टि मुख्य नहीं है तथा दूसरी अपेक्षासे जो कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है सो ऐसा कहते समय उन आचार्योंका अभिप्राय मुख्य रहा है जो यह मानते हैं कि बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीव सब पृथिवियोंमें उपलब्ध होते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ १०८. योगकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले काययोगियोंने लोकके असंख्यातवें भागका, चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागका और सर्वलोकका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार औदारिककाययोगियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण स्पर्शन नहीं है । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले औदारिकमिश्रकाययोगियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारकोंमें जानना चाहिए । उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वैक्रियिककाययोगियोंने

असंखे०भागो अट्ठ-तेरहचोद्दस० देसूणा। वेउव्वियमिस्स० उक्कस्साणुक्कस्साणु० के० खे० पो०? लोग० असंखे०भागो। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०संजदे त्ति।

§ १०९. विहंगणाणि० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० के० खे० पो०? लोग० असंखे० भागो अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा। आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्क० अणुक्क० के० खे०

कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह और कुछ कम आठ भागका स्पर्शन किया है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्पराय-संयत और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असं-ख्यातवें भागप्रमाण है, विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु है और ऐसे जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, अतः इस अपेक्षासे सब लोकप्रमाण स्पर्शन सम्भव है, इसलिए योगकी अपेक्षा सामान्य काययोगियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। औदा-रिककाययोगियोंमें इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। मात्र कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिकी मुख्यतासे कहा है पर देवोंके औदारिककाय-योग नहीं होता, इसलिए औदारिककाययोगवालोंमें इस स्पर्शनका निषेध किया है। उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले औदारिकमिश्रकाययोगियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिये इनमें यह उक्त प्रमाण कहा है। तथा औदारिकमिश्रकाययोगका स्पर्शन सर्वलोक है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-वालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। कार्मणकाययोगी आदि मूलमें गिनाई गई अन्य मार्गणावाले जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान ही स्पर्शन प्राप्त होता है, इसलिए इनमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान स्पर्शन कहा है। वैक्रियिककाययोगियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु-प्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण है। इनके इन सब स्पर्शनोंके समय उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका सब प्रकारका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, इसलिए इनमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आगे मूलमें जो आहारककाययोगी आदि मार्गणाऐं गिनाई हैं उनका स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः उनका कथन वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके समान जाननेकी सूचना की है।

§ १०९. उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले विभंगज्ञानियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागका, चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागका और सब लोकका स्पर्शन किया है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले आभिनिबोधिकज्ञानी,

पो० ? लो० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठि०-वेदय०-खइय०-उवसम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति।

§ ११०. संजदासंजद० उक्कस्साणुक्कस्साणु० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। एवं सुक्क्ले०। तेउ०-पम्म० सोहम्म-सणक्कुमार-भंगो। सासण० मोह० उक्कस्साणुक्कस्साणु० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-बारहचोद्दसभागा देसूणा।

एवमुक्कस्सओ पोसणाणुगमो समत्तो।

श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानियोंने वर्तमानमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका, विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुका और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा सब लोकका स्पर्शन किया है। इनके इन सब स्पर्शनोंके समय दोनों विभक्तियाँ सम्भव हैं, इसलिए इनमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंने वर्तमानमें लोकके असंख्यातवें भागका और विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुका स्पर्शन किया है। इनके इन दोनों प्रकारके स्पर्शनके समय उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनमें दोनों विभक्तियोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यद्यपि इन मार्गणाओंमें उपपाद पदकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन भी उपलब्ध होता है, पर इसका अन्तर्भाव कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शनमें हो जाता है, इसलिए इसका अलगसे निर्देश नहीं किया है। यहाँ मूलमें अवधिदर्शनवाले आदि जो अन्य मार्गणाएँ कहीं हैं उनमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन आभिनिबोधिकज्ञानी जीवोंके समान प्राप्त होनेसे यह उनके समान कहा है।

§ ११०. उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले संयतासंयतोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावालोंमें जानना चाहिए। तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंके सौधर्म और सनत्कुमार कल्पके समान भंग होता है। मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण है। इनके इन दोनों प्रकारके स्पर्शनके समय दोनों विभक्तियाँ सम्भव हैं, इसलिए इनमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। शुक्ललेश्यावालोंमें इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। पीतलेश्या सौधर्म और ऐशान कल्पवालोंके तथा पद्मलेश्या सनत्कुमार आदि कल्पवालोंके होती है, इसलिए इन दोनों लेश्यावालोंमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्रमसे सौधर्म और सनत्कुमारके देवोंके समान कहा है। सासादनसम्यग्दृष्टियों-

§ १११. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० जहण्णाणुभाग० केव० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो। अज० सव्वलोगो। एवं कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस० चत्तारिकसाय-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति।

§ ११२. आदेसेण णेरइएसु जह० खेत्तभंगो। अज० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। पढमपुढवि० खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति जह० खेत्तभंगो। अज० सगपोसणं।

का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इनके इन सब स्पर्शनोंके समय दोनों विभक्तियाँ सम्भव हैं, इसलिए इनमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ १११. अब प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयका जघन्य अनुभाग क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोंके होता है, इसलिए इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और अजघन्य अनुभाग अन्य सब मोहकी सत्तावाले जीवोंके होता है, इसलिए इनका स्पर्शन सब लोक कहा है।

§ ११२. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है पहिली पृथ्वीमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले असंज्ञी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं इनके मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है। यतः ऐसे जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः सामान्यसे नारकियोंमें मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण है, अतः इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। प्रथम नरकमें दोनों प्रकारके अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। दूसरे आदि नरकोंमें जो जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करते हैं उनके जघन्य अनुभाग होता है। यतः ऐसे जीवोंका मारणान्तिक पदकी अपेक्षा भी स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः द्वितीयादि नरकोंमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और जिस नरकका जो स्पर्शन है वह वहाँ अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है।

§ ११३. तिरिक्खेसु जह० अज० सव्वलोगो। एवमेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-पुढवि०--बादरपुढवि०--बादरपुढविअपज्ज०--सुहुमपुढवि०--सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०--बादरआउअपज्ज०--सुहुमआउ०--सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त--तेउ०--बादरतेउ०--बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०--सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त--वाउ०-बादरवाउ०--बादरवाउअपज्ज०--सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत--सव्ववणप्फदि--सव्वणिगोद०--ओरालियमिस्स०--कम्मइय०-मदिअण्णा०--सुदअण्णा०--असंजद०--किण्ह--णील--काउ०--अभवसि०--मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति।

§ ११४. सव्वपंचिंदियतिरिक्ख मणुसअपज्ज० ज० अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०--बादरपुढविपज्ज०--बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-तसअपज्जत्ताणं।

---

§ ११३. तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदिया, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापोत लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव हतसमुत्पत्तिककर्मवाले होते हैं उनके मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है और ये जिनमें इस अनुभागके साथ उत्पन्न होते हैं उनमें भी जघन्य अनुभाग होता है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण सम्भव है, अतः तिर्यञ्चोंमें जघन्य अनुभागवालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा तिर्यञ्च सर्व लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन भी सब लोकप्रमाण कहा है। यहाँ तिर्यञ्चोंके समान अन्य जिन मार्गणाओंमें मोहनीयके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंके स्पर्शनके जाननेकी सूचना की है वहाँ इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए।

§ ११४. जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंने लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो हतसमुत्पत्तिकर्मवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं और यदि उन्होंने अनुभागको नहीं बढ़ाया है तो उनके जघन्य अनुभाग होता है। ऐसे जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और

§ ११५. मणुसतियम्मि ज० खेत्तभंगो। अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति। णवरि विहारेण अट्ठचोद्दसभागा वत्तव्वा।

११६. देवेसु ज० खेत्तं। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा। एवं भवण०-वाण०। णवरि अज० सगपोसणं। जोदिसि० ज० खेत्तं अद्धुट्ठ-अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। अज० खेत्तं अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा। सोहम्मीसाणे मोह० ज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। अज० लोग० असंखे०-

अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण सम्भव है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा इन मार्गणाओंका स्पर्शन भी इतना ही है, अतः इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका भी स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ सब विकलेन्द्रिय आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह दोनों प्रकारका स्पर्शन बन जाता है, अतः इनका कथन पूर्वोक्त प्रकारसे जाननेकी सूचना की है।

§ ११५. जघन्य अनुभागविभक्तिवाले सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें क्षेत्रके समान भंग है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय,पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त,त्रस,त्रस पर्याप्त,पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी,स्त्रीवेदी,पुरुषवेदी,चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें विहारकी अपेक्षा चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग स्पर्शन कहना चाहिये।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके ही जघन्य अनुभाग होता है। यतः इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः मनुष्यत्रिकमें जघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। तथा मनुष्यत्रिकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ पञ्चेन्द्रिय आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें मनुष्यत्रिकके समान स्पर्शन घटित हो जाता है, अतः उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन मनुष्यत्रिकके समान कहा है। मात्र पञ्चेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें विहारपदकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन भी सम्भव है, इसलिए इन मार्गणाओंमें अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण भी जानना चाहिए।

§ ११६. देवोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंमें अपना अपना स्पर्शन लेना चाहिए। ज्योतिषी देवोंमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह राजुमें से कुछ कम साढ़ेतीन और कुछ कम आठ राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभाग विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह भागोंमें से कुछ कम साढ़ेतीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सौधर्म और ईशानमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग

भागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा। सणक्कुमारादि जाव आरणच्चुदे त्ति उक्कस्सभंगो। उवरि खेत्तभंगो।

११७. कायाणुवादेण बादरवाउकाइयपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा।

प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सनत्कुमारसे लेकर आरण-अच्युत तकके देवोंमें उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवालोंके समान स्पर्शन है। आगेके देवोंमें क्षेत्रके समान स्पर्शन है।

विशेषार्थ—सामान्यसे देवोंमें जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होते हैं उनके जघन्य अनुभाग उपलब्ध होता है। अतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक उपलब्ध नहीं होता, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है। तथा देवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण बतलाया है। यतः इस सब प्रकारके स्पर्शनके समय मोहनीयकी अजघन्य अनुभागविभक्ति सम्भव है, अतः इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें यह स्पर्शन इसी प्रकार प्राप्त होता है, अतः इनका भङ्ग सामान्य देवोंके समान कहा है। यहाँ इतनी विशेषता अवश्य है कि इन दोनों प्रकारके देवोंमें वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें-भागप्रमाण, स्वप्रत्यय विहारकी अपेक्षा कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह राजु, परप्रत्यय विहार तथा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन जानना चाहिए। ज्योतिषी देवोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवालोंके मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है। यतः ऐसे देवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, स्वप्रत्यय विहारकी अपेक्षा कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह राजु और परप्रत्ययविहार आदिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन सम्भव है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवालोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा अजघन्य अनुभागवालोंका यह स्पर्शन तो होता ही है। साथ ही इनके मारणान्तिक समुद्घातके समय कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन भी सम्भव है, अतः इनका स्पर्शन इसको मिलाकर कहा है। सौधर्म और ऐशान कल्पमें वर्तमानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन होता है। इनमेंसे जघन्य अनुभागविभक्तिके समय कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन सम्भव नहीं है, क्योंकि जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके जघन्य अनुभागविभक्ति नहीं हो सकती, अतः इस अन्तरको ध्यानमें रखकर यहाँ दोनों अनुभागवालोंका स्पर्शन कहा है। आगे भी इसी प्रकार स्वामित्वको ध्यानमें रखकर जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

§ ११७. कायकी अपेक्षा बादर वायुकायिकपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन लोकका संख्यातवां भाग और सर्वलोक है।

विशेषार्थ—बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है, इसलिए इनमें दोनों प्रकारके अनुभागवालोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बन जाता है, अतः वह उक्तप्रमाण कहा है।

११८. वेउव्विय० जह० सोहम्मभंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो०। वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स० जहण्णाजह० खेत्तभंगो। एवमवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०संजदे त्ति।

११९. णाणाणु० विहंग० मोह० ज० लो० असंखे०भागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा। आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० ज० लोग० असंखे०भागो। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। एवमोहिदंस०-सुक्कले० सम्मादि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति। णवरि सुक्कलेस्साए छचोद्दसभागा।

§ ११८. वैक्रियिककाययोगियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन सौधर्मस्वर्गके समान है तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन अनुत्कृष्टविभक्तिके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सौधर्मादिक कल्पोंमें जघन्य अनुभागका जो जीव स्वामी होता है वही वैक्रियिककाययोगमें भी उसका स्वामी होता है, अतः वैक्रियिककाययोगवालोंमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन सौधर्म कल्पके समान कहा है। वैक्रियिककाययोगियोंमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी आदि जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। इनका स्पर्शन भी इतना ही है, अतः इनमें दोनों अनुभागवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मूलमें कही गई अपगतवेदी आदि अन्य मार्गणाओंमें भी यही स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

§ ११९. ज्ञानकी अपेक्षा विभंगज्ञानियोंमें मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागका, चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि शुक्ललेश्यामें चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण स्पर्शन होता है।

विशेषार्थ—जो विभङ्गज्ञानी एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके जघन्य अनुभाग सम्भव नहीं है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण कहा है। आभिनिबोधिकज्ञानी आदिमें क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके जघन्य अनुभाग होता

१२०. संजदासंजद० ज० लोग० असंखे०भागो। अजह० लोग० असंखे० भागो छचोद्दस० देसूणा। तेउ०-पम्म० सोहम्म०-सहस्सारभंगो। सासण० जह० खेत्तं। अजह० अणुक्कस्सभंगो।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो।

१२१. कालाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्दे सो—ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा।

है, इसलिये इनमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा आभिनिवोधिकज्ञानी आदिका जो स्पर्शन है वही यहाँ अजघन्य अनुभागवालोंका प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ अवधिदर्शनी आदि अन्य जो मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह स्पर्शन वन जाता है, अतः उनका भङ्ग आभिनिवोधिकज्ञानी आदिके समान कहा है। मात्र शुक्ललेश्यामें कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन नहीं प्राप्त होता, अतः उसका निर्देश विशेष रूपसे किया है।

§ १२०. संयतासंयतोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य विभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तेजोलेश्यामें सौधर्म स्वर्गके समान और पद्मलेश्यामें सहस्रारके समान भङ्ग है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन अनुत्कृष्ट विभक्तिवालोंके समान है।

विशेषार्थ—संयतासंयतोंमें जो दो वार उपशमश्रेणि पर चढ़कर और उतर कर संयतासंयत हुए हैं उनके जघन्य अनुभाग होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा संयतासंयतोंका जो स्पर्शन है वह यहाँ अजघन्य अनुभागवालोंका वन जाता है, अतः वह उक्तप्रमाण कहा है। पीत और पद्मलेश्यामें सौधर्म और सहस्रार कल्पके समान स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें दो वार उपशम श्रेणि पर चढ़कर उतरे हुए जीवके जघन्य अनुभाग होता है, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है और अनुत्कृष्टके समान इनके अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन वन जाता है अतः वह अनुत्कृष्टके समान कहा है।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ १२१. कालानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। यहाँ उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघसे मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—पहले मोहनीयकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त वतला आये हैं। यह सम्भव है कि कभी कुछ ही जीव एक साथ उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हों और कभी मध्यमें अन्तर पड़े विना अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभाग-

§ १२२. आदेसेण णेरइएसु उक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस-देव-भवणादि जाव सहस्सारे त्ति सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-तिण्णिअण्णाण-असंजद-पंचले०-सण्णि-असण्णि-आहारि त्ति। णवरि मदि-सुदअण्णाणि-असंजद० उक्क० जह० अंतोमु०।

विभक्तिवाले हों। यह देख कर यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि एकके बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तर उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यात जीव भी होंगे तो उन सबके कालका योग पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

§ १२२. आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, तीनों अज्ञानी, असंयत, शुक्लके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, संज्ञी, असंज्ञी और आहारकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और असंयतोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले अन्य गतिके जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागके कालमें एक समय शेष रहने पर नारकियोंमें उत्पन्न होने पर नरकमें नाना जीवोंकी अपेक्षा भी मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, इसलिए यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ओघके अनुसार घटित कर लेना चाहिए, क्योंकि जितनी भी असंख्यात और अनन्त संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमें उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बन जाता है। कारण कि ऐसी सब मार्गणाओंमें लगातार उत्कृष्ट अनुभागवाले असंख्यात जीव ही होते हैं और असंख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका योग पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता। इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए उनका काल सर्वदा कहा है। यहाँ मूलमें सब नारकी आदि अन्य जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका काल सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र उत्कृष्ट अनुभाग मिथ्यादृष्टिके होता है और इसका एक जीवकी अपेक्षा भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और असंयतोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिके जिस प्रकार अन्य मार्गणाएं बदल सकती हैं उस प्रकार ये मार्गणाएं नहीं बदलतीं।

१. आ० प्रतौ देव जाव इति पाठः।

§ १२३. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० सव्वद्धा। मणुसअपज्ज० उक्क० अणुक्क० ज० एयस० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं वेउव्वियमिस्स०।

§ १२४. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्कस्साणुक्कस्स० सव्वद्धा। एवमाभिणि०--सुद०--ओहि०--मणपज्ज०--संजद--सामाइय-छेदो०--परिहार०-संजदासंजद-ओहिदं०-सुक्ले०-सम्मादि०-वेदग०-खइय०दिट्ठि त्ति। णवरि--आभिणि-सुद०-ओहि०-ओहिदंस०--सुक्ले०--सम्मादिट्ठि--वेदयसम्मादिट्ठीसु उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असं०भागो।

§ १२३. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ--मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जघन्य काल एक समय नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा इन दोनों मार्गणावालोंका प्रमाण संख्यात होता है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि यहाँ संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका योग अन्तर्मुहूर्त ही होगा। यह दोनों निरन्तर मार्गणाएं हैं, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका काल सर्वदा कहा है। यह तो सम्भव है कि जिनके उत्कृष्टमें एक समय काल शेष है ऐसे जीव मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हों पर उत्कृष्ट अनुभागका घात होने पर मनुष्य अपर्याप्तकोंका जो काल शेष रहता है उस कालमें उनके अनुत्कृष्ट अनुभाग नियमसे पाया जाता है, इसलिए मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ इतना अवश्य समझना चाहिए कि मनुष्य अपर्याप्त अन्तर्मुहूर्त काल तक रहें और बादमें उनका अभाव हो जाय इस अपेक्षा यह अन्तर्मुहूर्त काल कहा है। तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा मनुष्य अपर्याप्तकोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी यह भी सान्तर मार्गणा है, इसलिए इसमें उक्त सब काल घटित हो जानेसे उसकी प्ररूपणा मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान की है।

§ १२४. आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वदा पाई जाती है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनवाले शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है।

विशेषार्थ--आनत आदिमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका निरन्तर सद्भाव बना

§ १२५. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। एव तस-तसपज्जत्त-चक्खुदंसणि त्ति।

§ १२६. आहार० मोह० उक्कस्साणुक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवमवगद०-अकसा०--सुहुमसांपराय०--जहाक्खादसंजद त्ति। आहारमिस्स० मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अचक्खु० मोह० उक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। एवं भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि त्ति।

रहता है, क्योंकि यहाँ यह सम्भव है कि किसीके उत्कृष्ट अनुभागका घात न हो और यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागमें वृद्धि भी सम्भव नहीं है, अतः यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका काल सर्वदा कहा है। यहाँ आभिनिबोधिकज्ञानी आदि अन्य जो मार्गणाएँ बतलाई हैं उनमें इसी प्रकार काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र आभिनिबोधिकज्ञानी आदि कुछ मार्गणाएँ इसकी अपवाद हैं। बात यह है कि इन मार्गणाओंमें यथासम्भव उत्कृष्ट अनुभागवाले मिथ्यादृष्टि भी आते हैं, अतः इनमें उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यदि जिनके उत्कृष्ट अनुभागमें एक समय काल शेष है ऐसे मिथ्यादृष्टि इन मार्गणाओंमें आते हैं और दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनुभागवाले मिथ्यादृष्टि नहीं आते हैं तो इन आभिनिबोधिकज्ञानी आदिमें उत्कृष्ट अनुभागवालोंका एक समय काल उपलब्ध होता है, और जिनके उत्कृष्ट अनुभागका काल अन्तर्मुहूर्त है ऐसे जीव निरन्तर आते रहते हैं तो यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। यह देखकर आभिनिबोधिकज्ञानी आदि सात मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है।

§ १२५. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त और चक्षुदर्शनवालेके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यद्यपि पञ्चेन्द्रिय जीव ही मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, परन्तु कदाचित् ऐसा सम्भव है कि कोई पञ्चेन्द्रिय जीव मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध न करें और जिनके मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागके कालमें एक समय शेष हो ऐसे जीव ही शेष रहें, अतः यहाँ पञ्चेन्द्रियद्विकमें मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा इनमें उत्कृष्ट अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल पल्य असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त और चक्षुदर्शनी जीवोंमें उक्त काल घटित कर लेना चाहिए। इन सब मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका काल सर्वदा है। यह स्पष्ट ही है।

§ १२६. आहारककाययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अचक्षुदर्शनवालोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। अनुत्कृष्ट का काल सर्वदा है। इसी प्रकार

§ १२७. उवसम० उक्कस्साणुक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। एवं सम्मामिच्छादिट्ठीणं। सासण० उक्कस्साणुक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणाहारीसु उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। एवं कम्मइय०।

एवमुक्कस्सओ कालाणुगमो समत्तो।

§ १२८. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। ओघे० मोह०

भव्य, अभव्य और मिथ्यादृष्टियोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इस योगवाले जीवोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अपगतवेदी आदि अन्य मार्गणाओंमें अपने अपने स्वामित्वको ध्यानमें रखकर इसी प्रकार उक्त काल घटित कर लेना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इस योगवाले जीवोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अचक्षुदर्शनवालोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहनेका कारण यह है कि यह मार्गणा बराबर बनी रहती है, अन्य मार्गणाओंके समान यह बदलती नहीं। शेष कथन सुगम है।

§ १२७. उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। अनाहारियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वदा रहती है। इसी प्रकार कार्मणकाय योगमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें भी घटित कर लेना चाहिए। नाना जीवोंकी अपेक्षा सासादनसम्यक्त्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अनाहारक और कार्मणकाययोगियोंमें उत्कृष्ट अनुभागवाले कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होते हैं, कारण कि निरन्तर यदि असंख्यात अनाहारक जीव भी उत्कृष्ट अनुभागवाले हों तो उस सब कालका योग आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा अनाहारक सर्वदा पाये जाते हैं, अतः इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका काल सर्वदा कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १२८. अब जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघसे और आदेशसे।

जहण्णाणुभाग० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय--पंचिं०पज्ज०--तस--तसपज्ज०--पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि०--ओरालिय०--तिण्णिवेद--चत्तारिकसाय--आभिणि०--सुद०--ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्कले०--भवसि०--सम्मादिट्ठि--खइय०-वेदग०-सण्णि-आहारि त्ति। णवरि वेदग० जह० जहण्णेण अंतोमु०।

§ १२६. आदेसेण णेरइएसु ज० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। अज० सव्वद्धा। एवं पढमपुढवि--सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-देव०-भवण०-वाण०-सव्वविगलिंदिय--पंचिंदियअपज्ज०--बादरपुढविपज्जत्त--बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्त-तसअपज्जत्ता त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति जहण्णाजहण्णाणु० सव्वद्धा। एवं तिरिक्खोघं जोइसियादि जाव सव्वट्ठ-सिद्धि०--सव्वएइंदिय--सव्वपंचकाय--ओरालियमिस्स०--कम्मइय०--वेउव्विय०--मदि-

---

ओघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक-संयत, छेदोपस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि क्षपकश्रेणि पर नाना जीव एक साथ चढ़ें और दूसरे समय में अन्तर पड़ जाय और यह भी सम्भव है कि संख्यात समय तक निरन्तर जीव क्षपकश्रेणि पर आरोहण करें। यह सब देखकर यहाँ ओघसे जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। तथा अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है, क्योंकि मोहनीयकी सत्तावाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। मनुष्यत्रिक आदिमें यह व्यवस्था बन जाती है इसलिए उनमें ओघके समान काल कहा है। मात्र वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें दो बार उपशमश्रेणिसे उतरे हुए कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके जघन्य अनुभाग होता है, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ १२६. आदेशसे नारकियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक पर्याप्त, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादरवनस्पति प्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रसअपर्याप्तोंमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथ्वी पर्यन्त जघन्य और अजघन्य अनुभाग-विभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें तथा ज्योतिषीदेवोंसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धितकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी

अण्णाणि-सुदअण्णाणि-विहंगणाणि-परिहार०-संजदासंजद-असंजद-पंचले०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ १३०. मणुसअपज्ज० जहण्णाजहण्णाणु० ज० एगस० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवं वेउव्वियमिस्स० । आहार० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० जहण्णाजहण्णाणु० जह० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । अवगद० जहण्णाणुभाग० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अजह० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमकसा०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० । णवरि अकसा०--जहाक्खाद० जह० उक्क० अंतोमु० । उवसमसम्मादिट्ठि-सासण० जहण्णाणु० ज० अंतोमु० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अजह० जह० अंतोमु० एगस०,

---

वैक्रियिककाययोगी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, शुक्लके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो हतसमुत्पत्तिककर्मवाले असंज्ञी मर कर नरकमें उत्पन्न होते हैं उनके जघन्य अनुभाग होता है । यह सम्भव है कि इस अनुभागका सद्भाव एक समय तक ही हो और निरन्तर ऐसे जीव उत्पन्न हों और अन्तमुहूर्त तक वही अनुभाग रखें तो वहाँ जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए नरकमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । यहाँ अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । प्रथम पृथिवीके नारकी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ मूलमें गिनाई हैं उनमें यह काल अविकल बन जाता है, इसलिए उनकी प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है । द्वितीयादि पृथिवियोंमें अनन्तानुबन्धीकी जिन्होंने विसंयोजना करके जघन्य अनुभाग किया है ऐसे जीव और अजघन्य अनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा कहा है । सामान्य तिर्यञ्च आदिमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है, अतः इनमें द्वितीयादि नरकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ १३०. मनुष्य अपर्याप्तोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है तथा दोनोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगीमें जानना चाहिए । आहारककाययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे एक समय है और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टसे भी अन्तर्मुहूर्त है । अपगतवेदियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे एक समय है और उत्कृष्टसे संख्यात समय है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे एक समय है और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अकषायी और यथाख्यातसंयतोंमें जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है और सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें

उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सम्मामि० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । णवरि जहण्णाणु० अंतोमुहुत्तं ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

एक समय है। तथा दोनोंमें उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अन्तर्मुहूर्त है और सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें एक समय है। उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जघन्य अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जिनके जघन्य अनुभागके कालमें एक समय शेष है ऐसे जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होने पर वहाँ जघन्य अनुभागका एक समय काल उपलब्ध होता है और मनुष्य अपर्याप्तमें जघन्य अनुभागके कालके सिवा शेष अन्तर्मुहूर्त काल अजघन्य अनुभागका जघन्य काल है। तथा मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त जीव यदि निरन्तर उत्पन्न हों तो पल्यका असंख्यातवाँ भाग काल उपलब्ध होता है, इतने काल तक इस मार्गणामें जघन्य और अजघन्य दोनों अनुभागविभक्तियाँ सम्भव हैं, इसलिए इनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका क्रमशः जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त तथा दोनोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग भी सान्तर मार्गणा है और इसमें काल सम्बन्धी प्ररूपणा मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान बन जाती है, अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगवालोंमें मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है। आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः आहारककाययोगवालोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः आहारकमिश्रकाययोगवालोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका दोनों प्रकारका काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अपगतवेदमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय ओघके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा अपगतवेदका मोहसत्त्वकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए अपगतवेदियोंमें मोहनीयके अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिक संयत और यथाख्यातसंयतोंमें अपगतवेदियोंके समान काल घटित कर लेना चाहिए। पर अकषायी और यथाख्यातसंयत मोहसत्त्वकी अपेक्षा उपशान्तकषायगुणस्थानवाले होते हैं, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और सासादनका जघन्य काल एक समय है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय कहा है। तथा स्वामित्वको देखते हुए इन दोनों मार्गणाओंमें जघन्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इन मार्गणाओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालको ध्यानमें रख कर इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको व स्वामित्व-सम्बन्धी विशेषताको ध्यानमें रखकर वहाँ भी जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। मात्र इनमें भी जघन्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त

§ १३१. अंतराणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वछक्काय-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-तिण्णिअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति। णवरि मणुसअपज्ज०-वेउव्वियमिस्स० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो बारस मुहुत्ता।

§ १३२. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि अंतरं।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंके समान घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १३१. अन्तरानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, सब छहों काय, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, सामान्य काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्लके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकों और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है तथा उत्कृष्ट अन्तर मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पल्यके असंख्यातवें भाग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें बारह मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ओघसे एक समयके अन्तरसे और परिणामोंके अनुसार असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ता सम्भव है, अतः यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः उनके अन्तर कालका निषेध किया है। यहाँ मूलमें अन्य जितनी मार्गणाऐं गिनाई हैं उनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है। मात्र मनुष्यअपर्याप्त और वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण और बारह मुहूर्त है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अपने अपने जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालके समान कहा है।

§ १३२. आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-

एवं मणपज्ज०-संजद--सामाइय-छेदो०--परिहार०--संजदासंजद-खइयसम्मादिट्ठि त्ति। आहार० उक्कस्साणु० जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवमणुक्कस्सं पि वत्तव्वं। एवमाहारमिस्स०-अवगद०--अकसा०--सुहुमसांपराय०--जहाक्खादसंजदे त्ति। णवरि अवगदवेद-सुहुमसांपराय० अणुक्क० उक्क० छम्मासा।

§ १३३. आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्कस्साणु० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवमोहिदंस०-सुक्कलेस्सि०-सम्मादिट्ठि०-वेदग०-दिट्ठि त्ति। उवसमसम्मा० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सत्तरादिंदियाणि। सासण० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अधवा उहयत्थ उक्कस्संतरमसंखेज्जा लोगा त्ति ण सम्ममवगम्मदे, तदो जाणिय वत्तव्वं। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सम्मामि०

का अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका भी अन्तर कहना चाहिए। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल छ माह है।

विशेषार्थ—आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सर्वदा उपलब्ध होते हैं, अतः यहाँ दोनों प्रकारके अनुभागवालोंके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी आदि मार्गणाओंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी आदि मार्गणाओंमें घटित कर लेना चाहिए। मात्र क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है।

§ १३३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिए। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिमें उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है यह बात भली प्रकार अवगत नहीं है, इसलिये उनका यह अन्तर जानकर कहना चाहिए। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें

उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

एवमुक्कस्सओ अंतराणुगमो समत्तो।

§ १३४. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० जहण्णाणुभागस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि। जह० एगस०, उक्क० छम्मासा। अज० णत्थि अंतरं। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-लोभकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०--संजद०--सामाइय--छेदो०--चक्खु०--अचक्खु०--ओहिदंस०--सुक्कले०--भवसि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि-आहारि त्ति। णवरि मणुस्सिणि०-ओहि०-मणपज्जव०-ओहिदंसणीसु जहण्णाणु० उक्कस्संतरं वासपुधत्तं।

भाग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी आदि मार्गणाओंमें अन्तर कालका खुलासा ओघके समान कर लेना चाहिए। आगेकी शेष मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन सब उपशमसम्यग्दृष्टि आदि मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा है वह उस उस मार्गणाके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालको ध्यानमें रखकर कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १३४. अब जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर काल कितना है? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छ मास है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, सञ्ज्ञी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेपता है कि मनुष्यिनी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।

विशेषार्थ—क्षपक सूक्ष्मसाम्परायका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, इसलिए ओघसे मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। ओघसे अजघन्य अनुभागवालोंका अन्तर काल नहीं है यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्यत्रिक आदि जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है उन सबमें क्षपकश्रेणि सम्भव है, इसलिए इनकी प्ररूपणा ओघके समान जाननेकी सूचना की है। परन्तु मनुष्यिनी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और अवधिदर्शनी ये चार मार्गणाऐं ऐसी हैं जिनमें

§ १३५. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहण्णाणुभागंतरं जहण्णेण एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० णत्थि अंतरं। एवं पढमपुढवि-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देव-भवण०-वाण०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज० बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति। बिदियादि जाव सत्तमि त्ति जहण्णाजहण्णाणुभाग० णत्थि अंतरं। एवं तिरिक्खोघं जोदिसियादि जाव सव्वट्ठसिद्धि-सव्वेइंदिय-सव्वपंचकाय-वेउव्विय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाणि विहंग०-असंजद०-किण्ह-णील-काउ०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति।

§ १३६. मणुसअपज्ज० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं वेउव्वियमिस्स०-सासण०दिट्ठि

क्षपकश्रेणि कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे सम्भव है, अतः इन मार्गणाओंमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है।

§ १३५. आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अप्कायिक पर्याप्त, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रसअपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त, सब एकेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, वैक्रियिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि नरकमें जघन्य अनुभागवाले असंज्ञी एक समयके अन्तरसे उत्पन्न हों और असंख्यात लोकके अन्तरसे उत्पन्न हों, अतः इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका अन्तर काल नहीं है यह स्पष्ट ही है। यहाँ प्रथम पृथिवीके नारकी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाईं हैं उनमें यह अन्तर बन जाता है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है। द्वितीयादि नरकोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले सर्वदा उपलब्ध होते हैं, अतः वहाँ जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंके अन्तरकालका निषेध किया है।

§ १३६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और सासादन

त्ति । णवरि वेउव्वियमिस्स० अजहण्णाणु० बारस मुहुत्ता । अधवा सासण० जह० उक्कस्संतरं पलिदो० असंखे०भागो । आहार० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । एवमजहण्णं पि । एवमाहारमिस्स० । इत्थि०-णवुंस० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । पुरिस० जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णत्थि अंतरं । अवगद० जह० ज० एगस०, उक्क० छमासा । अज० ज० एगस०, उक्क० छमासा ।

सम्यग्दृष्टियोंमें जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है। अथवा सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है। आहारककाययोगियोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। स्त्रीवेदी, और नपुंसकवेदीमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। पुरुषवेदियोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। अपगतवेदियोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

विशेषार्थ—मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सामान्य नारकियोंके समान जघन्य अनुभागवालोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालको घटित कर लेना चाहिए। तथा इस मार्गणाके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालको देखकर इसमें अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है, इसलिए इसमें अजघन्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कहा है। शेष सब अन्तर काल मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान अन्तर काल प्राप्त होता है यह स्पष्ट ही है। यहाँ विकल्परूपसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागवालोंका जो उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है सो इसको विचारकर जान लेना चाहिए। आहारकद्विकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए इनमें दोनों अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका अन्तर नहीं है यह स्पष्ट ही है। पुरुषवेदियोंमें क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है। तथा यह निरन्तर मार्गणा है इसलिए इसमें अजघन्य अनुभागवालोंके अन्तरकालका निषेध किया है। मोहयुक्त अपगतवेदीका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, इसलिए इसमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है।

§ १३७. कसायाणुवादेण कोध-माण-माया० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० वासं सादिरेयं। अज० णत्थि अंतरं। अकसाय० जहण्णाजहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवं जहाक्खाद०। परिहार० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं। एवं संजदासंजद०। सुहुमसांपराय० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा। एवमजहण्णं पि। तेउ-पम्म० जहण्णाजहण्णा० णत्थि अंतरं। वेदग० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। अज० णत्थि अंतरं। उवसम० जह० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। अज० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि। सम्मामि० जह० अजह० जह० एगस०, उक्क० दोण्हं पि पलिदो० असंखे०भागो।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

§ १३८. भाव० सव्वत्थ ओदइओ भावो।

---

§ १३७. कषायकी अपेक्षा क्रोध, मान और मायामें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। अकषायी जीवोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयतोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार संयतासंयतोंमें जानना चाहिये। सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए। तेजालेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका ही पल्य के असंख्यातवें भाग है।

विशेषार्थ—यहाँ क्रोध कषायसे लेकर जितनी मार्गणाओंमें अन्तर कालका विचार किया है वह सुगम है, इसलिए उसका पृथक् पृथक् स्पष्टीकरण नहीं किया है। मात्र क्रोध, मान और माया कषायमें क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिए इनमें मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है। शेष सब स्पष्ट ही है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १३८. भावसे सर्वत्र औदायिक भाव है।

विशेषार्थ—औदयिक भावके सद्भावमें मुख्य रूपसे मोहनीयकर्मका बन्ध होता है जो उसकी सत्ताका कारण है, इसलिए यहाँ औदयिक भाव कहा है।

§ १३९. अप्पाबहुअ० जीवे अस्सिदूण वुच्चदे। तं दुविहं—जह० उक्क०। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। ओघे० सव्वत्थोवा मोह० उक्कस्साणुभागविहत्तिया जीवा। अणुक्क०विहत्तिया जीवा अणंतगुणा। एवं तिरिक्खोघम्मि। आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा उक्कस्साणु०विहत्तिया जीवा। अणुक्क० असंखे०गुणा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव० भवणादि जाव अवराइद त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणी--सव्वट्ठसिद्धिदेवेसु सव्वत्थोवा मोह० उक्कस्साणु०विहत्तिया जीवा। अणुक्क० संखे०गुणा। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ १४०. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो--ओघे० आदेसे०। ओघेण सव्वत्थोवा मोह० जहण्णाणु०विहत्तिया जीवा। अज० अणंतगुणा। आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा मोह० जहण्णाणु०विहत्तिया जीवा। अज० असंखे०गुणा। एवं सव्वणेरइय--तिरिक्ख-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख--मणुस्स०-मणुस्सअपज्ज०-देव० भवणादि जाव अवराइदं ति। मणुसपज्ज०--मणुसिणी०--सव्वट्ठसिद्धिदेवेसु सव्वत्थोवा मोह० जहण्णाणु० जीवा। अज० संखे०गुणा। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं तेवीस अणियोगद्दाराणि समत्ताणि।

---

§ १३९. अब जीवका आश्रय लेकर अल्पबहुत्व कहते हैं। वह दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव उनसे अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले उनसे असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, देव और भवनवासीसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। इस प्रकार जानकर इस अल्प बहुत्वको अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ १४०. जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्यअपर्याप्त, देव और भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। इस प्रकार जानकर इस अल्पबहुत्वको अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इस प्रकार तेईस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

भुजगारविहत्ती

§ १४१. भुजगारविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति—समुक्कित्तणादि जाव अप्पाबहुए त्ति। तत्थ समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण अत्थि मोह० भुजगार०-अप्पदर०-अवट्ठिद०-विहत्तिया जीवा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेवे त्ति। णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अत्थि अप्पदर०-अवट्ठिद०विहत्तिया जीवा। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ १४२. सामित्ताणु० दुविहो०णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० भुजगार० कस्स? अण्णदरस्स मिच्छादिट्ठिस्स। अप्पदर०-अवट्ठिद० कस्स? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव०-भवणादि जाव सहस्सारे त्ति। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० कस्स? अण्णदरस्स मिच्छादिट्ठिस्स। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अप्पदर०-अवट्ठि० कस्स? अण्णद० सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मोह० अप्प०-अवट्ठि० कस्स? अण्णद० सम्मा

भुजगारविभक्ति

§ १४१. भुजकार विभक्तिमें ये तेरह अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व पर्यन्त। उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिवाले जीव हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—जो जीव सत्तामें स्थित मोहनीयके अनुभागको बढ़ाते हैं वे भुजगारविभक्तिवाले कहे जाते हैं, जो घटाते हैं वे अल्पतर विभक्तिवाले कहे जाते हैं, और जिनके मोहका अनुभाग तदवस्थ रहता है, न घटता है न बढ़ता है, वे अवस्थितविभक्तिवाले जीव कहे जाते हैं। ओघसे और आदेशसे तीनों ही विभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं, किन्तु आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान पर्यन्त भुजगार विभक्तिवाले देव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि वहाँ मोहके जिस अनुभागको लेकर जीव उत्पन्न होते हैं, उसमें वृद्धि नहीं होती है।

§ १४२. स्वामित्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्ति किसके होती है? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती हैं? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भुजकार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती है? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। आनत स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती हैं? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकर्मकी अल्पतर और अवस्थितविभक्ति

दिट्ठिस्स । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ १४३. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० भुज०- अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अवट्ठि० केवचिरं कालादो होदि ? ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयं ।

§ १४४. आदेसेण णेरइएसु भुजगार० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस० । अंतोमुहुत्तकालो णेरइएसु किण्ण लद्धो ? ण, णेरइएसु

किसके होती है ? किसी भी सम्यग्दृष्टिके होती है। इस प्रकार जानकर इन विभक्तियोंके स्वामित्वको अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे मोहकी भुजगारविभक्तिका स्वामी तो मिथ्यादृष्टि ही होता है। किन्तु अल्पतर और अवस्थितविभक्तिके स्वामी मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और सम्यग्दृष्टि भी होते हैं अर्थात् ओघसे मोहके सत्तामें स्थित अनुभागकी वृद्धि तो मिथ्यादृष्टि ही करता है किन्तु हानि और अवस्थान दोनोंके हो सकते हैं। इसी प्रकार आदेशसे भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक और मनुष्यअपर्याप्तकमें तीनों ही विभक्तियाँ मिथ्यादृष्टिके ही होती हैं, क्योंकि उनमें सम्यक्त्व नहीं होता है। तथा आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें वृद्धि सम्भव न होनेसे वहाँ अल्पतर और अवस्थित पदका स्वामी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंको कहा है। अनुदिश और अनुत्तरोंमें सब सम्यक्त्वी ही होते हैं, अतः दोनों विभक्तियाँ सम्यक्त्वीके ही होती हैं। इसी प्रकार अन्य मार्गणाओंमें जान लेना चाहिये।

§ १४३. कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है।

विशेषार्थ—सत्तामें स्थित अनुभागको आगेके समयमें बढ़कर या घटाकर पुनः तदवस्थ रह जानेसे भुजाकार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय होता है और लगातार प्रति समय बढ़ाते या घटाते जाने पर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इससे अधिक काल तक न भुजगारविभक्ति होती है और न अल्पतरविभक्ति। किन्तु अवस्थितविभक्ति लगातार पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर तक रह सकती है, क्योंकि किसी भोगभूमिया मनुष्य या तिर्यञ्चने पल्योपमके असंख्यातवें भाग आयुके शेष रहने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके अल्पतर किया फिर मिथ्यात्वको प्राप्त होगया और अवस्थितअनुभागविभक्तिवाला होगया। आयुके अन्तमें वेदकसम्यग्दृष्टि होकर दो छयासठ सागर तक वेदकसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहकर अन्तमें उपरिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होगया। वहाँसे चय कर मनुष्य हुआ। इस प्रकार अवस्थित अनुभागविभक्तिका पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक १६३ सागर काल प्राप्त होता है।

§ १४४. आदेशसे नारकियोंमें भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

अणुभागकंडएण विणा ओघमिव अणुसमयओवट्टणाए अप्पदरस्स असंभवादो। ण च एगसमएण अणुभागकंडओ णिवददि अणुभागकंडयस्स जहण्णुक्कीरणद्धाए वि अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो। बंधेण अप्पदरस्स णिरंतरो अंतोमुहुत्तकालो किण्ण लब्भदे? ण, अणुभागसंतस्स अणुसमयघादमंतरेण अप्पदराणुववत्तीदो। ण च एत्थ अणुसमयघादो अत्थि, चारित्तमोहक्खवणाए चेव तस्स संभवादो। अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। संपुण्णाणि किण्ण लब्भंति? ण, णेरइएसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्तकालमगमिय सम्मत्तग्गहणासंभवादो। मिच्छादिट्ठिम्मि अवट्ठिदस्स कालो तेत्तीससागरोवममेत्तो किण्ण गहिदो? ण, मिच्छादिट्ठीसु अंतोमुहुत्तादो उवरि णियमेण भुजगार-अप्पदराणं संभवादो। एवं सव्वणेरइयाणं। णवरि सगट्ठिदी देसूणा।

शंका—नारकियोंमें अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण क्यों नहीं पाया जाता?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि नारकियोंमें अनुभागकाण्डकके विना ओघके समान प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा अल्पतरविभक्ति संभव नहीं है। और एक समयमें अनुभागकाण्डकका घात होता नहीं है, क्योंकि अनुभागकाण्डककी उत्कीरणाका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

शंका—बन्धकी अपेक्षा अल्पतरविभक्तिका निरन्तर काल अन्तर्मुहूर्त क्यों नहीं पाया जाता?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनुभागकी सत्ताका प्रति समय घात हुए विना अल्पतर नहीं बन सकता है। और नरकमें प्रति समय घात होता नहीं है, क्योंकि चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें ही प्रति समय घात संभव है।

अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है।

शंका—अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर क्यों नहीं है?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल गये विना सम्यक्त्वका ग्रहण संभव नहीं है।

शंका—मिथ्यादृष्टिमें अवस्थितविभक्तिका काल तेतीस सागर प्रमाण क्यों नहीं ग्रहण किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टियोंमें अवस्थितविभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त है। वहां अन्तर्मुहूर्तसे ऊपर उनमें नियमसे भुजगार या अल्पतरविभक्तिका होना संभव है, अतः नरकमें अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर नहीं कहा है।

इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियोंमें भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल भी एक समय है और उत्कृष्ट काल भी एक समय है, भुजगारके समान अन्तर्मुहूर्त नहीं है। इसका कारण यह है कि जब

§ १४५. तिरिक्खेसु भुज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्प० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । एवं पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु भुज०-अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस० । एवं मणुसअपज्जत्ताणं । मणुसतियम्मि भुज०-अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागगेण सादिरेयाणि । णवरि मणुसिणीसु अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि ।

तक सत्तामें स्थित अनुभागका प्रति समय घात न हो तब तक अल्पतरविभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त नहीं बन सकता । और वहाँ अनुभागका प्रतिसमय घात संभव नहीं है, क्योंकि अनुभागका प्रति समय घात चारित्रमोहकी क्षपणामें ही होता है । सारांश यह है कि कर्मोंके अनुभागको लेकर स्पर्धक रचना होती है । उसमें जो स्पर्धक बहुत अनुभागवाले होते हैं उन सब स्पर्धकोंमें अनन्तका भाग देकर बहुभागप्रमाण स्पर्धक आते हैं उनमेंसे कुछ स्पर्धकोंको छोड़कर शेष स्पर्धकोंके परमाणुओंका एक भाग मात्र नीचेके स्पर्धकोंमें परिणमाया जाता है । अर्थात् कुछ परमाणुओंको पहले समयमें परिणमाते हैं, कुछको दूसरे समयमें परिणमाते हैं । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सब परमाणुओंको परिणमा कर उन ऊपरके स्पर्धकोंका अभाव कर दिया जाता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा जो कार्य किया जाता है उसका नाम काण्डकघात है । इस प्रकार यद्यपि काण्डकघातमें प्रति समय अनुभागका घात होता है पर वह फालिरूपसे ही होता है, इसलिए काण्डकघातके कालमें अल्पतरविभक्ति सम्भव नहीं है । वह यहाँ अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समयमें ही होती है । अतः न केवल नारकियोंमें, किन्तु जिन मार्गणाओंमें चारित्रमोहकी क्षपणा नहीं होती उन सबमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ही होता है । नारकियोंमें अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है किन्तु उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि अन्तमुहूर्तसे अधिक काल तक अवस्थितपना सम्यग्दृष्टिके ही बन सकता है और नरकमें सम्यग्दृष्टिका काल अधिकसे अधिक आदि और अन्तके तीन तीन अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर होता है । इस प्रकार प्रत्येक नरकमें जानना चाहिए, अन्तर केवल इतना है कि प्रत्येक नरकमें अन्य विभक्तियोंका काल तो सामान्य नारकीके समान ही होता है, केवल अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है ।

§ १४५. तिर्यञ्चोंमें भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तीन पल्य है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनीमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है ।

§ १४६. देवेसु भुज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस०। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । एवं भवणादि जाव सहस्सारो त्ति । णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं चिंतिय णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

विशेषार्थ—कोई मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च देवकुरु-उत्तरकुरुमें जन्म लेकर और तीन पल्य तक रहकर मरकर देव होगया। उसके अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तीन पल्य होता है, क्योंकि भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाले जीवके जन्म लेनेके कुछ समय पहलेसे उत्कृष्ट अनुभागका घात होकर अवस्थितपना सम्भव है। अपर्याप्तकके सिवा तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि यहाँ क्षपकश्रेणि होनेसे अनुभागका प्रतिसमय घात होना संभव है। तथा अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है, क्योंकि कोई मिथ्यादृष्टि मनुष्य एक पूर्वकोटिका त्रिभाग शेष रहने पर मनुष्यायुका बन्ध करके, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, दर्शनमोहनीयका क्षपण करके, सम्यक्त्वके साथ पूर्वकोटिका देशोन त्रिभाग बिताकर उत्तरकुरुमें मरकर मनुष्य हुआ और वहाँ तीन पल्य तक रहकर मरकर देव होगया, तो उस मनुष्यके अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूर्वोक्त होता है। किन्तु मनुष्यिनीके अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य काल होता है जैसा कि तिर्यञ्चमें बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

§ १४६. देवोंमें भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। इसी प्रकार भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। इस प्रकार विचार करके इस कालको अनाहारी पर्यन्त ले जाना चहिये।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंमें अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर होता है, क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है। आनतादिकमें तथा ऊपरके विमानोंमें भुजगारविभक्ति नहीं होती। अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होता है तथा अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण होता है। यहाँ आनतादिकमें काण्डकघात करने पर उसके अन्तमें अल्पतरविभक्ति प्राप्त होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा काण्डकघातके समय अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। और देवोंके जीवन भर क्रिया रहित होने पर अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। अन्य मार्गणाओंमें इसी प्रकार अर्थात् गतिमार्गणाके अनुसार विचार कर काल घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १४७. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० भुजगारविहत्तियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं। अप्पद० ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सादिरेयं। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०।

§ १४८. आदेसेण णेरइएसु मोह० भुज०-अप्प० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० दोण्हं पि तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं सव्वणेरइयाणं। णवरि सगट्ठिदी देसूणा।

§ १४९. तिरिक्खेसु मोह० भुज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०-

---

§ १४७. अन्तरानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघ से मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्तिका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि भुजगारके बाद एक समयके लिये अवस्थित या अल्पतरविभक्तिके हो जाने पर पुनः भुजगारविभक्तिके होने पर जघन्य अन्तर एक समय होता है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक १६३ सागर है, क्योंकि कोई मनुष्य भुजगारविभक्तिको करके पुनः अल्पतरविभक्तिको करके मरकर देवकुरुमें उत्पन्न हुआ, वहाँ भुजगारविभक्ति नहीं होती। अन्त समयमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके दो छयासठ सागर तक सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वके साथ भ्रमण कर अन्तमें उपरिम ग्रैवेयकमें ३१ सागरकी स्थिति लेकर जन्मा और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् मिथ्यादृष्टि हो गया। मिथ्यादृष्टि हो जाने पर भुजगारविभक्ति नहीं हुई, क्योंकि अच्युतादिकमें उसका निषेध है। इस प्रकार भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर होता है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अर्थात् जिस प्रकार भुजगारविभक्ति और अवस्थितविभक्ति एक समयके बाद भी हो जाती है उस तरह अल्पतरविभक्ति नहीं होती। तथा उत्कृष्ट अन्तर पहले अवस्थितविभक्तिका जो उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेसठ सागर और पल्यका असंख्यातवाँ भाग बतलाया है उतना ही है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है; क्योंकि पहले भुजगार और अल्पतरविभक्तिका ओघसे इतना ही काल बतलाया है। वह यहाँ अवस्थितका अन्तरकाल जानना चाहिए।

§ १४८. आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब नारकियोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि भुजगार और अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण लेना चाहिए।

§ १४९. तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और

भागो। अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं पंचिंदियतिरिक्खतियस्स। णवरि मोह० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिमंतोमुहुत्तं। एवं मणुसअपज्ज०। मणुसतियस्स पंचिंदिय०तिरिक्खभंगो। णवरि भुज० उक्क० पुव्वकोडी देसूणा।

§ १५०. देवेसु मोह० भुज० अंतरं केव० ? ज० एगस०, उक्क० अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि। अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। णवरि भुज०-अप्प० उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगस०। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगसमओ। एवं जाव अणाहारि त्ति चिंतिय णेदव्वं।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मोहनीयकी भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

§ १५०. देवोंमें मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्तिका अन्तर कितना है? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अट्ठारह सागर है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गपर्यन्त जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें भुजगार और अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। आनत स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणापर्यन्त विचार करके इस अन्तरको ले जाना चाहिये।

§ १५१. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। तत्थ ओघेण मोह० भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० णियमा अत्थि। एवं तिरिक्खोघं।

विशेषार्थ—आदेशसे सभी मार्गणाओंमें भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और अवस्थितका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, जैसा कि ओघसे बतलाया है। विशेषता केवल भुजगार और अल्पतरविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तरकालमें है, जो कि इस प्रकार है—सामान्य नारकियोंमें दोनों विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि सातवें नरकका एक मिथ्यादृष्टि नारकी भुजगारविभक्तिको करके पुनः अल्पतरविभक्ति करके सम्यग्दृष्टि हुआ और थोड़ी आयु शेष रहने पर सम्यक्त्वसे च्युत होकर पुनः मिथ्यादृष्टि हो गया और वहाँ उसने भुजगारविभक्ति की तो उसका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर होता है। इसी प्रकार अल्पतरविभक्तिका भी लगा लेना चाहिये। प्रत्येक नरकमें इसी प्रकार कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। तिर्यञ्चोंमें भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियोंमें भुजगारको करके पुनः एकेन्द्रियोंमें जन्म लेकर पल्यके असंख्यातवें भाग काल तक भुजगारके विना अनुभागसत्कर्मको करके पुनः भुजगार करने पर भुजगारविभक्तिका अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग होता है और अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है, क्योंकि कोई तिर्यञ्च अल्पतर करके भोगभूमिमें उत्पन्न हो गया और तीन पल्यकी आयुके अन्तमें काण्डकघात किया तो यह अन्तरकाल प्राप्त होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिमतियोंमें भुजगारका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है, क्योंकि इनमेंसे कोई तिर्यञ्च संज्ञी दशामें भुजगारको करके मरकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च हो गया और वहाँ पूर्वकोटिपृथक्त्व काल तक समान अनुभाग सत्कर्मको करके मरकर पुनः संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हुआ और वहाँ उसने भुजगारविभक्ति की तो उतना अन्तरकाल होता है। तीन प्रकारके मनुष्योंमें भुजगारका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि है, क्योंकि किसी मनुष्य ने आठ वर्षकी अवस्थामें भुजगारको करके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त किया और मृत्युसे कुछ काल पहले सम्यक्त्वसे च्युत होकर पुनः भुजगारविभक्तिको किया तो भुजगारका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि होता है। यहाँ शेष कथन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। देवोंमें भुजगारका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अट्ठारह सागर है, क्योंकि कोई संज्ञी मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च या मनुष्य शतार सहस्रारमें जन्म लेकर भुजगारको करके पश्चात् सम्यग्दृष्टि हो गया, मरनेके पहले सम्यक्त्वसे च्युत होकर उसने पुनः भुजगारविभक्ति की तो भुजगारका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अट्ठारह सागर होता है, इससे अधिक इसलिये नहीं हो सकता कि अच्युतादिकमें भुजगार नहीं होता। तथा अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर उपरिम ग्रैवेयककी अपेक्षासे जानना चाहिए। ग्रैवेयकसे ऊपरके देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, अतः उनमें अल्पतरका अन्तर अन्तर्मुहुर्तसे अधिक नहीं होता, क्योंकि एक अनुभागकाडककी अन्तिम फालिके पतनके समय अल्पतरविभक्ति होती है। उसके बाद दूसरे अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिके पतन होनेमें एक अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १५१. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे मोहनीय कर्मकी भुजाकार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव

आदेसेण णेरइएसु मोह० भुज०-अवट्ठि० णियमा अत्थि। अप्पदर० भजिदव्वा। सिया एदे च अप्पदरविहत्तिओ च १। सिया एदे च अप्पदरविहत्तिया च २। धुवे पक्खित्ते तिण्णि भंगा ३। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-देव-भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। मणुसअपज्ज० मोह० सव्वपदा भयणिज्जा। भंगा छव्वीस २६ । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मोह० अवट्ठि० णियमा अत्थि। अप्पदर० भजियव्वा। सियां एदे च अप्पदरविहत्तिओ च १। सिया एदे च अप्पदरविहत्तिया च २। एत्थ धुवे पक्खित्ते तिण्णि भंगा ३। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो।

नियमसे हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे है। अल्पतरविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं। कदाचित इन विभक्तिवालोंके साथ एक अल्पतरविभक्तिवाला जीव होता है। कदाचित् इन विभक्तिवालोंके साथ अनेक अल्पतरविभक्तिवाले जीव होते हैं। इस प्रकार इन दोनों भंगोंमें एक ध्रुव भंगके मिलानेसे तीन भंग होते हैं। इस प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयके सब पद भजनीय हैं। भङ्ग छब्बीस होते हैं। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त मोहनीयकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे होते है। अल्पतरविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं। कदाचित् इस विभक्तिवालोंके साथ एक अल्पतरविभक्तिवाला जीव होता है १। कदाचित् इस विभक्तिवालोंके साथ अनेक अल्पतरविभक्तिवाले जीव होते हैं २। इस प्रकार इन दोनों भङ्गोंमें ध्रुव भङ्गके मिलानेसे तीन भङ्ग होते हैं ३। इस प्रकार भङ्गविचयको जानकर उसे अनाहारकमार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे तीनों ही विभक्तिवाले जीव नियमसे पाये जाते हैं, उनका कभी अभाव नहीं होता। आदेशसे नारकियोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले तो नियमसे पाये जाते हैं और अल्पतरविभक्तिवाले विकल्पसे पाये जाते हैं। अत: तीन भंग होते हैं—भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं, यह एक ध्रुव भंग है तथा दो अध्रुव भंग हैं—कदाचित् भुजगार और अवस्थितविभक्तिवालोंके साथ एक अल्पतरविभक्तिवाला जीव पाया जाता है और कदाचित् इन दोनों विभक्तिवालोंके साथ अल्पतरविभक्तिवाले अनेक जीव पाये जाते हैं। सब नारकियों, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों, सब मनुष्यों, सामान्य देवों और भवनवासीसे लेकर सहस्रारपर्यन्त तकके देवोंमें तीन भंग होते हैं। किन्तु मनुष्य अपर्याप्तक सान्तर मार्गणा है, अत: उसमें सभी पद विकल्पसे होते हैं और भंग छब्बीस होते हैं—१ कदाचित् भुजगारविभक्तिवाला एक जीव होता है। २ कदाचित् भुजगारविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं। ३ कदाचित् अल्पतर विभक्तिवाला एक जीव होता है। ४ कदाचित् अल्पतरविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं। ५ कदाचित् अवस्थितविभक्तिवाला एक जीव होता है। ६ कदाचित् अवस्थितविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं। ७ कदाचित् भुजगारवाला एक जीव और अल्पतरवाला एक जीव होता है। ८ कदाचित् भुजगारवाला एक जीव और अल्पतरवाले अनेक जीव होते हैं। ९ कदाचित् भुजगारवाला

---

१. आ० प्रतौ अवट्ठि० णियमा अत्थि सिआ इति पाठः। २. ता० प्रतौ एवं सव्वणेरइयसव्व जाणिदूण इति पाठः।

§ १५२. भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघे० मोह० भुज० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखे०भागो। अप्पदर० केव० ? असंखे०-भागो। अवट्ठि० केव० ? संखेज्जा भागा। एवमसंखे०--अणंतजीवरासीणं वत्तव्वं। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भुज०--अप्पदर० सव्वजीव० केव० ? संखे०भागो। अवट्ठि० संखेज्जा भागा। आणदादि जाव अवराइद त्ति अप्पदर० सव्वजी० केव० ? असंखे०-भागो। अवट्ठि० असंखेज्जा भागा। सव्वट्ठसिद्धिदेवेसु अप्पदर० सव्वजीव० केव० ?

एक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। १० कदाचित् भुजगारवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। ११ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव और अल्पतरवाला एक जीव होता है। १२ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव और अल्पतरवाले अनेक जीव होते हैं। १३ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। १४ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। १५ कदाचित् अल्पतर वाला एक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। १६ कदाचित् अल्पतरवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। १७ कदाचित् अल्पतरवाले अनेक जीव और अवस्थित वाला एक जीव होता है। १८ कदाचित् अल्पतरवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। १९ कदाचित् भुजगारवाला एक जीव, अल्पतरवाला एक जीव और अवस्थित-वाला एक जीव होता है। २० कदाचित् भुजगारवाला एक जीव, अल्पतरवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। २१ कदाचित् भुजगारवाला एक जीव, अल्पतरवाले अनेक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। २२ कदाचित् भुजगारवाला एक जीव, अल्पतर-वाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। २३ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव, अल्पतरवाला एक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। २४ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव अल्पतरवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। २५ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव, अल्पतरवाले अनेक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। २६ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव, अल्पतरवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे पाये जाते हैं। अतः यह एक ध्रुव भंग होता है और अल्पतरको लेकर दो अध्रुव भंग होते हैं। इस प्रकार तीन भंग होते हैं। यहाँ चार गतियोंकी अपेक्षा ही भङ्गविचयका विचार किया है। शेष मार्गणाओंमें इसे ध्यानमें रखकर जान लेना चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम समाप्त हुआ।

§ १५२. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अल्पतरविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। अवस्थितविभक्ति-वाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार असंख्यात और अनन्त जीवराशियोंका कथन करना चाहिये। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अवस्थितविभक्ति-वाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं। आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। अवस्थित-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभाग हैं। सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें अल्पतरविभक्तिवाले

संखे०भागो । अवट्ठि० संखेज्जा भागा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

§ १५३. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । एवं तिरिक्खोघम्मि ।

§ १५४. आदेसेण णेरइएसु सव्वपदवि० असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय--सव्व-पंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव०--भवणादि जाव अवराइदं ति । मणुस-पज्जत्त-मणुस्सिणि-सव्वट्ठसिद्धिदेवेसु सव्वपदवि० संखेज्जा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं । इस प्रकार भागाभागानुगमको जानकर अनाहारकमार्गणा पर्यन्त ले जाना जाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे भुजगारविभक्तिवाले सब जीवोंके संख्यातवें भाग होते हैं, अल्पतर-विभक्तिवाले असंख्यातवें भाग होते हैं और अवस्थितविभिक्तिवाले संख्यात बहुभाग होते हैं । इसका कारण यह है कि अवस्थितविभक्तिका काल बहुत अधिक है । तथा भुजगारविभक्ति और अल्पतरविभक्तिका काल यद्यपि ओघसे समान है फिर भी अल्पतरविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल केवल क्रियाविशेषके समय ही होता है । अत: काल समान होने पर भी अल्पतरविभक्तिवाले कम हैं और भुजगारविभक्तिवाले अधिक हैं । जिन मार्गणाओंमें जीवराशि असंख्यात या अनन्त है उनमें इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंका प्रमाण संख्यात है, अत: उनमें संख्यातैकभाग तो भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले होते हैं और संख्यात बहुभाग अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं । आनतसे लेकर अपराजित विमान पर्यन्त प्रत्येकमें जीवराशि यद्यपि असंख्यात है, किन्तु उनमें भुजगारविभक्ति नहीं होती, अत: असं-ख्यातैकभागप्रमाण जीव अल्पतरविभक्तिवाले होते हैं और असंख्यात बहुभागप्रमाण जीव अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं । सर्वार्थसिद्धिके देवोंका प्रमाण संख्यात है, अत: उनमें संख्यातैक भाग जीव अल्पतरवाले और संख्यात बहुभाग अवस्थितवाले होते हैं ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ १५३. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले द्रव्यप्रमाणसे अर्थात् गणनाकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए ।

§ १५४. आदेशसे नारकियोंमें सब विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंमें सब विभक्तिवाले संख्यात हैं । इस प्रकार परिमाणानुगमको जानकर उसे अनाहारक मार्गणापयन्त ले जाना चाहिये ।

§ १५५. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० विहत्तिया केव० खेत्ते ? सव्वलोगे। एवं तिरिक्खोघं। सेसमग्गणासु मोह० सव्वपदा लोगस्स असंखे०भागे। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

§ १५६. पोसणाणु० दुविहो० णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० तिण्णिपदविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो। एवं तिरिक्खोघं। आदेसेण णेरइएसु सव्वपदविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसदं ? लोगस्स असंखे०भागो छचोद्दसभागा देसूणा। पढमपुढवि० खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति तिण्हं पदाणं सगपोसणं वत्तव्वं। सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्साणं भुज०-अप्प०-अवट्ठि०

विशेषार्थ—भागाभागानुगममें तो यह बतलाया गया था कि अमुक विभक्तिवाले अपनी अपनी जीवराशिके कितने भाग प्रमाण हैं। परिमाणानुगममें उनका परिमाण बतलाया गया है। ओघसे तीनों ही विभक्तिवालोंका परिमाण अनन्त है। आदेशसे जिन मार्गणाओंमें जीवराशि असंख्यात है उनमें प्रत्येक विभक्तिवालोंका परिमाण असंख्यात है, जिनमें जीवराशि संख्यात है उनमें प्रत्येक विभक्तिवालोंका परिमाण संख्यात है और जिनमें जीवराशि अनन्त है उनमें प्रत्येक विभक्तिवालोंका परिमाण अनन्त है।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ १५५. क्षेत्रानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीय कर्मकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें पाये जाते हैं ? सर्व लोकमें। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंचोंमें जानना चाहिए। शेष मार्गणाओंमें मोहनीयकी सब विभक्तिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। इस प्रकार क्षेत्रानुगमको जानकर उसे अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे तीनों पदवालोंका सर्वलोक क्षेत्र सम्भव है इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें भी घटित कर लेना चाहिए। शेष गतियोंमें वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह देखकर उनमें वह अपने अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा पर्यन्त शेष मार्गणाओंमें क्षेत्र जानना चाहिए।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ १५६. स्पर्शनानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीय कर्मकी तीनों विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? समस्त लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। आदेशसे नारकियोंमें सब विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भंग है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त तीनों विभक्तियोंका अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति-

लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । देवेसु भुज०-अप्प०-अवट्टि० केव० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० देसूणा । एवं सव्वदेवाणं । णवरि सगसगपोसणं वत्तव्वं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १५७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० तिण्णिपद०वि० सव्वद्धा । एवं तिरिक्खोघं ।

वालोंका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग और सर्व लोक है। देवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। इस प्रकार स्पर्शनानुगमको जानकर उसे अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—आदेशसे नरकगतिमें सब विभक्तिवाले नारकियोंने मारणान्तिक और उपपाद के द्वारा अतीत कालमें कुछ कम छह बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और शेष संभव पदोंके द्वारा अतीतकालमें तथा संभव सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहले नरकमें सम्भव सभी पदोंके द्वारा लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दूसरे से सातवें नरक तक सभी विभक्तिवाले नारकियोंने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा अतीत कालमें दूसरे नरकमें कुछ कम एक बटे चौदह, तीसरेमें कुछ कम दो बटे चौदह, चौथेमें कुछ कम तीन बटे चौदह, पाँचवेंमें कुछ कम चार बटे चौदह, छटेमें कुछ कम पाँच बटे चौदह और सातवेंमें कुछ कम छै बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा संभव शेष पदोंके द्वारा अतीत कालमें और संभव सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें तीनों विभक्तिवाले जीवोंने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा अतीत कालमें सर्वलोकका स्पर्शन किया है और संभव शेष पदोंके द्वारा अतीतकालमें तथा संभव सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है। सामान्य देवोंमें तीनों विभक्तिवाले जीवोंने विहार वत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, और विक्रियापदके द्वारा अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है और मारणान्तिक पदके द्वारा अतीत कालमें कुछ कम नौ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा संभव पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें और स्वस्थानस्वस्थान पदके द्वारा अतीत कालमें लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। ओघसे सब लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। इस प्रकार इस स्पर्शनको ध्यानमें रखकर भुजगार आदि पदोंकी अपेक्षा ओघसे व चारों गतियोंमें स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। अन्य मार्गणाओंमें भी अपना अपना स्पर्शन जानकर जिस पदकी अपेक्षा जो स्पर्शन सम्भव हो उसे जान लेना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ १५७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी तीनों विभक्तियोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए।

§ १५८. आदेसेण णेरइएसु भुज०-अवट्ठि० सव्वद्धा। अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं सव्वणेरइय--सव्वपंचिंदियतिरिक्ख--मणुस्स-देव०-भवणादि जाव सहस्सारा त्ति । णवरि मणुस्सेसु अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी० । मणुसअपज्ज० मोह० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । आणदादि जाव अवराइद त्ति अप्पदर०--अवट्ठि० णेरइय-भंगो । सव्वट्ठे अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्ठि० सव्वद्धा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं णाणाजीवेहि कालाणुगमो समत्तो ।

---

§ १५८. आदेशसे नारकियोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिका काल सर्वदा है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग है। इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग है। आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका भंग नारकियोंके समान है। सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अवस्थितविभक्तिका काल सर्वदा है। इसप्रकार कालानुगमको जानकर उसे अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशसे सभी गतियोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीव तो सर्वदा पाये जाते हैं, केवल मनुष्य अपर्याप्तकोंमें इन दोनों विभक्तिवाले नाना जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग है. क्योंकि यह सान्तर मार्गणा है और इसका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। परन्तु अल्पतरविभक्तिवाले नाना जीवोंका काल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आवलिका असंख्यातवाँ भाग होता है। अर्थात् किसी भी गतिमें अल्पतरविभक्तिवाले जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक ही पाये जा सकते हैं उसके पश्चात् कुछ काल ऐसा आजाता है जिसमें एक भी अल्पतरविभक्तिवाला जीव नहीं होता। मात्र आनतसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें भुजगारविभक्ति नहीं होती। शेष दो होती हैं, इसलिए उनमें भुजगारके सिवा शेष दोका काल कहा है। तथा सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतरविभक्तिवालोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें अल्पतर विभक्तवाले भी सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए इनमें तीनोंका काल सर्वदा कहा है और इसी अपेक्षासे ओघकी अपेक्षा भी तीनोंका काल सर्वदा कहा है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १५९. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० तिण्णिपदविहित्तियाणं णत्थि अंतरं। एवं तिरिक्खोघं। आदेसेण णेरइएसु भुज०-अवट्ठि० णत्थि अंतरं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं सव्वणेरइय-सव्व-पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसतिय-देव भवणादि जाव सहस्सार त्ति। मणुसअपज्ज० तिण्णि-पदवि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अप्प० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि। अवट्ठि णत्थि अंतरं। अणुद्दिसादि जाव सवट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो० संखे०भागो। अवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

§ १५९. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी तीनों विभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं है। इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। आदेशसे नारकियोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीनों विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आनत स्वर्गसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन है। अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपराजित तक वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अवस्थित-विभक्तिका अन्तर नहीं है। इसप्रकार अन्तरानुगमको जानकर उसे अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे व आदेशसे सामान्य तिर्यञ्चोंमें तो तीनों ही विभक्तिवाले सर्वदा पाये जाते हैं, अत: अन्तर नहीं है। शेष गतियोंमें भुजगार और अवस्थितवाले सर्वदा पाये जाते हैं, अत: उनका अन्तर नहीं है। किन्तु मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीनों विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, क्योंकि यह सान्तर मार्गणा है और उसका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असं-ख्यातवें भागप्रमाण है। अल्पतरविभक्तिका अन्तर सब नारकियों सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चों, तीन प्रकारके मनुष्यों, सामान्य देवों और भवनवासीसे लेकर सहस्रारपर्यन्त तकके देवोंमें जघन्य से एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त होता है। आनतसे लेकर सब ग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतरका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन होता है, क्योंकि उनमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उत्कृष्ट हानि बतलाई है और प्रथम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन बतलाया है तथा अनुदिशा-दिकमेंसे अपराजित तकके देवोंमें अल्पतरअनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १६०. भावाणु० सव्वत्थ ओदइओ भावो।

एवं भावाणुगमो समत्तो।

§ १६१. अप्पाबहुगाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा अप्पदरविहत्तिया जीवा। भुज०विहत्ति० असंखे०गुणा। अवट्ठि०वि० संखे०गुणा। एवं चदुसु वि गदीसु। णवरि मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु संखेज्जगुणं कायव्वं। आणदादि जाव अवराइदं त्ति सव्वत्थोवा अप्पदरविहत्तिया। अवट्ठि० असंखे०गुणा। सव्वट्ठे सव्वत्थोवा मोह० अप्पदरविहत्तिया। अवट्ठिदवि० संखे०गुणा। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं भुजगाराणुगमो समत्तो।

पदणिक्खेवो

§ १६२. पदणिक्खेवे त्ति तत्थ इमाणि [तिण्णि] अणिओगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं चेदि। को पदणिक्खेवो? भुजगारविसेसो। ण च पुणरुत्तदा, जहण्णुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणेसु पडिबद्धत्तादो।

---

§ १६०. भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदयिक भाव है।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

§ १६१. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े है। भुजगारविभक्तिवाले उनसे असंख्यातगुणे हैं। अवस्थितविभक्तिवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिये। आनतसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिवाले सबसे थोड़े हैं। उनसेअवस्थितविभक्तिवाले असंख्यातगुणे हैं। सर्वार्थसिद्धिमें मोहनीयके अल्पतरविभक्तिवाले सबसे थोड़े हैं। अवस्थितविभक्तिवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। इसप्रकार अल्पबहुत्वको जानकर उसे अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इस प्रकार भुजगारानुगम समाप्त हुआ।

पदनिक्षेप

§ १६२. अब पदनिक्षेपका कथन करते हैं। उसमें ये अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

शंका—पदनिक्षेप किसे कहते हैं?

समाधान—भुजगार विशेषको पदनिक्षेप कहते हैं।

यदि कहा जाय कि जब पदनिक्षेप भुजगारका ही एक विशेष है तो उसके कथन करनेसे पुनरुक्त दोष आता है, क्योंकि भुजगारका कथन पीछे कर आये हैं। किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पदनिक्षेपमें जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका कथन किया जाता है, अतः पुनरुक्त दोष नहीं है।

§ १६३. समुक्कित्तणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण अत्थि मोह० उक्कस्सिया वड्ढी उक्क० हाणी अवट्ठाणं च। एवं चदुसु गदीसु। णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अत्थि उक्क० हाणी अवट्ठाणं च। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवमुक्कस्सिया समुक्कित्तणा समत्ता।

§ १६४. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण अत्थि जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाण च। एवं चदुसु वि गदीसु। णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति अत्थि जहण्णिया हाणी अवट्ठाणं च। एवं जाव अणाहारि त्ति।

एवं समुक्कित्तणाणुगमो समत्तो।

§ १६५. सामित्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स? अण्णदरो जो तप्पाओग्ग-

---

विशेषार्थ—यद्यपि पदनिक्षेप भुजगार अनुगमका ही एक भेद है फिर भी इसमें उससे अन्तर है। भुजगार अनुगममें तो भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तियोंका वर्णन है और पदनिक्षेपमें उन विभक्तियोंके कारण वृद्धि, हानि और अवस्थानका वर्णन है।

§ १६३. समुत्कीर्तनानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे यहाँ उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और अवस्थान होता है, अर्थात् मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि भी होती है, उत्कृष्ट हानि भी होती है और उत्कृष्ट अवस्थान भी होता है। इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होता है, उत्कृष्ट वृद्धि नहीं होती। इसप्रकार उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानको जानकर उसे अनाहारी तक लेजाना चाहिये।

इस प्रकार उत्कृष्ट समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

§ १६४. अब जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होता है। इसप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होता है, वृद्धि नहीं होती। इसप्रकार अनाहारी पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघकी तरह आदेशसे भी चारों गतियोंमें उत्कृष्ट और जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान होते हैं, किन्तु आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें न उत्कृष्ट वृद्धि होती है और न जघन्य वृद्धि, क्योंकि उनमें भुजगारका अभाव है।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ।

§ १६५. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो

जहण्णाणुभागसंतकम्मादो उक्कस्साणुभागं बंधमाणओ तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। उक्कस्सिया हाणी कस्स? अण्णदरेण उक्कस्साणुभागसंतकम्मिएण उक्कस्साणुभागकंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-चउक्क०-मणुस्सतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सारकप्पो त्ति। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णदरो जो तप्पाओग्गजहण्णाणुभागसंतकम्मादो तप्पाओग्ग-उक्कस्साणुभागबंधं गदो तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स? अण्णदरो जो मणुस्सो मणुसिणी वा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तजोणिओ[1] वा उक्कस्साणुभाग-संतकम्मिओ उक्कस्साणुभागकंडयं घादयमाणो पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो तेण उक्कस्साणुभागकंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। एवं मणुसअपज्जत्ताणं। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति उक्कस्सिया हाणी कस्स? अण्णदरस्स जेण उक्कस्साणुभागसंतकम्मिएण पढमसम्मत्ताहिमुहेण पढमाणुभागकंडयं हदं तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ-सिद्धि त्ति मोह० उक्कस्सिया हाणी कस्स? अण्णदरस्स जेण तप्पाओग्गउक्कस्साणु-भागसंतकम्मियवेदगसम्मादिट्ठिणा अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएमाणेण पढमअणु-भागकंडयं हदं तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। एवं जाणिदूण

अपने योग्य जघन्य अनुभागवाले सत्कर्मसे उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है और उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जिस जीवके उत्कृष्ट अनुभागवाले कर्मोंकी सत्ता है वह जीव जब उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका घात करता है तो उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जिसके अपने योग्य जघन्य अनुभागकी सत्तावाले कर्मोंका अस्तित्व है वह जब अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जिस मनुष्य, मनुष्यिनी अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले कर्मोंका अस्तित्व है वह उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका घात करता हुआ पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है और उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसीप्रकार अपर्याप्त मनुष्योंके जानना चाहिए। आनत स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है? उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख जो देव पहले अनुभागकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है और उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है? अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले जिस वेदकसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करते हुए प्रथम अनुभागकण्डकका घात कर किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। उसीके अनन्तर

१. आ० प्रतौ पंचिंदियतिरिक्खजोणिओ इति पाठः।

णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवमुक्कस्सवड्ढिसामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ १६६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च कस्स ? अण्णदरस्स अणंतभागेण वड्ढिदूण बंधे जहण्णिया वड्ढी । तम्मि चेव कंडयघादेण हदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्थ अवट्ठाणं । एवं चदुसु गदीसु । णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएमाणवेदगसम्मादिट्ठिस्स चरिमअणुभागकंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इस प्रकार जानकर उत्कृष्ट वृद्धि आदिको अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे अपने योग्य जघन्य अनुभाग सत्कर्मवाला जो जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है और उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उत्कृष्ट हानि होती है । नारकियों, चार प्रकारके तिर्यञ्चों, तीन प्रकारके मनुष्यों, सामान्य देवों और भवनवासीसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें कुछ अन्तर है जो मूलमें बतलाया ही है । विशेष बात यह है कि उनमें उत्कृष्ट हानिवालेके उत्कृष्ट अवस्थान बतलाया है । इसका कारण यह है कि उनके उत्कृष्ट वृद्धिसे उत्कृष्ट हानिका प्रमाण अधिक है और वृद्धि तथा हानिमेंसे जिसका प्रमाण अधिक होता है उसीको लेकर उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए । उनमें वृद्धि तो होती ही नहीं, हानि ही होती है और उत्कृष्ट हानिवालेके ही उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६६. जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान किसके होता है ? जो अन्यतर जीव अनन्तवें भाग अधिक अनुभागका बन्ध करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है और काण्डकघात के द्वारा उसी अनन्तवें भाग अनुभागका घात कर दिये जाने पर जघन्य हानि होती है । तथा इन दोनों वृद्धि-हानियोंमें से किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थान होता है । इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए । कुछ विशेषता इस प्रकार है—आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेवाला अन्यतर वेदकसम्यग्दृष्टि देव जब अन्तिम अनुभागकाण्डकका घात कर देता है तब उसके जघन्य हानि होती है । उसीके अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ १६७. अप्पाबहुगं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण। ओघेण सव्वत्थोवा मोह० उक्कस्सिया हाणी। वड्ढी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-देव० भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्ढी। हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसा अणंतगुणा। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवमुक्कस्सओ अप्पाबहुगाणुगमो समत्तो।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य वृद्धि और जघन्य हानिका प्रमाण समान है, अतः जघन्य वृद्धिवालेका भी जघन्य अवस्थान होता है और जघन्य हानिवालेका भी जघन्य अवस्थान होता है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें हानि ही होती है, अतः जघन्य हानिवालेके ही जघन्य अवस्थान होता है। तथा उत्कृष्ट स्वामित्वके कथनमें अनुदिशादिकमें प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उत्कृष्ट हानि बतलाई थी, और यहाँ चरम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर जघन्य हानि बतलाई है, इसका कारण यह है कि चरम अनुभागकाण्डकसे प्रथम अनुभागकाण्डकमें बहुत अधिक अनुभागकी सत्ता होती है।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ।

§ १६७. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट हानि सब सबसे थोड़ी है। उससे वृद्धि और अवस्थान दोनों समान होकर कुछ अधिक हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव, और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है। उससे हानि और अवस्थान दोनों समान होकर अनन्तगुणे हैं। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त हानि और अवस्थान दोनों समान हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे जीवके जो उत्कृष्ट हानि होती है उसका प्रमाण सबसे कम है, उसके उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानका प्रमाण अधिक है, किन्तु परस्परमें दोनोंका बराबर है, क्योंकि स्वामित्वानुगममें जिसके उत्कृष्ट वृद्धि बतलाई है उसीके उत्कृष्ट अवस्थान भी बतलाया है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धिका परिमाण कम है और उत्कृष्ट हानिका प्रमाण वृद्धिसे अधिक है। तथा आनतादिकमें वृद्धि तो होती ही नहीं, अतः उत्कृष्ट हानिवालेके ही उत्कृष्ट अवस्थान होनेसे दोनोंका परिमाण समान कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

---

१ ता० प्रतौ उक्कस्सिया वड्ढी। हाणी अवट्ठाणं च इति पाठः।

§ १६८. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च तिण्णि वि सरिसाणि। एवं चदुसु गदीसु। णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति जहण्णिया हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणिं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं पदणिक्खेवो त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

वड्ढिविहत्ती

§ १६९. वड्ढिविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणादि जाव अप्पाबहुए त्ति। का वड्ढी णाम? पदणिक्खेवविसेसो। ण पुणरुत्तदा, सामण्णादो विसेसस्स सव्वत्थ पुधत्तुवलंभादो[1]।

---

§ १६८. जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान तीनों समान हैं। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि और अवस्थान दोनों समान हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे जीवके जितनी जघन्य वृद्धि होती है उतनी ही जघन्य हानि भी होती है अत: तीनोंका परिमाण समान कहा है, कमती बढ़ती नहीं कहा है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें भी जानना चाहिए। किन्तु आनतादिकमें वृद्धि नहीं होती, अत: वहां हानि और अवस्थानका प्रमाण समान कहा है।

इस प्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

वृद्धिविभक्ति

§ १६९. अब वृद्धिविभक्तिका कथन करते हैं। उसमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व-पर्यन्त तेरह अनुयोगद्वार होते हैं।

शङ्का—वृद्धि किसे कहते हैं।

समाधान—पदनिक्षेप विशेषको वृद्धि कहते हैं। ऐसा होने पर भी वृद्धिका कथन करनेमें पुनरुक्त दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सर्वत्र सामान्य कथनसे विशेष कथन पृथक् उपलब्ध होता है।

विशेषार्थ—जैसे भुजगारविभक्तिका ही एक विशेष पदनिक्षेप है, वैसे ही पदनिक्षेपका एक विशेष वृद्धिविभक्ति है। पदनिक्षेपमें मोहनीयके अनुभागसत्त्वमें उत्कृष्ट और जघन्य वृद्धि, उत्कृष्ट और जघन्य हानि तथा उत्कृष्ट और जघन्य अवस्थानका कथन किया है। किन्तु वृद्धिविभक्तिमें छ प्रकारकी वृद्धि, छ प्रकारकी हानि और अवस्थानका कथन किया है। सारांश यह है कि पद निक्षेपमें वृद्धि आदिका सामान्य रूपसे कथन है और वृद्धिविभक्तिमें वृद्धि और हानिके छ छ भेदों

---

१. आ० प्रतौ सव्वत्थ पुधुत्तु वलंभादो इति पाठः।

§ १७०. तत्थ समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोहणीयस्स अत्थि छवड्ढीओ छहाणीओ अवट्ठिदं च। एवं चदुसु गदीसु। णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अत्थि अणंतगुणहाणी अवट्ठिदं च। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं समुक्कित्तणाणुगमो समत्तो।

§ १७१. सामित्ताणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोहणीयस्स छवड्ढीओ[1] पंचहाणीओ[2] कस्स? अण्णद० मिच्छादिट्ठिस्स। अणंतगुणहाणी अवट्ठिदं च कस्स? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। एवं चदुसु गदीसु। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० छवड्ढीओ छहाणीओ अवट्ठिदं च कस्स? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अणंतगुणहाणी अवट्ठिदं च कस्स? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अणंतगुणहाणी अवट्ठाणं च कस्स? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स। एवं जाणि-

को लेकर कथन किया है। वे भेद हैं—अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि। इसीप्रकार हानिके भी छह भेद होते हैं। तथा इनके बाद होनेवाले अवस्थानका भी इसमें विचार किया गया है।

§ १७०. उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी छ वृद्धियाँ, छ हानियाँ और अवस्थान होते हैं। इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणहानि और अवस्थान होता है। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघकी तरह चारों गतियोंमें भी मोहनीयके अनुभागकी छहों वृद्धियां, छहों हानियां और अवस्थान होते हैं। किन्तु आनतादिकमें केवल अनन्तगुणहानि और अवस्थान ही होते हैं।

इसप्रकार समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ।

§ १७१. स्वामित्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी छ वृद्धियाँ और पाँच हानियाँ किसके होती हैं? किसी एक मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं। अनन्तगुणहानि और अवस्थिति किसके होती है? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती हैं। इसीप्रकार चारों गतियोंमें कथन करना चाहिए। किन्तु कुछ विशेषता है जो इसप्रकार है—पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छ वृद्धियाँ, छ हानियाँ और अवस्थिति किसके होती हैं? किसी भी मिथ्यादृष्टिके होती हैं। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक पर्यन्त अनन्तगुणहानि और अवस्थिति किसके होती है? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं?

१. ता० प्रतौ मोहणीयस्स अत्थि छवड्ढीओ, इति पाठः। २. ता० आ०प्रत्योः छहाणीओ इति पाठः।

दूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ १७२. कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० पंच-वड्ढी० केवचिरं कालादो होंति ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अणंतगुणवड्ढि-हाणिओ केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । पंचहाणिकालो जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयं ।

§ १७३. आदेसेण णेरइएसु मोह० पंचवड्ढी केवचिरं कालादो होंति ? ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अणंतगुणवड्ढी ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । छहाणी० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवं सव्वणेरइयाणं । णवरि सगट्ठिदी देसूणा । एवं तिरिक्खेसु । णवरि

किसी भी सम्यग्दृष्टिके होते हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयके अनुभागसत्कर्ममें छहों वृद्धियाँ और पाँचों हानियाँ मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं किन्तु अनन्तगुणहानि और अवस्थान सम्यग्दृष्टिके भी होते हैं और मिथ्यादृष्टिके भी होते हैं। आदेशसे चारों गतियोंमें भी यही व्यवस्था है। किन्तु पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त चूँकि मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अत: उनमें मिथ्यादृष्टिके ही सब वृद्धियाँ, सब हानियाँ और अवस्थान होते हैं। तथा आनतादिकमें अनन्तगुणहानि और अवस्थान ही होते हैं और आनतसे लेकर नवग्रैवेयकपर्यन्त मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, अतः अनन्तगुणहानि और अवस्थान दोनोंके ही होते हैं। किन्तु अनुदिशादिकमें सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, अत: अनन्तगुणहानि और अवस्थान सम्यग्दृष्टिके ही होते हैं।

इसप्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ।

§ १७२. कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे एक जीवके मोहनीयकी पाँचों वृद्धियोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पाँच हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है।

§ १७३. आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकी पाँचों वृद्धियोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। छह हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थानका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए।

अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णिपलिदो० सादिरेयाणि। एवं पंचिंदियतिरिक्खचउक्कस्स १ णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। मणुसतिएसु ओघभंगो। णवरि अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णिपलिदो० पुव्वकोडितिभागेण सादिरेयाणि। मणुस्सिणीसु अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि। मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। देव० भवणादि जाव सहस्सारो त्ति णेरइयभंगो। णवरि अवट्ठि० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। भवण०-वाण०-जोदिसि० देसूणा। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अणंतगुणहाणी जहण्णुक्क० एगस०। अवट्ठि० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

इतनी विशेषता है कि अवस्थानका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तीन पल्य है। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें अवस्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवस्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है। तथा मनुष्यिनियोंमें अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। मनुष्यअपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भंग है। सामान्य देव व भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि अवस्थानका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। किन्तु भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अवस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे एक जीवके पाँचों वृद्धियाँ कमसे कम एक समय तक होती हैं और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग कालतक होती हैं। तथा अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होती हैं। शेष पाँच हानियाँ एक समय तक ही होती हैं। अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेसठ सागर और पल्यका असंख्यातवाँ भाग है। इसके सम्बन्धमें भुजगार विभक्तिमें एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन करते हुए लिख आये हैं। आदेशसे भी चारों गतियोंमें छहों वृद्धियों और छहों हानियोंका काल ओघके समान है। किन्तु नरकगति, तिर्यञ्चगति और देवगतिमें अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तगुणहानि केवल चारित्रमोहकी क्षपणामें ही संभव है और उसका इन गतियोंमें अभाव है। अवस्थानका जघन्य काल तो आनतादिकके सिवा सर्वत्र एक ही समय है, केवल उत्कृष्ट काल पृथक् पृथक् है और उसका स्पष्टीकरण भुजगारविभक्तिके कालानुगममें कर दिया गया है। इस प्रकार मूलमें कही गई विशेषताको ध्यानमें रखकर चारों गतियोंमें

§ १७४. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० पंच-वड्ढि-पंचहाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगस० अंतोमु०, उक्क० असं-खेज्जा लोगा। अणंतगुणवड्ढीए अंतरं ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं। अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? जह० अंतोमु०, उक्क० तेवट्ठि-सागरोवमसदं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयं। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०।

§ १७५. आदेसेण णेरइएसु छवड्ढि-हाणीणमंतर केव० ? ज० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं सव्वणेरइयाणं। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। तिरिक्खेसु पंचवड्ढि-पंचहाणीणमंतरं

काल जान लेना चाहिए। आगे अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार कालका विचार कर लेना चाहिए।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १७४. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी पाँचों वृद्धियों और पाँचों हानियोंका अन्तरकाल कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोंका अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल कितना है। जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ओघसे पाचों वृद्धियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और पाचों हानियोंका अन्तर्मुहूर्त है. क्योंकि अनुभागकी हानि जिन परिणामोंसे होती है वे परिणाम तुरन्त ही नहीं होजाते। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है; क्योंकि इतने कालके लिये सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायमें चले जाने पर उक्त वृद्धियाँ हानियाँ वहाँ नहीं होतीं। अनन्त-गुणवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय होता है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है. क्योंकि तीन पल्यके लिये भोगभूमिमें, वीचमें सम्यग्मिथ्यात्वके साथ रहकर छियासठ छियासठ सागर तक दो वार वेदकसम्यक्त्वमें और अन्तमें ३१ सागरके लिये ग्रैवेयकमें चले जाने पर उतने काल तक अनन्तगुणवृद्धि नहीं हो यह सम्भव है। अनन्तगुण-हानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर होता है। अधिकसे अधिक उतने काल तक अवस्थितविभक्तिके हो जानेसे अनन्तगुणहानिमें अन्तर पड़ जाता है। अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर पूर्ववत् जानना चाहिए।

§ १७५. आदेशसे नारकियोंमें छ वृद्धियों और छ हानियोंका अन्तर काल कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय तथा हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सवका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सव नारकियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तिर्यञ्चोंमें पाँच वृद्धियों और

केव० ? ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणंतगुणवड्ढीए अंतरं केव० ? ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि छवड्ढि-पंचहाणीणमंतरं केव० चिरं० ? ज० एगस० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडि०पुधत्तं। अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० छवड्ढि०-अवट्ठि० ज० एगस०, छहाणीणमंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिं अंतोमुहुत्तं। मणुस्सतियाणं पंचिं०तिरिक्खतियभंगो। णवरि अणंतगुणवड्ढीए अंतरं ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा।

§ १७६. देवेसु छवड्ढि-पंचहाणीणमंतरं केव० ? ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? ज० अंतोमु०,

---

पाँच हानियोंका अन्तर काल कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। अवस्थानका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी जीवोंमें छह वृद्धियों और पाँच हानियोंका अन्तरकाल कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। अवस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकोंमें छह वृद्धियों और अवस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय है, छह हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियोंके समान भंग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—आदेशसे गतिमार्गणामें वृद्धि, हानि और अवस्थानका अन्तर भुजगार विभक्तिमें कहे गये भुजगार, अल्पतर और अवस्थानविभक्तिके अन्तरकालकी ही तरह विचारकर जान लेना चाहिये। विशेष इतना है कि तिर्यञ्चोंमें पाँच वृद्धियों और पाँच हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है जैसा कि पहले ओघसे बतलाया है।

§ १७६. देवोंमें छह वृद्धियों और पाँच हानियोंका अन्तरकाल कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अट्ठारह सागर है। अनन्तगुणहानिका अन्तर कितना है ? जघन्य

उक्क० एकतीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। भवणादि जाव सहस्सारो त्ति छवड्ढि-छहाणीणमंतरं केव०? ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अणंतगुणहाणि० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगस०। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अणंतगुणहाणि० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगस०। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

§ १७७. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठिदाणि णियमा अत्थि। एवं तिरिक्खोघं। आदेसेण णेरइएसु अणंतगुणवड्ढि-अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। भंगा १७७१४७ एत्तिया वत्तव्वा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख मणुस्सतिय-देव० भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। मणुस्सअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा। भंगा एत्थ एत्तिया होंति १५९४३२२। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अवट्ठि० णियमा

अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अवस्थानका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। भवनवासीसे लेकर सहस्रार कल्पपर्यन्त छह वृद्धियों और छह हानियोंका अन्तर कितना है? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अवस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। आनत स्वर्गसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—पहले जो ओघ और आदेशसे खुलासा किया है और स्वामित्व बतलाया है उसे देखकर यहाँ अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १७७. नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छह वृद्धियाँ, छह हानियाँ और अवस्थिति नियमसे होती हैं। इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। आदेशसे नारकियोंमें अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थिति नियमसे होती हैं। शेष वृद्धियाँ और हानियाँ भजनीय हैं। उनके भंग १७७१४७ इतने कहने चाहिए। इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सभी पद भजनीय हैं। यहाँ उनके भंग १५९४३२२ होते हैं। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके

अत्थि । अणंतगुणहाणि० भयणिज्जा । सिया एदे च अणंतगुणहाणिविहत्तियो च । सिया एदे च अणंतगुणहाणिविहत्तिया च । धुवभंगे पक्खित्ते तिण्णि भंगा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

देवोंमें अवस्थिति नियमसे होती है। अनन्तगुणहानि भजनीय है। कदाचित् अनेक जीव अवस्थित-वाले और एक जीव अनन्तगुणहानि विभक्तिवाला होता है। कदाचित् अनेक जीव अवस्थित-वाले और अनेक जीव अनन्तगुणहानिविभक्तिवाले होते हैं। इसप्रकार इन दो भागोंमें ध्रुवभङ्गके मिलानेसे तीन भङ्ग होते हैं। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे सब वृद्धि, सब हानि और अवस्थितविभक्तिवाले नाना जीव हैं। इसलिए वहाँ कोई पद भजनीय नहीं कहा है। इसी प्रकार आदेशसे सामान्य तिर्यञ्चोंमें ६ वृद्धि-वाले, ६ हानिवाले और अवस्थानवाले जीव नियमसे पाये जाते हैं। नारकियोंमें अनन्तगुण-वृद्धिवाले और अवस्थानवाले जीव तो नियमसे रहते हैं, शेष पदवाले जीव कदाचित् पाये जाते हैं और कदाचित् नहीं पाये जाते। उनके भंग १७७१४७ होते हैं जो इस प्रकार हैं—यहाँ पर ध्रुवपद एक है और अध्रुवपद ग्यारह हैं, क्योंकि पाँच वृद्धिवाले और छह हानिवाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं। इन ग्यारह अध्रुवपदोंके विकल्प निकालनेके लिये ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ / १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, इस प्रकार स्थापन करके नीचे स्थित १ अंक से ऊपर स्थित ११ के अंकमें भाग देने पर एक संयोगी ग्यारह प्रस्तार शलाकाएँ आती हैं। इसी प्रकार ऊपरके ग्यारह और दस अंकको परस्परमें गुणित करनेसे जो लब्ध आये उसमें नीचेके एक और दो अङ्कोंके गुणनफलसे भाग देने पर दो संयोगी प्रस्तार शलाकाएँ आती हैं। इसी प्रकार करते जाने पर प्रस्तार शलाकाओंका प्रमाण क्रमसे ११, ५५, १६५, ३३०, ४६२, ४६२, ३३०, १६५, ५५, ११, १ होता है। इनमें एक संयोगी विकल्पोंको २ से गुणा करना चाहिये, क्योंकि एक संयोगमें—कदाचित् अमुक हानि या वृद्धिवाला एक जीव पाया जाता है और कदाचित् अनेक जीव पाये जाते हैं—ये दो ही भंग होते हैं। दो संयोगी प्रस्तार विकल्पोंको ४ से गुणा करना चाहिये, क्योंकि आगे आगे गुणकारका प्रमाण दुगुना दुगुना होता जाता है। अतः पूर्वोक्त प्रस्तार विकल्पोंके २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, ५१२ १०२४, २०४८ गुणकार होते हैं। अपने अपने गुण्यसे अपने अपने गुणकारको गुणा करके जोड़ देने पर सब भंगोंका प्रमाण १७७१४६ होता है। इसमें एक ध्रुवभंगके जोड़ देनेसे कुल भंगोंकी संख्या १७७१४७ होती है। मनुष्य अपर्याप्तमें तेरह ही पद विकल्पसे होते हैं, अतः १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ / १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३ इस प्रकार संदृष्टि स्थापित करके ऊपर लिखे क्रमानुसार प्रस्तार शलाकाओंको उत्पन्न करके और फिर उन्हें २, ४ आदि दुगुने दुगुने गुणकारोंसे गुणा करके सबको जोड़ देने पर १५९४३२२ भंग होते हैं। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक अवस्थितवाले जीव नियमसे होते हैं और अनन्तगुणहानिवाले जीव विकल्पसे होते हैं, अतः २ अध्रुव भंग और एक ध्रुव भंग इस तरह कुल तीन भंग होते हैं।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगम समाप्त हुआ।

---

१. आ० प्रतौ णियमा अत्थि सिया इति पाठः ।

§ १७८. भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० पंचवड्ढि-छहाणिविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखे०भागो । अणंतगुणवड्ढि-विहत्ति० संखे०भागो । अवट्ठि० संखेज्जा भागा । एवं सव्वणेरइय--सव्वतिरिक्ख--मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सारो त्ति । मणुस्सपज्जत्त-मणुस्सिणिसु छवड्ढि-छहाणिविहत्ति० सव्वजीवाणं केव० ? संखे०भागो । अवट्ठि० संखेज्जा भागा । आणदादि जाव अवराइदं ति अणंतगुणहाणि० सव्वजी० केव० असंखे०भागो । अवट्ठि० असंखेज्जा भागा । सव्वट्ठे अणंतगुणहाणि० सव्वजी० संखे०भागो । अवट्ठि० संखेज्जा भागा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

§ १७९. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठिदविहत्तिया दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । एवं तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइएसु सव्वपदा असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुस्सअपज्ज०-देव-भवणादि० जाव सहस्सारो त्ति । मणुसपज्ज०-मणुस्सिणीसु सव्वपदा संखेज्जा । आणदादि जाव अवराइदं ति दोपदा असंखेज्जा । सव्वट्ठे दोपदा संखेज्जा ।

---

§ १७८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकर्मकी पाँच वृद्धि और छह हानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अनन्तगुणवृद्धिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, और भवनवासीसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें छह वृद्धि और छह हानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है । अवस्थितविभक्तिवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तगुणहानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७९. परिमाणानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव द्रव्य प्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । आदेशसे नारकियोंमें सब विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें जानाना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अनन्तगुणहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं ।

एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो।

§ १८०. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० सव्वपदविहत्तिया केवडि० खेत्ते ? सव्वलोगे। एवं तिरिक्खोघं। आदेसेण णेरइयादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मोहणीयस्स अप्पप्पणो सव्वपदा केव० ? लोगस्स असंखे०भागे। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

§ १८१. पोसणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० सव्वपदाणं खेत्तभंगो। एवं तिरिक्खोघं। आदेसेण णेरइएसु सव्वपदेहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो छचोद्दसभागा वा देसूणा। पढमपुढवि० खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति सगपोसणं कायव्वं। सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्साणं सव्वपदविहत्तिएहि केव० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। देवेसु सव्वपदवि० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा। एवं सव्वदेवाणं। णवरि सगपोसणं जाणिदूण णेयव्वं। एवं णेदव्वं जाव

सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तगुणहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ १८०. क्षेत्रानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी सब पद विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें हैं ? सर्वलोकमें हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके जानना चाहिए। आदेशसे नारकीसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकी अपनी अपनी सब विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें हैं। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इसप्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ १८१. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी सब पद विभक्तियोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये। आदेशसे नारकियोंमें सब पद विभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त अपने अपने स्पर्शनके समान कथन करना चाहिये। सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें सब पद विभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और सर्वलोकका स्पर्शन किया है। देवोंमें सब पद विभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए। किन्तु अपने अपने स्पर्शन का

अणाहारए त्ति ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १८२. कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० सव्वपदवि० केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । एवं तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइएसु अणंतगुणवड्ढि०--अवट्ठि०विहत्ति० केव० ? सव्वद्धा । सेसपदवि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्स-देव-भवणादि जाव सहस्सारो त्ति । णवरि मणुस्सेसु अणंतगुणहाणिविहत्तियाणं ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० पंचवड्ढि० जह० एगस०, उक्क० आवलि०असंखे०-

जानकर उसे घटित करना चाहिये । इस प्रकार अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघ से छहों हानि, छहों वृद्धि और अवस्थानवाले जीवोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । सामान्य नारकियोंमें सब विभक्तिवाले जीवोंने संभव पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है और अतीत कालमें मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है और संभव शेष पदोंके द्वारा लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है। पहले नरकके नारकियोंने लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है तथा दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंने वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भागका और अतीत कालमें मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा क्रमसे कुछ कम एक बटे चौदह, कुछ कम दो बटे चौदह, कुछ कम तीन बटे चौदह, कुछ कम चार बटे चौदह, कुछ कम पाँच बटे चौदह और कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । संभव शेष पदोंके द्वारा लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है । सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें सब विभक्तिवाले जीवोंने अतीत कालमें मारणान्तिक और उपपादके द्वारा सर्व लोकका स्पर्शन किया है और संभव शेष पदोंके द्वारा अतीत कालमें तथा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है । देवोंमें सब विभक्तिवाले जीवोंने वर्तमानमें लोकके असंख्यातवें भागका तथा अतीत कालमें विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और विक्रिया पदके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह और मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इस प्रकार इस स्पर्शनको जानकर यहाँ स्पर्शन यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए । तथा अन्य मार्गणाओंमें भी वह जान लेना चाहिए ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८२. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी सब पद विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । आदेशसे नारकियोंमें अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है । शेष पद विभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें अनन्तगुणहानिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पांचों वृद्धि विभक्तिवालोंका जघन्य

भागो। पंचहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अणंतगुणवड्ढि०-अवट्ठि० सव्वद्धा। अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। मणुसअपज्ज० णारयभंगो। णवरि अणंतगुणवड्ढि०-अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। आणदादि जाव अवराइदो त्ति अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०-भागो। अवट्ठि० सव्वद्धा। सव्वट्ठे अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अवट्ठि० सव्वद्धा। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

§ १८३. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघे० मोह० तेरसपदाणं णत्थि अंतरं। एवं तिरिक्खोघं। आदेसेण णेरइएसु पंचवड्ढि--पंचहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणंतगुणवड्ढि--अवट्ठि० णत्थि अंतरं। अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्सतिय--देव--भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। मणुसअपज्ज० मणुस्सोघं। णवरि अणंतगुणवड्ढि-अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। आणदादि [जाव]

काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पांच हानिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है। अनन्तगुणहानिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भंग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है। सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तगुणहानिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अवस्थितविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १८३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयके तेरह पदोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। आदेशसे नारकियोंमें पाँच वृद्धि और पाँच हानियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल नहीं है। अनन्तगुणहानिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सामान्य मनुष्योंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि अनन्तगुणवृद्धिविभक्ति और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग-

णवगेवज्जा त्ति अणंतगुणहाणी० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि। अवट्ठि० णत्थि अंतरं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अणंतगुणहाणी० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो० संखे० भागो। अवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

§ १८४. भाव० सव्वत्थ ओदइओ भावो।

§ १८५. अप्पाबहुआणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवा मोह० अणंतभागहाणिविहत्तिया जीवा। असंखेज्जभागहाणि० जीवा असंखे०गुणा। संखेज्जभागहाणि० जीवा संखे०गुणा। संखे०गुणहाणि० जीवा संखे०-गुणा। असंखे०गुणहाणि० जीवा असंखे०गुणा। अणंतभागवड्ढि० जीवा असंखे० गुणा०। असंखे०भागवड्ढि० जीवा असंखे०गुणा। संखे०भागवड्ढि० जीवा संखे०गुणा। संखेज्जगुणवड्ढि० जीवा संखे०गुणा। असंखे०गुणवड्ढि०जीवा असंखे०गुणा। अणंत-गुणहाणिविं० जीवा असंखे०गुणा। अणंतगुणवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा। अवट्ठिदवि०

प्रमाण है। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रातदिन है। अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनुदिशसे अपराजित तकके देवोंमें वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा काल बतलाते हुए जिन विभक्तिवालोंका काल सर्वदा बतलाया है उनमें अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि वे सदा पाये जाते हैं, शेषमें अन्तर है। अपर्याप्त मनुष्योंमें अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उतना ही बतलाया है जितना मनुष्य अपर्याप्तक मार्गणाका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा है। इसी प्रकार अन्यमें भी समझ लेना चाहिये।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १८४. भावानुगम की अपेक्षा सर्वत्र औदायिक भाव होता है।

§ १८५. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी अनन्तभागहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। असंख्यातभाग-हानिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। संख्यातगुणहानिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। असंख्यातगुणहानिवाले जीव असं-ख्यातगुणे हैं। अनन्तभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। असंख्यातभागवृद्धि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। संख्यातभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। असंख्यातगुणवृद्धिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तगुणहानिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तगुणवृद्धिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अवस्थितविभक्तिवाले

जीवा संखे०गुणा। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस्स-मणुस्सअपज्ज०-देव जाव सहस्सारो त्ति। मणुस्सपज्ज०-मणुस्सिणीसु एवं चेव। णवरि जम्हि असंखेज्जगुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं। आणदादि जाव अवराइदो त्ति सव्वत्थोवा अणंतगुणहाणिवि० जीवा। अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा। एवं सव्वट्ठे। णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं। एवं जाणिदूण णेयव्वं जाव अणाहारि त्ति।

एवं वड्ढिविहत्ती समत्ता।

§ १८६. ठाणपरूवणाए तिण्णि अणियोगद्दाराणि—परूवणा पमाणमप्पाबहुअं चेदि। तत्थ परूवणा वुच्चदे। तं जहा—एत्थ अणुभागट्ठाणाणि बंधसमुप्पत्तिय-हदसमुप्पत्तिय-हदहदसमुप्पत्तियअणुभागट्ठाणभेदेण तिविहाणि होंति। तेसिं तिविहाणं पि अणुभागट्ठाणाणं जं लक्खणपदुप्पायणं सा परूवणा णाम। तत्थ हदसमुप्पत्तियं कादूणच्छिदसुहुमणिगोद-जहण्णाणुभागसंतट्ठाणसमाणबंधट्ठाणमादिं कादूण जाव सण्णिपंचिंदियपज्जत्तसव्वुक्कस्साणुभागबंधट्ठाणे त्ति ताव एदाणि असंखे०लोगमेत्तछट्ठाणाणि बंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणि त्ति भण्णंति, बंधेण समुप्पण्णत्तादो। अणुभागसंतट्ठाणघादेण जमुप्पण्णमणुभागसंतट्ठाणं तं पि एत्थ बंधट्ठाणमिदि घेत्तव्वं, बंधट्ठाणसमाणत्तादो। पुणो एदेसिमसंखे०लोगमेत्त-छट्ठाणाणं मज्झे अणंतगुणवड्ढि-अणंतगुणहाणिअट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु असंखे०लोग-

जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिस विभक्तिमें असंख्यातगुणा कहा है उसमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये। आनतसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अनन्त गुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उसमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इस प्रकार वृद्धिविभक्ति समाप्त हुई।

§ १८६. स्थान प्ररूपणामें तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। उनमेंसे प्ररूपणाको कहते हैं। वह इस प्रकार है—इस प्रकरणमें बन्धसमुत्पत्तिक, हतसमुत्पत्तिक और हतहतसमुत्पत्तिकके भेदसे अनुभागस्थान तीन प्रकारके होते हैं। इन तीनों ही प्रकारके अनुभागस्थानोंका जो लक्षण कहना सो प्ररूपणा है। उनमेंसे हतसमुत्पत्तिकसत्कर्मको करके स्थित हुए सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य अनुभागसत्त्वस्थानके समान बन्धस्थानसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके सर्वोत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थान पर्यन्त जो असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान हैं उन्हें बन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं, क्योंकि वे स्थान बन्ध से उत्पन्न होते हैं। अनुभागसत्त्वस्थानके घातसे जो अनुभाग-सत्त्वस्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें भी यहां बन्धस्थान ही मानना चाहिये, क्योंकि वे बन्धस्थानके समान हैं। आशय यह है कि सूक्ष्म निगोदिया जीवसे लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव पर्यन्त छ प्रकार की हानि-वृद्धियों को लिये हुए जो अनुभागबन्धस्थान होते हैं वे बन्धसमुत्पत्तिक-

मेत्तछट्टाणाणि हदसमुप्पत्तियसंतकम्मछट्टाणाणि भण्णंति। बंधट्टाणघादेण बंधट्टाणाणं विचालेसु जच्चंतरभावेण उप्पण्णत्तादो। पुणो एदेसिमसंखे०लोगमेत्ताणं हदसमुप्पत्तिय-संतकम्मट्टाणाणमणंतगुणवड्ढि-हाणिअट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु असंखे०लोगमेत्तछट्टाणाणि हदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्टाणाणि वुच्चंति, घादेणुप्पण्णअणुभागट्टाणाणि बंधाणुभाग-ट्ठाणेहिंतो विसरिसाणि घादिय बंधसमुप्पत्तिय-हदसमुप्पत्तियअणुभागट्टाणेहिंतो विसरिस-भावेण उप्पाइदत्तादो। कधमेक्कादो जीवदव्वादो अणेयाणमणुभागट्टाणकज्जाणं समु-ब्भवो? ण, अणुभागबंध-घाद-घादघादहेदुपरिणामसंजोएण णाणाकज्जाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो। एदेसिं तिविहाणमवि अणुभागट्टाणाणं जहा वेयणभावविहाणे परूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा।

एवं परूवणा समत्ता।

स्थान कहलाते हैं, क्योंकि जो स्थान बन्धसे उत्पन्न हो वह बन्धसमुत्पत्तिक है। किन्तु पहले बँधे हुए कुछ अनुभागस्थानोंमें रसघात आदि होनेसे भी नवीनता आ जाती है किन्तु वे बन्धस्थानके समान होते हैं, अतः उन स्थानोंको भी बन्धस्थानमें ही सम्मिलित किया जाता है। सारांश यह है कि बंधनेवाले स्थानों को ही बन्धसमुत्पत्तिकस्थान नहीं कहते किन्तु पूर्वबद्ध अनुभागस्थानोंमें भी रसघात होनेसे परिवर्तन होकर समानता रहती है तो वे स्थान भी बन्ध स्थान ही कहे जाते हैं। इन असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंके मध्यमें अष्टांक और उर्वंक रूप जो अनन्तगुणवृद्धियाँ और अनन्तगुणहानियां हैं उनके मध्यमें जो असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थान हैं उन्हें हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थान कहते हैं, क्योंकि बन्धस्थान का घात होनेसे बन्धस्थानोंके बीचमें ये जात्यन्तररूपसे उत्पन्न होते हैं। इन असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिक सत्कर्म-स्थानोंके, जो कि अष्टांक और उर्वंकरूप अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि रूप हैं, बीचमें जो असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान हैं उन्हें हतहतसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थान कहते हैं। बन्धस्थानोंसे विलक्षण जो अनुभागस्थान रसघातसे उत्पन्न हुए हैं उनका घात करके उत्पन्न हुए ये स्थान बन्धसमुत्पत्तिक और हतसमुत्पत्तिक अनुभागस्थानोंसे विलक्षणरूपसे ही वे उत्पन्न किये जाते हैं।

शंका—एक जीवद्रव्यसे अनेक अनुभागस्थानरूप कार्योंकी उत्पत्ति कैसे होती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनुभागबन्ध, अनुभागका घात और उस घातितके भी पुनः घातके कारण भूत परिणामोंके संयोगसे एक जीवद्रव्यसे नाना कार्यों की उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है।

इन तीनों ही प्रकारके अनुभागस्थानोंका जैसा कथन वेदनाभावविधानमें किया है वैसा यहां भी कर लेना चाहिये।

विशेषार्थ—स्थान प्ररूपणामें तीन अनुयोगोंके द्वारा अनुभागस्थानका कथन किया है। अनुभागस्थान तीन हैं—बन्धसमुत्पत्तिक, हतसमुत्पत्तिक और हतहतसमुत्पत्तिक। जो अनु-भागस्थान बन्धसे होते हैं उन्हें बन्धसमुत्पत्तिक कहते हैं। सूक्ष्म निगोदिया जीवके जो जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है उसके समान जो बन्धस्थान होता है वह जघन्य बन्धसमुत्पत्तिक

§ १८७. संपहि पमाणं वुच्चदे। तं जहा—बंधसमुप्पत्तिय-हदसमुप्पत्तिय-हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणं तिण्हं पि पमाणमसंखेज्जा लोगा। कुदो? तक्करणपरिणामाणमसंखेज्जलोगपमाणत्तादो।

एवं पमाणाणुगमो समत्तो।

❀ अप्पाबहुगाणुगमं वत्तइस्सामो।

§ १८८ तं जहा—सव्वत्थोवाणि मोहबंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणि। हदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणाणि असंखे०गुणाणि। कुदो? असंखेज्जलोगमेत्तबंधसमुप्पत्तियछट्ठाणाणमट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु पुध पुध असंखे०लोगमेत्तहदसमुप्पत्तियसंतकम्मछट्ठाणाणमुप्प-

---

स्थान कहलाता है और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके जो सर्वोत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थान होता है वह उत्कृष्ट वन्धसमुत्पत्तिक स्थान होता है। जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त इन वन्धसमुत्पत्तिक स्थानों की संख्या असंख्यात लोकप्रमाण है। सत्तामें स्थित अनुभागका घात कर देनेसे जो अनुभागस्थान होते हैं उनमेंसे भी कुछ स्थान वन्धस्थान ही कहे जाते हैं, क्योंकि उन स्थानोंमें जो अनुभाग पाया जाता है वह अनुभाग बध्यमान अनुभागस्थानके समान होता है। किन्तु जो अनुभाग स्थान घातसे ही उत्पन्न होते हैं—बन्धसे नहीं होते, और जिनका अनुभाग वन्धसमुत्पत्तिकस्थानों से भिन्न होता है उन्हें हतसमुत्पत्तिक कहते हैं। ये हतसमुत्पत्तिकस्थान अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिरूप वन्धसमुत्पत्तिक असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंमें ऊर्वंक और अष्टांकके बीचमें उत्पन्न होते हैं और इनका प्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंसे असंख्यातगुणा होकर भी असंख्यात लोकप्रमाण ही है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिरूप इन असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिक स्थानोंमें ऊर्वंक और अष्टांकके वीचमें अनुभागका पुनः पुनः घात करनेसे जो अनुभागस्थान होते हैं उन्हें हतहतसमुत्पत्तिक कहते हैं। पूर्ववत् इनका प्रमाण हतसमुत्पत्तिक स्थानोंसे असंख्यातगुणा होकर भी असंख्यात लोकप्रमाण ही है। षट्खण्डागमके वेदनाखण्डमें वेदनाभावविधान नामका एक प्रकरण है उसमें इन अनुभागस्थानोंका विस्तारसे वर्णन किया है। तथा इस ग्रन्थके इस अनुभागविभक्ति नामक प्रकरणके अन्तमें भी वही वर्णन अक्षरशः किया गया है, अतः इसका विशेष स्पष्टीकरण वहाँसे जान लेना चाहिए।

इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ १८७. अब प्रमाणको कहते हैं। वह इस प्रकार है—वन्धसमुत्पत्तिक, हतसमुत्पत्तिक और हतहतसमुत्पत्तिक इन तीनों ही स्थानोंका प्रमाण असंख्यात लोक है, क्योंकि उनके कारणभूत परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ।

* अव अल्पवहुत्वानुगमको कहेंगे।

§ १८८. वह इस प्रकार है—मोहनीयके वन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे थोड़े हैं। इनसे हतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थान असंख्यातगुणे हैं क्योंकि अष्टांक और उर्वंकरूप असंख्यात लोकप्रमाण वन्धसमुत्पत्तिक षट्स्थानोंके बीचमें पृथक् पृथक् असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थानों की उत्पत्ति होती है।

त्तीदो। को गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। हदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणाणि असंखेज्ज-गुणाणि। कुदो? असंखेज्जलोगमेत्तहदसमुप्पत्तियछट्ठाणाणमट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु पुध पुध असंखेज्जलोगमेत्तहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणाणमुप्पत्तीदो। को गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। एवं तदिय-चउत्थ-पंचमादिवारसमुप्पण्णहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्म-ट्ठाणाणं पि अणंतरहेट्ठिमहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्ठाणेहिंतो अणंतरउवरिमाणमसंखेज्ज-गुणत्तं वत्तव्वं।

एवं मूलपयडिअणुभागविहत्ती समत्ता।



शङ्का—यहाँ पर गुणकारका प्रमाण कितना है?

समाधान—असंख्यात लोक। अर्थात् वन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंसे हतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातलोकगुणे हैं।

इनसे हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थान असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अष्टांकसे लेकर उर्वंकरूप असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पतिक षट्स्थानोंके वीचमें पृथक् पृथक् असंख्यात लोक-प्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होती है। यहाँ पर भी गुणकार असंख्यात लोक है। इस प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें आदि वार उत्पन्न हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थानोंमें भी अनन्तर पूर्व हतहतसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थानोंसे अनन्तर उत्तरवर्ती हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्म स्थान असंख्यातगुणे कहने चाहिये।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मके वन्धसमुत्पत्तिक स्थान सबसे थोड़े हैं। उनसे हतसमुत्पत्तिक अनुभागसत्कर्मस्थान असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि एक एक वन्धस्थानके मध्यमें असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान उत्पन्न होते हैं, अतः जव वन्धस्थान असंख्यात लोकप्रमाण है और एक एक वन्धसमु-त्पत्तिकस्थान सम्वन्धी पट्स्थानके अष्टांक और उर्वंकके वीचमें असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान होते हैं तो वन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंसे घातस्थान या हतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणे सिद्ध होते हैं। इसीप्रकार असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी पट्स्थानोंके अष्टांक और उर्वकोंके अन्तरालोंमेंसे प्रत्येक अन्तरालमें असंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थान होते हैं, अतः हतसमुत्पत्तिकस्थानसे हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका प्रमाण असंख्यात लोकगुणा होता है, इसलिये वे सबसे अधिक होते हैं।

इस प्रकार मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति समाप्त हुई।



उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती

❀ **उत्तरपयडिअणुभागविहत्तिं वत्तइस्सामो ।**

§ १८९. मोहणीयमूलपयडीए अवयवभूदमोहपयडीणमुत्तरपयडि त्ति ववएसो । तासिमुत्तरपयडीणमणुभागस्स विहत्तिं भेदं वत्तइस्सामो त्ति जइवसहाइरियपइज्जासुत्तमेदं । संपहि सव्वमोहुत्तरपयडीणमणुभागफद्दयाणं रयणाए अणवगयाए उवरिमअहियारा ण णव्वंति त्ति काऊण फद्दयरयणपरूवणट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि ।

❀ **पुव्वं गणिज्जा इमा परूवणा ।**

§ १९०. इमा भणिस्समाणफद्दयपरूवणा पढमं चेव णायव्वा, अण्णहा सव्वघादि-देसघादिएगट्ठाण-विट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणादिअणुभागवियप्पाणं जाणावणोवायाभावादो ।

❀ **सम्मत्तस्स पढमं देसघादिफद्दयमादिं कादूण जाव चरिमदेसघादि-फद्दगं त्ति एदाणि फद्दयाणि ।**

§ १९१. सम्मत्तस्स जं पढमं फद्दयं सव्वजहण्णं तं देसघादि त्ति जाणावणट्ठं 'पढमं देसघादिफद्दयं' इदि णिद्दिट्ठं । सम्मत्तस्स जं चरिमफद्दयं सव्वुक्कस्सं लदासमाण-ट्ठाणं समुल्लंघिय दारुअसमाणट्ठाणावट्ठिदं तं पि देसघादि त्ति जाणावणट्ठं 'चरिम-देसघादिफद्दयं त्ति' त्ति भणिदं । पढमदेसघादिफद्दयमादिं कादूण जाव चरिमदेसघादि-

---

उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति

* **अब उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्तिको कहते हैं ।**

§ १८९. मूल मोहनीयकर्मकी अवयवभूत मोहप्रकृतियोंकी उत्तरप्रकृति संज्ञा है। उन उत्तरप्रकृतियोंके अनुभागकी विभक्ति अर्थात् भेदोंको कहते हैं। इस प्रकार यह आचार्य यतिवृषभ-का प्रतिज्ञारूप सूत्र है। अर्थात् इस सूत्रके द्वारा आचार्य ने उत्तरप्रकृतिके भेदोंको कहनेकी प्रतिज्ञा की है। अब मोहनीयकी सब उत्तर प्रकृतियोंके अनुभागस्पर्धककोंकी रचनाके जाने विना आगेके अधिकार नहीं जाने जा सकते ऐसा विचार करके स्पर्धकरचनाका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* **पहले इस प्ररूपणाको जानना चाहिये ।**

§ १९०. आगे कही जानेवाली इस स्पर्धकप्ररूपणाको पहले ही जान लेना चाहिए, क्योंकि उसके जाने विना अनुभागके सर्वघाती, देशघाती, एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक, चतुः-स्थानिक आदि भेदोंके जाननेका कोई उपाय नहीं है।

* **सम्यक्त्वप्रकृतिके प्रथम देशघातिस्पर्धकसे लेकर अन्तिम देशघातिस्पर्धक पर्यन्त ये स्पर्धक होते हैं ।**

§ १९१. सम्यक्त्वप्रकृतिका सबसे जघन्य जो पहला स्पर्धक है वह देशघाती है यह बतलानेके लिये 'प्रथम देशघातिस्पर्धक' ऐसा कहा है। सम्यक्त्वका सबसे उत्कृष्ट जो अन्तिम स्पर्धक है जो कि लताके समान स्थानका उल्लघन करके दारुसमान स्थानमें स्थित है। अर्थात् जो लतारूप न होकर दारुरूप है वह भी देशघाती है यह बतलानेके लिये 'अन्तिम देशघातिस्पर्धक' ऐसा कहा है। प्रथम देशघाती स्पर्धकसे लेकर अन्तिम देशघाती स्पर्धक पर्यन्त ये सब सम्यक्त्वके

फद्दगं ति एदाणि सम्मत्तस्स फद्दयाणि होंति त्ति घेत्तव्वं। लदासमाणजहण्णफद्दयमादिं कादूण जाव देसघादिदारुअसमाणुक्कस्सफद्दयं ति ट्ठिदसम्मत्ताणुभागस्स कुदो देसघादित्तं ? ण, सम्मत्तस्स एगदेसं घादेंताणं तदविरोहादो। को भागो सम्मत्तस्स[1] तेण घाइज्जदि ? थिरत्तं णिक्कंखत्तं।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादिआदिफद्दयमादिं कादूण दारुअसमाणस्स अणंतभागे णिट्ठिदं।

§ १९२. सम्मत्तुक्कस्सफद्दयस्स अणंतरउवरिमफद्दयं[2] तं सव्वघादि सम्मत्तुक्कस्सफद्दयादो अणंतगुणं, तप्पाओग्गछट्ठाणगुणगारेसु पविट्ठेसु उप्पण्णत्तादो। एदं[3] फद्दयमादिं कादूण जाव दारुसमाणस्स अणंतिमभागो त्ति एदम्हि अंतरे अवट्ठिदं सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं। सम्मामिच्छत्तफद्दयाणं कुदो सव्वघादित्तं ? णिस्सेससम्मत्तघायणादो। ण च सम्मामिच्छत्ते सम्मत्तस्स गंधो वि अत्थि, मिच्छत्त-

---

स्पर्धक होते हैं ऐसा अर्थ यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

शंका—लतारूप जघन्य स्पर्धकसे लेकर देशघाती दारुरूप उत्कृष्टस्पर्धक पर्यन्त स्थित सम्यक्त्वका अनुभाग देशघाती कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभाग सम्यग्दर्शनके एकदेशको घातता है, अतः उसके देशघाती होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—सम्यक्त्वके कौनसे भागका सम्यक्प्रकृति द्वारा घात होता है ?

समाधान—उसकी स्थिरता और निष्कांक्षताका घात होता है। अर्थात् उसके द्वारा घाते जानेसे सम्यग्दर्शनका मूलसे विनाश तो नहीं होता किन्तु उसमें चल मलादिक दोष आ जाते हैं।

विशेषार्थ—शक्तिकी अपेक्षासे कर्मोंके अनुभागस्थानके चार विकल्प किये जाते हैं—लतारूप, दारुरूप, अस्थिरूप और शैलरूप। लताभाग और दारुका अनन्तवाँ भाग देशघाती कहलाता है और दारुका शेष बहुभाग तथा अस्थि और शैलरूप अनुभाग सर्वघाती कहा जाता है। सम्यक्त्व प्रकृतिके स्पर्धक लता भागसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग तक होते हैं, क्योंकि यह देशघाती है और इसके देशघाती होनेका सबूत यह है कि यह सम्यक्त्वको नहीं घातती, क्योंकि इसके उदयमें वेदकसम्यक्त्व होता है।

❀ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका अनुभागसत्कर्म प्रथम सर्वघाती स्पर्धकसे लेकर दारुके अनन्तवेंभाग तक होता है।

§ १९२. सम्यक्त्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे अनन्तरवर्ती जो आगेका स्पर्धक है वह सर्वघाती है जो कि सम्यक्त्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे अनन्तगुणी शक्तिवाला है क्योंकि उसके योग्य षट्स्थान गुणकारोंके होने पर उसकी उत्पति हुई है। अर्थात् अपने पूर्वके स्थानसे यह स्थान अपने योग्य षट्स्थानवृद्धियोंको लिये हुए है। इस स्पर्धकसे लेकर दारुभागके अनन्तवेंभाग पर्यन्त इस बीचमें जो स्पर्धक अवस्थित हैं वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अनुभाग सत्कर्म है।

शङ्का—सम्यग्मिथ्यात्वके स्पर्धक सर्वघाती कैसे हैं ?

---

१. आ० प्रतौ 'को पडिभागो सम्मत्तस्स' इति पाठः। २. आ० प्रतौ अणंतरउवरिमफद्दयं इति पाठः। सत्राग्रेऽप्येवमेव पाठ उपलभ्यते बहुलतया। ३. ता० आ० प्रत्योः 'एवं' इति पाठः।

सम्मत्तेहिंतो जच्चंतरभावेणुप्पण्णे सम्मामिच्छत्ते सम्मत्त-मिच्छत्ताणमत्थित्तविरोहादो।

❀ मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जम्हि सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं णिट्ठिदं तदो अणंतरफद्दयमाढत्ता उवरि अप्पडिसिद्धं ।

§ १९३. जम्मि उद्देसे दारुअसमाणस्स अणंतिमभागे सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं णिट्ठिदं तत्थ सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिउक्कस्सफद्दयं होदि। तदो अणंतरमुवरिममिच्छत्तजहण्णफद्दयं सम्मामिच्छत्तुक्कस्सफद्दयादो अणंतगुणं तमाढत्ता तमादिं कादूण उवरि अप्पडिसिद्धं मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं होदि। सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सफद्दयादो अणंतगुणमिच्छत्तजहण्णफद्दयमादिं कादूण उवरि पडिसेहेण विणा दारुअसमाणाणुभागस्स अणंते भागे अट्ठिसमाण-सेलसमाणट्ठाणाणं सयलफद्दयाणि च गंतूण मिच्छत्ताणुभागसंतकम्ममवट्ठिदं ति भणिदं होदि।

समाधान—क्योंकि वे सम्पूर्ण सम्यक्त्वका घात करते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके उदयमें सम्यक्त्वकी गंध भी नहीं रहती, क्योंकि मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी अपेक्षा जात्यन्तररूपसे उत्पन्न हुए सम्यग्मिथ्यात्वमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अस्तित्वका विरोध है। अर्थात् उस समय न सम्यक्त्व ही रहता है और न मिथ्यात्व ही रहता है, किन्तु मिला हुआ दही-गुड़के समान एक विचित्र ही मिश्रभाव रहता है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वप्रकृतिके उत्कृष्ट देशघाती स्पर्धकके अन्तरवर्ती जघन्य सर्वघाती स्पर्धकसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग तक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके स्पर्धक होते हैं, क्योंकि यह प्रकृति जात्यन्तर सर्वघाती है। इसका उदय रहते हुए न तो सम्यक्त्वरूप ही परिणाम होते हैं और न मिथ्यात्वरूप ही परिणाम होते हैं, किन्तु मिश्ररूप परिणाम होते हैं।

*** जिस स्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म समाप्त हुआ उसके अनन्तरवर्ती स्पर्धकसे लेकर आगे विना प्रतिषेधके मिथ्यात्वसत्कर्म होता है**

§ १९३. दारुरूप अनुभागके अनन्तवें भागरूप जिस स्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभाग सत्कर्म समाप्त हुआ है उस स्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वका सर्वघाती उत्कृष्ट स्पर्धक होता है और उससे ऊपर आगेका अनन्तरवर्ती स्पर्धक मिथ्यात्वका जघन्य स्पर्धक है जो सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे अनन्तगुणी शक्तिवाला है। उससे लेकर आगे विना किसी रुकावटके मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म होता है। आशय यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे मिथ्यात्वका जघन्य स्पर्द्धक अनन्तगुणा है। उस स्पर्धकसे लेकर आगे बिना किसी रुकावटके अर्थात् दारु समान अनुभागका अनन्त बहुभाग तथा अस्थिरूप और शैलरूप स्थानोंके समस्त स्पर्धकोंको व्याप्त करके मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म स्थित है। अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे लेकर शैल समान अनुभागके चरम स्पर्धक पर्यन्त सब स्पर्धक मिथ्यात्वके हैं।

विशेषार्थ—दारुके जिस भाग तक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके स्पर्धक बतलाये हैं उससे अनन्तरवर्ती स्पर्धकसे लेकर आगेके सब स्पर्धक मिथ्यात्व प्रकृतिके होते हैं। अर्थात् दारुका अवशिष्ट सब भाग, अस्थिरूप और शैलरूप सब स्पर्धक मिथ्यात्वप्रकृतिके होते हैं।

---

१. आ प्रतौ जच्चंतरभाणुवेप्पणो इति पाठः।

❀ बारसकसायाणमणुभागसंतकम्मं सव्वघादीणं दुट्ठाणियमादिफद्दयमादिकादूण उवरिमप्पडिसिद्धं ।

§ १९४. बारसकसायाणं त्ति वुत्ते अणंताणुबंधि--अपच्चक्खाण-पच्चक्खाण-कोह-माण-माया-लोहाणं गहणं । कुदो ? अण्णासिं बारसपयडीणं सव्वघादीण-मभावादो । सव्वघादीणं दुट्ठाणियमणुभागमादिं कादूणे त्ति भणिदे सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णफद्दयसरिसफद्दयमादिं कादूणे त्ति घेत्तव्वं । एदं कुदो णव्वदे ? सव्वघादीणं दुट्ठाणियमादिफद्दयं इदि सुत्तवयणादो । मिच्छत्तस्स जहण्णफद्दयमादिं कादूणे त्ति किण्ण वुच्चदे ? ण, मिच्छत्तजहण्णफद्दयस्स दुट्ठाणियसव्वघादिफद्दएसु जहण्णत्ताभावादो । एदमादिं कादूण उवरिं अप्पडिसिद्धमिदि वुत्ते दारुअसमाणफद्दयाणमणंते भागे अट्ठि-सेलसमाणफद्दयाणि च संपुण्णाणि गंतूण बारसकसायाणमणुभागसंतकम्ममवट्ठिदं ति घेत्तव्वं ।

❀ चदुसंजलण--णवणोकसायाणमणुभागसंतकम्मं देसघादीणमादिफद्दयमादिं कादूण उवरि सव्वघादि त्ति अप्पडिसिद्धं ।

❀ बारह कषायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघातियोंके द्विस्थानिक प्रथम स्पर्धकसे लेकर आगे बिना प्रतिषेधके होता है ।

§ १९४. बारह कषाय ऐसा कहने पर अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान और क्रोध, मान, माया लोभका ग्रहण होता है, क्योंकि अन्य कोई बारह प्रकृतियाँ सर्वघाती नहीं हैं । सर्वघातियोंके द्विस्थानिक स्पर्धकसे लेकर ऐसा कहने पर उससे सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्पर्धकके समान स्पर्धकसे लेकर ऐसा लेना चाहिये ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि उक्त वाक्यसे ऐसा आशय लेना चाहिये ।

समाधान—सर्वघातियोंके द्विस्थानिक स्पर्धकसे लेकर ऐसा जो सूत्रका वचन है उससे जाना जाता है कि उसका ऐसा आशय लेना चाहिये ।

शंका—उसका मिथ्यात्वके जघन्य स्पर्धकके समान स्पर्धकसे लेकर ऐसा अर्थ क्यों नहीं कहते हो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वका जघन्य स्पर्धक द्विस्थानिक सर्वघाती स्पर्धकोंमें जघन्य नहीं है ।

इस स्पर्धकसे लेकर आगे बिना प्रतिषेधके होता है, ऐसा कहने पर दारुरूप स्पर्धकोंके अनन्त बहुभाग तथा सम्पूर्ण अस्थिरूप और शैलरूप स्पर्धकोंके अन्त तक सब स्पर्धक मिलकर बारह कषायोंका अनुभागसत्त्वकर्म अवस्थित है, ऐसा अर्थ लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ तथा प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन बारह कषायोंके सब स्पर्धक सर्वघाती हैं । तथा दारुके जिस भागसे सर्वघाती स्पर्धक प्रारम्भ होते हैं उस भागसे लेकर शैल पर्यन्त उनके स्पर्धक होते हैं ।

❀ चार संज्वलनो और नव नोकषायोंका अनुभागसत्वकर्म देशघातियोंके प्रथम

---

१. आ० प्रतौ 'संतकम्मवादीणं दुट्ठाणियमादिफद्दयं कादूण' इति पाठः । १. आ० प्रतौ-मादि-फद्दयसरिसफद्दयमादिं इति पाठः ।

§ १९५. देसघादीणमादिफद्दयं इदि वुत्ते सम्मत्तस्स आदिफद्दयसरिस-फद्दयस्स गहणं । जदि एवं तो 'देसघादीणं' इदि बहुवयणणिद्देसो ण घडदे ? तेरस-पयडीसु एक्किस्से पयडीए अणुभागे णिरुद्धे सेसतेरसपयडीओ पेक्खिदूण पयडीणमिदि बहुवयणत्तुववत्तीदो । एदं फद्दयमादिं कादूण उवरि सव्वघादि त्ति अप्पडिसिद्धं इदि वुत्ते लदासमाण-जहण्णफद्दयमादिं कादूण उवरि लदा-दारु-अट्ठि-सेलसमाणफद्दयाणि सव्वाणि गंतूण एदासिं तेरसपयडीणमणुभागसंतकम्मं होदि त्ति घेत्तव्वं ? उवरि सव्वघादि त्ति वुत्ते देसघादिदारुसमाणं मोत्तूण सव्वघादिदारुसमाणफद्दएहि सह अट्ठिसेलसमाणफद्दयाणि वि घेप्पंति त्ति कुदो णव्वदे ? उवरिं ट्ठाणसण्णापरूवणाए चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा चदुट्ठाणियं वा त्ति सुत्तादो णव्वदे । संपहि मिच्छत्तादीणं सव्वकम्माणं जदि वि फद्दयाणि उवरि अप्पडिसिद्धाणि त्ति वुत्तं तो वि ण तेसिं सव्वेसिं पि चरिमफद्दयाणि सरि-साणि । तं कुदो णव्वदे ? महाबंधसुत्तसिद्धप्पाबहुआदो । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्स-ट्ठाणचरिमफद्दयादो सेलसमाणादो अणंताणुबंधिलोभचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं ।

स्पर्धकसे लेकर आगे विना प्रतिपेधके सर्वघाती पर्यन्त हैं ।

§ १९५ देशघातियोंका प्रथम स्पर्धक ऐसा कहनेपर उससे सम्यक्त्व प्रकृतिके प्रथम स्पर्धकके समान स्पर्धकका ग्रहण करना चाहिये ।

शंका—यदि 'देशघातियोंके' इस पदसे केवल एक सम्यक्त्वप्रकृतिका ग्रहण करते हो तो 'देशघातियोंके' ऐसा बहुवचनका निर्देश नहीं बनता है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि तेरह प्रकृतियोंमेंसे एक प्रकृतिके अनुभागके विवक्षित होनेपर शेप तेरह प्रकृतियोंको देखते हुए 'प्रकृतियोंके' इस प्रकार बहुवचन निर्देश बन जाता है ।

इस स्पर्धकसे लेकर आगे विना प्रतिपेधके सर्वघाती पर्यन्त है ऐसा कहनेपर उससे लतारूप जघन्य स्पर्धकसे लेकर आगे लतारूप, दारुरूप, अस्थिरूप और शैलरूप सब स्पर्धकोंको व्याप्त करके इन तेरह प्रकृतियोंका अनुभागसत्कर्म है ऐसा लेना चाहिये ।

शंका—आगे सर्वघाती है ऐसा कहनेसे दारुरूप देशघाती स्पर्धकोंको छोड़कर, सर्व-घाती दारुरूप स्पर्धकोंके साथ अस्थिरूप और शैलरूप स्पर्धकोंका भी ग्रहण करते हैं यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आगे स्थानसंज्ञाका कथन करते समय 'चार संज्वलनोंका अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुः स्थानिक होता है', इस सूत्रसे जाना जाता है कि यहाँ सर्वघाती दारुसमान स्पर्धकोंके साथ अस्थि और शैलसमान स्पर्धकोंका भी ग्रहण किया है ।

यहाँ यद्यपि ऐसा कहा है कि मिथ्यात्व आदि सब कर्मोंके स्पर्धक आगे बिना प्रतिषेधके हैं तो भी उन सबके अन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि मिथ्यात्व आदि सब कर्मोंके अन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं ?

समाधान—महाबन्ध नामक सूत्रग्रन्थसे सिद्ध अल्पबहुत्वसे जाना जाता है। यथा—मिथ्यात्वके उत्कृष्टस्थान शैलसमान अन्तिम स्पर्धकसे अनन्तानुबन्धी लोभका अन्तिम अनुभाग

लोभचरिमाणुभागफद्दयादो मायाए चरिमाणुभागफद्दयं विसेसहीणं । तत्तो कोध-चरिमफद्दयं विसेसहीणं । कोधचरिमफद्दयादो माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं[1] । अणंताणुबंधिमाणचरिमफद्दयादो लोभसंजलणचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । तत्तो तस्सेव मायाचरिमफद्दयं विसेसहीणं । तदो तस्सेव कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं । तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं । माणसंजलणचरिमफद्दयादो पच्चक्खाणा-वरणलोभचरिमफद्दयमणंतगुणहीणं । तदो तस्सेव मायाचरिमफद्दयं विसेसहीणं, तदो तस्सेव कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं । तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं । पच्चक्खाणावरणमाणचरिमफद्दयादो अपच्चक्खावरणलोभचरिमफद्दयमणंतगुणहीणं। तदो तस्सेव मायाचरिफद्दयं विसेसहीणं । तदो तस्सेव कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं। अपच्चक्खाणावरणमाणचरिमफद्दयादो णवुं-सयवेदचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । अरदिचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । सोगचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । भयचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं। दुगुंछा-चरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । इत्थिवेदचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । पुरिस-वेदचरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । रदीए चरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं । हस्स-चरिमाणुभागफद्दमणंतगुणहीणं' सम्मामिच्छत्तचरिमाणुभागफद्दयणंतगुणहीणं। सम्मत्त-

स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। लोभके अन्तिम अनुभागस्पर्धकसे मायाका अन्तिम अनुभागस्पर्धक विशेषहीन है। उससे क्रोधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। क्रोधके अन्तिम स्पर्धकसे मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। अनन्तानुबन्धी मानके अन्तिम स्पर्धकसे संज्वलनलोभका अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके क्रोधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। संज्वलनमानके अन्तिम स्पर्धकसे प्रत्याख्यानावरण लोभका अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके क्रोधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। प्रत्याख्यानावरण मानके अन्तिम स्पर्धकसे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके क्रोधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। अप्रत्याख्यानावरण मानके अन्तिम स्पर्धकसे नपुंसकवेदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे अरतिका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे शोकका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे भयका अन्तिम अनुभाग स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे जुगुप्साका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे स्त्रीवेदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे पुरुषवेदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे रतिका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे हास्यका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे सम्यक्त्वका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है।

१. आ० प्रतौ माणचरिमफद्दयाए विसेसहीणं इति पाठः ।

चरिमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणमिदि। एदं मोहणीयपडिबद्धत्तादो महाबंधप्पाबहुअं ण होदि त्ति णासंकणिज्जं, महाबंधचउसट्ठिवदियअप्पाबहुअगब्भविणिग्गयस्स तत्तो विणिग्गयत्तं पडि अविरोहादो।

एवं फद्दयपरूवणा समत्ता।

❀ तत्थ दुविधा सण्णा घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा च।

§ १९६. तत्थेत्ति वुत्ते अणेण विहाणेण वुत्ताणुभागफद्दएसु त्ति घेत्तव्वं। सण्णा णाम अहिहाणमिदि एयट्ठो। सा दुविहा-घादिसण्णा ठाणसण्णा चेदि। एदेसिं मोहाणुभागफद्दयाणं घादि त्ति सण्णा जीवगुणघायणसीलत्तादो। एदेसिं चेव फद्दयाणं ट्ठाणमिदि च सण्णा लद-दारु-अट्ठि-सेलाणं सहावम्मि अवट्ठाणादो। जा सा घादि-

शंका—यह अल्पबहुत्व केवल मोहनीयकर्मसे सम्बद्ध है, अतः यह महाबन्धका अल्पबहुत्व नहीं हो सकता।

समाधान—ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि यह अल्पबहुत्व महाबन्धके चौसठ पदिक अल्पबहुत्वके भीतरसे निकला है. अतः इसे महाबन्धसे निकला हुए माननेमें कोई विरोध नहीं आता है।

विशेषार्थ—संज्वलन क्रोध, मान, माया, और लोभ तथा नव नोकषायोंके स्पर्धक देशघातीसे लेकर सर्वघाती पर्यन्त होते हैं। अर्थात् लता समान जघन्य स्पर्धकसे लेकर लतारूप, दारुरूप, अस्थिरूप और शैलरूप अनुभाग सत्कर्म इन तेरहों प्रकृतियोंके होते हैं। चूर्णिसूत्रमें केवल इतना कहा गया है कि इन तेरह प्रकृतियोंके अनुभागसत्कर्म देशघातीके प्रथम स्पर्धकसे लेकर आगे सर्वघातीपर्यन्त होते हैं। उस परसे यह शंका होती है कि सर्वघातीसे शैलपर्यन्तका ग्रहण क्यों किया गया? सर्वघातीसे दारुके सर्वघाती स्पर्धकके समान स्पर्धकका भी तो ग्रहण हो सकता है। इसका उत्तर यह दिया गया है कि आगे स्थानसंज्ञाके प्रकरणमें 'चार संज्वलन कषायोंका अनुभाग सत्कर्म एक स्थानिक, दो स्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुस्थानिक होता है।' ऐसा कहा है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'सर्वघाती' से शैलपर्यन्तका ही ग्रहण इष्ट है। यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि यद्यपि मिथ्यात्व, बारह कषाय, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका अनुभाग सत्कर्म शैलपर्यन्त कहा है फिर भी उन सबके अन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं, उनके अनुभाग सत्कर्ममें अन्तर है जैसा कि आगे दिये गये महाबन्ध नामक सिद्धान्तग्रन्थके अल्पबहुत्वसे स्पष्ट होता है। इस परसे यह शंका की गई है कि महाबंध नामक सिद्धान्तग्रन्थमें सभी कर्मोंका निरूपण है और यह अल्पबहुत्व केवल मोहनीयकर्मका है, अतः इसे महाबन्धका अल्पबहुत्व नहीं कहा जा सकता। तो इसका यह समाधान किया गया कि ६४ स्थानोंके भीतरसे केवल मोहनीयका यह अल्पबहुत्व निकाला है, अतः इसे महाबन्धका ही जानना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्धक प्ररूपणा समाप्त हुई।

❀ उनमें संज्ञा दो प्रकार की है—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा।

§ १९६. उनमें ऐसा कहनेसे इस विधिसे कहे गये अनुभागस्पर्धकोंमें ऐसा अर्थ लेना चाहिये। संज्ञा, नाम और अभिधान ये शब्द एकार्थक हैं। वह संज्ञा दो प्रकारकी है—घाति संज्ञा और स्थानसंज्ञा। इन मोहनीयके अनुभागस्पर्धकोंकी घाती यह संज्ञा है, क्योंकि जीवके गुणोंको घातना उनका स्वभाव है। तथा इन्हीं स्पर्धकोंकी स्थान यह संज्ञा भी है, क्योंकि वे लतारूप, दारुरूप, अस्थिरूप और शैलरूप स्वभावमें अवस्थित हैं। वह घातिसंज्ञा भी सर्वघाती और

सण्णा सा दुविहा—सव्वघादि-देसघादिभेएण। ठाणसण्णा चउव्विहा लदा-दारु अट्ठि-सेलभेएण।

❀ ताओ दो वि एक्कदो णिज्जंति।

§ १९७. जाओ दो वि सण्णाओ पुव्वं परूविदाओ ताओ एक्कदो एक्कवारं चेव णिज्जंति कहिज्जंति परूविज्जंति त्ति घेत्तव्वं।

❀ मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं सव्वघादि दुट्ठाणियं।

§ १९८. सेसकम्मपडिसेहफलो मिच्छत्तणिद्देसो। ट्ठिदि-पदेससंतकम्मादिपडिसेहफलोअणुभागासंतकम्मणिद्देसो। उक्कस्सपडिसेहफलो जहण्णयं ति णिद्देसो। देसघादिपडिसेहफलो सव्वघादिणिद्देसो। मिच्छत्ताणुभागफद्दयरयणाए मिच्छत्तस्स जहण्णफद्दयं सव्वघादि त्ति पुव्वं परूविदं चेव। कुदो? सव्वघादित्तणेण सक्खा [संखा] परूविदसम्मामिच्छत्तुक्कस्सफद्दयं पेक्खिदूण अणंतगुणत्तादो। तदो मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंतकम्मं सव्वघादि त्ति ण वत्तव्वमिदि? एत्थ परिहारो वुच्चदे—फद्दयरयणा णाम सव्वघादित्तमसव्वघादित्तं च ण परूवेदि किंतु केवलं फद्दयरयणं चेव परूवेदि,

---

देशघातीके भेदसे दो प्रकारकी है। तथा स्थानसंज्ञा लता, दारु, अस्थि और शैलके भेदसे चार प्रकारकी है।

❀ आगे उन दोनों संज्ञाओंको एक साथ कहते हैं।

§ १९७. जो दो संज्ञाएँ पहले कही हैं, उन्हें एक साथ ही बतलाते हैं अर्थात् कहते हैं प्ररूपणा करते हैं ऐसा अर्थ यहाँ लेना चाहिये। अर्थात् आगे उन दोनों संज्ञाओंका एक साथ कथन करते हैं।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मके अनुभागस्पर्धकों की दो संज्ञाएँ हैं—घाती और स्थान। यतः वे अनुभागस्पर्धक जीवके गुणों का घात करते हैं, अतः उन्हें घाती कहते हैं और यतः वे लता, दारु, अस्थि और शैलका जैसा स्वभाव है वैसे स्वभावको लिए हुए हैं, अतः उन्हें स्थान कहते हैं। घातीसंज्ञाके दो भेद हैं—सर्वघाती और देशघाती। तथा स्थानसंज्ञाके चार भेद हैं—लता, दारु, अस्थि और शैल। आगे इन दोनों संज्ञाओं का एकसाथ कथन करते हैं।

❀ मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक है।

§ १९८. शेष कर्मोंका प्रतिषेध करनेके लिये मिथ्यात्व पदका निर्देश किया है। स्थितिसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्म आदिका प्रतिषेध करनेके लिये अनुभागसत्कर्म पदका निर्देश किया है। उत्कृष्टका प्रतिषेध करनेके लिये जघन्यपदका निर्देश किया है। देशघातीका प्रतिषेध करनेके लिये सर्वघाती पदका निर्देश किया है।

शंका—मिथ्यात्वके अनुभागस्पर्धकोंकी रचनामें मिथ्यात्वका जघन्य स्पर्धक सर्वघाती है ऐसा पहले कहा ही है, क्योंकि पहले सर्वघातिरूपसे कहे गये सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा इसका अनुभाग अनन्तगुणा है, अतः यहाँ मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म सर्वघाती है ऐसा नहीं कहना चाहिए?

समाधान—यहाँ परिहार करते हैं—स्पर्धकरचना सर्वघातित्व और असर्वघातित्वको नहीं बतलाती है, किन्तु केवल स्पर्धकरचनाका ही कथन करती है, क्योंकि उसीमें उसका व्यापार

तिस्से तत्थ वावारादो। जदि वि जुत्तीए सव्वघादित्तमवगयं तो वि सा एत्थ ण पहाणा, अहेउवायम्मि तण्णिट्ठसिस्साणं तत्थ अणुग्गहकारित्ताभावादो। तदो मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंतकम्मं सव्वघादि त्ति वत्तव्वं चेव। किं च जहा चारित्तमोहक्खवणाए चदुण्हं संजलणाणं पुव्वफद्दयाणि ओहट्टिय तेसिं जहण्णफद्दयादो अणंतगुणहीणाणि अपुव्वफद्दयाणि काऊण पुणो ताणि वि घाइय सगजहण्णफद्दयादो अणंतगुणहीणाओ किट्टिओ कदाओ, तहा एत्थ दंसणमोहणीयक्खवणाए मिच्छत्ताणुभागस्स अपुव्वफद्दयादिकिरियाओ काऊण देसघाइविहाणं णत्थि त्ति जाणावणट्ठं वा सव्वघादिणिद्देसो कदो। सुहुमणिगोदस्स मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंतकम्मादो अणंतगुणेण अणुभागसंतकम्मेण दंसणमोहक्खवणाए किट्टीकरणादिविहाणेण विणा मिच्छत्तं खविज्जदि त्ति जाणावणट्ठं वा। दारुसमाणाणुभागफद्दयाणमणंतिमभागे सुहुमणिगोदेसु जेण मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं जहण्णं जादं तेण तं दुट्ठाणियं। एदेण एगट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणाणं पडिसेहो कदो। मिच्छत्ताणुभागस्स दारु--अट्ठि--सेलसमाणाणि त्ति तिण्णि चेव ट्ठाणाणि लतासमाणफद्दयाणि उल्लंघिय दारुसमाणम्मि अवट्ठिदसम्मामिच्छत्तुक्कस्सफद्दयादो अणंतगुणभावेण मिच्छत्तजहण्णफद्दयस्स अवट्ठाणादो। तदो मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं दुट्ठाणियमिदि वुत्ते दारु-अट्ठि-समाणफद्दयाणं गहणं कायव्वं, अण्णहा

है। यद्यपि युक्तिसे उसका सर्वघातित्व जान लिया गया है तो भी यहाँ युक्ति प्रधान नहीं है, क्योंकि अहेतुवाद रूप आगममें श्रद्धा रखनेवाले शिष्योंका युक्ति कोई उपकार नहीं कर सकती। अतः 'मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है' ऐसा यहाँ कहना ही चाहिये। दूसरे, जैसे चारित्रमोहकी क्षपणामें चारों संज्वलनकषायोंके पूर्वस्पर्धकोंका अपकर्षण करके उनके जघन्य स्पर्धकसे भी अनन्तगुणे हीन अपूर्वस्पर्धक किये जाते हैं और फिर अपूर्व स्पर्धकोंका भी घात करके अपूर्वस्पर्धकके जघन्य स्पर्धकसे भी अनन्तगुणी हीन कृष्टियां की जाती हैं, उसी प्रकार यहाँ दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें अपूर्वस्पर्धक आदि क्रियाओंको करके मिथ्यात्वके अनुभागका देशघातिविधान नहीं है। अर्थात् मिथ्यात्वके अनुभागको क्रियाद्वारा देशघातीरूप नहीं किया जा सकता है, वह सर्वघाती ही रहता है, यह बतलानेके लिये सूत्रमें सर्वघाती पदका निर्देश किया है। अथवा, दर्शनमोहके क्षपण कालमें सूक्ष्म निगोदिया जीवके मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुणे अनुभागसत्कर्मके रहते हुए कृष्टिकरण आदि क्रियाके विना ही मिथ्यात्वका क्षपण करता है यह बतलानेके लिये सूत्रमें सर्वघाती पद दिया है। यतः सूक्ष्मनिगोदिया जीवोंमें मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म जघन्य है और वह दारुसमान अनुभागस्पर्धकोंके अनन्तवें भागमें स्थित है अतः वह द्विस्थानिक है। इससे वह एक स्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है इस बातका निषेध कर दिया है।

शंका—मिथ्यात्वके अनुभागके दारुके समान, अस्थिके समान और शैलके समान इस प्रकार तीन ही स्थान हैं, क्योंकि लतासमान स्पर्धकोंका उल्लंघन करके दारुसमान अनुभागमें स्थित सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे मिथ्यात्वका जघन्य स्पर्धक अनन्तगुणा है। अतः मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है ऐसा कहने पर दारुसमान और अस्थिसमान स्पर्धकोंका ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा वह द्विस्थानिक नहीं बन सकता है।

तस्स दुट्ठाणियत्ताणुववत्तीदो ? ण एस दोसो, ववएसिवब्भावेण दारुसमाणफद्दयाणं केवलाणं पि दुट्ठाणियत्तुववत्तीदो। कुतो व्यपदेशिवद्भावः ? लता-दारुसमानस्थानाभ्यां केनचिदंशान्तरेण समानतया एकत्वमापन्नस्य दारुसमानस्थानस्य तद्व्यपदेशोपपत्तेः। समुदाये प्रवृत्तस्य शब्दस्य तदवयवेऽपि प्रवृत्त्युपलम्भाद्वा।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि व्यपदेशिवद्भावसे केवल दारुसमान स्पर्धकोंका भी द्विस्थानिकपना बन जाता है।

शंका—व्यपदेशिवद्भाव कैसे है ?

समाधान—किसी अंशान्तरकी अपेक्षा समान होनेके कारण लतासमान और दारुसमान स्थानोंसे दारुसमान स्थान अभिन्न है, अतः उसमें द्विस्थानिक व्यपदेश हो सकता है। अथवा जो शब्द समुदायमें प्रवृत्त होता है उसके अवयवमें भी उसकी प्रवृत्ति देखी जाती है, अतः केवल दारुसमान स्थानको भी द्विस्थानिक कहा जा सकता है।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मको सर्वघाती और द्विस्थानिक कहा है। इस पर यह शंका की गई कि मिथ्यात्वके अनुभागस्पर्धकोंकी रचनाका कथन करते हुए सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके अनुभागस्पर्धकोंको स्पष्टरूपसे सर्वघाती बतलाकर उससे आगेके सूत्रमें सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागस्पर्धकके अनन्तरवर्ती स्पर्धकसे लेकर आगेके सब स्पर्धक मिथ्यात्वके बतलाये हैं। इससे सिद्ध है कि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है, अतः उक्त सूत्रमें पुनः उसको सर्वघाती बतलाना व्यर्थ है। इसका समाधान तीन प्रकारसे किया गया है। पहला—स्पर्धक रचनाका उद्देश केवल स्पर्धकरचनाको बतलाना है, सर्वघातित्व और असर्वघातित्वको बतलाना उसका उद्देश्य नहीं है। यद्यपि युक्तिसे यह मालूम होजाता है कि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागस्पर्धक सर्वघाती है किन्तु इस आगमिक ग्रन्थमें युक्ति प्रधान नहीं है, किन्तु कंठोक्तरूपसे जो कहा जाय वही प्रधान है, अतः मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है यह वचन कहना ही चाहिये। दूसरे, जैसे चारित्रमोहकी क्षपणामें संज्वलनकषायोंका पूर्वस्पर्धक, अपूर्वस्पर्धक और कृष्टीकरणके द्वारा देशघातिविधान बतलाया है वैसे दर्शनमोहकी क्षपणामें मिथ्यात्वके अनुभागका देशघातिविधान नहीं होता यह बतलानेके लिये मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मको सर्वघाती बतलाया है। तीसरे, सूक्ष्मनिगोदिया जीवके मिथ्यात्वका जो जघन्य अनुभागसत्कर्म रहता है उससे अनन्तगुणे अनुभागसत्कर्मके रहते हुए मिथ्यात्वका क्षपण होता है यह बतलानेके लिये मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती होता है यह बतलाया है। तथा मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक होता है क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म दारुरूप होता है और उसके अनन्तरवर्ती स्पर्धकसे मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म प्रारम्भ होता है अतः वह भी द्विस्थानिक है। इस पर यह शंका की गई कि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म दारुरूप है और यतः उसे द्विस्थानिक कहा है अतः दो स्थानोंसे दारु और अस्थिका ग्रहण करना चाहिये, लताका तो ग्रहण हो ही नहीं सकता, क्योंकि मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म लतारूप नहीं बतलाया है। इसका यह समाधान किया गया है कि जो स्पर्धक केवल दारुसमान हैं उन्हें भी द्विस्थानिक कह सकते हैं, क्योंकि द्विस्थानिक संज्ञा लतासमान और दारुसमान स्पर्धकोंकी है। किन्तु जो स्पर्धक केवल दारुसमान हैं वे दारुरूपसे लता-दारु स्थानके समान हैं। अर्थात् उनकी परस्परमें दारुरूपसे समानता है अतः लता-दारु समान स्पर्धकके लिये व्यवहृतकी जानेवाली द्विस्थानिक संज्ञा केवल

§ १९९. लदा–दारु–अट्ठि–सेलसण्णाओ माणाणुभागफद्दयाणं लयाओ, कधं मिच्छत्तम्मि पयट्ट ति ? ण, माणम्मि अवट्ठिदचदुण्हं सण्णाणमणुभागाविभागपलिच्छेदेहि समाणत्तं पेक्खिदूण पयडिविरुद्धमिच्छत्तादिफद्दएसु वि पवुत्तीए विरोहाभावादो।

❀ उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं सव्वघादिचदुट्ठाणियं।

§ २००. उक्कस्सणिद्देसो जहण्णपडिसेहफलो। अणुभागसंतकम्मणिद्देसो ट्ठिदि-पदेसपडिसेहफलो। सव्वघादिणिद्देसो देसघादिपडिसेहफलो। चदुट्ठाणियणिद्देसो तिट्ठाणादिपडिसेहफलो। मिच्छत्तस्से त्ति अइक्कंतसुत्तादो अणुवट्टदे। कुदो सव्वघादित्तं ? सम्मत्तासेसावयवविणासणेण। अमुत्तस्स सम्मत्तपज्जायस्स कधं सावयवत्तं ? ण, सायारसावयवजीवदव्वं सव्वप्पणा पडिग्गहिय अवट्ठिदस्स णिरवयवणिरायारत्तविरोहादो। लदासमाणफद्दएहि विणा कधं मिच्छत्ताणुभागस्स चदुट्ठाणियत्तं ? ण, पुव्वं व

दारुरूप स्पर्धकके लिये भी व्यवहृत हो सकती है। अथवा लता और दारुके समुदायमें व्यवहृत होनेवाली द्विस्थानिक संज्ञाका व्यवहार उसके एक अंश दारुमें भी हो सकता है।

§ १९९. शंका–लता, दारु, अस्थि और शैल संज्ञाए मानकषायके अनुभागस्पर्धकोंमें की गई हैं, ऐसी दशामें वे संज्ञाएँ मिथ्यात्वमें कैसे प्रवृत्त हो सकती हैं ?

समाधान–नहीं, क्योंकि मानकषाय और मिथ्यात्वके अनुभागके अविभागीप्रतिच्छेदों की परस्परमें समानता देखकर मानकषायमें होनेवाली चारों संज्ञाओंकी मानकषायसे विरुद्ध प्रकृतिवाले मिथ्यात्वादिके स्पर्धकोंमें भी प्रवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ–यद्यपि कठोरता यह मानकषायका गुण है, अन्य प्रकृतियोंमें यह धर्म नहीं पाया जाता, तथापि मानकषायके समान शक्तिवाले अन्य प्रकृतियोंके स्पर्धक होते हैं, यह देखकर यहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंके स्पर्धकोंकी लतासमान आदि संज्ञाएँ रखी हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

❀ मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक है।

§ २००. जघन्यका प्रतिषेध करनेके लिये उत्कृष्ट पदका निर्देश किया है। स्थिति और प्रदेशका प्रतिषेध करनेके लिये अनुभागसत्कर्म पदका निर्देश किया है। देशघातीका प्रतिषेध करनेके लिये सर्वघाती पदका निर्देश किया है। त्रिस्थानिक आदिका प्रतिषेध करनेके लिये चतुःस्थानिक पदका निर्देश किया है। मिथ्यात्व इस पदकी पिछले सूत्र से अनुवृत्ति होती है।

शंका–यह सर्वघाती क्यों है ?

समाधान–क्योंकि यह सम्यक्त्वके सब अवयवोंका विनाश करता है, अतः सर्वघाती है

शंका–सम्यक्त्व पर्याय अमूर्त है, अतः उसके अवयव कैसे हो सकते हैं ?

समाधान–ऐसी शंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि जो सम्यक्त्व साकार और सावयव जीव द्रव्यको सर्वात्मना पकड़ करके बैठा हुआ है उसके निरवयव और निराकार होनेमें विरोध है। अर्थात् जीव द्रव्य साकार और सावयव है, अतः उससे अभिन्न या तत्स्वरूप सम्यक्त्व सर्वथा निरवयव और निराकार नहीं हो सकता।

शंका–जब मिथ्यात्वके स्पर्धक लतासमान नहीं होते तो उसका अनुभाग चतुःस्थानिक कैसे है ?

दोहि पयारेहि चदुट्ठाणियत्तसिद्धीदो। अथवा मिच्छत्तुक्कस्सफद्दयम्मि लदा-दारु--अट्ठि-सेलसमाणट्ठाणाणि चत्तारि वि अत्थि, तेसिं फद्दयाविभागपलिच्छेदाणं संखाए एत्थुवलंभादो। ण च वहुएसु अविभागपलिच्छेदेसु थोवाविभागपलिच्छेदाणमसंभवो, एगादिसंखाए विणा तस्स बहुत्ताणुववत्तीदो। तम्हा मिच्छत्तुक्कस्सफद्दयम्मि चत्तारि वि ट्ठाणाणि अत्थि त्ति तस्स चदुट्ठाणियत्तं ण विरुज्झदे। मिच्छत्तुक्कस्साणुभागसंतकम्मं चदुट्ठाणियमिदि वुत्ते मिच्छत्तेगुक्कस्सफद्दयस्सेव कधं गहणं? ण, मिच्छत्तुक्कस्सफद्दयचरिमवग्गणाए एगपरमाणुणा धरिदअणंताविभागपलिच्छेदणिप्पण्णअणंतफद्दयाणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मववएसादो। ण च तत्थ अवट्ठिदाविभागपलिच्छेदेसु फद्दयाणि णत्थि अविभागपलिच्छेदुत्तरकमेण वड्ढिविरहियाणमणंताविभागपलिच्छेदे अंतरिय अणंतवारवड्ढियाणं फद्दयभावविरोहादो। एसो अत्थो उवरि सव्वत्थ जहावसरं संभरिय वत्तव्वो।

समाधान—जिस प्रकार पहले दो तरीकेसे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मको द्विस्थानिक सिद्ध किया है वैसे ही उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म भी चतुः स्थानिक सिद्ध होता है। अथवा, मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकमें लतासमान, दारुसमान, अस्थिसमान और शैलसमान चारों ही स्थान हैं, क्योंकि उनके स्पर्धकोंके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्या यहाँ पाई जाती है और वहुत अविभागप्रतिच्छेदोंमें स्तोक अविभागप्रतिच्छेदोंका होना असंभव नहीं है, क्योंकि एक आदि संख्याके विना अविभागीप्रतिछेदोंकी संख्या बहुत नहीं हो सकती है। अर्थात् बहुत संख्यामें थोड़ी संख्या होती ही है, अन्यथा वह बहुत ही नहीं हो सकती अतः, मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकमें चारों हो स्थान होते हैं, इसलिये उसके चतुःस्थानिक होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतुःस्थानिक है ऐसा कहने पर मिथ्यात्वके एक उत्कृष्ट स्पर्धकका ही ग्रहण कैसे होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें एक परमाणुके द्वारा धारण किये गये अनन्त अविभागी प्रतिच्छेदोंसे निष्पन्न अनन्त स्पर्धकोंकी उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म यह संज्ञा है। यदि कहा जाय कि उत्कृष्ट स्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें जो अविभागी प्रतिच्छेद हैं उनमें स्पर्धक नहीं हैं, सो यह कहना भो ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्त अविभागी प्रतिच्छेदोंका अन्तर दे दे कर उत्तरोत्तर अविभागीप्रतिच्छेदके क्रमसे अनन्तवार जिनमें वृद्धि नहीं होती उनके स्पर्धक होनेमें विरोध है। ऊपर सर्वत्र प्रसंगानुसार इस अर्थका स्मरण करके कथन कर लेना चाहिये।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें कहा है कि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है। इसपर जब यह शंका की गई कि मिथ्यात्वके अनुभागमें लता समान स्पर्धक तो पाये नहीं जाते तव वह चतुःस्थानिक कैसे है? तो कहा गया कि मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकमें लतासमान, दारुसमान, अस्थिसमान और शैलसमान चारों स्पर्धक पाये जाते हैं। इस समाधान परसे यह शंका की गई कि सूत्रमें तो मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको चतुःस्थानिक कहा है और समाधानमें कहा गया है कि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्पर्धक चतुःस्थानिक है तो उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मसे एक उत्कृष्ट स्पर्धकका ही ग्रहण क्यों किया गया है? इसका जो

समाधान किया गया है उसे समझनेके लिये स्पर्धकका स्वरूप जानना आवश्यक है जो इस प्रकार है—एक अनुभागस्थानके सब परमाणुओंको एक जगह स्थापित करके उनमेंसे सबसे जघन्य अनुभागवाले परमाणुको लो। उस परमाणुमें पाये जानेवाले रूप, रस और गंधको छोड़कर स्पर्शगुणके बुद्धिके द्वारा छेद करो। छेद करते करते जो अन्तिम अछेद्य खण्ड अवशेष रहे उसकी अविभागीप्रतिच्छेद संज्ञा है। उस अविभागी प्रतिच्छेदरूपसे स्पर्शगुणका छेदन करने पर एक परमाणुमें सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभागीप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। उन सबको वर्ग कहते हैं। यद्यपि एक वर्गमें अनन्त अविभागीप्रतिच्छेद होते हैं तथापि समझनेके लिये उनकी संख्या ८ कल्पना कर लेनी चाहिये। पुनः उन परमाणुओंमेंसे उस एक परमाणुके समान दूसरे परमाणुको लो। उसके स्पर्शगुणके भी पहलेके समान बुद्धिके द्वारा छेद करने पर उसमें भी उतने ही अविभागीप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। इस दूसरे वर्गकी सहनानी भी ८ समझना चाहिये। इस क्रमसे उन परमाणुओंमेंसे पहले परमाणुके समान एक एक परमाणुको लेकर उनमेंसे प्रत्येकके अविभागी-प्रतिच्छेद करने पर एक एक वर्ग उत्पन्न होता है, उनकी संदृष्टि इस प्रकार समझनी चाहिये ८, ८, ८, ८। अर्थात् अविभागीप्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं और चूंकि एक एक परमाणुमें अनन्त अविभागीप्रतिच्छेद पाये जाये हैं, अतः प्रत्येक परमाणु एक एक वर्ग है। इन वर्गोंके समूह को वर्गणा कहते हैं। इस वर्गणाको एक ओर स्थापित करके उन परमाणुओंमेंसे पुनः एक परमाणु को लो और बुद्धिके द्वारा पहलेकी तरह उसके छेद करो। छेद करने पर इस परमाणुमेंसे पहले परमाणुओंसे एक अधिक अविभागीप्रतिच्छेद पाये जाते हैं जिसकी सहनानी ९ है। इस एक वर्ग को अलग स्थापित करो। इस क्रमसे इस एक परमाणुके समान जितने परमाणु उन परमाणुओं मेंसे पाये जायें उन्हें लेकर और बुद्धिके द्वारा प्रत्येकका छेदन करके वर्गोंकी उत्पत्ति कर लेनी चाहिये। उनका प्रमाण इस प्रकार है—९, ९, ९। यह दूसरी वर्गणा हुई। इस प्रकार एक एक अधिक अविभागीप्रतिच्छेदवाले परमाणुओंसे तीसरी, चौथी, पाँचवीं आदि वर्गणाएँ उत्पन्न कर लेनी चाहियें। इसप्रकार उत्पन्न की गई अभव्यराशिसे अनन्तगुनी और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाओंका एक स्पर्धक होता है। इस स्पर्धकको पृथक् स्थापित करके पूर्वोक्त परमाणुओंमेंसे पुनः एक परमाणुको लो। बुद्धिके द्वारा उसके छेद करनेपर सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभागीप्रतिच्छेदोंका अन्तर देकर दूसरे स्पर्धकका प्रथम वर्ग उत्पन्न होता है। संदृष्टिरूपमें उसका प्रमाण १६ समझना चाहिये। इस क्रमसे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण अविभागीप्रतिच्छेदवाले परमाणुओंको ग्रहण करके परमाणुमात्र वर्गोंके उत्पन्न करने पर दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणा होती है। इसे प्रथम स्पर्धककी अन्तिमवर्गणाके आगे अन्तराल देकर स्थापित करना चाहिये। इस क्रमसे वर्ग वर्गणा और स्पर्धकको जानकर तब तक स्पर्धक उत्पन्न करना चाहिये जब तक पूर्वोक्त परमाणु समाप्त न हो जाँय। इसप्रकार स्पर्धक रचनाके करनेपर अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक और वर्गणाएँ उत्पन्न होती हैं। इनमेंसे अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग पाया जाता है उसीको अनुभागस्थान कहते हैं। इस परसे यह शंका हो सकती है कि अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग, वर्गोंके समूहको वर्गणा, वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक और स्पर्धकोंके समूहको अनुभागस्थान कहते हैं, किन्तु ऊपर अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग पाया जाता है उसे ही अनुभागस्थान क्यों कहा है। इसका समाधान यह है कि प्रथम-वर्गसे लेकर क्रमसे बढ़ते हुए सब अविभागीप्रतिच्छेद उस एक परमाणुमें पाये जाते हैं, अतः सब अनुभागका स्थान होनेसे अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाका एक परमाणु अनुभागस्थान कहा जाता है। जैसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोटी कोटी सागर होती है। यह उत्कृष्टस्थिति

❀ एवं बारसकसायछण्णोकसायाणं ।

§ २०१. कुदो ? जहण्णाणुभागसंतकम्मं सव्वघादिदुट्ठाणियं उक्कस्साणुभागसंतकम्मं सव्वघादिचदुट्ठाणियमिच्चेदेण एदासिमणुभागस्स मिच्छत्ताणुभागादो भेदाभावा । वारसकसायजहण्णाणुभागस्स सव्वघादित्तं होदु णाम, तेसिं जहण्णफद्दयप्पहुडि जाव उक्कस्सफद्दयं ति सव्वघादित्तं मोत्तूण तेसु देसघादित्ताणुवलंभादो । किंतु छण्णोकसायफद्दयाणं सव्वघादित्तं ण जुज्जदे ? सम्मत्तजहण्णफद्दयसमाणफद्दयाणुभागप्पहुडि उवरि दारुसमाणफद्दयाणमणंतिमभागो त्ति णिरंतरं तत्थ देसघादिफद्दयाणं पि उवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, अणियट्टिक्खवएण घादिदावसिट्ठछण्णोकसायचरिमफालीए चरिमफद्दयचरिमवग्गणेगपरमाणुणा[1] धरिदाविभागपलिच्छेदाणं संगहिदासेसफद्दयभावेण दुट्ठाणियत्तमुवगयाणमहियाविभागपलिच्छेदसंबंधेण सव्वघादित्तं

सब निषेकोंकी नहीं होती किन्तु अन्तिम निषेककी होती है फिर भी वह सब निषेकोंकी स्थिति कही जाती है क्योंकि उसमें सब निषेकोंकी स्थिति गर्भित है, वैसे ही अन्तिमस्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुके अविभागीप्रतिच्छेद में शेष सब परमाणुओंके अविभागीप्रतिच्छेद गर्भित हैं. अतः वही अनुभागस्थान है और उसमें द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा वर्ग-वर्गणा और स्पर्धक सभी बन जाते हैं। इसपर पुनः यह शङ्का हो सकती है कि जब अन्तिमस्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग है उसीको अनुभागस्थान कहते हैं तो इसप्रकार पृथक् पृथक् स्पर्धक रचना क्यों की जाती है ? इसका समाधान यह है कि इस एक परमाणुमें जो अनुभागस्पर्धक पाये जाते हैं उसीके अविभागी प्रतिच्छेदोंका कथन उक्तप्रकारसे किया जाता है। इसी कारणसे चूर्णिसूत्रमें आये उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मपदसे एक उत्कृष्टस्पर्धकका ही ग्रहण किया है। आगे भी जहाँ कहीं इसप्रकारका कथन आये वहाँ उसका यही अर्थ समझना चाहिये।

* इसीप्रकार बारह कषाय और छ नोकषायोंका अनुभागसत्कर्म है।

§ २०१. क्योंकि उनका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक है तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक है, इस दृष्टिसे उनके अनुभागका मिथ्यात्वके अनुभागसे कोई भेद नहीं है।

शंका—बारह कषायोंका जघन्य अनुभाग सर्वघाती होओ, क्योंकि जघन्य स्पर्धकसे लेकर उत्कृष्ट स्पर्धक पर्यन्त सर्वघातीपनेके सिवाय उनमें देशघातिपना नहीं पाया जाता है। किन्तु छह नोकषायोंके स्पर्धकोंका सर्वघातीपना नहीं बनता है, क्योंकि सम्यक्त्वके जघन्य स्पर्धकके समान स्पर्धकके अनुभागसे लेकर आगे दारुसमान स्पर्धकोंके अनन्तवें भाग पर्यन्त उनमें निरन्तर देशघाती स्पर्धक भी पाये जाते हैं।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि नौवें गुणस्थानवर्ती क्षपकके द्वारा घात किये जानेसे अवशिष्ट रहे छह नोकषायोंकी अन्तिम फालीमें अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुके सम्बन्धसे जिनमें अविभागप्रतिच्छेद स्वीकार किये गये हैं, अशेष स्पर्धकपनेका संग्रह होनेसे जो द्विस्थानिकपनेको प्राप्त हैं और अधिक अविभागप्रतिच्छेदोंके सम्बन्धसे जो सर्वघाति-

1. आ० प्रतौ चरिमफद्दयचरिमवग्गणेण परमाणुमा इति पाठः ।

पत्तजहण्णफद्दयाणं जहण्णट्ठाणत्तब्भुवगमादो।

❀ सम्मत्तस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादि एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा।

§ २०२. दंसणमोहणीयक्खवणाए मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणि खइय पुणो सम्मत्तं पि विणासिय कदकरणिज्जो होदूण तस्स कदकरणिज्जस्स चरिमसमए सम्मत्तस्स जहण्णमणुभागसंतकम्मं तं च देसघादि एगट्ठाणियं उक्कस्सं पुण देसघादि विट्ठाणियं। दारुसमाणसम्मत्तचरिमफद्दयचरिमवग्गणेगपरमाणुम्मि अविभागपलिच्छेदसंखाए लदासमाणफद्दयाणं पि संभवादो दुट्ठाणियत्तं ण विरुज्झदे। 'सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं देसघादि एगट्ठाणियं। उक्कस्साणुभागसंतकम्मं देसघादि वेट्ठाणियं' ति एवमभणिदूण सम्मत्तस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादि एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा त्ति किमिदि वुत्तं ? सम्मत्ताणुभागसंतकम्मस्स अजहण्णस्स अवत्थाविसेसपदुप्पायणट्ठं। तं जहा—जं सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कदकरणिज्जस्स अपच्छिमउदयणिसेगट्ठिदमणुसमयमोवट्टणाए धादिदावसिट्ठं तं देसघादि एगट्ठाणियं। जं पुण अजहण्णं तं देसघादि एगट्ठाणियं पि अत्थि, अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मे सम्मत्तम्मि सेसे तदणुभागसंत-

पनेको प्राप्त हुए हैं ऐसे जघन्य स्पर्धकोंका यहाँ जघन्य स्थान स्वीकार किया गया है।

※ सम्यक्त्वका अनुभागसत्कर्म देशघाती है और एक स्थानिक तथा द्विस्थानिक है।

§ २०२. दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करके पुनः सम्यक्त्व प्रकृतिका भी नाश करके, कृतकृत्य होकर, उस कृतकृत्यके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म होता है। वह जघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म देशघाती और द्विस्थानिक होता है। सम्यक्त्वके दारुसमान अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्या है उसमें लतासमान स्पर्द्धक भी संभव हैं अतः उसके द्विस्थानिक होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—'सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक है और उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म देशघाती और द्विस्थानिक है ऐसा न कहकर 'सम्यक्त्वका अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक तथा द्विस्थानिक है' ऐसा क्यों कहा है ?

समाधान—सम्यक्त्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मकी अवस्था विशेष बतलानेके लिये उस प्रकार नहीं कहा है। वह अवस्था विशेष इस प्रकार है—कृतकृत्य जीवके सम्यक्त्वका जो जघन्य अनुभागसत्कर्म उदयप्राप्त अन्तिम निषेकमें स्थित है जो कि प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा घात होते होते अवशिष्ट रहा है, वह देशघाती और एकस्थानिक है। किन्तु जो अजघन्य अनुभाग सत्कर्म है वह देशघाती और एकस्थानिक भी है, क्योंकि सम्यक्त्वमें आठ वर्ष प्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रह जाने पर उसका अनुभागसत्कर्म लतासमान स्पर्धकोंमें ही स्थित पाया जाता है, किन्तु उससे ऊपरके स्थिति सत्कर्मोंमें सम्यक्त्वका अनुभागसत्कर्म है तो देशघाती ही किन्तु द्विस्थानिक है। सारांश यह है कि सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म तो देशघाती और एक स्थानिक ही है किन्तु अजघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती होने पर भी एकस्थानिक भी है

कम्मस्स लदासमाणफद्दएसु चेव अवट्ठाणुवलंभादो। तदुवरिमट्ठिदिसंतकम्मेसु सम्मत्ताणुभागसंतकम्मं देसघादि चेव किंतु वेट्ठाणियं। एवंविहविसेसजाणावणट्ठं ण कदं जहण्णुक्कस्सविसेसणं।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादि दुट्ठाणियं।

§ २०३. एत्थ जहण्णुक्कस्साणुभागसंतकम्मविसेसणं किण्ण कयं ? ण, तस्स फलाभावादो। सम्मामिच्छत्ते खविज्जमाणे चरिमाणुभागकंदए सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णमणुभाग-संतकम्मं तं पि सव्वघादि दुट्ठाणियं चेव। तदणुभागफद्दएसु अक्खवणावत्थाए खवणावत्थाए वा देसघादीणं फद्दयाणमभावादो। उक्कस्साणुभागसंतकम्मं पि सव्वघादि दुट्ठाणियं चेव, तेण जहण्णुक्कस्साणुभागाणं दुट्ठाणियसव्वघादित्तणेहि विसेसो णत्थि त्ति ण कयं जहण्णुक्कस्सविसेसणं।

❀ एक्कं चेव ट्ठाणं सम्मामिच्छत्ताणुभागस्स।

§ २०४. एक्कं दारुसमाणाणुभागट्ठाणं चेव होदि, लदा--अट्ठि--सेलसमाणाणु--भागफद्दयाणं तत्थ अभावादो। एगट्ठाणमिदि वुत्ते सव्वत्थ लदासमाणफद्दयाणं चेव जेण गहणं तेणेत्थ वि 'एक्कं चेव ट्ठाणं' इदि वुत्ते लदासमाणफद्दयाणं गहणं किण्ण कीरदे ? ण, अणंतराइक्कंतसुत्तेण 'सम्मामिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं सव्वघादि दुट्ठाणियं'

और द्विस्थानिक भी है। सम्यक्त्वकी आठ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रहनेपर एकस्थानिक होता है, और उससे अधिक स्थिति शेष रहने पर द्विस्थानिक होता है। यह विशेष बतलानेके लिये जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाये।

❀ सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक है।

२०३. शंका—यहाँ अनुभागसत्कर्मके साथ जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण क्यों नहीं लगाये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसका कुछ फल नहीं है।

§ २०३. सम्यग्मिथ्यात्वका क्षपण करने पर अन्तिम अनुभागकाण्डकमें सम्यग्मिथ्यात्वका जो जघन्य अनुभागसत्कर्म है वह भी सर्वघाती और द्विस्थानिक ही है। उसके अनुभागस्पर्धकोंमें अक्षपणावस्थामें अथवा क्षपणावस्थामें देशघाती स्पर्धककोंका अभाव है। तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म भी सर्वघाती और द्विस्थानिक ही है। अतः जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागोंमें द्विस्थानिकपने और सर्वघातिपनेकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों ही अनुभाग सर्वघाती और द्विस्थानिक हैं, इसलिये जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाये।

❀ सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागका एक ही स्थान होता है।

§ २०४. सम्यग्मिथ्यात्वका एक दारुसमान अनुभागस्थान ही होता है क्योंकि लतासमान, अस्थिसमान और शैलसमान अनुभाग स्पर्धकोंका उसमें अभाव है।

शंका—'एकस्थान' ऐसा कहने पर उससे सब जगह लतासमान स्पर्धकोंका ही ग्रहण होता है अतः यहाँ पर भी 'एकही स्थान' ऐसा कहनेसे लतासमान स्पर्धकोंका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा अर्थ ग्रहण करने पर पहले कहे गये 'सम्यग्मिथ्यात्वका

इच्चेदेण सह विरोहादो । ण च लदासमाणफद्दएसु सव्वघादित्तमत्थि, तहाणुवलंभादो। तेण 'एक्कं चेव द्वाणं' इदि वुत्ते दारुसमाणफद्दयाणं चेव गहणं कायव्वं । अट्ठिसमाण-फद्दयाणं सेलसमाणफद्दयाणं वा गहणं किण्ण कीरदे ? ण, अणंतरादीदसुत्तम्मि समुद्दिदट्ठदुट्ठाणियणिद्देसेण सह विरोहादो । जदि अट्ठिसमाणमेक्कट्ठाणमिदि घेप्पदि तो सम्मामिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं तिट्ठाणियं होज्ज, लदा--दारु--अट्ठिसमाणफद्दयाणु--भागाविभागपलिच्छेदसंखाए वड्ढिसत्तिं पडुच्च फद्दयभावमुवगयाणं तत्थुवलंभादो । जदि सेलसमाणट्ठाणमेक्कं ट्ठाणमिदि घेप्पदि तो वि तेण सह विरोहो, चदुट्ठाणियस्स दुट्ठाणियत्तविरोहादो । जदि सम्मामिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं दुट्ठाणियं चेव तो 'एक्कं चेव ट्ठाणं' इदि किमट्ठं भण्णदे ? सम्मामिच्छत्तफद्दएसु लदासमाणफद्दयाणं पडि-सेहट्ठं । जदि एवं तो मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स सव्वघादिदुट्ठाणियस्स वि एक्कं ट्ठाणमिदि वत्तव्वं ? ण, एदम्हादो चेव मिच्छत्त-बारसकसायाणं जहण्णाणुभागस्स एग-ट्ठाणत्तं णव्वदि त्ति तत्थ तदणुवदेसादो ।

अनुभाग सत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक होता है' इस सूत्रके साथ विरोध आता है। यदि कहा जाय कि लतासमान स्पर्धकोंमें भी सर्वघातीपना है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि लता-समान स्पर्धकोंमें सर्वघातीपना नहीं पाया जाता है। अतः 'एक ही स्थान' होता है ऐसा कहने पर दारुसमान स्पर्धकोंका ही ग्रहण करना चाहिये।

शंका—'एक स्थान' से अस्थिसमान स्पर्धकोंका अथवा शैलसमान स्पर्धकोंका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इस कथनका अनन्तर अतीत सूत्रमें कहे गये द्विस्थानिक निर्देश के साथ विरोध आता है। उसीको स्पष्ट करते हैं—यदि एक स्थानसे अस्थिसमानका ग्रहण किया जाता है तो सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक हो जायगा; क्योंकि लतासमान दारुसमान और अस्थिसमान स्पर्धकोंके अनुभागके अविभागीप्रतिच्छेदोंकी संख्यामें बढ़ी हुई शक्तिकी अपेक्षा स्पर्धकभावको प्राप्त हुए निषेक वहां पाये जाते हैं। यदि एक स्थानसे शैलसमान स्थानका ग्रहण किया जाता है तो भी पूर्व सूत्रवचनके साथ इसका विरोध आता है, क्योंकि चतुः स्थानिकके द्विस्थानिक होनेमें विरोध है।

शंका—यदि सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक ही है तो सूत्रमें 'एक ही स्थान' ऐसा क्यों कहा है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्वके स्पर्धकोंमें लतासमान स्पर्धकोंका प्रतिषेध करनेके लिये ऐसा कहा है।

शंका—यदि ऐसा है तो मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कम भी सर्वघाती और द्विस्थानिक है, अतः उसको भी 'एकस्थाननिक' ऐसा कहना चाहिये।

समाधान—नहीं, क्योंकि इसीसे मिथ्यात्व और बारह कषायोंका जघन्य अनुभाग एक स्थानिक है, यह जान लिया जाता है अतः उसका कथन करते समय इस बातका निर्देश नहीं किया है।

❀ चदुसंजलणाणमणुभागसंतकम्मं सव्वघादी वा देसघादी वा एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा चउट्ठाणियं वा ।

§ २०५. एत्थ जहण्णुक्कस्सविसेसणमणुभागसंतकम्मस्स काऊण परूवणा किण्ण कदा ? ण, अणुभागसंतस्स विसेसपदुप्पायणट्ठं तदकरणादो । खवणाए किट्टीकरणादो हेट्ठा सव्वत्थ संसारावत्थाए चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चेव, संतकम्मचरिमफद्दयचरिमवग्गणाए एगपरमाणुधरिदाविभागपलिच्छेदाणं गहणादो । तेण चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं सव्वघादि त्ति सुत्तवयणं सुसमंजसं । खवगसेढीए किट्टिकरणे णिट्ठिदे मोहणीयमुवरि सव्वत्थ जेण देसघादी तेणं चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं देसघादि त्ति सुत्तम्मि परूविदं । खवगसेढीए पुव्वापुव्वफद्दएसु णवकबंधवज्जेसु किट्टिसरूवेण परिणदेसु तत्तो प्पहुडि लदासमाणाणुभागसंतकम्मं चेव जेणुवलब्भदि तेण एगट्ठाणियमिदि चदुसंजलणसंतकम्मं परूविदं । हेट्ठा अणुभागसंतकम्मघादवसेण एगट्ठाणियं मोत्तूण सेसट्ठाणाणि लब्भंति त्ति दुट्ठाणियं तिट्ठाणियं चउट्ठाणियं वा त्ति भणिदं । सव्वे 'वा' सद्दा 'च' सद्दत्थे दट्ठव्वा ।

❀ इत्थिवेदस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादी दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं

❀ चार संज्वलन कषायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और देशघाती तथा एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है ।

§ २०५. शंका—यहाँ अनुभागसत्कर्मके साथ जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण लगाकर कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनुभागसत्कर्मका विशेष बतलानेके लिये उसके साथ जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाये हैं।

क्षपणावस्थामें कृष्टिकरणक्रिया करनेके पूर्व सर्वत्र संसार अवस्थामें चार संज्वलन कषायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती ही होता है, क्योंकि यहाँ सत्कर्मके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें स्थित अविभागीप्रतिच्छेदोंका ग्रहण किया है। अतः चार संज्वलन कषायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है यह सूत्रवचन बिल्कुल ठीक है। तथा क्षपकश्रेणीमें कृष्टिकरणक्रियाके निष्पन्न हो जाने पर आगे सर्वत्र मोहनीयकर्म देशघाती ही होता है, अतः चार संज्वलन कषायोंका अनुभागसत्कर्म देशघाती है ऐसा सूत्रमें कहा है। क्षपकश्रेणीमें नवकबंधको छोड़कर शेष पूर्व स्पर्धक और अपूर्व स्पर्धकोंका कृष्टिरूपसे परिणमन हो जाने पर वहाँसे लेकर उनमें लता समान अनुभाग सत्कर्म ही पाया जाता है, अतः चार संज्वलन कषायोंके अनुभागसत्कर्मको एकस्थानिक कहा है। तथा इससे पूर्व अनुभागसत्कर्मका घात हो जानेके कारण जो एकस्थानिक अनुभाग होता है उसे छोड़कर शेष स्थान पाये जाते हैं, इसलिये उसे द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक कहा है। सूत्रमें आये हुए सब 'वा' शब्द 'च' शब्दके अर्थमें जानने चाहिये।

❀ स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती तथा द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और

---

१. ता० प्रतौ जेण सव्वघादी तेण इति पाठः ।

वा चउट्ठाणियं वा।

§ २०६. इत्थिवेदस्साणुभागसंतकम्मं सव्वत्थ सव्वघादी चेव। कुदो? अणियट्टि-खवगस्स इत्थिवेदचरिमाणुभागकंडयप्पहुडि हेट्ठा सव्वावत्थासु ट्ठिदजीवस्स इत्थिवेदाणु-भागम्मि घादिज्जंतम्मि वि देसघादित्ताणुवलंभादो। किमट्ठं घादिज्जमाणं पि इत्थि-वेदाणुभागसंतकम्मं देसघादिफद्दयाणमुद्देसं ण पावेदि? सहावदो। ण सहावो पडिजोयणा-रुहो, सहावो ण तक्कगोयरो त्ति आरिसादो। सव्वे 'वा' सद्दा 'च' सद्दत्था त्ति। तं सव्व-घादी इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं दुट्ठाणियं च तिट्ठाणियं च चदुट्ठाणियं चेदि संबंधो कायव्वो। एगट्ठाणियं किण्ण होदि? ण, तत्थ सव्वघादित्ताभावादो। इत्थिवेदाणुभागेण[1] जहण्णेण वि सव्वघादिणा होदव्वं, अणंतरमित्थिवेदाणुभागो सव्वघादी चेवे त्ति णिरू-विदत्तादो। इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चदुट्ठाणियमिदि सुत्तं कायव्वं, चदुट्ठाणिय-संतकम्मम्मि एगट्ठाणिय-दुट्ठाणिय-तिट्ठाणियाणुभागसंतकम्माणमुवलंभादो त्ति? ण, एवं सुत्ते संते इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मस्स सव्वकालं चदुट्ठाणियत्तप्पसंगादो। ण च एवं, संसारावत्थाए इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मस्स कया वि दुट्ठाणियस्स कया वि तिट्ठाणियस्स चदुट्ठाणियस्स वा उवलंभादो। एदस्स सुत्तस्स विसयपरूवणट्ठं उत्तरसुत्तं भणदि—

चतुःस्थानिक होता है।

§ २०६. स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म सर्वत्र सर्वघाती ही है; क्योंकि अनिवृत्तिकरण क्षपकके स्त्रीवेदके अन्तिम अनुभागकाण्डकसे लेकर पूर्वकी सब अवस्थाओंमें स्थित जीवके स्त्रीवेदके अनुभागका घात होनेपर भी देशघातीपना नहीं पाया जाता है।

शंका— घात होने पर भी स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म देशघातिस्पर्धकोंके स्थानको क्यों नहीं पाता है?

समाधान— उसका ऐसा स्वभाव ही है। और स्वभावके विषयमें प्रश्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि 'स्वभाव तर्कका विषय नहीं है' ऐसा आर्षवचन है।

सूत्रमें आये हुए सब वा शब्दोंका अर्थ और है। अतः स्त्रीवेदका वह सर्वघाती अनुभाग-सत्कर्म द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है ऐसा सम्बन्ध लगाना चाहिये।

शंका— एकस्थानिक क्यों नहीं है?

समाधान— नहीं, क्योंकि एकस्थानिकमें सर्वघातीपनेका अभाव है। तथा स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग भी सर्वघाती होना चाहिये; क्यों कि अनन्तर ही 'स्त्रीवेदका अनुभाग-सर्वघाती ही है' ऐसा कह आये हैं।

शंका— 'स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है' ऐसा सूत्र बनाना चाहिये; क्योंकि चतुःस्थानिक अनुभागसत्कर्ममें एकस्थानिक, द्विस्थानिक और त्रिस्थानिक अनु-भागसत्कर्म पाये ही जाते हैं।

समाधान— नहीं; क्योंकि ऐसा सूत्र होनेपर स्त्रीवेदके अनुभागसत्कर्मको सदा चतुः-स्थानिक होनेका प्रसंग आता है। किन्तु वह सदा चतुःस्थानिक नहीं होता, क्योंकि संसार अवस्था में स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म कभी द्विस्थानिक, कभी त्रिस्थानिक और कभी चतुःस्थानिक पाया

---

१. ता० प्रतौ य (इ) त्थिवेदाणुभागेण, आ० प्रतौ यत्थि वेदाणुभागेण इति पाठः।

❀ मोत्तूण खवगचरिमसमयइत्थिवेदयं उदयणिसेगं ।

§ २०७. मोत्तूण सव्वमित्थिवेदपदेससंतकम्मं परसरूवेण संकामिय अवट्ठिदो चरिमसमयइत्थिवेदओ णाम तं मोत्तूण हेट्ठा इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं सव्वत्थ सव्वघादी दुट्ठाणियं तिट्ठाणियं चदुट्ठाणियं वा होदि । चरिमसमयइत्थिवेदियस्स अणुभागसंतकम्मसरूवपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ तस्स देसघादी एगट्ठाणियं ।

§ २०८. तस्स चरिमसमयसवेदयस्स इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं देसघादी एगट्ठाणियं च होदि, उदयसरूवत्तादो । उदयणिसेगाणुभागसंतकम्मं देसघादि त्ति कुदो णव्वदे ? ण, संजदासंजदप्पहुडि उवरिमगुणट्ठाणेसु चदुसंजलण-णवणोकसायाणुभागसंतकम्मस्स देसघादिफद्दयाणमुदयाभावे तत्थ अणुव्वय-महव्वयाणमत्थित्तविरोहादो । एगट्ठाणियमिदि कुदो णव्वदे ? अंतरकरणकदपढमसमए मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ बंधो एगट्ठाणिओ उदओ त्ति सुत्तणिद्देसादो ।

जाता है । अब इस सूत्रका विषय कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ मात्र अन्तिम समयवर्ती क्षपक स्त्रीवेदीके उदयगत निषेकको छोड़कर शेष अनुभाग सर्वघाती तथा द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है ।

§ २०७. छोड़कर, अर्थात् क्षपकश्रेणिमें स्त्रीवेदका जो प्रदेशसत्कर्म पररूपसे संक्रामित होकर स्थित है उसे अन्तिमसमयवर्ती स्त्रीवेद कहते हैं, उसे छोड़कर इससे पूर्व स्त्रीवेदका जो अनुभागसत्कर्म है वह सर्वत्र सर्वघाती तथा द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है । अब अन्तिम समयवर्ती स्त्रीवेदके अनुभागसत्कर्मका स्वरूप बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु उसका अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है ।

§ २०८. उसका अर्थात् अन्तिम समयवर्ती सवेदकका स्त्रीवेदसम्बन्धी अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है; क्योंकि वह उदयस्वरूप है ।

शंका—उदयप्राप्त निषेकका अनुभागसत्कर्म देशघाती होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि संयतासंयतसे लेकर आगेके गुणस्थानोंमें चार संज्वलन और नव नोकषायोंके अनुभागसत्कर्मके देशघाती स्पर्धकोंके उदयके अभावमें अणुव्रत और महाव्रतका अस्तित्व नहीं हो सकता । अर्थात् यदि इन गुणस्थानोंमें संज्वलन और नौ नोकषायोंके देशघाती स्पर्धकोंका उदय न होता तो उनमें अणुव्रत और महाव्रत भी न होते । इससे जाना जाता है कि अन्तिम समयवर्ती सवेदकके स्त्रीवेदके उदयगत निषेक देशघाती होते हैं ।

शंका—वह अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तरकरण कर चुकनेके प्रथम समयमें मोहनीय कर्मका एकस्थानिक बन्ध और एकस्थानिक उदय होता है इस सूत्र वचनके निर्देशसे जाना जाता है कि अन्तिम समयवर्ती सवेदकके स्त्रीवेदका उदयगत निषेक एकस्थानिक होता है ।

---

१. ता० प्रतौ उदयणिसेगं इति पाठः सूत्रांशत्वेन नोपलभ्यते ।

❀ पुरिसवेदस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं देसघादी एगट्ठाणियं।

§ २०९. कुदो? पुरिसवेदोदएण खवगसेढिमारूढेण चरिमसमयसवेदेण बद्ध-अणुभागसंतकम्मम्मि पुरिसवेदस्स जहण्णत्तग्गहणादो। दुचरिमादिसमएसु बद्धाणुभागसंतकम्मं जहण्णमिदि किण्ण गहिदं? ण, चरिमसमयबद्धअणुभागादो दुचरिमादिसमएसु[2] बद्धाणुभागाणमणंतगुणत्तादो। तं कुदो णव्वदे? चरिमसमयबद्धाणुभागादो तत्थेव उदयगदगोवुच्छाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं, तत्तो सवेदयस्स दुचरिमाणुभागबंधो अणंतगुणो, तत्थेव उदयगदगोउच्छाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। एवं हेट्ठा कमेण ओदारेदव्वं जाव पढमसमयअपुव्वकरणो त्ति एदम्हादो अप्पाबहुअसुत्तादो। पुरिसवेदचरिमाणुभागकंडयचरिमफालीए जहण्णमणुभागसंतकम्ममिदि किण्ण घेप्पदि? ण, तत्थतणाणुभागस्स सव्वघादिबेट्ठाणियस्स जहण्णत्ताणुववत्तीदो। पुरिसवेदचरिमबंधो देसघादी एगट्ठाणिओ त्ति कुदो णव्वदे? अंतरकरणकदपढमसमयप्पहुडि मोहणीयस्स बंधो उदओ च देसघादी एगट्ठाणिओ त्ति सुत्तादो।

❀ पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है।

§ २०९ क्योंकि पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए अन्तिम समयवर्ती सवेदकके द्वारा बाँधा गया जो अनुभागसत्कर्म है उसमें पुरुषवेदका जघन्यपना उपलब्ध होता है।

शंका—उपान्त्य आदि समयोंमें बांधा गया जो अनुभागसत्कर्म है वह जघन्य है ऐसा क्यों नहीं ग्रहण किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तिम समयमें बद्ध अनुभागसे द्विचरम आदि समयोंमें बन्धको प्राप्त हुआ अनुभाग अनन्तगुणा होता है, अतः उसका ग्रहण नहीं किया।

शंका—यह कैसे जाना कि अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धसे उपान्त्य समयमें होनेवाला अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है?

समाधान—"अन्तिम समयमें बद्ध अनुभागसे वहीं उदयगत गोपुच्छाका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे द्विचरम समयमें होनेवाला अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे वहीं उदयगत गोपुच्छाका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समय पर्यन्त क्रमसे नीचे उतारना चाहिये। इस अल्पबहुत्वको बतलानेवाले सूत्रसे जाना कि अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धसे उपान्त्य समयमें होनेवाला अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है।

शंका—पुरुषवेदके अन्तिम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालीमें जो अनुभागसत्कर्म है वह जघन्य है ऐसा क्यों नहीं ग्रहण किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसमें जो अनुभाग है वह सर्वघाती और द्विस्थानिक है, अतः वह जघन्य नहीं हो सकता।

शंका—पुरुषवेदका अन्तिम बन्ध देशघाती और एकस्थानिक है यह किस प्रमाणसे जाना?

समाधान—अन्तरकरण कर चुकनेके प्रथम समयसे लेकर मोहनीयका बन्ध और उदय देशघाती और एकस्थानिक होता है इस सूत्रसे जाना।

---

१. आ० प्रतौ चरिमसमयवेदगबद्ध इति पाठः। २. आ० प्रतौ दुचरिमसमएसु इति पाठः।

❀ उक्कस्साणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चदुट्ठाणियं ।

§ २१०. जहण्णुक्कस्सविसेणमकाऊण इत्थिवेदस्सेव किण्ण वुत्तं ? ण, एगट्ठाणियाणुभागस्स संभवे संते दुट्ठाण--तिट्ठाण--चउट्ठाणअणुभागसंतकम्माणं णियमेण संभवो अत्थि त्ति तहाविहपरूवणाए फलाभावादो । जदि एवं तो इत्थिवेद-चदुसंजलणाणं पि तहा परूवणा ण कायव्वा, एगट्ठाणियाणुभागस्स अत्थित्तं पडि विसेसाभावादो त्ति ? ण एस दोसो, तेहि सुत्तेहि अवसेसे जाणाविदे संते पुणो तहापरूवणाए फलाभावादो । सेसं सुगमं ।

❀ णवुंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं सव्वघादी दुट्ठाणियं ।

§ २११. एदमोघजहण्णं[1] ण होदि किंतु आदेसजहण्णं, णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिमारूढस्स चरिमसमयसवेदियस्स[2] उदयगदेगगोवुच्छम्मि जहण्णाणुभागत्तादो । एदं जहण्णाणुभागसंतकम्मं पुण कत्थ गहिदं ? णवुंसयवेदचरिमाणुभागकंडयम्मि । एत्थेव गहिदमिदि कुदो णव्वदे ? देसघादी एगट्ठाणियं त्ति अभणिदूण सव्वघादी दुट्ठाणिय-

---

✻ तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है ।

§ २१०. शंका—जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण न लगाकर स्त्रीवेदके समान निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पुरुषवेदमें एकस्थानिक अनुभागके संभव होने पर द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक अनुभागसत्कर्म नियमसे संभव है, इसलिए उसप्रकारसे कथन करने में कोई फल नहीं होनेसे वैसा निर्देश नहीं किया ।

शंका—यदि ऐसा है तो स्त्रीवेद और चार संज्वलनकषायोंका भी उसप्रकारसे कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि एकस्थानिक अनुभाग उनमें भी संभव है, इसलिये एकस्थानिक अनुभागके अस्तित्वकी अपेक्षा उनमें और पुरुषवेदमें कोई अन्तर नहीं है । अर्थात् पुरुषवेदकी तरह स्त्रीवेद और संज्वलनकषायमें भी एकस्थानिक अनुभाग पाया जाता है और जिसमें एकस्थानिक अनुभाग संभव है उसमें द्विस्थानिक आदि अनुभाग नियमसे संभव हैं, अतः स्त्रीवेद और चार संज्वलनोंके अनुभागसत्कर्मका कथन जिसप्रकार पिछले सूत्रोंमें कर आये हैं उसप्रकार नहीं करना चाहिए था ।

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि उन सूत्रोंसे अवशेष बातोंका ज्ञान करा देनेपर पुनः उस प्रकारसे कथन करनेमें कोई फल नहीं है । शेष सुगम है ।

✻ नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक होता है ।

§ २११. यह ओघ जघन्य नहीं है किन्तु आदेश जघन्य है, क्योंकि ओघसे नपुंसक वेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए अन्तिम समयवर्ती सवेदी जीवके उदयगत एक गोपुच्छामें जघन्य अनुभाग होता है ।

शंका—तो फिर यह सूत्रोक्त जघन्य अनुभागसत्कर्म कहां ग्रहण किया है ।

समाधान—नपुंसकवेदके अन्तिम अनुभागकाण्डकमें यह जघन्य अनुभागसत्कर्म ग्रहण किया है ।

शंका—उसे यहां ही ग्रहण किया है यह किस प्रमाणसे जाना ?

---

१. आ० प्रतौ एदमोघभंगो जहण्णं इति पाठः । २. ता० प्रतौ चरिमसमवेदयस्स इति पाठः ।

मिदि भणिदत्तादो।

* उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चउट्ठाणियं।

§ २१२. सुगममेदं, असइं परूविदत्तादो।

§ २१३. संपहि वुत्तदोसुत्ताणं विसयपरूवणदुवारेण अपवादपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

* णवरि खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादी एगट्ठाणियं।

§ २१४. कुदो ? चरिमफालिं परसरूवेण संकामिय उदयगदएगगुणसेढिगोवुच्छाए ट्ठिदअणुभागसंतकम्मस्स ग्गहणादो।

§ २१५. एवं जइवसहाइरियपरूविदजहण्णुक्कस्साणुभागविसयघादिसण्णाट्ठाणसण्णाणं[1] परूवणं काऊण संपहि उच्चारणाइरियवक्खाणकमं[2] परूवेमो—

§ २१६. तत्थ सण्णा दुविहा—घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा चेदि। घादिसण्णा दुविहा—जहण्णा उक्कस्सा चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सम्मामि०-बारसक०-छण्णोक० उक्क० अणुक्क० सव्वघादी। सम्मत्त० उक्क० अणुक्क० देसघादी। चदुसंजलण-तिण्णिवेद० उक्क० सव्वघादी अणुक्क०

समाधान—क्योंकि सूत्रमें देशघाती और एकस्थानिक न कह कर सर्वघाती और द्विकस्थानिक कहा है इससे जाना कि यह सूत्रोक्त जघन्य अनुभाग नपुंसकवेदके अन्तिम अनुभागकाण्डकमें ग्रहण किया है।

* तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है।

§ २१२. इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि अनेक बार उसे कह चुके हैं।

§ २१३. अब उक्त दो सूत्र के विषयकी प्ररूपणाके द्वारा अपवादका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं

* इतना विशेष है कि अन्तिम समयवर्ती नपुंसकवेदी क्षपकका अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है।

§ २१४. क्योंकि अन्तिम फालीको पररूपसे संक्रमाकर उदयगत एक गुणश्रेणिगोपुच्छामें स्थित अनुभागसत्कर्मका यहाँ ग्रहण किया है।

§ २१५. इस प्रकार आचार्य यतिवृषभके द्वारा प्ररूपित जघन्य और उत्कृष्ट अनुभाग विषयक घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञाका कथन करके अब उच्चारणाचार्यके द्वारा किये गये व्याख्यानक्रमको कहते हैं—

§ २१६. संज्ञा दो प्रकारकी है—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। घातिसंज्ञा दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और छ नोकषायोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है। सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म

१. आ० प्रतौ -सण्णट्ठाणसण्णाणं इति पाठः। २. ता० प्रतौ -वक्खाणकमं इति पाठः।

सव्वघादी वा देसघादी वा।

§ २१७. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमुक्क० अणुक्क० सव्वघादी। सम्मत्त० उक्क० अणुक्क० देसघादी। सम्मामि० उक्क० सव्वघादी। अणुक्कस्साणुभागसंतकम्मं णत्थि, दंसणमोहक्खवणं मोत्तूण अण्णत्थ सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताणमणुभागकंडयघादाभावादो। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देव०-सोहम्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि, कदकरणिज्जाणं तत्थुववादाभावादो। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिं०तिरि०अपज्ज०--मणुसअपज्ज०-भवण०--वाण०-जोदिसिय त्ति। मणुसतियस्स ओघभंगो। णवरि मणुसपज्जत्तएसु इत्थि० उक्क० अणुक्क० सव्वघादी। कुदो? परोदएण खवगसेढीए णिल्लेविदत्तादो। मणुस्सिणीसु पुरिस०-णवुंस० उक्क० अणुक्क० सव्वघादी। कुदो? खवगसेढीए परोदएण णट्ठत्तादो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ २१८. जहण्णए पयदं। दुवि०—ओघे० आदे०। तत्थ ओघेण मिच्छत्त०-सम्मामि०--वारसक०--छण्णोक० ज० अज० सव्वघादी। सम्मत्त० ज० अज० देसघादी। पुरिस०-चदुसंज० ज० देसघादी। अज० देसघादी सव्वघादी वा। चदुण्हं

देशघाती है। चार संज्वलन कषाय और तीनों वेदोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और देशघाती है।

§ २१७. आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्म सर्वघाती है। सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म देशघाती है। सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है। किन्तु नरकमें उसका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं है; क्योंकि दर्शनमोहके क्षपणके सिवाय अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागकाण्डकघात नहीं होता। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक भी ऐसा ही समझना चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि यहां सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता; क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंका वहां उत्पाद नहीं होता। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त; मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। तीन प्रकारके मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है, क्योंकि इनके क्षपकश्रेणीमें परोदयसे उसका विनाश होता है। तथा मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है, क्योंकि इनके क्षपकश्रेणीमें परोदयसे उन दोनोंका विनाश होता है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

§ २१८. अब जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमें से ओघसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और छ नोकषायोंका जघन्य और अजघन्य अनुभाग सत्कर्म सर्वघाती है। सम्यक्त्वका जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती है।

संजलणाणं किट्टित्तमुवणमिय विणट्ठाणमजहण्णाणुभागस्स होदु णाम देसघादित्तं, ण पुरिसवेदस्स, फद्दयसरूवेण विणट्ठत्तादो ? ण, पुरिसवेदस्स वि दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं देसघादिअजहण्णाणुभागफद्दयाणमुवलंभादो । इत्थि०-णवुंस० जह० देसघादी । अजहण्णं सव्वघादी । एवं मणुसतियम्मि । णवरि मणुसपज्ज० इत्थि० जहण्णाजहण्ण० सव्वघादी मणुसिणीसु पुरिस०-णवुंस० जहण्णाजहण्ण० सव्वघादी ।

§ २१९. आदेसेण णिरयादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्कस्सभंगो । णवरि जहण्णाजहण्णं ति भाणिदव्वं । एवं जाणिदूण णेयव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ २२०. ट्ठाणसण्णा दुविहा—जहण्णा उक्कस्सा चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-छण्णोक० उक्क० चउट्ठाणियं । अणुक्क० चउट्ठाणियं तिट्ठाणियं वेट्ठाणियं वा । सम्मत्त० उक्क० वेट्ठाणियं । अणुक्क० वेट्ठाणियं एगट्ठाणियं वा । सम्मामि० उक्कस्साणुक्कस्सं वेट्ठाणियं । चदुण्णं संजलणाणं तिण्हं वेदाणमुक्क० चदुट्ठाणियं । अणुक्क० चदुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा विट्ठाणियं वा एगट्ठाणियं वा । एवं मणुसतिये । णवरि मणसपज्ज० इत्थिवेदस्स एग-

---

पुरुषवेद और चार संज्वलन कषायोंका जघन्य अनुभाग देशघाती है और अजघन्य अनुभाग देशघाती और सर्वघाती है ।

शंका—चारों संज्वलन कषाय कृष्टिपनेको प्राप्त होकर नष्ट होती हैं, अत: उनका अजघन्य अनुभाग देशघाती होओ, किन्तु पुरुषवेदका अजघन्य अनुभाग देशघाती नहीं हो सकता, क्योंकि स्पर्धकरूपसे उसका विनाश होता है ।

समाधान—नहीं क्योंकि पुरुषवेदके भी दो समय कम दो आवली मात्र काल तक देशघाती अजघन्य अनुभागस्पर्धक पाये जाते हैं ।

स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती है और अजघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है । इसी प्रकार मनुष्यके तीन भेदोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है और मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदका जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है ।

§ २१९ आदेशसे नरकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके जीवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ २२०. स्थानसंज्ञा दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट । यहां उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और छ नोकषायोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कम चतु:स्थानिक है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतु:स्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक है । सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है । अनुत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्म द्विस्थानिक और एकस्थानिक है । सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है । चार संज्वलन कषाय और तीन वेदोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतु:स्थानिक है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतु:स्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक और एकस्थानिक है । इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें

ट्ठाणियं णत्थि। मणुसिणीसु पुरिस०-णवुंसय० एगट्ठाणियं णत्थि।

§ २२१. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० चउट्ठाणियं। अणुक्क० चउट्ठाणियं तिट्ठाणियं विट्ठाणियं वा। सम्मत्त० उक्क० विट्ठाणियं। अणुक्क० एगट्ठाणियं। सम्मामि० उक्कस्साणुकस्स० वेट्ठाणियं। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अणुक्क० एगट्ठाणं णत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणी-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति। आण-दादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणं उक्क० अणुक्क० वेट्ठाणियं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं देवोघभंगो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ २२२. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-छण्णोक० जहण्णाणु० वेट्ठाणियं। अज० वेट्ठाणियं तिट्ठाणियं चउट्ठाणियं वा। सम्मत्त० ज० एगट्ठाणियं। अज० एगट्ठाणियं विट्ठाणियं वा। सम्मामि० जहण्ण० अजहण्णं पि विट्ठाणियं। पुरिस०-चदुसंज० जह० एगट्ठाणियं। अज० एगट्ठाणियं विट्ठाणियं तिट्ठाणियं चउट्ठाणियं वा। इत्थि०-णवुंस० ज० एगट्ठागियं। अज० वेट्ठाणियं

स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक नहीं है। तथा मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसक-वेदका अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक नहीं है।

§ २२१. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंका उत्कृष्ट अनु-भागसत्कर्म चतुःस्थानिक है और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक है। सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अणुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है और अनुत्कृष्ट अनुभाग सत्कम एकस्थानिक है। सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक नहीं है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सामान्य देवोंके समान भंग है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ २२२. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और छह नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है। सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म एकस्थानिक है और अजघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक और द्विस्थानिक है। सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य और अजघन्य भी अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है। पुरुषवेद और चार संज्वलन कषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक है और अजघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य

तिट्ठाणियं चउट्ठाणियं वा। एवं मणुसतिय०। णवरि मणुसपज्जत्तेसु इत्थिवेद० जहण्ण० वेट्ठाणियं। अजहण्ण० वेट्ठाणियं तिट्ठाणियं चउट्ठाणियं वा। मणुसिणीसु पुरिस०-णवुंस० ज० वेट्ठाणियं। अज० वेट्ठाणियं तिट्ठाणियं चउट्ठाणियं वा।

§ २२३. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणं ज० विट्ठाणियं। अज० तिट्ठाणियं चउट्ठाणियं वा। सम्मत्त० ज० एगट्ठाणियं। अज० एगट्ठाणियं विट्ठाणियं वा। सम्मामि० ओघं। णवरि जहण्णाजहण्णभेदो णत्थि। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देव--सोहम्मादि जाव सहस्सारकप्पो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। एवं जोणिणी-पंचिं०-तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिओ त्ति। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणं ज० अज० वेट्ठाणियं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोघभंगो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

ट्ठाणसण्णा समत्ता।

§ २२४. उत्तरपयडिअणुभागविहत्तीए तत्थ इमाणि अणियोगद्दाराणि। तं जहा--सव्वाणुभागविहत्ती णोसव्वाणुभागविहत्ती उक्कस्साणुभागविहत्ती अणुक्कस्साणुभागविहत्ती

अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है। मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है।

§ २२३. आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है। सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक और द्विस्थानिक है। सम्यग्मिथ्यात्वका ओघके समान जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ उसमें जघन्य और अजघन्यका भेद नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य भेद नहीं है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य और अजघन्य अनुभाग सत्कर्म द्विस्थानिक है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

स्थानसंज्ञा समाप्त हुई।

§ २२४. उत्तरप्रकृति अनुभागविभक्तिमें ये अनुयोगद्वार होते हैं। यथा—सर्वानुभागविभक्ति नोसर्वानुभागविभक्ति, उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति, अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति, जघन्य अनुभागविभक्ति,

जहण्णाणुभागविहत्ती अजहण्णाणुभागविहत्ती सादियअणुभागविहत्ती अणादियअणुभागविहत्ती धुवाणुभागविहत्ती अद्धुवाणुभागविहत्ती एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालो अंतरं सण्णियासो भावो अप्पाबहुअं चेदि। भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढिविहत्ति-ट्ठाणाणि त्ति।

§ २२५. तत्थ सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठावीसं पयडीणं सव्वाणि फद्दयाणि सव्वविहत्ती। तदूणाणि णोसव्वविहत्ती। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ २२६. उक्कस्सविहत्ति-अणुक्कस्सविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठावीसं पयडीणं सव्वुक्कस्सचरिमफद्दयचरिमवग्गणाणुभागो उक्कस्सविहत्ती। तदूणो अणुक्कस्सविहत्ती। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ २२७. जहण्णाजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वासिं पयडीणं सव्वजहण्णट्ठाणस्स चरिमवग्गणाणुभागो चरिमकिट्टि-अणुभागो वा जहण्णविहत्ती। तदुवरिमजहण्णविहत्ती। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ २२८. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्ठक० उक्क० अणुक्क० ज० अज० किं

अजघन्य अनुभागविभक्ति, सादि अनुभागविभक्ति, अनादि अनुभागविभक्ति, ध्रुव अनुभागविभक्ति, अध्रुव अनुभागविभक्ति, एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभागानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भाव और अल्पबहुत्व। तथा भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धिविभक्ति और स्थान।

§ २२५. उनमेंसे सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्तिक अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब स्पर्धक सर्वविभक्ति हैं। उनसे कम स्पर्धक नोसर्वविभक्ति हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ २२६. उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंके सबसे उत्कृष्ट अन्तिम स्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणाओंका अनुभाग उत्कृष्टविभक्ति है। उससे कम अनुभाग अनुत्कृष्टविभक्ति है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

§ २२७. जघन्य और अजघन्य विभक्तिअनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके सबसे जघन्य स्थानकी अन्तिम वर्गणाका अनुभाग अथवा अन्तिम कृष्टिका अनुभाग जघन्य विभक्ति है। उससे ऊपरका अनुभाग अजघन्यविभक्ति है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ २२८. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और आठ कषायोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभाग क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या

सादिओ किमणादिओ किं धुवो किमद्धुवो वा ? सादी अद्धुवो । चदुसंजल०-णवणोकसाय० उक्क० अणुक्क० ज० किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा ? सादि० अद्धुवा । अज० किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा ? अणादिया धुवा अद्धुवा वा । अणंताणु०चउक्क० उक्क० अणुक्क० ज० किं सादिया अणादिया धुवा अद्धुवा ? सादि-अद्धुवा । अज० किं सादि० अणादि० धुवा अद्धुवा ? सादि० अणादि० धुवा अद्धुवा वा । आदेसम्मि सव्वपयडीणं सव्वपदा० सादि-अद्धुवा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

❀ एगजीवेण सामित्तं ।

§ २२९. सव्वविहत्तियादिअहियारे अभणिदूण एगजीवेण सामित्तं चेव किमिदि जइवसहाइरियो भणदि ? ण, जहण्णुक्कस्ससामित्तेसु परूविदेसु तेसिं पि अवगमा होदि त्ति तदपरूवणादो । ण च अवगयअत्थपरूवयं सुत्तं भवदि, अइप्पसंगादो ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २३०. एदं पुच्छासुत्तं सव्वमग्गणाहि सव्वोगहणाहि विसेसिदजीवे उवेक्खदे । सेसं सुगमं ।

क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । चार संज्वलन और नव नोकषायोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभाग क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य अनुभाग क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभाग क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य अनुभाग क्या सादि है, क्या अनादि है क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । आदेशसे सब प्रकृतियोंके सब पद सादि और अध्रुव हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

❀ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वका प्रकरण है ।

§ २२९ शंका—सर्वविभक्ति आदि अधिकारोंको न कहकर आचार्य यतिवृषभ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वको ही क्यों कहते हैं ?.

समाधान—नहीं, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट स्वामित्व का कथन कर देने पर उनका भी ज्ञान होजाता है, इसलिये शेष अधिकारोंका प्ररूपण नहीं किया है । यदि कहा जाय कि स्वामित्व के प्ररूपणसे उनका ज्ञान होजाने पर भी उनका कथन कर देते तो क्या हानि थी । किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यह सूत्र ग्रन्थ है और जो जाने हुए अर्थ का कथन करता है वह सूत्र नहीं हो सकता, अन्यथा अतिप्रसंग दोष आयेगा, अर्थात् यदि जाने हुए अर्थ का कथन करनेवाला ग्रन्थ भी सूत्र कहा जा सकता है तो फिर कोई मर्यादा ही नहीं रहेगी ।

❀ मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २३०. यह पृच्छासूत्र सब मार्गणाओं और सब अवगाहनाओं से युक्त जीव की उपेक्षा करता है । अर्थात् सामान्य जीव की अपेक्षा करता है । शेष अर्थ सुगम है ।

❀ उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि ।

§ २३१. उक्कस्ससंकिलेसेण उक्कस्समणुभागं बंधिदूण जाव तं कंडयघादेण ण हणदि ताव तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं होदि । सो उक्कस्साणुभागबंधो कस्स होदि ? सण्णिपंचिंदियपज्जत्तसव्वुक्कस्ससंकिलेसमिच्छाइट्ठिस्स । जदि एवं तो एवंविधो उक्कस्साणुभागबंधओ त्ति किण्ण परूविदं ? ण, अवुत्ते वि आइरिओवदेसादेव जाणिज्जदि त्ति तदपरूवणादो । सो जाव तमुक्कस्साणुभागसंतकम्मं कंडयघादेण ण हणदि ताव तेण कत्थ कत्थ उप्पज्जदि त्ति वुत्ते तण्णिण्णयत्थमुत्तरसुत्तं भणदि ।

❀ ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा ।

§ २३२. तेणुक्कस्ससंतकम्मेण सह कालं कादूण एइंदिओ होज्ज, वीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ असण्णिपंचिंदिओ सण्णिपंचिंदिओ वा होज्ज; उक्कस्साणुभागसंतकम्मेण सह एदेसिं विरोहाभावादो । एइंदिया बहुविहा बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तभेयेण । तत्थ केसिं गहणं ? सव्वेसिं पि । कुदो ? सुत्तम्मि विसेसणिद्देसाभावादो । एवं वेइंदियादीणं पि वत्तव्वं । एदस्स सुत्तस्स अपवादट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि ।

✻ जो उत्कृष्ट अनुभागका बंध करके जब तक उसका घात नहीं करता है ।

§ २३१. उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट अनुभागका बंध करके जब तक उसे काण्डकघातके द्वारा नहीं घातता है तब तक उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है ।

शंका—वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किसके होता है ?

समाधान—सर्वोत्कृष्ट संक्लेशवाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके होता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो 'जो इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका बंधक है उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है' इस प्रकार क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नहीं कहने पर भी आचार्यके उपदेशसे ही यह बात ज्ञात हो जाती है, अतः उसका कथन नहीं किया है ।

वह जीव जब तक उस उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको काण्डकघातके द्वारा नहीं घातता है तब तक वह कहाँ कहाँ उत्पन्न होता है ऐसा प्रश्न करने पर उसका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

✻ तब तक वह एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी अथवा संज्ञी होता है, उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है ।

§ २३२. उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्मके साथ मरण करके वह जीव एकेन्द्रिय होता है,दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अथवा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होता है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्मके साथ इन पर्यायोंका कोई विरोध नहीं है ।

शंका—बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे एकेन्द्रिय जीव अनेक प्रकारके हैं । उनमेंसे किसका ग्रहण किया है ?

समाधान—सभीका ग्रहण किया है; क्योंकि सूत्रमें किसी विशेषका निर्देश नहीं है ।

इसी प्रकार दोइन्द्रियादिकके सम्बन्धमें भी कहना चाहिये । अब इस सूत्रके अपवादके

❀ असंखेज्जवस्साउएसु मणुस्सोववादियदेवेसु च णत्थि ।

§ २३३. असंखेज्जवस्साउएसु त्ति वुत्ते भोगभूमियतिरिक्ख-मणुस्साणं गहणं, ण देव-णेरइयाणं । कुदो ? रूढिवसादो । भोगभूमिसु ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीणमवसाणे आदीए च संखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्साणं पि अदो चेव असंखेज्जवस्साउअत्तं । वुप्पत्तिणिरवेक्खो असंखेज्जवस्साउअसद्दो भोगभूमियतिरिक्ख-मणुस्सेसु संखेज्ज-वस्साउएसु असंखेज्जवस्साउएसु च वट्टदि त्ति भणिदं होदि ।

§ २३४. मणुस्सोववादियदेवेसु त्ति वुत्ते आणदादिउवरिमसव्वदेवाणं गहणं, मणुस्सेसु चेव तेसिमुप्पत्तीदो । कुदोवहारणोवलद्धी ? मणुस्सोववादियदेवेसु त्ति विसेसणादो । तं जहा—सव्वे देवा मणुस्सोववादिया, पडिसेहाभावादो । तदो फलाभावादो ण विसेसणं

लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु वह असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें और केवल मनुष्योंमें उत्पन्न होने-वाले देवोंमें उत्पन्न नहीं होता है ।

§ २३३. असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें ऐसा कहने पर उससे भोगभूमिया तिर्यञ्च और मनुष्योंका ग्रहण होता है, देव और नारकियोंका नहीं, क्योंकि रूढ़ि ही ऐसी है। भोगभूमियोंमें अवसर्पिणी कालके अन्तमें और उत्सर्पिणी कालके आदिमें होनेवाले संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य भी इसी सूत्रके बलसे असंख्यातवर्षायुष्क कहे जाते हैं । तात्पर्य यह है कि व्युत्पत्तिकी अपेक्षा न करके यह असंख्यातवर्षायुष्क शब्द संख्यात वर्षकी आयुवाले और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमिया तिर्यञ्च और मनुष्योंमें रहता है ।

विशेषार्थ—'असंख्यातवर्षायुष्क' शब्दसे भोगभूमियोंका ग्रहण किया जाता है। किन्तु भरत और ऐरावतमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालका परिणमन सदा होता रहता है तथा अवसर्पिणी कालके प्रारम्भके तीन कालोंमें और उत्सर्पिणी कालके अन्तके तीन कालोंमें भोगभूमि रहती है, अतः जब अवसर्पिणी कालका तीसरा काल समाप्त होने लगता है तो उस समयके तिर्यञ्च मनुष्योंकी आयु असंख्यात वर्षकी न होकर संख्यात वर्षकी होने लगती है । इसी प्रकार उत्सर्पिणी कालके चौथे कालके प्रारम्भमें भी जब कि भोगभूमि प्रारम्भ होती है भरत और ऐरावतके तिर्यञ्च और मनुष्योंकी आयु संख्यात वर्षकी होती है, अतः असंख्यातवर्षायुष्क शब्दका जो व्युत्पत्ति अर्थ असंख्यात वर्षकी आयुवाला किया है, यदि वह अर्थ लिया जाता है तो संख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियोंका ग्रहण नहीं होता है, अतः व्युत्पत्ति अर्थकी अपेक्षा न करके असंख्यातवर्षायुष्क शब्दसे भोगभूमिया मनुष्य और तिर्यञ्चोंका ग्रहण करना चाहिये चाहे वे संख्यात वर्षकी आयुवाले हों या असंख्यात वर्षकी आयुवाले हों। उनमें मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव जन्म नहीं लेता ।

§ २३४. मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें ऐसा कहने पर आनत स्वर्गसे लेकर ऊपरके सब देवोंका ग्रहण होता है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति मनुष्योंमें ही होती है ।

शंका—मनुष्योंमें ही उत्पन्न होनेवाले देवोंका ग्रहण किया है, इस प्रकारका अवधारण कहाँसे लिया ?

समाधान—'मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें इस विशेषणसे । इसका खुलासा इस प्रकार है—सभी देव मनुष्योंमें उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि मनुष्योंमें उनकी उत्पत्तिका निषेध नहीं है,

फलवंतमिदि। ण च णिप्फलं सुत्तं होदि, अव्ववत्थावत्तीदो। तम्हा अवहारणस्स अत्थित्त-मवगम्मदि त्ति। एदेसु उक्कस्साणुभागसंतकम्मं णत्थि, तं घादिय विट्ठाणियं करिय पच्छा एदेसुप्पत्तीदो। ण च तत्थ उक्कस्साणुभागबंधो वि अत्थि, तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साहि तिरिक्ख-मणुस्सेसु सुक्कलेस्साए देवेसु च उक्कस्साणुभागबंधाभावादो।

❀ एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं।

§ २३५. जहा मिच्छत्तउक्कस्साणुभागस्स सामित्तं परूविदं तहा सोलसकसाय-णवणोकसायाणं पि परूवेदव्वं, विसेसाभावादो। एत्थ 'च' सद्दो समुच्चयट्ठो किण्ण परूविदो? ण, तेण विणा वि तदट्ठोवलद्धीदो।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स?

§ २३६. सुगममेदं।

❀ दंसणमोहक्खवगं मोत्तूण सव्वस्स उक्कस्सयं।

§ २३७. कुदो? दंसणमोहक्खवयं मोत्तूण अण्णत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-मणुभागखंडयघादाभावादो। पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अणंताणुबंधिविसंजोयणाए चारित्तमोह-

---

अत: दूसरा कोई फल न होनेसे विशेषण निष्फल हो जायगा। और सूत्र निष्फल नहीं होता. क्योंकि इससे अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है, इसलिए इस सूत्रमें अवधारणके अस्तित्वका ज्ञान होता है।

इन जीवों में उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं है, क्योंकि उसका घात करके उसे द्विस्थानिक कर लेनेके पश्चात् ही इनमें उत्पत्ति होती है। और उनमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी नहीं होता। इसका कारण यह है कि भोगभूमिमें पर्याप्त अवस्थामें तीन शुभ लेश्याएं ही हैं और आनत स्वर्ग से लेकर ऊपरके देवों में केवल शुक्ल लेश्या ही है। तथा तेज, पद्म और शुक्ललेश्या के रहते हुए तिर्यञ्च मनुष्योंमें और शुक्ललेश्या के रहते हुए देवोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं हो सकता।

※ इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंके भी स्वामित्वका कथन कर लेना चाहिये।

§ २३५. जैसे मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके स्वामीका कथन किया उसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंके स्वामित्वका भी कथन कर लेना चाहिये, उससे इसमें कोई भेद नहीं है।

शंका—इस सूत्रमें समुच्चयार्थक 'च' शब्द क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसके बिना भी उसके अर्थका ज्ञान हो जाता है।

※ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है?

§ २३६ यह सूत्र सरल है।

※ दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर शेष सबके उत्कर्ष अनुभागसत्कर्म होता है।

§ २३७. क्योंकि दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागका काण्डकघात नहीं होता है।

शंका—प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और चरित्रमोहकी

उवसामणाए सव्वपयडीणं ट्ठिदि-अणुभागकंडएसु णिवदमाणेसु कथमेदासिं दोण्हं चेव पयडीणमणुभागघादो णत्थि ? ण, भिण्णजाइत्तादो। अपुव्व-अणियट्टिभावेण सरिस-परिणामेहिंतो कथं भिण्णाणं कज्जाणं समुप्पत्ती ? ण, कज्जभेदण्णहाणुववत्तीदो कारणाणं पि भेदसिद्धीए।

एवमुक्कस्साणुभागसामित्तं समत्तं।

❀ मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २३८. सुगममेदं।

❀ सुहुमस्स ?

§ २३९. एइंदियग्गहणमेत्थ किण्ण कयं ? ण, एइंदिए मोत्तूण अण्णत्थ सुहुमभावो णत्थि त्ति एइंदियविण्णाणुप्पत्तीदो। जदि एवं, तो णिगोदग्गहणं कायव्वं, अण्णत्थ जहण्णाणुभागसंतकम्माभावादो ? ण, सुहुमणिद्देसादो चेव तदुवलंभादो। तं जहा—जो सुहुमेइंदिओ त्ति वुत्ते पासिंदियणाणेण सुहुमणामकम्मोदएण च जो सुहुमत्तं

उपशामनामें जब सब प्रकृतियोंके स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका घात होता है तो इन दो प्रकृतियोंके अनुभागका घात क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य प्रकृतियोंसे इनकी जाति भिन्न है।

शंका—अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप सदृश परिणामोंसे भिन्न कार्योंकी उत्पति कैसे होती है। अर्थात् दर्शनमोहके क्षपणमें भी ये परिणाम होते हैं और प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति आदि के समय भी ये परिणाम होते हैं। किन्तु एक जगह तो वे परिणाम सभी प्रकृतियोंके स्थिति—अनुभागका घात करते हैं और दूसरी जगह नहीं करते ऐसा भेद क्यों है ?

समाधान—दोनों जगहके कार्यमें भेद है। इससे सिद्ध है कि कारणमें भी भेद अवश्य है, दोनों जगहके परिणामों में भेद न होता तो कार्यमें भेद न होता। अर्थात् दर्शनमोहके क्षपणकालमें जैसे परिणाम होते हैं वैसे परिणाम प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति आदिमें अन्यत्र नहीं होते।

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका स्वामित्व समाप्त हुआ।

* मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २३८. यह सूत्र सुगम है।

* सूक्ष्म जीवके होता है।

§ २३९. **शंका**—इस सूत्रमें एकेन्द्रिय पदका ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एकेन्द्रियको छोड़कर अन्यत्र सूक्ष्मपना नहीं है, इसलिये 'सूक्ष्म' पदसे ही एकेन्द्रियका ज्ञान हो जाता है, अतः एकेन्द्रिय पदका ग्रहण नहीं किया।

शंका—यदि ऐसा है तो निगोदका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि निगोदियाके सिवा अन्यत्र जघन्य अनुभागसत्कर्मका अभाव है।

समाधान—नहीं, क्योंकि 'सूक्ष्म' पदके निर्देशसे ही उनका ग्रहण हो जाता है। इसका खुलासा इस प्रकार है—यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय ऐसा कहनेसे स्पर्शन इन्द्रियजन्य ज्ञानसे और सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे जो सूक्ष्मपने को प्राप्त है अर्थात् जो ज्ञानसे भी सूक्ष्म है और पर्यायसे

पत्तो तस्स एत्थ ग्गहणं कदं। ण च सुहुमणिगोदं मोत्तूण अण्णत्थ दोण्हं पि सुहुमत्तं संभवदि, अणुवलंभादो। तम्हा सुहुमणिगोदएइंदियस्से त्ति सिद्धं। तो क्खहि अपज्जत्त-ग्गहणं कायव्वं ? ण, तस्स वि सुहुमणिद्देसादो चेव सिद्धीदो। जदि सव्वविसुद्ध-सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णाणुभागबंधो जहण्णाणुभागो त्ति घेप्पदि तो अपज्जत्त-विसोहीदो पज्जत्तविसोही अणंतगुणा त्ति सुहुमेइंदियपज्जत्तजहण्णाणुभागबंधो किण्ण घेप्पदि ? ण, घादिदूण सेसअणुभागसंतकम्मस्स एत्थ ग्गहणादो। ण च एत्थ पच्चग्ग-बंधस्स पहाणत्तं, जहण्णाणुभागसंतकम्मं पेक्खिदूण तस्स अणंतगुणहीणत्तादो। सुहुमे-इंदियपज्जत्तयस्स अपज्जत्तविसोहीदो अणंतगुणविसोहिणा हदावसेसाणुभागो किण्ण घेप्पदि ? ण, जादिविसेसेण सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स थोवविसोहीए घादिदावसिट्ठाणु-भागस्स सुहुमपज्जत्तजहण्णाणुभागं पेक्खिदूण अणंतगुणहीणत्तादो। जादिविसेसेण थोव-विसोहीए वि अणुभागघादेण थोवमणुभागसंतकम्मं कीरदि त्ति कुदो णव्वदे ? दंसण-मोहक्खवणाए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्ममभणिदूण सुहुमणिगोदेसु परूविय-

भी सूक्ष्म है उसका ग्रहण किया है। सूक्ष्म निगोदिया को छोड़कर अन्यत्र दोनों प्रकार की सूक्ष्मता संभव नहीं है, क्योंकि वह अन्य जीवमें नहीं पाई जाती। अतः सूक्ष्मका अर्थ सूक्ष्म निगोदिया एकेन्द्रिय जीव है ऐसा सिद्ध हुआ।

शंका—तो फिर यहां अपर्याप्त पदका ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म पदके निर्देशसे ही उसके ग्रहणकी सिद्धि हो जाती है।

शंका—यदि सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है उसे जघन्य अनुभाग स्वीकार करते हो तो अपर्याप्त जीवकी विशुद्धसे पर्याप्त जीवकी विशुद्धि अनन्तगुणी होती है, अतः सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है उसे क्यों नहीं स्वीकार करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि घाते गये अनुभागमें बचे हुए शेष अनुभागसत्कर्मका यहाँ ग्रहण किया है। यहाँ पर नवीन बंधकी प्रधानता नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभागसत्कर्मको देखते हुए वह अनन्तगुणा हीन है।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके अपर्याप्त जीवकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा घात करनेसे बचा हुआ जो शेष अनुभाग है उसका क्यों नहीं ग्रहण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जातिविशेषके कारण सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त जीवके थोड़ी विशुद्धिके होने पर भी घात करनेसे जो अनुभाग शेष रहता है वह सूक्ष्म पर्याप्तके जघन्य अनुभागको देखते हुए अनन्तगुणा हीन है, अतः यहाँ सूक्ष्म पर्याप्तके अनुभागका ग्रहण नहीं किया।

शंका—थोड़ी विशुद्धिके होते हुए भी जातिविशेषके कारण अपर्याप्त जीव अनुभाग घातके द्वारा अपना अनुभागसत्कर्म थोड़ा कर लेता है यह कैसे जाना ?

समाधान—सूत्रमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म दर्शनमोहकी क्षपणामें न बतलाकर जो सूक्ष्मनिगोदियाके बतलाया है उससे जाना जाता है कि अपर्याप्त निगोदिया जीव अनुभाग-घातके द्वारा थोड़ा अनुभाग कर लेता है।

सुत्तादो णव्वदे। संपहि एदेण जहण्णाणुभागसंतकम्मेण सह उप्पज्जमाणजीवविसेस-परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ हदसमुप्पत्तियकम्मेण अण्णदरो एइंदिओ वा बेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा सुहुमो वा बादरो वा पज्जत्तो वा अपज्जत्तो वा जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ होदि।

§ २४०. हते घातिते समुत्पत्तिर्यस्य तद्धतसमुत्पत्तिकं[1] कर्म। अणुभागसंतकम्मे घादिदे जमुव्वरिदं जहण्णाणुभागसंतकम्मं तस्स हदसमुप्पत्तियकम्ममिदि सण्णा त्ति भणिदं होदि। तेण हदसमुप्पत्तियकम्मेण सह अण्णदरो एइंदिओ वा अण्णदरो बेइंदिओ वा अण्णदरो तेइंदिओ वा अण्णदरो चउरिंदिओ वा अण्णदरो असण्णी वा अण्णदरो सण्णी वा अण्णदरो सुहुमो वा अण्णदरो बादरो वा अण्णदरो पज्जत्तो वा अण्णदरो अपज्जत्तो वा होदि। एवं जादे सो जीवो जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ जायदे। एदे सव्वे वि जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स सामिणो होंति त्ति भणिदं होदि। देवा णेरइया

विशेषार्थ—सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त जीव जब मिथ्यात्वके अनुभागसत्कर्मका घात कर देता है तो उसके मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग पाया जाता है। यद्यपि उस जीवके जो अनुभाग-बन्ध होता है वह सत्तामें स्थित अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है किन्तु इस अनुभागविभक्तिमें सत्तामें स्थित अनुभाग की ही विवक्षा है, अतः उसका ग्रहण नहीं किया है। तथा यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके अपर्याप्त जीवसे विशेष विशुद्धि होती है तथापि थोड़ी विशुद्धिके होते हुए भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव जातिविशेषके कारण पर्याप्त जीवकी अपेक्षा अनुभागका अधिक घात कर डालता है और यह बात इससे सिद्ध है कि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म दर्शनमोहके क्षपकके न बतलाकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके बतलाया है।

अब इस जघन्य अनुभागसत्कर्मके साथ उत्पन्न होनेवाले जीवके विषयमें विशेष कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** साथ ही जब वह हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ अन्यतर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी, अथवा संज्ञी, सूक्ष्म, अथवा बादर, पर्याप्त अथवा अपर्याप्त जीव होता है तब वह भी जघन्य अनुभागसत्कर्मवाला होता है।**

§ २४०. हत अर्थात् घात किये जाने पर जिसकी उत्पत्ति होती है उस कर्मको हतसमुत्पत्तिककर्म कहते हैं। आशय यह है कि अनुभागसत्कर्मका घात होने पर जो जघन्य अनुभाग-सत्कर्म अवशिष्ट रहता है उसकी 'हतसमुत्पतिक कर्म' संज्ञा है। उस हतसमुत्पत्तिककर्मके साथ कोई भी एकेन्द्रिय, अथवा कोई भी दो इन्द्रिय, अथवा कोई भी तेइन्द्रिय, अथवा कोई भी चौइन्द्री, अथवा कोई भी असंज्ञी, अथवा कोई भी संज्ञी, कोई भी सूक्ष्म, अथवा कोई भी बादर, कोई भी पर्याप्त, अथवा कोई भी अपर्याप्त होता है। ऐसा होने पर वह जीव जघन्य अनुभागसत्कर्मवाला होता है। सारांश यह है कि जघन्य अनुभागसत्कर्मवाला सूक्ष्म निगोदिया जीव मरकर उक्त एकेन्द्रियादिकमें उत्पन्न हो सकता है, अतः ये सब जीव जघन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामी होते

---

1. ता०प्रतौ तत्वसमुत्पत्तिकं आ०प्रतौ तद्युतसमुत्पत्तिकं इति पाठः।

असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्सा च मिच्छत्तजहण्णाणुभागस्स ण होंति सामिणो, तत्थ सुहुमेइंदियाणमुप्पत्तीए अभावादो।

❀ एवमट्ठकसायाणं।

§ २४१. जहा मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स परूवणा कदा तहा अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स वि परूवणा कायव्वा, अविसेसादो। अट्ठकसायाणं खवणाए जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जदि? ण, अंतरे अकदे जाणि कम्माणि विणट्ठाणि तेसिमणुभागसंतकम्मं पेक्खिदूण सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स जादिविसेसेण अणंतगुणहीणत्तुवलंभादो।

❀ सम्मत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स?

§ २४२. सुगमं।

❀ चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स।

§ २४३. दंसणमोहक्खवणाए अधापमत्तकरण-अपुव्वकरणाणि करिय अणियट्टि-

---

हैं। देव, नारकी और असंख्यातवर्ष की आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागके स्वामी नहीं होते, क्योंकि उनमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति नहीं होती।

*** इसी प्रकार आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी कहना चाहिये।**

§ २४१. जैसे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कथन किया है वैसे ही आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मकी भी प्ररूपणा कर लेनी चाहिये, क्योंकि दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है।

शंका—आठ कषायोंकी क्षपणावस्थामें उनके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व क्यों नहीं बतलाया? अर्थात् आठ कषायोंका क्षपण करनेवाले जीव को जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी क्यों नहीं बतलाया?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तरकरण किये बिना जो कर्म नष्ट होते हैं उनके अनुभाग सत्कर्मको देखते हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका जघन्य अनुभागसत्कर्म जातिविशेषके कारण अनन्तगुणा हीन पाया जाता है।

विशेषार्थ--उदय प्राप्त प्रकृतिके नीचे और ऊपरके निषेकोंको छोड़कर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बीचके निषेकों को अपने स्थानसे उठाकर नीचे और ऊपरके निषेकोंमें क्षेपण करनेके द्वारा उनके अभाव कर देने को अन्तरकरण कहते हैं। इस अन्तरकरण कालमें हजारों अनुभागकाण्डक घात होते हैं, अतः यह अन्तरकरण हुए बिना ही जिन प्रकृतियोंका विनाश होता है उनका क्षपणाकालमें जितना अनुभाग पाया जाता है उससे सूक्ष्म एकेन्द्रियमें अनुभागका घात कर चुकने पर कम अनुभाग पाया जाता है, अतः आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी सूक्ष्म एकेन्द्रियको बतलाया है।

*** सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है?**

§ २४२. यह सूत्र सुगम है।

*** अन्तिम समयवर्ती अक्षीणदर्शनमोही जीवके सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म होता है।**

§ २४३. दर्शनमोहके क्षयके लिये अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको करके अनिवृत्ति-

अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तम्मि संछुभिय पुणो सम्मामिच्छत्तं पि अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तम्मि संछुहिय अट्ठवस्सियं ट्ठिदिसंतकम्मं काऊण अणुसमयओवट्टणाए सम्मत्ताणुभागसंतकम्मं ताव घादेदि जाव चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीओ त्ति। तस्स उदयमागदएगगुणसेढिगोवुच्छाए अणुभागो जहण्णओ, सव्वुक्कस्सघादं पाविय ट्ठिदत्तादो।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २४४. सुगमं।

❀ अवणिज्जमाणए अपच्छिमे अणुभागकंडए वट्टमाणस्स।

§ २४५. अवणिज्जमाणए अपच्छिमे ट्ठिदिकंडए त्ति किण्ण वुत्तं ? ण, उव्वेल्लणचरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालीए वि वट्टमाणस्स जहण्णाणुभागत्तप्पसंगादो। ण च

करणके कालमें संख्यात भाग बीतने पर मिथ्यात्वका सम्यग्मिथ्यात्वमें क्षेपण कर पुनः अन्तर्मुहूर्तमें सम्यग्मिथ्यात्वका भी सम्यक्त्वमें क्षेपण कर, सम्यक्त्व प्रकृतिके स्थितिसत्कर्मको आठ वर्ष प्रमाण करके, प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा सम्यक्त्वके अनुभागसत्कर्मको तब तक घातता है जब तक उस अक्षीणदर्शनमोहीके दर्शनमोहके क्षपणका अन्तिम समय आता है उस चरम समयवर्ती अक्षीणदर्शनमोहीके उदयको प्राप्त एक गुणश्रेणिगोपुच्छाका अनुभाग जघन्य होता है, क्योंकि सम्यक्त्वके अनुभागसत्कर्मका सर्वोत्कृष्ट घात होते होते वह अनुभाग अवशिष्ट रहता है।

विशेषार्थ--अनिवृत्तिकरणके कालमेंसे संख्यात भाग बीत जाने पर जब दर्शनमोहकी क्षपण का प्रस्थापक जीव मिथ्यात्वका सम्यग्मिथ्यात्वमें और सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्वप्रकृति में सक्रमण करके सम्यक्त्व प्रकृतिकी स्थितिको घटाकर आठ वर्ष प्रमाण कर लेता है तो सम्यक्त्व द्विस्थानिक अनुभागको एक स्थानिकरूप करनेके लिये प्रति समय अपवर्तनघात करता है। अर्थात् पहले तो अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा अनुभागका काण्डकघात करता था अब उसका उपसंहार करके सम्यक्त्वके अनुभागको प्रति समय अनन्तगुणा हीन अनन्तगुणा हीन करता है। जिसका यह आशय हुआ कि पिछले अनन्तरवर्ती समयमें जो अनुभागसत्कर्म था वर्तमान समयमें उदयावली बाह्य अनुभागसत्कर्मको उससे अनन्तगुणा हीन करता है। उदयावलि बाह्य अनुभागसत्कर्मसे उदयावली के भीतर प्रविष्ट अनुभागसत्कर्मको अनन्तगुणा हीन करता है और उससे उदयक्षणमें प्रविष्ट होनेवाले अनुभागसत्कर्मको अनन्तगुणा हीन करता है। ऐसा करते हुए जिस अन्तिम समयके पश्चात् ही जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो जाता है उस समयमें सम्यक्त्व प्रकृतिके जो निषेक उदयमें आते हैं उनमें सबसे कम अनुभाग होता है, क्योंकि वह अनुभाग सबसे अधिक घाता जाकर अवशिष्ट रहता है, अतः सम्यक्त्व प्रकृतिके जघन्य अनुभागका स्वामी चरम समयवर्ती अक्षीणदर्शनमोही जीव होता है।

*** सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?**

§ २४४. यह सूत्र सुगम है।

*** अपनीयमान अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है।**

§ २४५. शंका--'अपनीयमान अन्तिम स्थितिकाण्डकमें' ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान--नहीं, क्योंकि ऐसा कहने पर उद्वेलनाको प्राप्त हुए अन्तिम स्थितिकाण्डक की

एवं, अणुभागखंडयघादाभावेण तत्थ उक्कस्साणुभागसंतकम्मियम्मि जहण्णत्तविरोहादो। तम्हा अवणिज्जमाणए अपच्छिमे अणुभागखंडए वट्टमाणयस्से त्ति सुहासियं।

❀ अणंताणुबंधीणं जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २४६. सुगमं।

❀ पढमसमयसंजुत्तस्स।

अन्तिम फालीमें भी वर्तमान जीवके जघन्य अनुभागका प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि अनुभागकाण्डकका घात न होनेसे वहां उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म पाया जाता है, अतः वह जघन्य नहीं हो सकता। इसलिये 'अपनीयमान अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान जीवके' यह सूत्रवचन ठीक है।

विशेषार्थ—स्थितिको घटानेके लिये स्थितिका काण्डकघात किया जाता है और अनुभागको घटानेके लिये अनुभागका काण्डकघात किया जाता है। काण्डकघातका विधान इस प्रकार है—कल्पना कीजिये कि उदयस्वरूप किसी कर्म की स्थिति ४८ समय की है और चूंकि एक समयमें एक निषेकका उदय होता है, अतः उसके ४८ ही निषेक हैं। अब उसमेंसे ८ समयकी स्थिति घटानी है तो ऊपरके ८ निषेकोंके परमाणुओंको लेकर शेष ४० निषेकोंमेंसे आठ निषेकोंके पासके दो निषेकोंको छोड़कर बाकीके ३८ निषेकोंमें मिलाना चाहिये। कुछ परमाणु पहले समयमें मिलाये, कुछ दूसरे समयमें मिलाये। इस तरह अन्तर्मुहूर्त काल तक ऊपरके आठ निषेकोंके परमाणुओंको नीचेके निषेकोंमें मिलाते मिलाते उनका अभाव कर देनेसे प्रकृत कर्म की स्थिति ४८ समयसे घटकर ४० समयकी रह जाती है। यह एक स्थितिकाण्डक घात हुआ। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। जैसे स्थितिकाण्डकके द्वारा स्थितिका घात किया जाता है वैसे ही ऊपरके अधिक अनुभागवाले स्पर्धकोंका नीचेके कम अनुभागवाले स्पर्धकोंमें क्षेपण करके अनुभागकाण्डकके द्वारा अनुभागका घात किया जाता है। तथा प्रथम समयमें जितने द्रव्यको अन्य निषेकोंमें मिलाया जाता है उसे प्रथम फाली कहते हैं और दूसरे समयमें जितने द्रव्यको अन्य निषेकोंमें मिलाया जाता है उसे द्वितीय फाली कहते हैं। इसी प्रकार अन्तिम समयमें जितने द्रव्यको अन्य निषेकोंमें मिलाया जाता है उसे चरम फाली कहते हैं।

मूलमें बतलाया है कि जब मिश्र प्रकृतिके अन्तिम अनुभागकाण्डकका अपनयन किया जाता है तो उस समयमें उसका जघन्य अनुभाग होता है, इस पर यह शंका की गई कि जब अन्तिम स्थितिकाण्डकका घात किया जाता है तब मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभाग क्यों नहीं होता ? तो इसका यह समाधान किया गया कि यदि ऐसा माना जायगा तो मिश्र प्रकृति की उद्वेलना करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके भी जब वह मिश्र प्रकृतिके अन्तिम स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालीमें वर्तमान रहता है तब मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभाग हो जायगा, किन्तु ऐसा नहीं है, उसके स्थिति जरूर घट जाती है किन्तु अनुभाग नहीं घटता। अतः दर्शनमोहका क्षपण करनेवाला जीव जब मिश्रप्रकृतिके अन्तिम अपनीयमान अनुभागकाण्डकमें वर्तमान रहता है तब उसके मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है।

❀ अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २४६. यह सूत्र सुगम है।

❀ प्रथम समयवर्ती संयुक्त जीवके होता है।

§ २४७. सुहुमेइंदिएसु जहण्णसामित्तं किण्ण दिण्णं ? ण, पढमसमयसंजुत्तस्स पच्चग्गाणुभागबंधं पेक्खिदूण सुहुमणिगोदजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणत्तादो। पढमसमयसंजुत्तस्स पच्चग्गाणुभागम्मि सेसकसायाणुभागफद्दएसु संकंतएसु अणंताणुबंधीणमणुभागो सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मादो अणंतगुणो किण्ण होदि ? ण, 'बंधे संकमदि' त्ति बज्झमाणाणुभागसरूवेण संकामिज्जमाणाणुभागस्स परिणामिज्जमाणत्तादो। संजुत्तविदियसमए जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जदि ? ण, पढमसमए बद्धाणुभागादो विदियसमए अणंतगुणसंकिलेसेण बज्झमाणाणुभागस्स अणंतगुणत्तादो।

---

§२४७. **शंका**—सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागका स्वामीपना क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त हुए जीवके जो नवीन अनुभागबन्ध होता है उसे देखते हुए सूक्ष्म निगोदिया जीवका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्त गुणा है।

शंका—प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त हुए जीवके नवीन अनुभागमें शेष कषायों के अनुभाग स्पर्धकोंका संक्रमण होने पर अनन्तानुबन्धीका अनुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय के जघन्य अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुणा क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'बन्ध अवस्थामें ही संक्रमण होता है' इस नियमके अनुसार जिस अनुभागका संक्रमण होता है वह बध्यमान अनुभागरूपसे ही परिणमा दिया जाता है, इसलिए उस समय अनन्तानुबन्धीका अनुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुणा नहीं हो सकता।

शंका—अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके दूसरे समयमें अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभाग का स्वामीपना क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रथम समयमें बँधनेवाले अनुभागसे दूसरे समयमें अनन्तगुणे संक्लेशसे बँधनेवाला अनुभाग अनन्तगुणा होता है।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करनेके पश्चात् जो जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके यद्यपि पहले समयसे ही अनन्तानुबन्धीका बन्ध होने लगता है तथा अन्य कषायोंके सत्त्वमें स्थित निषेक भी अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमित होने लगते हैं, फिर भी उसके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जो अनुभागसत्कर्म होता है वह सबसे जघन्य होता है। मूलमें एकेन्द्रिय को लेकर जो शंका समाधान किया गया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि यह अनुभागबन्धका प्रकरण नहीं है किन्तु अनुभागकी सत्ताका प्रकरण है, फिरभी यहाँ जघन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वको बतलाते हुये संयुक्त जीवके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जो नवीन अनुभागबन्ध होता है उसीकी मुख्यता है जो अन्य कषायोंके परमाणु अनन्तानुबन्धीरूप परिणमन करते हैं उनकी मुख्यता नहीं ली गई है, क्योंकि जब यह शंका की गई कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवको अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी क्यों नहीं कहा तो उसका समाधान किया गया कि संयुक्त जीवके प्रथम समयमें जो नवीन अनुभागबन्ध होता है उसको देखते हुए सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। तब पुनः यह शंका की गई कि संयुक्त जीवके जो नवीन अनुभागबन्ध पहले समयमें होता है उसमें शेष कषायोंके अनुभागस्पर्धक भी तो संक्रमित होते हैं, अतः नवीन अनुभाग और संक्रमित अनुभाग मिलकर एकेन्द्रियके अनुभागसे अधिक

❀ कोधसंजलणस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २४८. सुगमं ।

❀ खवगस्स चरिमसमयअसंकामयस्स ।

§ २४९. कोधोदएण खवगसेढिं चढिय अस्सकण्णकरणद्धाए अपुव्वफद्दयाणि करिय पुणो किट्टीकरणद्धाए पुव्वापुव्वफद्दयाणि वारहसंगहकिट्टीओ काऊण पच्छा कोधपढम--विदिय--तदियकिट्टीओ वेदयमाणो समयं पडि अंतोमुहुत्तकालं बंध-संताणुभागाणमणंतगुणहाणिं कादूण तदो तदियकिट्टिवेदयचरिमसमए जं बद्धमणुभागसंतकम्मं तं समयूणदोआवलियमेत्तद्धाणमुवरि गंतूण चरिमसमयपबद्धस्स चरिमाणुभागफालिं धरेदूण ट्ठिदखवगो चरिमसमयअसंकामओ णाम तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं । परोदएण खवगसेढिं चडिदस्स जहण्णमणुभागसंतकम्मं ण होदि, तत्थ चरिमाणुभागफालीए सव्वघादिफद्दयभावेण किट्टीहिंतो अणंतगुणाए जहण्णत्तविरोहादो । सुत्तम्मि सोदएण खवगसेढिं चडिदस्से त्ति [किं] ण वुत्तमिदि णासंकणिज्जं, चरिमसमय-

---

हो जायेंगे तो उत्तर दिया गया कि शेष कषायोंका जो अनुभाग अनन्तानुवन्धीरूप संक्रमण करता है उसका परिणमन बँधनेवाले अनुभागके अनुरूप ही होजाता है अर्थात् संक्रान्त अनुभाग उतना ही हो जाता है जितना वद्ध अनुभाग होता है, अतः अनुभाग वढ़ नहीं पाता। किन्तु वात ऐसी नहीं है, क्योंकि सत्ताके प्रकरणमें वन्धकी मुख्यता नहीं हो सकती। यथार्थमें तो जो अन्य कषायोंके परमाणु अनन्तानुवन्धीरूप संक्रान्त होते हैं उनमें जो अनुभाग होता है उसीकी मुख्यता है, किन्तु उसका अनुभाग उतना ही रहता है जितना उस समयमें वँधनेवाले परमाणुओंमें होता है, अतः अनुभागवन्धको लक्ष्यमें रखकर शंका-समाधान करना पड़ा है।

* क्रोधसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २४८. यह सूत्र सुगम है।

* अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक क्षपकके होता है।

§ २४९. क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणि चढ़कर, अश्वकर्णकरणके कालमें अपूर्वस्पर्धकोंको करके पुनः कृष्टिकरणके कालमें पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकोंकी बारह संग्रह कृष्टियाँ करके पश्चात् क्रोध की पहली, दूसरी और तीसरी कृष्टियोंका वेदन करता हुआ जीव प्रति समय अन्तर्मुहूर्त काल तक अनुभागवन्ध और अनुभागसत्त्व की अनन्तगुणी हानि करनेके पश्चात् तीसरी कृष्टिका वेदन करनेके अन्तिम समयमें जो वाँधा हुआ अनुभागसत्कर्म है उससे एक समयकम दो आवलीमात्र काल जाकर अन्तिम समयप्रवद्ध की अन्तिम अनुभागफाली को ग्रहण कर स्थित है उस क्षपक को अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक कहते हैं। उसके क्रोध संज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। जो क्रोधके सिवा किसी अन्य कषायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके क्रोध संज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता, क्योंकि उसकी अन्तिम अनुभागफालीमें सर्वघातिस्पर्धक होनेसे वह कृष्टियों की अपेक्षा अनन्तगुणी होती है, अतः उसके जघन्य होनेमें विरोध आता है।

शंका—चूर्णिसूत्रमें 'स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़नेवालेके' ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि 'चरम समयवर्ती असंक्रामकके' इस

असंकामयस्से त्ति सुत्तादो सोदएण जहण्णं होदि त्ति अवगमुप्पत्तीदो। तं जहा— सो चरिमसमओ असंकामओ णाम जो सोदएण खवगसेढिं चडिदो, तत्तो उवरि संकामयाणमभावादो। परोदएण चडिदो पुण ण चरिमसमयसंकामओ, तत्तो उवरिं पि संकामयाणमुवलंभादो। सोदय-परोदयकयभेदविवक्खाए विणा संकामयसामण्णमेव एत्थ विवक्खियमिदि कत्तो णव्वदे ? अण्णहा जहण्णत्ताणुववत्तीदो। दुचरिमसमयसंकामियम्मि जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जदि ? ण, चरिमसमयबंधाणुभागादो दुचरिमसमयबंधाणुभागस्स अणंतगुणस्स तत्थुवलंभादो। समयं पडि अणंतरहेट्ठिमहेट्ठिमअणुभागबंधाणमणंतगुणत्तं कुदो णव्वदे ? वट्टमाणबंधादो अणंतगुणवट्टमाणुदयं पेक्खिदूण अणंतरहेट्ठिमबंधस्स अणंतगुणत्तादो। उदयाणमणंतगुणहीणत्तं कत्तो णव्वदे ? समयं पडि विसोहीए अणंतगुणत्तण्णहाणुववत्तीदो।

सूत्रसे ही यह ज्ञात हो जाता है कि स्वोदयसे श्रेणि चढ़नेवालेके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। खुलासा इस प्रकार है—जो स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है वह चरमसमयवर्ती असंक्रामक कहलाता है, क्योंकि उससे आगे संक्रमण करनेवालोंका अभाव है। किन्तु जो परोदयसे श्रेणि पर चढ़ा है वह चरम समयवर्ती संक्रामक नहीं है, क्योंकि उसके ऊपर भी संक्रमण करनेवाले पाये जाते हैं।

शंका—स्वोदय और परोदयकृत भेदकी विवक्षाके विना यहाँ संक्रामक सामान्य की ही विवक्षा है यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि ऐसा न होता तो उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं बन सकता था।

शंका—चरम समयसे पूर्व समयवर्ती संक्रामकको जघन्य अनुभागका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चरम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धसे द्विचरम समयमें होनेवाला अनुभागबन्ध वहाँ अनन्तगुणा पाया जाता है।

शंका—चरम समयसे लगातार पूर्व पूर्व प्रतिसमय होनेवाला अनुभागबन्ध अनन्तगुणा होता है यह कैसे जाना ?

समाधान—वर्तमान बन्धसे वर्तमान उदयको अनन्तगुणा देखकर अनन्तर पूर्व समयवर्ती बन्ध अनन्तगुणा होता है, यह जाना।

शंका—प्रति समय उदय अनन्तगुणा हीन होता है यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि उदय अनन्तगुणा हीन न होता तो प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि नहीं होती, इससे जाना कि प्रति समय उदय अनन्तगुणा हीन होता है।

विशेषार्थ—जो जीव क्रोध कषायके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा वह अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें नोकषायोंका क्षपण करके और अपगतवेदी होकर संज्वलन क्रोधका क्षपण करनेके लिये सबसे प्रथम अश्वकर्ण नामका करण करता है। अर्थात् जैसे अश्व अर्थात् घोड़ेका कर्ण-कान मूलसे लेकर क्रमसे घटता हुआ देखा जाता है, उसी प्रकार यह करण भी क्रोध संज्वलनसे लेकर लोभसंज्वलन पर्यन्त अनुभागस्पर्धकों को क्रमसे अनन्तगुणा हीन करनेमें कारण है, इसलिये उसे अश्वकर्णकरण कहते हैं। इस करण के प्रथम समयसे ही अपूर्व स्पर्धकोंका होना आरम्भ हो जाता है। जो अनुभागस्पर्धक पहले कभी प्राप्त नहीं हुए, क्षपकश्रेणिमें अश्वकर्णकरण कालके द्वारा

ही जिनकी प्राप्ति होती है तथा पूर्व स्पर्धकोंसे जिनमें अनन्तगुणा हीन अनुभाग पाया जाता है उन्हें अपूर्व स्पर्धक कहते हैं। अश्वकर्णकरण कालके समाप्त होनेके अनन्तर समयसे ही कृष्टिकरण काल प्रारम्भ हो जाता है। कृष्टिकरणके प्रथम समयसे ही क्रोधकषायके पूर्व स्पर्धक और अपूर्व स्पर्धकोंमेंसे असंख्यातवें भाग प्रदेशों का अपकर्षण करके क्रोधकी कृष्टियां करता है। वे कृष्टियां अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणासे अनन्तवें भाग हीन होती हैं। तथा एक एक कषायकी तीन तीन कृष्टियां होनेसे चारों कषायों की बारह संग्रहकृष्टियां होती हैं। जिस समय यह जीव कृष्टियोंको करता है उस समय पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकोंका तो वेदन करता है किन्तु कृष्टियोंका वेदन नहीं करता है। कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें वेद्यमान उदयस्थिति को छोड़कर उससे ऊपर क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थिति आवलिप्रमाण शेष रहने पर कृष्टिकरणकाल क्रमसे समाप्त हो जाता है। पीछे कृष्टियोंका वेदनकाल प्रारम्भ होता है। कृष्टिवेदनके प्रथम समयमें अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता हुआ कृष्टिवेदक जीव बारहों संग्रह कृष्टियों में से उत्कृष्ट कृष्टिसे लेकर एक एक संग्रह कृष्टिके असंख्यातवें भाग अनन्त कृष्टियोंको अपवर्तन घातके द्वारा एक समय में नष्ट कर देता है, अर्थात् ऊपर की कृष्टियों का अपवर्तन घात करके उन्हें नीचे की कृष्टिरूपसे परिणत कर देता है। और इस प्रकार पहले की गई कृष्टियों के नीचे और उनके अन्तरालमें अन्य अपूर्व कृष्टियां करता है। ये कृष्टियां मान, माया और लोभकी प्रथम तीन संग्रहकृष्टियोंमें तो बंधनेवाले और संक्रमित होकर आनेवाले प्रदेशोंसे बनती हैं और क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टिमें बध्यमान प्रदेशोंसे ही बनती हैं, क्योंकि उसमें संक्रमित होकर आनेवाले प्रदेशों का अभाव है। तथा शेष संग्रहकृष्टियोंमें संक्रमित होकर आनेवाले प्रदेशोंसे ही बनती हैं। इस प्रकार कृष्टियोंका वेदन करते हुए क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें दो समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावली छोड़कर शेष द्रव्य दूसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रमित हो जाता है। बादको नवकबन्ध तथा उच्छिष्टावलीका द्रव्य भी यथाक्रम दूसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रमित हो जाता है। जिस विधिसे क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदन करता है उसी विधिसे दूसरी और तीसरी संग्रहकृष्टिका वेदन करता है। तीसरी कृष्टिके वेदनकालके अन्तिम समयमें जो अनुभागसत्कर्म बद्ध होता है, समय कम दो आवली मात्र कालके पश्चात् उसे अन्तिम अनुभाग फालीमें जब डाल देता है तो वह क्षपक अन्तिम समयवर्ती संक्रामक कहलाता है, क्योंकि उसके पश्चात् क्रोधका अन्त हो जाता है, उसके क्रोध संज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। यहाँ जो क्रोध कषायके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है उसीका ग्रहण किया है, जो अन्य कषायके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ता है उसका ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि अन्य कषायके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला जीव उसी स्थानमें चरिम समयवर्ती संक्रामक नहीं होता जिस स्थानमें स्वोदयसे चढ़नेवाला जीव चरिम समयवर्ती संक्रामक होता है, क्योंकि क्रोधकषायके उदयसे चढ़नेवाला जीव जिस स्थानमें अश्वकर्णकरण करता है मानकषायके उदयसे चढ़नेवाला जीव उस स्थानमें क्रोधका क्षपण करता है। क्रोधके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवालेका जो कृष्टिकरणकाल है मानकषाय के उदयसे चढ़नेवालेका वह अश्वकर्णकरणकाल है। क्रोधसे चढ़नेवालेका जो क्रोधका क्षपणकाल है, मानके उदयसे चढ़नेवालेका वह कृष्टिकरण काल है। इसी प्रकार क्रोधसे चढ़नेवाला जहाँ अश्वकर्णकरण करता है मायाके उदयसे चढ़नेवाला वहाँ क्रोधका क्षपण करता है। क्रोधसे चढ़नेवाला जहाँ कृष्टियां करता है मायासे चढ़नेवाला वहाँ मानका क्षपण करता है। अतः अन्य कषाय के उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवाला चरिमसमयवर्ती संक्रामक आगे आगे होता है। तथा अन्य कषायके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवाले के क्रोधका स्पर्धकरूपसे ही विनाश होता है कृष्टिरूपसे विनाश नहीं होता, अतः अन्य कषायके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवालेके क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता।

❀ एवं माण-मायासंजलणाणं।

§ २५०. जहा कोहसंजलणस्स चरिमसमयअसंकामयम्मि जहण्णसामित्तं वुत्तं तहा माण-मायासंजलणाणं पि वत्तव्वं। णवरि सोदएण हेट्ठिमकसाओदएण च खवगसेढिं चढिदस्स जहण्णसामित्तं वत्तव्वं।

❀ लोभसंजलणस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २५१. सुगमं।

❀ खवगस्स चरिमसमयसकसायिस्स ?

§ २५२. कुदो ? बादरकिट्टीहिंतो अणंतगुणहीणसुहुमकिट्टीए अणुसमयओवट्टणाए अंतोमुहुत्तमेत्तकालमणंतगुणहीणाए सेढीए पत्ताणंतभागघादाए[1] सुहुमसांपराइयचरिमसमए वट्टमाणाए सुट्ठु थोवत्तादो।

---

* इसी प्रकार संज्वलनमान और संज्वलनमायाके जघन्य स्वामित्वका कथन कर लेना चाहिये।

§ २५०. जैसे संज्वलन क्रोधके जघन्य अनुभागका स्वामी अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक को बतलाया है, वैसे ही संज्वलन मान और संज्वलन मायाका भी कहना चाहिये। इतना विशेष है कि स्वोदयसे और पूर्व की कषायके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़नेवाले जीवके जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये।

विशेषार्थ—जैसे संज्वलन क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ने वाले चरिम समयवर्ती संक्रामकके बतलाया है वैसे ही मान और मायाका भी समझना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि जो स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा है या पूर्वकी क्रोधादि कषायके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा है, दोनोंके जघन्य अनुभागसत्कम होता है, क्योंकि क्रोध कषायके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला जिस कालमें मान, माया और लोभका क्षपण करता है, मान, माया और लोभके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला भी उसी कालमें मान, माया और लोभका क्षपण करता है, दोनोंमें कालका अन्तर नहीं पड़ता।

* संज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५१. यह सूत्र सुगम है।

* अन्तिम समयवर्ती सकषाय क्षपकके होता है।

§ २५२. क्योंकि, एक तो सूक्ष्म कृष्टि बादर कृष्टियोंसे अनन्तगुणी हीन होती है दूसरे उसमें प्रति समय अपवर्तनघात होता है और इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तगुणी हीन गुणश्रेणिरूपसे उसके अनन्तभाग अनुभागका घात हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें वर्तमान वह सबसे स्तोक है, इसलिये सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें संज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म कहा है।

विशेषार्थ—जैसे अपूर्व स्पर्धकोंसे नीचे अनन्तगुणा घटता हुआ अनुभाग लिये क्रोध की प्रथम संग्रहकृष्टि होती है वैसे ही बादर कृष्टिसे नीचे अनन्तगुणा घटता हुआ अनुभाग लिये सूक्ष्मकृष्टिकी रचना होती है। लोभ की द्वितीय कृष्टिका वेदन करते हुए जब उसकी प्रथम

---

1. ता० प्रतौ पत्ताणंतघादाए इति पाठः।

❀ इत्थिवेदस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २५३. सुगमं ।

❀ खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स ।

§ २५४. जो इत्थिवेदोदएण खवगसेढिं चढिदो अंतरकरणं काऊण अंतोमुहुत्तकालेण पुरिसवेदम्मि संकामिदणवुंसयवेदो सवेददुचरिमसमयम्मि इत्थिवेदविदियट्ठिदिं धरेदूण उवरिमसमए कयणिस्संतो इत्थिवेदस्स उदयगदगोवुच्छावसेसो तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं । कुदो ? देसघादिएगट्ठाणियत्तादो । ण चेदमसिद्धं, अंतरकरणे कदे मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ बंधो एगट्ठाणिओ उदओ त्ति सुत्तादो । तस्स सिद्धीए दुचरिमसमयसवेदम्मि जहण्णसामित्तं किण्ण दिण्णं ? ण, तत्थ सव्वघादिदुट्ठाणियअणुभागस्स जहण्णत्तविरोहादो ।

❀ पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?

स्थितिमें समय अधिक आवली शेष रहती है तो लोभ की तीसरी कृष्टिका सब द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिमें संक्रान्त हो जाता है तथा द्वितीय संग्रहकृष्टिका उच्छिष्टावली तथा समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धको छोड़कर शेष द्रव्य सूक्ष्म कृष्टियोंमें संक्रान्त हो जाता है। तब जीव सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें आता है। वहाँ सूक्ष्मकृष्टि सम्बन्धी द्रव्य को अपकर्षण भागहारका भाग देकर एक भागकी गुणश्रेणि करता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। इस तरह करते करते जब सूक्ष्मसाम्परायका जितना काल शेष रहता है उतना ही लोभका स्थितिसत्त्व रहता है और वह प्रति समय अपवर्तनघातके द्वारा सूक्ष्मकृष्टिरूप अनुभागको प्राप्त होता है। उसके एक एक निषेक को एक एक समय भोगते भोगते जब वह जीव सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयको प्राप्त होता है तब उसके संज्वलनलोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है।

* स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५३. यह सूत्र सुगम है।

* अन्तिम समयवर्ती क्षपक स्त्रीवेदी जीवके होता है।

§ २५४. जो स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा है और जिसने अन्तरकरण करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा पुरुषवेदमें नपुंसवेदका संक्रमण किया है तथा सवेद भागके उपान्त्य समय में स्त्रीवेदकी द्वितीय स्थितिको ग्रहण कर आगेके समयमें उसे निःसत्त्व कर दिया है और जिसके स्त्रीवेदका केवल उदय प्राप्त गोपुच्छ बाकी रहा है उसके स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है, क्योंकि उसके देशघाती एकस्थानिक स्पर्धक होते हैं। और यह बात असिद्ध नहीं है, क्योंकि 'अन्तरकरण करने पर मोहनीयका एकस्थानिक बन्ध होता है और एकस्थानिक उदय होता है' इस सूत्रसे सिद्ध है।

शंका—जब यह बात सिद्ध है तो सवेदभागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका स्वामित्व क्यों नहीं दिया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्विचरम समयमें सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभागका सत्त्व है, अतः उसे जघन्य माननेमें विरोध आता है।

* पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५५. सुगमं ।

❀ पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स चरिमसमयअसंकामयस्स ।

§ २५६. पुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चढिय अट्ठकसाए खविदूण अंतोमुहुत्तेण अंतरकरणं करिय पुणो अंतोमुहुत्तेण णवुंसयवेदं पुरिसवेदम्मि संछुहिय तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण इत्थिवेदं पि पुरिसवेदसरूवेण संकामिय तत्तो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण छण्णोकसाएहि सह पुरिसवेदचिराणसंतकम्मं कोधसंजलणे संकामिय समयूणदो-आवलियमेत्तकालमुवरि चढिदूण ट्ठिदो चरिमसमयअसंकामओ णाम । तस्स जहण्णय-मणुभागसंतकम्मं । कुदो ? देसघादिएगट्ठाणियत्तादो । दुचरिमसमयअसंकायम्मि किण्ण जहण्णसामित्तं दिण्णं ? ण, चरिमाणुभागबंधं पेक्खिदूण दुचरिमादिअणु-भागबंधाणमणंतगुणत्तादो । परोदएण किण्ण दिण्णं ? ण, तत्थ चरिमसमयसंका-मयस्स सव्वघादिवेट्ठाणियअणुभागस्स जहण्णत्तविरोहादो । एत्थ पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्से त्ति ण वत्तव्वं, कोधसंजलणस्सेव चरिमसमयअसंकायमस्से त्ति वत्तव्वं ? ण एस दोसो, विसेसालंवणाए सोदयग्गहणेण विणा जहण्णाणुभागसिद्धी चरिमसमयअसंकामयम्मि

---

§ २५५. यह सूत्र सुगम है ।

❀ पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए अन्तिम समयवर्ती असंक्रामकके होता है ।

§ २५६. पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़कर, आठ कषायोंका क्षपण करके, अन्त-र्मुहूर्तमें अन्तरकरण करके, पुनः अन्तर्मुहूर्तमें नपुंसकवेदको पुरुषवेदमें क्षेपण करके, उसके बाद अन्तर्मुहूर्त बिताकर स्त्रीवेदको भी पुरुषवेदरूपसे संक्रमाकर, उसके बाद अन्तर्मुहूर्त बिताकर छ नोकपायोंके साथ पुरुषवेदके प्राचीन सत्कर्मका संज्वलन क्रोधमें संक्रमण करके जो एक समय कम दो आवलीमात्र काल ऊपर चढ़कर स्थित है उसे अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक कहते हैं । उसके पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है, क्योंकि वह देशघाती और एकस्थानिक होता है ।

शंका—उपान्त्य समयवर्ती असंक्रामकको जघन्य अनुभागका स्वामित्व क्यों नहीं दिया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तिम अनुभागबन्धको देखते हुए उपान्त्य आदि समयमें होनेवाला अनुभागबन्ध अनन्तगुणा होता है ।

शंका—परके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवालेको पुरुषवेदका जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं दिया?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां चरमसमयवर्ती संक्रामकके सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभाग रहता है, अतः उसके जघन्य अनुभागके होनेमें विरोध आता है ।

शंका—यहाँ 'पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवालेके' ऐसा नहीं कहना चाहिए, किन्तु संज्वलन क्रोधके समान 'अन्तिम समयवर्ती असंक्रामकके' ऐसा कहना चाहियें ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि विशेषकी विवक्षामें 'स्वोदयसे' ऐसा ग्रहण कये बिना अन्तिम समयवर्ती असंक्रामकमें जघन्य अनुभागकी सिद्धि नहीं होती है अर्थात् जब तक वह स्वोदयसे श्रेणि पर नहीं चढ़ेगा तब तक उसके अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक अवस्थामें जघन्यअनभाग नहीं पाया जायेगा, यह बतलानेके लिए ही विशेष प्रकारका अवलम्बन लिया है ।

ण होदि त्ति पदुप्पायणफलत्तादो।

❀ णवुंसयवेदयस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २५७. सुगमं।

❀ खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स ?

§ २५८. एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा इत्थिवेदस्स परूविदो तहा परूवेदव्वो। णवरि णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिं चढिय चरिमसमयणवुंसयवेदस्स जहण्णसामित्तं वत्तव्वं।

अर्थात् 'अन्तिम समयवर्ती असंक्रामकके' न कहकर 'पुरुषवेदके उदयसे श्रेणी पर चढ़नेवाले अन्तिम समयवर्ती असंक्रामकके' कहा है।

※ नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५७. यह सूत्र सुगम है।

※ अन्तिम समयवर्ती क्षपक नपुंसकवेदीके होता है।

§ २५८. जैसे स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वका कथन किया है वैसे ही इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये। इतना विशेष है कि नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेपर अन्तिम समयवर्ती नपुंसकवेदीके जघन्य अनुभागका स्वामित्व कहना चाहिये।

विशेषार्थ—तीनों मेंसे किसी भी वेदके उदयसे क्षपक श्रेणीपर जीव चढ़ सकता है। क्षपक श्रेणीपर चढ़नेपर अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण होते ही हैं। अनिवृत्तिकरणमें चार संज्वलन और नव नोकषायों का अन्तरकरण करता है। नीचे और ऊपरके निषेकों को छोड़कर बीचके अन्तर्मुहूर्तमात्र निषेकों के अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं। अन्तरकरण जब तक नहीं करता तब तक तो तीनों मेंसे किसी भी वेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़नेवाले जीवका सब कथन समान ही जानना चाहिए। अन्तरकरण करने पर जो जिस वेद और जिस संज्वलनकषायके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है उसकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थापित करके अन्तरकरण करता है। जैसे स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला जीव स्त्रीवेदकी ही प्रथम स्थिति स्थापित करता है। उस प्रथम स्थितिका प्रमाण पुरुषवेदके उदय सहित श्रेणि पर चढ़नेवाले जीवके जितना नपुंसक वेदके क्षपणकाल सहित स्त्रीवेदका क्षपणकाल होता है उतना है। पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़ने वाला जीव तो पुरुषवेदके उदयसे युक्त होता हुआ ही सात नोकषायोंके क्षपण कालमें सात नोकषायोंका क्षपण करता है। बादको एक समय कम दो आवलिकालमें पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धोंको खपाता है। किन्तु स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणी पर चढ़नेवाला जीव वेदके उदयसे रहित होकर ही सात नोकषायोंका क्षपण करता है। अतः पुरुषवेदकी प्रथम स्थिति नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छ नोकषायोंका जितना क्षपणकाल है उतनी होती है। जो जीव स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है वह जब स्त्रीवेदका अन्तरकरण करके सवेद भागके उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदकी द्वितीय स्थितिको खपाकर अन्तिम समयमें पहुँचता है और उसके स्त्रीवेदका केवल उदयगत गोपुच्छ अवशेष रहता है तब उसके स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। किन्तु अन्त समयसे पहले समयमें उसके स्त्रीवेदके सर्वघाती द्विस्थानिक निषेक रहते हैं अतः उसमें जघन्य सत्त्व नहीं बतलाया। तथा पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छ नोकषाय और पुरुषवेदका संक्रमण करके, पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धोंको खपानेके लिए जब एक समय कम दो आवलि कालके अन्तिम समयमें वर्तमान रहता है तब उसके पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २५९. सुगमं ।

❀ खवगस्स चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणयस्स ।

§ २६०. चरिमाणुभागकंडयस्स चरिमफालीए वट्टमाणस्से त्ति किण्ण वुत्तं ? ण, चरिमाणुभागखंडयसव्वफालीसु अणुभागस्स विसेसाभावादो । सव्वुक्कस्सविसोहिस्से त्ति किण्ण वुत्तं ? ण, अणियट्टिपरिणामाणं समाणसमयवट्टमाणसव्वजीवेसु समाणत्तादो ।

❀ णिरयगदीए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २६१. सुगमं ।

❀ असण्णिस्स हदसमुप्पत्तियकम्मेण आगदस्स ।

§ २६२. जाव हेट्ठा संतकम्मस्स बंधदि ताव हदसमुप्पत्तियकम्मं विसोहीए

यहाँ पुरुषवेदके उदयसे ही श्रेणि पर चढ़नेवालेके पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म बतलानेका यह कारण है कि इतर वेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला अपने वेदका जब अन्तिम संक्रमण करता है तब पुरुषवेदका उसके सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभाग रहता है और सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभाग जघन्य हो नहीं सकता, अतः पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला जब पुरुषवेदका अन्तिम संक्रमण करनेको उद्यत होता है तब उसके पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । स्त्रीवेदके समान ही नपुंसकवेदका भी समझना चाहिये ।

※ छह नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५९. यह सूत्र सुगम है ।

※ अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान क्षपकके होता है ।

§ २६०. शंका—'अन्तिम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिमें वर्तमान क्षपकके होता है' ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं; क्योंकि अन्तिम अनुभागकाण्डककी सब फालियोंमें जो अनुभाग है उसमें कोई अन्तर नहीं है । जैसा एक फालीमें अनुभाग है वैसा ही दूसरीमें है, इसलिए अन्तिम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिमें वर्तमान क्षपकके होता है ऐसा नहीं कहा ।

शंका—'सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिवाले जीवके' जघन्य अनुभाग होता है ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होनेवाले परिणाम समान समयवर्ती सब जीवोंके समान ही होते हैं, अतः सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिवाले जीवके जघन्य अनुभाग होता है ऐसा नहीं कहा ।

※ नरकगतिमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २६१. यह सूत्र सुगम है ।

※ हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ जो असंज्ञी आकर नारकी हुआ है उसके होता है ।

§ २६२. शंका—सत्तामें स्थिति कर्मोंके अनुभागसे जब तक जीव कम अनुभागबंध करता है तबतक ही विशुद्ध परिणामोंसे हतसमुत्पत्तिककर्म उत्पन्न होता है । ऐसी अवस्थामें विशुद्ध होव

---

१. ता० प्रतौ जाव हेट्ठा संतकम्मस्स बंधदि ताव इत्येतद् सूत्रांशत्वेन निर्दिष्टम् ।

उप्पज्जदि। पुणो सो विसुद्धो संतो कथं णेरइएसु समुप्पज्जदे ? ण, पुव्वबद्धणिरयाउअस्स संकिलेस-विसोहिअद्धासु कमेण परियट्टंतस्स विसोहिअद्धाए झीणाए तप्पाओग्ग-संकिलेसेणाणुभागबंधवुड्ढीए विणा खीणभुंजमाणाउअस्स णेरइएसु उप्पत्तिं पडि विरोहा-भावादो। जदि एवं तो सण्णिपंचिंदिओ सव्वविसुद्धो जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी किण्ण उप्पाइदो ? ण, सण्णिमिच्छाइट्ठिजहण्णाणुभागसंतकम्मं पेक्खिदूण असण्णिजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणहीणत्तादो। तं कुदो णव्वदे ? विसंजोइद-अणंताणुबंधिचउक्कम्मि णेरइयसम्माइट्ठिम्मि मिच्छत्ताणुभागस्स जहण्णसामित्तमदादूण असण्णिपच्छायदमिच्छादिट्ठिम्मि सामित्तं पदुप्पाययसुत्तादो। ण च हदसमुप्पत्तिय-कम्मो विसुद्धो चेव होदि त्ति णियमो, संकिलिट्ठस्स वि सगजहण्णाणुभागसंतकम्मादो[1] हेट्ठा बंधमाणस्स हदसमुप्पत्तियकम्मत्तं पडि विरोहाभावादो। जाव संतकम्मस्स हेट्ठा बंधदि ताव त्ति किमट्ठं कालणिद्देसो कदो ? जहण्णाणुभागसंतकम्मेण सह णेरइएसु अंतोमुहुत्तमच्छदि त्ति जाणावणट्ठं।

हुआ वह हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जीव नरकमें कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिसने पहले नरकायुका बंध कर लिया है वह जीव क्रमसे संक्लेश और विशुद्धिके कालमें परिभ्रमण करता हुआ अर्थात् संक्लेशसे विशुद्धिमें और विशुद्धिसे संक्लेशमें परिवर्तन करता हुआ विशुद्धिकालके क्षीण हो जाने पर तत्प्रायोग्य संक्लेशवश अनु-भागबन्धमें वृद्धि हुए बिना भुज्यमान आयुके क्षीण होने पर नरकगतिमें उत्पन्न होता है इसमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—यदि ऐसा है तो सबसे विशुद्ध और जघन्य अनुभागसत्कर्मकी सत्तावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिको क्यों नहीं उत्पन्न कराया। अर्थात् असंज्ञीको नरकमें उत्पन्न कराकर जो उसे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका स्वामी बतलाया है उसकी अपेक्षा संज्ञीको नरकमें उत्पन्न कराकर उसके जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं बतलाया।

समाधान—नहीं, क्योंकि संज्ञी मिथ्यादृष्टिके जघन्य अनुभागसत्कर्मकी अपेक्षा असंज्ञीका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर चुकनेवाले नारक सम्यग्दृष्टिमें मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका स्वामित्व न बतलाकर असंज्ञी पर्यायसे आये हुए नारक मिथ्या-दृष्टिमें स्वामित्व बतलानेवाले सूत्रसे जाना।

तथा हतसमुत्पत्तिककर्मवाला जीव विशुद्ध ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि अपने जघन्य अनुभागसत्कर्मसे कम बाँधनेवाले संक्लिष्ट जीवके भी हतसमुत्पत्तिककर्म हो सकता है इसमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—'जब तक सत्कर्मसे कम बाँधता है तभी तक' इस प्रकार कालका निर्देश क्यों किया है ?

समाधान—जघन्य अनुभागसत्कर्मके साथ जीव नारकियोंमें अन्तर्मुहूर्त काल तक

---

1. आ० प्रतौ णियमो संकिलेसस्स विसयजहण्णाणुभागसंतकम्मादो इति पाठः।

❀ एवं बारसकसाय-णवणोकसायाणं ।

§ २६३. जहा मिच्छत्तस्स असण्णिपच्छायदहदसमुप्पत्तियकम्मेण ओगदस्स जहण्णसामित्तं परूविदं तहा एदासिं पि पयडीणं परूवेदव्वं, अविसेसादो ।

❀ सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २६४. सुगमं ।

❀ चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ २६५. सुगममेदं सुत्तं, ओघम्मि परूविदत्तादो । णिरयगईए दंसणमोहणीय-

---

रहता है यह बतलानेके लिये किया है।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पहले नरकायुका बन्ध करके पीछे सत्तामें स्थित मिथ्यात्वके अनुभागका घात कर डालता है वह जब मरकर नरकमें जन्म लेता है तो उसके मिथ्यात्व का जघन्य अनुभागसत्कर्म तब तक होता है जब तक वह मिथ्यात्वके सत्तामें स्थित अनुभागसे अधिक अनुभागका बन्ध नहीं करता। जब वह अधिक अनुभागबन्ध करने लगता है तो फिर उसके जघन्य अनुभाग नहीं रहता। अत: नरकमें मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागकी सत्ता अन्तर्मुहूर्त काल तक ही रहती है। इस पर एक शङ्का यह की गई है कि सत्तामें स्थित अनुभागका घात विशुद्ध परिणामोंसे होता है, अत: विशुद्ध परिणामवाला मरकर नरकमें कैसे उत्पन्न हो सकता है ? इसका यह समाधान किय गया है कि पहले तो वह जीव नरक की आयु बांध चुकता है, अत: जब भुज्यमान आयु क्षीण होती है तो योग्य संक्लेश परिणामोंसे मरकर नरकमें जन्म लेता है। किन्तु इतना स्मरण रखना चाहिये कि उसके संक्लेश परिणाम ऐसे नहीं होते जिनसे सत्तामें स्थित मिथ्यात्वके अनुभागसे अधिक अनुभागबन्ध हो। दूसरी शंका यह की गई है कि असैनी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिके परिणाम अधिक विशुद्ध होते हैं, अत: उससे उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म अधिक हीन होंगे, इसलिये सैनी मिथ्यादृष्टिको नरकमें उत्पन्न क्यों नहीं कराया। सो इसका समाधान यह किया गया है कि संज्ञी मिथ्यादृष्टिके जघन्य अनुभाग सत्कर्मसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है और इसका सबूत यह है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्क की विसंयोजना कर देनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकीमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म न बतलाकर असंज्ञी पर्यायसे आकर नरकमें जन्म लेनेवाले मिथ्यादृष्टिके उसका जघन्य अनुभाग बतलाया है, अत: सिद्ध है कि संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है।

* इसी प्रकार बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागके स्वामित्वका कथन करना चहिये ।

§ २६३. जैसे हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले असंज्ञी जीवके नरकमें उत्पन्न होने पर उसके मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागके स्वामित्वका कथन किया है वैसे ही इन प्रकृतियोंका भी कथन कर लेना चाहिये, क्यों कि उससे इनमें कोई विशेषता नहीं है।

* सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २६४. यह सूत्र सुगम है।

* दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है।

२६५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि ओघ प्ररूपणामें इसका कथन कर आये हैं।

क्खवणाभावादो णेदं घडदि त्ति णासंकणिज्जं; दंसणमोहणीयं मणुस्सेसु खविय कद-करणिज्जो होदूण णेरइएसुप्पण्णस्स जहण्णाणुभागुवलंभादो। जहा सम्मत्तं पुव्वबद्ध-दीहाउट्ठिदिं छिंदिदूण देसूणसागरोवममेत्तं संखेज्जवाससेत्तं वा करेदि तहा णिरआउस्स णिम्मूलविणासं किण्ण करेदि ? ण, तस्स तहाविहसत्तीए अभावादो। ण च सहाओ पडिवोहणारुहो, अइप्पसंगादो।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं णत्थि।

§ २६६. कुदो ? दंसणमोहक्खवणं मोत्तूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णत्थ अणु-भागखंडयघादाभावादो। पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अणंताणुबंधीणं विसंजोयणाए चारित्तमोह-णीयस्स उवसामणाए च सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिखंडयघादे संते कधमणुभाग-खंडयस्सेव घादो णत्थि ? ण, भिण्णजाइत्तणेण एगसहावत्तविरोहादो। अविरोहे वा अणुभागघादे संते णियमेण ट्ठिदिघादेण वि होदव्वं। ण च एवं, खवणाए एगट्ठिदिं-

शंका—नरकगतिमें दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता है, अतः यह स्वामित्व नरकमें घटित नहीं होता ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मनुष्योंमें दर्शनमोहनीयका क्षय करके, कृतकृत्य होकर जो नारकियों में उत्पन्न होता है उसके सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग पाया जाता है।

शंका—जैसे सम्यक्त्वकी पहले बांधी हुई लम्बी स्थितिका छेदन करके उसे कुछ कम सागर प्रमाण अथवा संख्यातवर्ष प्रमाण करता है वैसे ही बांधी हुई नरकायुका निर्मूल विनाश क्यों नहीं करता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसमें इस प्रकारकी शक्ति नहीं है। यदि कोई कहे कि शक्ति क्यों नहीं है तो उसका यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि शक्तिका होना न होना पदार्थोंका स्वभाव सिद्ध धर्म है और स्वभाव प्रतिबोधनके अयोग्य है, उसमें इस प्रकारका तर्क नहीं किया जा सकता कि ऐसा क्यों है ? यदि स्वभावके विषयमें भी इस प्रकारका तर्क किया जाने लगे तो अतिप्रसंग दोष उपस्थित होगा। वस्तुमात्रके स्वभाव के विषयमें इस प्रकारका तर्क किया जाने लगेगा।

* सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं है ?

§ २६६. शंका—सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि दर्शनमोहके क्षपणको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वका अनुभागकाण्डकघात नहीं होता। और नरकगतिमें दर्शनमोहका क्षपण नहीं होता। इसलिए वहां सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका निषेध किया है।

शंका—प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन और चरित्रमोहनीयकी उपमशनाके समय जब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिकण्डकघात होता है तो वहां अनुभागकाण्डकघात ही क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्थिति और अनुभाग भिन्न जातीय हैं, अतः दोनोंका एक स्वभाव होनेमें विरोध है। यदि विरोध न हो तो अनुभागका घात होने पर नियमसे स्थितिका घात भी

१. आ० प्रतौ खवणाए ट्ठिदि- इति पाठः।

खंडयउक्कीरणकालब्भंतरे संखेज्जसहस्सअणुभागखंडयाणं पदणविरोहादो। अणुसमओवट्टणाए अणुभागस्सेव ट्ठिदीए वि होदव्वं, एगसहावत्तादो। ण च एवं, तहाणुवलंभादो।

❀ अणंताणुबंधीणमोघं।

§ २६७. जहा ओघम्मि संजुत्तपढमसमए अणंताणुबंधीणं जहण्णसामित्तं वुत्तं तथा एत्थ वि वत्तव्वं।

❀ एवं सव्वत्थ णेदव्वं।

§ २६८. एदेण वयणेण जइवसहाइरिएण एदस्स सुत्तस्स देसामासियत्तं जाणाविदं। संपहि एत्थुद्देसे उच्चारणा वुच्चदे—

§ २६९. सामित्ताणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सा-

होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर क्षपणावस्थामें एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालके भीतर संख्यात हजार अनुभाग काण्डकोंकापतन होनेमें विरोध आता है। तथा यदि स्थिति और अनुभागका एक स्वभाव है तो जिस प्रकार प्रति समय अनुभागका अपवर्तन घात होता है उस तरह स्थितिका भी होना चाहिए; क्योंकि दोनों एकस्वभाव हैं। किन्तु ऐसा होता नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनुभागकाण्डकघात हुए विना नहीं होता। और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागका काण्डकघात दर्शनमोहके क्षपणके सिवा अन्यत्र होता नहीं तथा नरकगतिमें दर्शनमोहका क्षपण नहीं होता, अतः नरकमें सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता। इस पर यह शंका की गई कि सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिका काण्डकघात तो अन्य अवसरों पर भी होता है तब अनुभागका ही काण्डक घात क्यों केवल दर्शनमोहके क्षपणके समय ही होता है, अन्यत्र नहीं होता? इसका समाधान किया गया कि स्थिति और अनुभाग दोनों दो जुदी चीजें हैं, अतः एकके होने पर दूसरेका होना अविनाभावी नहीं है। यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि यद्यपि कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें जन्म ले सकता है किन्तु वह कृतकृत्य होनेसे पहले ही सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म कर लेता है, अतः नरकमें नहीं हो सकता।

❀ अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागका स्वामित्व ओघके समान कहना चाहिये।

§ २६७. जैसे ओघमें अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागका स्वामित्व कहा है वैसा ही नरकमें भी कहना चाहिए।

❀ इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें मोहनीयकी प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके स्वामित्वको कहना चाहिए।

§ २६८. इस कथनसे आचार्य यतिवृषभने यह बतलाया है कि यह सूत्र देशामर्षक है। अब इस विषयमें उच्चारणाको कहते हैं।

§ २६९. स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंका

णुभागसंतकम्मं कस्स ? अण्णदरस्स जो तप्पाओग्गजहण्णाणुभागसंतकम्मिओ तेण उक्कस्साणुभागे बंधे जाव तं ण हणदि ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा सण्णी वा असण्णी वा पज्जत्तो वा अपज्जत्तो वा संखेज्जवस्साउओ वा असंखेज्जवस्साउओ वा। असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्से मणुस्सोववादियदेवे च मोत्तूण। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्क० कस्स ? अण्णदरस्स संतकम्मियस्स दंसणमोहक्खवयं मोत्तूण।

§ २७०. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसंपयडीणमुक्क० कस्स ? अण्णद० जेण उक्कस्साणुभागो पबद्धो सो जाव तण्ण हणदि ताव। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोघं। एवं पढमाए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव सोहम्मीसाणादि जाव सहस्सारकप्पो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मामिच्छत्तस्सेव सम्मत्तस्स णत्थि अणुक्कस्ससंतकम्मं। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचि०तिरि०--

---

उत्कृष्ट अनुभागसत्कम किसके होता है ? ऐसे किसी भी जीवके होता है जो अपने योग्य जघन्य अनुभागकी सत्तावाला जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक वह एकेन्द्रिय हो, द्वीन्द्रिय हो, तेइन्द्रिय हो, चौइन्द्रिय हो, संज्ञी हो, असंज्ञी हो, पर्याप्त हो, अपर्याप्त हो, संख्यात वर्षकी आयुवाला हो या असंख्यात वर्षकी आयुवाला हो; उसके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्चों और मनुष्योंको तथा जहांके देव केवल मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं उन देवोंको छोड़कर अन्य सबके यह उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर उनकी सत्तावाले किसी भी जीवके होता है।

विशेषार्थ—अपने अपने योग्य जघन्य अनुभागसत्कर्मवाला जो जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उसका घात नहीं करता तब तक वह किसी भी पर्यायमें संख्यातवर्ष या असंख्यात वर्षकी आयुके साथ जन्म ले उसके मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग रहता है। किन्तु भोगभूमिज तिर्यञ्च और मनुष्य तथा आनतादिक कल्पके देवोंमें मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व नहीं होता, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए। पर यह कथन मोहनीयकी २६ प्रकृतियोंकी अपेक्षासे किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षासे कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन दोका बन्ध नहीं होता, अतः इनकी सत्तावालेके इनका उत्कृष्ट अनुभाग रहता है। केवल दर्शनमोहके क्षपकको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि उसके इनका जघन्य अनुभाग भी होता है और बादको ये नष्ट हो जाती हैं। ओघ की ही तरह आदेश से भी जानना चाहिए। उसमें जो विशेषता है सो मूलमें बतलाई ही है।

§ २७०. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जिसने उत्कृष्ट अनुभागका बंध किया वह जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक उस जीवके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म-ईशान स्वर्गसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार स्वामित्व है। इतना विशेष है कि वहां सम्यग्मिथ्यात्वके समान सम्यक्त्वका भी अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। इसी प्रकार

अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति । णवरि पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ तिरिक्खो मणुस्सो वा अप्पिद-अपज्जत्तएसु उप्पज्जिदूण जाव तं ण हणदि ताव सो उक्कस्साणुभागस्स सामिओ ।

§ २७१. मणुस-मणुसपज्ज०-मणुसिणी० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० कस्स ? अण्णद० उक्कस्साणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि ताव । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं उक्कस्साणुभाग० कस्स ? दंसणमोहक्खवगं मोत्तूण सव्वस्स संत-कम्मियस्स । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्णदरो जो दव्वलिंगी तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागसंतकम्मेण उववण्णो सो जाव ण हणदि ताव उक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ । सम्मत्त० ओघं । सम्मामि० देवोघं । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मेण उववण्णल्लयस्स जाव ण हणदि ताव । सम्मत्त० ओघं । सम्मामि० देवोघं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ २७२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० जह० अणु० संतकम्मं कस्स ? अण्णद० सुहुमेइंदियस्स कदहदसमुप्पत्तिय-

---

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला तिर्यञ्च अथवा मनुष्य विवक्षित अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक वह उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका स्वामी है ।

§ २७१. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनीमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, और नव नोकषायोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो उत्कृष्ट अनुभागको बांधकर जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले सब जीवोंके होता है । आनत स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, और नव नोकषायोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो द्रव्यलिङ्गी मुनि अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको लेकर वहां उत्पन्न हुआ है वह जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका स्वामी ओघकी तरह समझना चाहिए । सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके साथ उत्पन्न हुआ जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जब तक उसका घात नहीं करता तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व ओघकी तरह है । सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

§ २७२. अब जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है - ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जिस सूक्ष्म एकेन्द्रिय

कम्मस्स, सो तेण जहण्णाणुभागसंतकम्मेण एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा सण्णी वा असण्णी वा सुहुमो वा बादरो वा पज्जत्तो वा अपज्जत्तो वा होदि जाव तण्ण वड्ढदि ताव तस्स विहत्तिओ। सम्मत्त० जहण्णाणु० कस्स ? अण्णद० चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । सम्मामि० जहण्णाणु० कस्स ? अण्णद० दंसणमोहणीयक्खवयस्स अपच्छिमे अणुभागखंडए वट्टमाणस्स । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० कस्स ? विसंजोएदूण पढमसमयसंजुत्तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं होदि । कोध-माण-मायासंजलण० जह० कस्स ? अण्णद० कोध-माण-मायावेदयखवगस्स चरिमसमयअणुभागवंधं पडि चरिमसमयअसंकामयस्स । लोभसंजल० जहण्णाणु० कस्स ? खवगस्स चरिमसमयसकसायिस्स । पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? पुरिसवेदक्खवयस्स[1] चरिमसमयअणुभागवंधं पडि चरिमसमयअसंकामयस्स । इत्थि० ज० कस्स ? अण्णद० खवयस्स इत्थिवेदोदएण उवट्ठिदस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स। णवुंसयवेद० जह० कस्स ? अण्णद० णवुंसयवेदोदएण उवट्ठिदस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स । छण्णोकसाय० ज० कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणस्स ।

§ २७३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० कस्स ? जो

जीवने अनुभागका घात करके जघन्य अनुभागसत्कर्म उत्पन्न किया है उसके होता है। तथा वह उस जघन्य अनुभागसत्कर्मके साथ मरकर एकेन्द्रिय अथवा दोइन्द्रिय, अथवा तेइन्द्रिय, अथवा चौइन्द्रिय, अथवा असंज्ञी, अथवा संज्ञी, सूक्ष्म अथवा बादर, पर्याप्त अथवा अपर्याप्त होकर जब तक उसे नहीं बढ़ाता है तब तक उसका स्वामी होता है। सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अक्षीणदर्शनमोहीके अन्तिम समयमें होता है। सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान दर्शनमोहके क्षपकके होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उससे संयुक्त हुए तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले प्रथम समयवर्ती जीवके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान और संज्वलन मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? क्रोध, मान और मायाका वेदन करनेवाले तथा अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धकी अपेक्षा अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक क्षपक जीवके होता है। संज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम समयवर्ती क्षपक सकषायिक जीवके होता है। पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धकी अपेक्षा अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक पुरुषवेदीके होता है। स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवाले अन्तिम समयवर्ती स्त्रीवेदी क्षपक जीवके होता है। नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणी पर चढ़नेवाले अन्तिम समयवर्ती नपुंसकवेदी क्षपक जीवके होता है। छ नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान क्षपकके होता है।

§ २७३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य

[1] आ० प्रतौ चरिमसमयं असंकामयस्स। लोभसंजल० जहण्णाणु० कस्स० पुरिसवेदक्खवयस्स इति पाठः।

असण्णी हदसमुप्पत्तियकम्मेण आगदो जाव संतकम्मादो हेट्ठा बंधदि ताव तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं । सम्मत्त० जह० कस्स ? चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो णत्थि । अणंताणु० ज० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसंजुत्तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स । एवं पढमाए पुढवीए । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स अणंताणुवंधिचउक्कं विसंजोइदस्स । अणंताणु०चउक० ज० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसंजुत्तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स ।

§ २७४. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ज० कस्स ? अण्णद० सुहुमेइंदियस्स हदसमुप्पत्तियकम्मियस्स जाव ण वड्ढावेदि ताव । सम्मत्त० ओघं । सम्मामिच्छत्तस्स णत्थि जहण्णं । अणंताणु०चउक० ओघं । पंचिंदियतिरिक्खपंचिं०तिरि०पज्ज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० क० ? अण्णद० सुहुमेइंदियपच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियकम्मियस्स जाव ण वड्ढदि ताव । सम्मत्त--अणंताणु०चउक० तिरिक्खोघं । सम्मामिच्छत्त० जहण्णं णत्थि । एवं जोणिणी० । णवरि सम्मत्त०

अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो असंज्ञी जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ नरकमें जन्मा है वह जब तक सत्तामें स्थित अनुभागसे कम अनुभागका बन्ध करता है तब तक उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? दर्शनमोहका क्षय करनेवाले जीवके अन्तिम समयमें होता है । सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नरकमें नहीं होता । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उससे संयुक्त हुए तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले प्रथम समयवर्ती जीवके होता है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसे अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके पुनः उससे संयुक्त हुए तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले प्रथम समयवर्ती जीवके होता है ।

§ २७४. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव जब तक जघन्य अनुभागसत्कर्मको नहीं बढ़ाता है तब तक उसके होता है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभाग सत्कर्मका स्वामी ओघकी तरह है । सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म तिर्यञ्चगतिमें नहीं होता । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी ओघकी तरह है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायसे मरकर आया है वह जब तक वर्तमान अनुभागको नहीं बढ़ाता है तब तक उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभाग सत्कर्मका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म यहाँ नहीं होता । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि

जहण्णं णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि अणंताणु०चउक्क० सुहुमेइंदियपच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियकम्मियस्स जहण्णं वत्तव्वं।

§ २७५. मणुसगदीए मणुस्सेसु ओघं। णवरि मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। मणुसपज्ज० एवं चेव। णवरि इत्थि० छण्णोकसायभंगो। मणुसिणीसु मणुस्सोघं। णवरि पुरिस-णवुंसयवेदाणं छण्णोकसायभंगो।

§ २७६. देवगदि० देवाणं पढमपुढविभंगो। एवं भवण०-वाण०। णवरि सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। जोदिसिय० विदियपुढविभंगो। सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छत्त० ज० कस्स? अण्णद० जो चउवीससंतकम्मिओ दोवारं कसाए उवसामिदूण अप्पप्पणो देवेसु उववण्णो तस्स जहण्णयं। बारसक०-णवणोक० ज० कस्स? अण्णद० जो वेदयसम्माइट्ठी दंसणमोहणीयमुवसामिय दोवारमुवसमसेढिमारूढो पच्छा दंसणमोहणीयं खवेदूण अप्पप्पणो देवेसु उववण्णो तस्स जहण्णमणुभागसंतकम्मं। सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० देवाणं भंगो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति एवं चेव। णवरि अणंताणु०चउक्क० ज० कस्स? अण्णद० अणंताणु० चउक्क०

उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान होता है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभाग सत्कर्मका स्वामी सूक्ष्म एकेन्द्रियसे मरकर आये हुए हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले जीवके कहना चाहिये।

§ २७५ मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें ओघके समान समझना चाहिए। इतना विशेष है कि मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान है। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें स्त्रीवेदका भङ्ग छह नोकषायोंके समान है। मनुष्यिनियोंमें सामान्य मनुष्योंके समान स्वामित्व है। इतना विशेष है कि इनमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व छह नोकषायके समान है।

§ २७६. देवगतिमें देवोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता। ज्योतिषीदेवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है? अनन्तानुबन्धीचतुष्कके सिवाय चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव दो वार कषायोंका उपशमन करके उन उन देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है? जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहनीयका उपशम करके दो वार उपशम श्रेणीपर चढ़ा, पीछे दर्शनमोहनीयका क्षय करके उन उन देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य देवोंके समान होता है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार होता है। अनन्तानु-

विसंजोएंतस्स चरिमे अणुभागकंडए वट्टमाणस्स । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

❀ कालाणुगमेण ।

§ २७७. सामित्तं भणिय संपहि एगजीवपडिवद्धं कालपरूवणं कस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २७८. सुगमं ।

बन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागके स्वामित्वके विषयमें इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्क का विसंयोजन करनेवाला जीव जब अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान होता है तब उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंके अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व जैसे पहले बतला आये हैं वैसे ही जानना चाहिये। और आदेशसे भी प्रायः उसी प्रकार है किन्तु हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पहले नरकके सिवा अन्य नरकोंमें जन्म नहीं लेता, अतः दूसरे आदि नरकोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला स्वामी होता है। शेष तिर्यञ्चोंमें मरकर जन्म लेनेवाला वही हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव स्वामी होता है। सामान्यसे चारों ही गतियों में अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाला जब पुनः अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होता है तब उसके प्रथम समयमें होता है। किन्तु तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तमें अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन नहीं होता, अतः जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव मरकर उनमें जन्म लेता है वही स्वामी होता है। तथा देवगतिमें अनुदिशादिक विमानोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला जब अनन्तानुबन्धी के अन्तिम अनुभागकाण्डककी विसंयोजना करता है तब उसके अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है, क्योंकि वहाँ अनन्तानुबन्धीका पुनः संयोजन संभव नहीं है। सम्यग्मिथ्यात्व का जघन्य अनुभागसत्कर्म केवल मनुष्यगतिमें ही होता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वका क्षपण मनुष्य ही करता है। सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म पहले नरकमें, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चोंमें, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें तथा भवनत्रिकको छोड़कर शेष देवोंमें होता है, क्योंकि इनमें या तो कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टी उत्पन्न हो सकता है। या इनमेंसे किन्हींमें होता है। वैमानिक देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वके विषयमें जो विशेषता वह मूलमें बतलाई ही है।

❀ कालका प्ररूपण करते हैं।

§ २७७. स्वामित्वको कहकर अब एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन करते हैं। यह प्रतिज्ञा सूत्र है अर्थात् इस सूत्रमें कालका कथन करनेकी प्रतिज्ञा की गई है।

❀ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?

§ २७८. यह सूत्र सुगम है।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ २७९. उक्कस्साणुभागं बंधिय सव्वजहण्णेण कालेण घादिदस्स जहण्णकालो सव्वुक्कस्सेण कालेण घादिदस्स सव्वुक्कस्सकालो त्ति घेत्तव्वं ।

❀ अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मं केवचिरं कालादो होदि ?

§ २८०. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ २८१. कुदो ? उक्कस्साणुभागं घादिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमच्छिय पुणो उक्कस्साणुभागे पबद्धे तदुवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण[1] असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।

§ २८२. कुदो ? उक्कस्साणुभागसंतकम्मं घादियूण अणुक्कस्सम्मि णिवदिय अणुक्कस्साणुभागसंतकम्मेण पंचिंदिएसु तप्पाओग्गुक्कस्सकालमच्छिय पुणो एइंदिएसु गंतूण असंखे०पोग्गलपरियट्टे गमिय पच्छा पंचिंदियं गंतूण बद्धुक्कस्साणुभागस्स तदुवलंभादो ।

---

* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २७९. उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके यदि उसका घात सबसे जघन्य कालमें अर्थात् जल्दी ही कर दिया जाता है तो जघन्य काल होता है और यदि उसका घात सबसे उत्कृष्ट काल में किया जाता है तो सबसे उत्कृष्ट काल होता है, ऐसा अर्थ लेना चाहिये ।

* अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ।

§ २८० यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २८१ शंका—मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक क्यों रहता है ?

समाधान—उत्कृष्ट अनुभागका घात करके सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर पुनः उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ।

§ २८२. शंका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल असंख्यातपुद्गल परावर्तनप्रमाण कैसे है ?

समाधान—उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका घात करके, अनुत्कृष्टमें गिरकर अनुत्कृष्ट अनुभाग के साथ पञ्चेन्द्रियोंमें अधिकसे अधिक जितने काल तक रह सकते हैं उतने काल तक ठहरकर पुनः एकेन्द्रियोंमें जाकर असंख्यात पुद्गल परावर्तन काल बिताकर पीछे पञ्चेन्द्रिय होकर जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है उसके उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण पाया जाता है।

---

1. आ० प्रतौ वाड्डियाण इति पाठः ।

❀ एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं ।

§ २८३. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कदा तहा एदेसिं पणुवीसकसायाणं कायव्वा, विसेसाभावादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २८४. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ २८५. णिस्संतकम्मियमिच्छादिट्ठिणा पढमे सम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागस्स आदी जादा । पुणो अंतोमुहुत्तकालमच्छिय उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय वेदगं गंतूण सव्वजहण्णकालेण दंसणमोहणीयं खवेंतेण अपुव्वकरणद्धाए पढमे अणुभागखंडगे हदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुभागो जेण अणुक्कस्सो होदि तेण उक्कस्साणुभागकालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि । अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंतस्स आउअवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिअणुभागखंडए णिवदमाणे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं चेव किमिदि अणुभागखंडओ ण णिवददि[1] ? ण,

---

* इसीप्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंका जानना चाहिये ।

§ २८३. जैसे मिथ्यात्वके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन किया है वैसे ही इन पच्चीस कषायोंका भी कर लेना चाहिये । दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?

§ २८४. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २८५. जिस मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की सत्ता नहीं है उसके प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्राप्त करने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका प्रारम्भ हुआ । पुनः अन्तमुहूर्तकाल तक ठहरकर उपशमसम्यक्त्वके कालके अन्दर ही अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके, वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके उस जीवने सबसे जघन्य कालमें अर्थात् जितना शीघ्र हो सकता था उतना शीघ्र दर्शनमोहनीयका क्षपण करते हुए अपूर्वकरणके कालमें प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किया । उस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है, अतः उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त मात्र होता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवालेके जब आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका घात होता है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके ही अनुभागकाण्डकका घात क्यों नहीं होता ?

---

1. आ० प्रतौ अणुभागखंडओ णिवददि इति पाठः ।

साहावियादो ।

* उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ २८६. कुदो ? छव्वीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिस्स पढमसम्मत्तं घेत्तूणुप्पाइद-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मस्स तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय पढम-छावट्ठिं गमिय पुणो सम्मामिच्छत्तं गंतूण तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वेदगसम्मत्तं घेत्तूण विदियछावट्ठिं भमिय तत्थ अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गंतूण पलिदो० असंखे० भागमेत्तकालेण उव्वेल्लिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तस्स पलिदो० असंखे०भागेणब्भहिय-वेछावट्ठिसागरोवममेत्ततदुक्कस्सकालुवलंभादो । अथवा तीहि पलिदोवमस्स असंखे०-भागेहि सादिरेयाणि वेछावट्ठिसागरोवमाणि त्ति के वि आइरिया भणंति । तं जहा—उवसमसम्मत्तं घेत्तूण पुणो मिच्छत्तं पडिवज्जिय एइंदिएसु सम्मत्तट्ठिदिं पलिदो० असंखे०भागमेत्तं ठविय पुणो असण्णिपंचिंदिएसुप्पज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तेण देवाउअं बंधिय कमेण कालं करिय दसवस्ससहस्साउअदेवेसुप्पज्जिय पुणो पज्जत्तयदो होदूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय पढमछावट्ठिं भमिय मिच्छत्तं गंतूण पुणो दीहुव्वेल्लणकालेण सम्मत्तट्ठिदिं चरिमफालिमेत्तं ठविय पुणो उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय विदियछावट्ठिं भमिय मिच्छत्तं गंतूण दीहुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिदे तीहि

समाधान—नहीं होता, क्योंकि ऐसा उसका स्वभाव है ।

* उत्कृष्ट काल कुछ अधिक दो छियासठ सागर है ।

§ २८६. शंका—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कैसे है ?

समाधान—मोहनीय की छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व को ग्रहण करके, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको उत्पन्न करके प्रथम सम्यक्त्वमें अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर विताता है । पुनः तीसरे गुणस्थानमें जाकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक ठहरकर पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करके दूसरे छियासठ सागरमें जब अन्तर्मुहूर्त काल बाकी रह जाता है तो मिथ्यात्वको प्राप्त करके पल्यके असंख्यातवें भागमात्र कालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देता है, अतः उसके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक दो छियासठ सागर पाया जाता है । अथवा किन्हीं आचार्योंका कहना है कि पल्यके तीन असंख्यात भागोंसे अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल है । वह इस प्रकार है—उपशमसम्यक्त्व को ग्रहण करके पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त करके एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थितिको पल्यके असंख्यातवें भागमात्र काल प्रमाण करके पुनः असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर वहाँ अन्त-र्मुहूर्तमें देवायुका बंध करके, क्रमसे काल पूरा करके दस हजार वर्ष की आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर्याप्तक होकर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर काल तक भ्रमण करके मिथ्यात्वमें जाकर पुनः दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व की स्थिति अन्तिम फाली प्रमाण करके, पुनः उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरे छियासठ सागर काल तक भ्रमण करके, मिथ्यात्वमें जाकर दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी

पलिदो० असंखे०भागेहि सादिरेयाणि वेछावट्ठिसागरोवमाणि। अथवा अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि त्ति के वि भणंति। एदं सव्वं पि जाणिय वत्तव्वं।

❀ अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २८७. सुगमं।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

§ २८८. दंसणमोहणीयं खवेंतेण अपुव्वकरणद्धाए पढमे अणुभागखंडए घादिदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुक्कस्समणुभागसंतकम्मं। तदो पहुडि अंतोमुहुत्तकालमणुक्कस्सं चेव अणुभागसंतकम्मं होदि जाव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि णिल्लेविदाणि त्ति।

§ २८९. संपहि उच्चारणमस्सिदूण कालाणुगमं भणिस्सामो। कालाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० अणुभाग० केवचिरं ? जहण्णुक्क० अंतोमु०। अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं।

§ २९०. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणं उक्क० ज० एगस०, उक्क०

उद्वेलना कर देने पर पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल होता है। अथवा किन्हींका कहना है कि अन्तर्मुहूर्त अधिक दो छियासठ सागर उत्कृष्ट काल है। इस सबको जानकर कथन करना चाहिये।

* अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?

§ २८७. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ २८८. दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीवके द्वारा अपूर्वकरणके कालमें प्रथम अनुभागकाण्डकका घात कर देने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। और तबसे लेकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका विनाश होने तक अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म ही रहता है, अतः जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ २८९. अब उच्चारणावृत्तिका आश्रय लेकर कालानुगमको कहेंगे। कालानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ २९०. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य

अंतोमु० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । सम्मत्त० उक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सगलाणि । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मामि० उक्क० मिच्छत्ताणुक्कस्सभंगो । अणुक्कस्सं णत्थि । एवं पढमादि जाव सत्तमि त्ति । णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । विदियादि जाव सत्तमि त्ति सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि ।

§ २९१. तिरिक्खेसु छब्बीसं पयडीणमुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सम्मत्त० उक्क० अणुभाग० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि । अणुक्क० णेरइयभंगो । सम्मामि० उक्क० अणुभाग० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि । अणुक्क० णेरइयभंगो । सम्मामि० उक्क० अणुभा० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सादिरेयाणि । अणुक्कस्सं णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि छब्बीसंपयडीणं उक्क० तिरिक्खभंगो । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुभाग० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि ।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागके कालकी तरह है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नरकमें नहीं होता। इस प्रकार पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं तक होता है। इतना विशेष है कि प्रत्येक पृथिवीमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग नहीं रहता।

§ २९१. तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्गल परावर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य है। अनुत्कृष्टका नारकियोंके समान भंग है। सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कमका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि तिर्यञ्चयोनिनियोंमें

पंचिंदियतिरिक्ख०अपज्ज०-मणुस्सअपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणं उक्कस्साणुभाग० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु० । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० णत्थि । मणुसतिय० पंचिंदियतिरिक्खतियभंगो । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० ओघं । मणुसपज्जत्तेसु सम्मत्त० अणुक्कस्साणुभाग० ज० एगस० ।

§ २९२. देवाणं णेरइयभंगो । एवं भवणादि जाव सहस्सार त्ति । णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । भवण०--वाण०--जोदिसि० सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति मिच्छत्त--बारसक०--णवणोक० उक्कस्साणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त० उक्कस्साणुभाग० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं सम्मामि० । सम्मत्त० अणुक्क० देवोघं । अणंताणु०चउक्क० उक्क० जह० अंतोमु० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणं उक्कस्साणुक्कस्स० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त० उक्क० ज० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं सम्मामि० । णवरि अणुक्क० णत्थि । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य-अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनीके समान भंग है। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल ओघकी तरह है। मात्र मनुष्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय है।

§ २९२. सामान्य देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इसी प्रकार भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। आनत स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका समझना चाहिए। सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल सामान्य देवोंकी तरह जानना चाहिए। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल क्रमशः अन्तर्मुहूर्त और एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उसका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

*** मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?**

§ २९३. सुगमं ।

विशेषार्थ—छब्बीस प्रकृतियोंमें से किसी का भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके मरकर नरकमें जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें ही उसका घात कर देता है या नरकमें अन्तिम समय उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके दूसरे समयमें अन्य गतिमें चला जाता है तो नरकमें उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय होता है। और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक उनका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं ठहरता। तथा कोई नारकी उत्कृष्ट अनुभागका घात करके यदि आयुके क्षय हो जानेसे दूसरे समयमें मर जाता है तो उसके उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है तथा उत्कृष्ट काल सामान्य से सम्पूर्ण तेतीस सागर जानना चाहिए और विशेषसे प्रत्येक नरककी जितनी जितनी उत्कृष्ट स्थिति है उतना जानना चाहिए। सम्यक्त्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षासे होता है और उत्कृष्ट काल नरकमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म दर्शनमोहके क्षपकके अपूर्वकरण कालमें प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर होता है, अतः कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें सम्यक्त्वका क्षपण कर देता है तो सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय होता है, अन्यथा अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि नरकमें भी कृतकृत्यवेदकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म केवल मनुष्यगतिमें ही सम्भव है, क्योंकि कृतकृत्य होने पर ही मरण होता है और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षपण इससे पहले हो चुकता है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परावर्तनप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका घात करके, अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके साथ पञ्चेन्द्रियोंमें उनके योग्य उत्कृष्ट काल तक रहकर, पुनः एकेन्द्रियोंमें जाकर असंख्यात पुद्गल परावर्तन तक रह कर, पीछे पञ्चेन्द्रिय होकर, उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर लेने पर उतना काल होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य है, क्योंकि कोई तिर्यञ्च उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके पुनः मिथ्यात्वमें आकर एकेन्द्रियों में कुछ कम पल्यके असंख्यातवें भाग काल तक ठहर कर, पुनः पञ्चेन्द्रिय होकर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके मिथ्यात्वमें जाकर तीन पल्यकी स्थिति लेकर भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ पर वेदकसम्यग्दृष्टि होगया। फिर भोगभूमिसे निकलकर वह देव होगा, अतः तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभाग का उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मूलमें कहे अनुसार जानना चाहिए तथा उन्हींके समान मनुष्यत्रिकमें समझ लेना चाहिए। देवगतिमें भी पूर्वमें कही गई प्रक्रियाके अनुसार कालकी योजना कर लेनी चाहिए। अनुदिशादिकमें जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय न बतलाकर अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण बतलाया है उसका कारण यह है कि वहाँ इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना नहीं होती, क्योंकि इनकी उद्वेलना मिथ्यात्वमें ही होती है।

*** मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?**

§ २९३. यह सूत्र सुगम है।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ २९४. कुदो ? सुहुमस्स हदसमुप्पत्तियकम्मेणावट्ठाणकालस्स जहण्णुक्कस्स-विसेसिदस्स गहणादो ।

❀ एवं सम्मामिच्छत्त-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं ।

§ २९५. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागकालपरूवणा कदा तहा एदेसिं पि कायव्वा, विसेसाभावादो ।

❀ सम्मत्त-अणंताणुबंधि-चदुसंजलण-तिण्णिवेदाणं जहण्णाणुभाग-संतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २९६. सुगमं ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ २९७. सम्मत्तस्स चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयम्मि कोध--माण--माया संजलणाणं तेसिं चरिमसमयपबद्धस्स चरिमसमयसंकामियम्मि लोभसंजलणस्स चरिम-समयसकसायम्मि इत्थि-णवुंसयवेदाणं चरिमसमयसवेदम्मि पुरिसवेदस्स चरिमसमय-णवकबंधसंकामयम्मि जेण जहण्णाणुभागसंतकम्मं जादं तेणेदेसिं जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ त्ति जुज्जदे । णाणंताणुबंधीणं, तेसिं विदियादिसमए संतविणासाभावादो त्ति ? ण एस

---

* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ?

§ २९४. क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ रहनेके जघन्य और उत्कृष्ट कालका यहाँ ग्रहण किया है ।

* इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका काल कहना चाहिये ।

§ २९५. जैसे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मके कालका कथन किया है वैसे ही इनके भी कालका कथन करना चाहिये । उससे इनमें कोई विशेषता नहीं है ।

* सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धिचतुष्क, संज्वलनचतुष्क और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?

§ २९६. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ २९७. शंका—क्योंकि सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म दर्शनमोहका क्षय करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है, संज्वलन क्रोध, मान और मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म उनके अन्तिम समयप्रबद्धका संक्रमण करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है, संज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें होता है । स्त्रीवेद और नपुंसक-वेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म उनका वेदन करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है और पुरुष-वेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म पुरुषवेदके नये समयप्रबद्धका संक्रमण करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है, अतः इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय युक्त है । किन्तु अनन्तानुबन्धीका एक समय काल युक्त नहीं है, क्योंकि एक समयके पश्चात् द्वितीय आदि समयोंमें उनकी सत्ताका

दोसो, समयं पडि अणंतगुणाए सेढीए तदणुभागबंधे वड्ढमाणे संजुत्तविदियादिसमएसु जहण्णाणुभागाणुववत्तीदो। संजुत्तपढमसमए सेसकसाएहिंतो अणंताणुबंधीसु संकंताणुभागं[1] पेक्खिदूण विदियादिसमएसु संकंताणुभागो सरिसो त्ति जहण्णाणुभागकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो किण्ण जायदे? ण, 'बंधे संकमदि' त्ति सेसकसायाणुभागस्स अणंताणुबंधीणमणुभागसरूवेण परिणयस्स पहाणत्ताभावादो। जहा बज्झमाणदहरट्ठिदीए उवरि संकममाणमहल्लसंतट्ठिदीए बंधट्ठिदिसरूवेण परिणामो णत्थि तहा अणुभागसंतस्स वि बज्झमाणाणुभागसरूवेण परिणामो णत्थि त्ति किण्ण घेप्पदे? ण, ट्ठिदिसंतादो अणुभागसंतस्स भिण्णजादित्तादो। जं जाए जाईए पडिवण्णं तं ताए चेव जाईए होदि त्ति अब्भुवगंतुं जुत्तं, ण अण्णत्थ, अइप्पसंगादो। अणुभागम्मि ट्ठिदिकमो णत्थि त्ति कुदो णव्वदे? पढमसमयसंजुत्तस्से त्ति सामित्तसुत्तादो णव्वदे। ट्ठिदिसंतोवट्टणाए विणा अणुभागसंतस्स जदि बज्झमाणाणुभागसरूवेण संकममाणस्स अणंतगुणहीण-

विनाश नहीं होता है?

समाधान—यह दोष उचित नहीं है, क्योंकि जब प्रति समय अनन्तगुणश्रेणीरूपसे अनन्तानुबन्धीका अनुभागबन्ध हो रहा है तो अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके दूसरे आदि समयोंमें उसका जघन्य अनुभाग नहीं बन सकता।

शंका—संयुक्त होनेके प्रथम समयमें शेष कषायोंसे अनन्तानुबन्धी कषायोंमें संक्रान्त हुए अनुभागको देखते हुए दूसरे आदि समयोंमें जो अनुभाग संक्रान्त होता है वह पहलेके समान है, अतः अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागका काल अन्तर्मुहूर्त क्यों नहीं होता?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'बन्ध अवस्थामें संक्रमण होता है' ऐसा कहा है। अतः शेष कषायोंका जो अनुभाग अनन्तानुबन्धीके अनुभागरूपसे परिणमन करता है उसकी यहाँ प्रधानता नहीं है। अर्थात् यद्यपि द्वितीयादि समयोंमें संक्रान्त होनेवाला अनुभाग भी प्रथम समय सम्बन्धी अनुभागके समान नहीं है किन्तु संक्रान्त हुए अनुभागकी वहाँ प्रधानता नहीं है अपितु बंधनेवाले अनुभागकी प्रधानता है।

शंका—जैसे जघन्य स्थितिका बन्ध होते हुए, ऊपर संक्रमित होनेवाली सत्तामें विद्यमान उत्कृष्ट स्थितिका बंधनेवाली स्थितिके रूपमें परिणमन नहीं होता है उसीप्रकार सत्तामें विद्यमान अनुभागका भी बध्यमान अनुभागरूपसे परिणमन नहीं होता ऐसा क्यों नहीं मानते?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्थितिसत्त्वसे अनुभागसत्त्वकी जाति भिन्न है। जो बात जिस जातिमें प्राप्त है वह उसी जातिमें होती है ऐसा मानना योग्य है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि एक जाति की बात दूसरी जातिमें माननेपर अतिप्रसङ्ग दोष आता है।

शंका—अनुभागमें स्थितिका क्रम नहीं है यह कैसे जाना?

समाधान—अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागसत्कर्म संयुक्त जीवके प्रथम समयमें होता है, इस स्वामित्वको बतलानेवाले सूत्रसे जाना।

शंका—यदि सत्तामें विद्यमान स्थितिकी अपवर्तनाके विना सत्तामें विद्यमान अनुभाग

१. ता० प्रतौ संकंतासु अणुभागं इति पाठः।

त्तणेण परिणामो होदि तो अणुभागसंतादो बज्झमाणाणुभागे अणंतगुणे संते संतट्ठिदीए अणुभागेण अणंतगुणेण होदव्वमिदि सच्चं, इच्छिज्जमाणत्तादो। एवं होदि त्ति कुदो णव्वदे? सजोगिकेवलिम्हि पुव्वकोडिविहरिदम्मि सादावेदणीयस्स उक्कस्साणुभागुवलंभादो। सुहुमसांपराइयस्स उक्कस्साणुभागेण सह बज्झमाणचरिमट्ठिदिबंधो बारसमुहुत्तमेत्तो। तम्मि बारसमुहुत्तेसु अधट्ठिदिगलणाए गलिदेसु उक्कस्साणुभागाभावेण वि होदव्वं, पदेसेहि विणा अणुभागस्स अत्थित्तविरोहादो। अत्थि च उक्कस्साणुभागो सजोगिम्हि[1], तदो णव्वदे जहा संतट्ठिदिपदेसा बज्झमाणाणुभागसरूवेण उक्कड्डिज्जंति त्ति तम्हा अणंताणुबंधीणं वि एगसमयत्तं जुज्जदि त्ति। एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण ओघकालाणुगमं परूविय संपहि उच्चारणमस्सिदूण परूवेमो।

बध्यमान अनुभागरूपसे संक्रमण करता है और इस तरह वह अनन्तगुणे हीन रूपसे परिणमन करता है अर्थात् उसका अनुभाग अनन्तगुणा हीन हो जाता है तो सत्तामें विद्यमान अनुभागसे बध्यमान अनुभाग अनन्तगुणा होने पर सत्तामें स्थित अनुभाग अनन्तगुणा हो जाना चाहिये। अर्थात् जब बध्यमान अनुभागरूपसे परिणमन करनेपर सत्तामें स्थित अनुभाग घट सकता है तो बढ़ना भी चाहिये?

समाधान–आपका कहना सत्य है। यह तो इष्ट ही है।

शंका–अनुभाग बढ़ भी जाता है यह कैसे जाना?

समाधान–एक पूर्वकोटि तक विहार करनेवाले सयोगकेवलीमें सातावेदनीयका उत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है। इसका खुलासा इसप्रकार है–सूक्ष्मसाम्पराय नामक दसवें गुणस्थानवर्ती जीवके उत्कृष्ट अनुभागके साथ बंधनेवाला सातावेदनीयका अन्तिम स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त मात्र होता है। अधःस्थितिगलनाके द्वारा उन बारह मुहूर्तोंका क्षय हो जानेपर उत्कृष्ट अनुभागका भी अभाव होना चाहिये; क्योंकि प्रदेशोंके विना अनुभागकी सत्ता नहीं रह सकती। किन्तु सयोगकेवलीमें उत्कृष्ट अनुभाग रहता है, अतः जाना जाता है कि सत्तामें विद्यमान स्थितिसत्कर्म बध्यमान अनुभागरूपसे उत्कर्षको प्राप्त हो जाते हैं. अतः अनन्तानुबन्धीका भी एक समय काल युक्त है।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर ओघसे कालानुगमको कहकर अब उच्चारणाका आश्रय लेकर कालको कहते हैं—

विशेषार्थ–अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करके सम्यक्त्वसे च्युत होकर जो अनन्तानुबन्धीका बन्ध करता है उसके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। उसका काल एक समय है, क्योंकि दूसरे समयमें संक्लेशके बढ़ जानेसे अनुभागबन्ध तीव्र होने लगता है। इसपर शकांकारका कहना है कि प्रथम समयसे ही सत्तामें स्थित अन्य कषायोंके परमाणु अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमण करने लगते हैं सो जैसे प्रथम समयमें संक्रमण करते हैं वैसे ही दूसरे समयमें संक्रमण करते हैं, उनके अनुभागमें कोई अन्तर नहीं हैं, अतः जघन्य अनुभागकी सत्ताका काल अन्तर्मुहूर्त क्यों नहीं कहा तो उसका उत्तर दिया गया कि यहाँ संक्रमित अनुभागकी प्रधानता नहीं है किन्तु बध्यमान अनुभागकी प्रधानता है। अर्थात् संक्रान्त अनुभाग बध्यमान अनुभागरूपसे परिणमन करता है, बध्यमान अनुभाग संक्रान्त

---

1. ता० प्रतौ उक्कस्साणुभागो जोगिम्हि इति पाठः।

§ २९८. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त--अट्ठक० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरोवमाणि तिण्णि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि सादिरेयाणि। सम्मामि० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० सम्मत्तभंगो। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु[1]० जहण्णुक्क० एगसमओ। अज० तिण्णि भंगा। तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स ज० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। चदुसंज०-तिण्णिवेद० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो। छण्णोक० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० कोधसंजलणभंगो।

अनुभागरूपसे नहीं परिणमन करता। आगे इसीके सम्बन्धमें जो शंका-समाधान किया गया है वह स्पष्ट है। अत: अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागसत्कर्मके जघन्य और उत्कृष्ट दोनों काल एक समय मात्र हैं।

§ २९८. जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असंख्यात भागोंसे अधिक दो छियासठ सागरप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्म का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका भङ्ग सम्यक्त्वके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्ममें तीन भङ्ग होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। उनमेंसे जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। चार संज्वलन कषाय और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्म अनादि अनन्त और अनादि-सान्त है। छ नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका भङ्ग संज्वलनक्रोधके समान है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय, अनन्तानुबन्धी, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के जघन्य अनुभागका काल चूर्णिसूत्रमें बतलाये गये कालके अनुसार समझ लेना चाहिये। तथा अजघन्य अनुभागका काल उत्कृष्ट अनुभागके कालकी ही तरह जानना। अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागसत्कर्ममें तीनों विकल्प होते हैं, क्योंकि उसका विसंयोजन होकर भी पुनः बन्ध हो सकता है। किन्तु चारों संज्वलन और तीनों वेदोंमें सादि-सान्त भंग नहीं होता, क्योंकि इनका विनाश क्षपकश्रेणिमें ही होता है। ६ नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका काल भी पूर्ववत् जानना।

---

१. ता० प्रतौ [अ] जहण्णाणु०, आ० प्रतौ अजहण्णाणु० इति पाठः।

§ २९९. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त--बारसक०--णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० दसवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि। सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० संपुण्णाणि। एवमणंताणु०चउक्क०। सम्मामि० सम्मत्त-भंगो। णवरि जहण्णं णत्थि। एवं देवोघं। पढमपुढवि० एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा। विदियादि जाव सत्तमि त्ति बावीसप्पयडीणं जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी संपुण्णा। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्सभंगो। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० ओघं। अज० ज० एगस०, सत्तमीए अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी।

§ ३००. तिरिक्खेसु मिच्छत्त--बारसक०--णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अज० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि। एवं सम्मामि०। णवरि जहण्णं णत्थि। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० अणंत-

---

§ २९९. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभाग सत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर प्रमाण है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर प्रमाण है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग है। सम्यग्मिथ्यात्वमें सम्यक्त्वके समान भंग है। इतना विशेष है कि नरकमें उनका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं रहता। सामान्य देवोंमें इसी प्रकार समझना चाहिए। पहली पृथिवीमें इसी प्रकार होता है। इतना विशेष है कि वहाँ जो अपनी स्थिति है वही कहनी चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त बाईस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके समान भंग है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघ की तरह जानना चाहिए। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और सातवीं पृथिवीमें अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

§ ३००. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोंमें उसका जघन्य अनुभाग नहीं होता। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट

कालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। पंचिंदियतिरिक्खतिय० णेरइयभंगो। णवरि मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अज० ज० अंतोमु०। सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० अज० ज० एगस०, उक्क० सव्वेसिं सगट्ठिदी। णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० ज० णत्थि। सम्मामि० सम्मत्तभंगो। णवरि जहण्णं णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्सभंगो।

§ ३०१. मणुसतिय० मिच्छत्त-अट्ठकसाय० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सगदालपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि। णवरि [मणुस-] पज्जत्त-मणुसिणीसु पण्णारस-सत्तपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि। सम्मत्त०-अणंताणु०चउक्क० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। सम्मामि० ज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। चदुसंज०-तिण्णिवेद० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी। छण्णोक० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०,

---

काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इतना विशेष है कि मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और सबका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता। सम्यग्मिथ्यात्वमें सम्यक्त्वके समान भंग है। इतना विशेष है कि उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्टके समान भंग है।

§ ३०१. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सेंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है। इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें पन्द्रह पूर्वकोटी अधिक तीन पल्य है और मनुष्यिनियोंमें सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान भंग है। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। चार संज्वलन और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल सामान्य मनुष्यमें क्षुद्रभव ग्रहणप्रमाण और मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। छ नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त

उक्क० सगट्ठिदी। णवरि मणुसपज्ज० इत्थि० हस्सभंगो। मणुसिणी० पुरिस०-णवुंस० हस्सभंगो।

§ ३०२. भवण०-वाण० पढमपुढविभंगो। णवरि सगट्ठिदी। सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। जोदिसि० विदियपुढविभंगो। सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणुभाग० जहण्णुक्कस्सट्ठिदी। सम्मत्त०-अणंताणु० चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मामि० उक्कस्सभंगो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त०--बारसक०--णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० जहण्णुक्क०ट्ठिदी। सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० उक्क० अंतोमु०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका सामान्य मनुष्योंमें क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और मनुष्यपर्याप्त तथा मनुष्यिनियोंमें अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इतना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके अनुभागका काल हास्यकी तरह जानना चाहिए और मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदके अनुभागका काल हास्यकी तरह जानना चाहिए।

§ ३०२. भवनवासी और व्यन्तरोंमें पहले नरकके समान भङ्ग होता है। इतना विशेष है कि उनमें नरककी स्थितिके स्थानमें अपनी स्थिति लेनी चाहिए। तथा सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता। ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग होता है। सौधर्मसे नवग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका काल अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्टके समान भङ्ग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जन्म लेता है उसके होता है अतः उसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पूर्ववत् जानना। अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य अनुभाग रहकर पुनः अधिक अनुभागबन्ध करने पर अजघन्य अनुभाग होता है जो कि आयुके अन्त तक रहता है, अतः अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष होता है और उत्कृष्ट काल नरककी पूरी आयु प्रमाण होता है। सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य अनुभाग दर्शनमोहके क्षपकके अन्तिम समयमें होता है अतः उसका जघन्य और

उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य अनुभागका काल उत्कृष्ट अनुभागके कालकी तरह जानना। दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक पर्यन्त हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तो उत्पन्न हो नहीं सकता अतः अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टिके बाईस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग होता है। अतः उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका केवल अजघन्य अनुभाग ही होता है। उसका काल उत्कृष्ट अनुभागके काल की तरह जानना। अनन्तानुबन्धी कषायका जघन्य अनुभाग विसंयोजन करके पुनः उसका बंध करनेवालेके प्रथम समयमें होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबंधीकी विसंयोजनावाला आयुके दो समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो गया वह संयुक्त होनेके प्रथम समयमें जघन्य और दूसरे समयमें अजघन्य अनुभाग करके मरणको प्राप्त हो गया अतः अजघन्यका जघन्य काल एक समय होता है परन्तु सातवीं पृथिवीसे सासादनसे निर्गमन नहीं होता और मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः सातवीं पृथिवीमें अनन्तनुबन्धीके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें सभी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल पूर्ववत् विचार लेना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चत्रिकमें नारकियोंके समान काल होता है किन्तु उनकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त होनेसे बाईस प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्च योनिनियोंमें दर्शन-मोहका क्षपण नहीं होता और न कृतकृत्यवेदक उनमें उत्पन्न ही होता है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग उनमें नहीं होता। हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला एकेन्द्रिय जीव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त या मनुष्य अपर्याप्तमें जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें अनुभागको बढ़ा लेता है तो जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। अजघन्य अनुभागका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है जितनी कि अपर्याप्तक की जघन्य या उत्कृष्ट स्थिति होती है। मनुष्यत्रिकमें अजघन्यानुभागका जो उत्कृष्ट काल कहा है सो सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनी मार्गणाका एक जीवकी अपेक्षा जितना काल होता है उतना ही कहा है, उतने काल तक मनुष्यके बराबर अजघन्य अनुभाग रह सकता है। जो सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणा कर रहा है उस मनुष्यके अन्तिम अनुभागकाण्डक अनुभागकाण्डक का काल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा होता है। चारों संज्वलन और तीनों वेदों का जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणिमें अपने अपने क्षपण कालके अन्तिम समयमें होता है अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। छ नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है सो सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागके कालकी तरह घटा लेना चाहिये। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय भवनवासी और व्यन्तरोंमें ही जन्म लेता है, ज्योतिष्कोंमें जन्म नहीं लेता। अतः भवनवासी और व्यन्तरोंमें प्रथम नरकके समान काल कहा है और ज्योतिष्क देवोंमें दूसरे नरकके समान काल कहा है। सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त बाईस प्रकृतियोंके दोनों अनुभागोंका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है जो कि पहले बतलाये गये स्वामित्वसे स्पष्ट है। सम्यक्त्वप्रकृतिके दोनों अनुभागोंका काल पूर्ववत् जानना। सौधर्मसे लेकर नवग्रैवेयक पर्यन्त अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उससे संयुक्त होनेवालेके प्रथम समयमें होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाला जब उसके अन्तिम अनुभाग

❀ अंतरं।

§ ३०३. कालाणियोगद्दारं परूविय संपहि मंदमेहाविजणाणुग्गहट्ठमंतरं परूवेमि त्ति भणिदं होदि।

❀ **मिच्छत्त-सोलसकसाय--णवणोकसायाणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?**

§ ३०४. सुगमं।

❀ **जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।**

§ ३०५. उक्कस्साणुभागसंतकम्मिएण तमणुभागखंडयघादेण घादिय अणुक्कस्साणुभागेण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमंतरिय संकिलेसमावूरिय उक्कस्साणुभागे पबद्धे सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तअंतरकालुवलंभादो।

❀ **उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।**

§ ३०६. उक्कस्साणुभागसंतकम्मियस्स तं घादिय अणुक्कस्साणुभागसंतकम्ममुवणमिय एइंदिएसुप्पज्जिय आवलियाए असंखे० भागमेत्तपोग्गलपरियट्टे परियट्टिदूण

काण्डकमें वर्तमान रहता है तब अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग होता है, क्योंकि यहाँ विसंयोजन करके पुनः संयोजन नहीं होता, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सौधर्मादिकमें अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय मरणकी अपेक्षासे है, क्योंकि संयुक्त होनेके प्रथम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। दूसरे समयमें अजघन्य अनुभाग करके यदि मर जावे तो एक समय काल होता है। तथा अनुदिशादिकमें अन्तमुहूर्त काल कहा है, क्योंकि अजघन्य अनुभागवाला देव पर्याप्त होकर यदि अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन कर डालता है तो जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है।

❀ अब अन्तर कहते हैं।

§ ३०३. कालानियोगद्वारको कहकर अब मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये अन्तर कहता हूँ ऐसा इस सूत्रका तात्पर्य है।

❀ **मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ?**

§ ३०४. यह सूत्र सुगम है।

❀ **जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।**

§ ३०५. उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव उस उत्कृष्टका अनुभागकाण्डकघातके द्वारा घात करके अनुत्कृष्ट अनुभाग करता है और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका अन्तर देकर संक्लेश परिणाम करके पुनः उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण पाया जाता है।

❀ **उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है।**

§ ३०६. उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव उत्कृष्ट अनुभागका घात करके उसे अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म बनाकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गल

तत्तो णिप्फिडिय पंचिंदिएसु उप्पज्जिय संकिलेसमावूरिय बद्धुक्कस्साणुभागस्स असंखेज्ज-पोग्गलपरियट्टमेत्तुक्कस्संतरकालुवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहापयडि अंतरं ।

§ ३०७. जहा पयडीणं पयडिविहत्तीए अंतरं परूविदं तहा एत्थ परूवेयव्वं । तं जहा—जहण्णेण एगसमओ, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण अंतरपरूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण अंतरपरूवणं कस्सामो ।

§ ३०८. अंतरं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सयं चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० उक्कस्साणुभागंतरं के० ? ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवमणंताणु०चउक्क० । णवरि अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसाग० देसूणाणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । अणुक्क० णत्थि अंतरं ।

परावर्तन काल तक भ्रमण करके, वहाँसे निकलकर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर संक्लेश परिणामोंको करके उसने उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध किया । इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्‍गलपरावर्तन मात्र पाया जाता है ।

*** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर प्रकृतिके समान है ।**

§ ३०७. जैसे प्रकृतिविभक्ति नामक अधिकारमें प्रकृतियोंका अन्तर कहा है वैसे ही यहाँ भी कहना चाहिये । यथा—जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्‍गल परावर्तन प्रमाण है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे सामान्य अन्तरका कथन करके अब उच्चारणाके आश्रयसे अन्तरका कथन करते हैं ।

§ ३०८. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्‍गलपरावर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अन्तरकाल कहना चाहिए । इतना विशेष है कि अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम दो छियासठ सागरप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अर्धपुद्‍गलपरावर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—बाईस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जैसे चूर्णि सूत्रमें बतलाया है वैसे ही जानना चाहिए । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि किसी अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीवने उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध किया और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् उसका घात करके फिर अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया तो अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है । अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है, क्योंकि कोई उपशमसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यक्त्वी होकर छियासठ

§ ३०९. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। णवरि अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं पढमपुढवि०। णवरि सागरोवमं देसूणं। एवं छसु पुढवीसु। णवरि सगसगट्ठिदी देसूणा। सम्मत्त० अणुक्कस्साणुभागो णत्थि।

§ ३१०. तिरक्खेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। णवरि

सागर काल विताकर, तीसरे गुणस्थानमें जाकर, अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरकर, पुनः वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करके दूसरी बार छियासठ सागर काल विताये। जब उसमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहे तो मिथ्यादृष्टि होकर अनन्तानुबन्धीका वन्ध करके दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हो जाये तो अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि इन दोनोंकी सत्तावाला कोई मिथ्यादृष्टि इन दोनों प्रकृतियोंके उद्वेलन कालमें अन्तर्मुहूर्त बाकी रहने पर उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरिम समयमें सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके अन्तिम समयमें उनसे रहित होकर उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके पुनः दोनोंकी सत्ताको उत्पन्न करता है, अतः एक समय अन्तर पाया जाता है। तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरावर्तन है, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि अर्धपुद्गलपरावर्तन कालके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ताको उत्पन्न करता है। उसके बाद सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भाग कालमें इनकी उद्वेलना करके इनका अभाव कर देता है, अर्धपुद्गलपरावर्तन तक भ्रमण करके जब संसारका अन्त होनेमें अन्तर्मुहूर्त काल बाकी रहे तो उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाला हो जाता है। इस तरह उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन होता है। इन दोनों प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभाग दर्शनमोहके क्षपण कालमें होता है, अतः उसका अन्तर नहीं है।

§ ३०९. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुवन्धीचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तेतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तेतीस सागर है। सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम एक सागर है। इसी प्रकार छ पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है तथा सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म वहाँ नहीं है।

§ ३१०. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्गल

अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । अणुक्क० णत्थि अंतरं । णवरि सम्मामि० अणुक्कस्सं णत्थि ।

§ ३११. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु० । णवरि अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-ब्भहियाणि । अणुक्क० णत्थि अंतरं । णवरि सम्मामि० अणुक्कस्सं णत्थि । जोणीणीसु सम्मत्त० अणुक्कस्साणुभागो णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्कस्साणुभागं णत्थि अंतरं । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि । णवरि अणुक्क० णत्थि । मणुसतिय० पंचिंदियतिरिक्खतिगभंगो । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० णत्थि अंतरं ।

§ ३१२. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज०

परावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तीन पल्य है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट तिर्यञ्चोंमें नहीं होता।

§ ३११. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है। इतना विशेष है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। तथा तिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग भी नहीं होता। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागको लेकर अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भी जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनका अनुत्कृष्ट अनुभाग इन जीवोंमें नहीं होता। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनियोंके समान भंग है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्टका अन्तर नहीं है।

§ ३१२. देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट अनुभाग

अंतोमु०, उक्क० अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। णवरि सम्मामि० अणुक्कस्सं णत्थि। एवं भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। भवण०-वाण०-जोइसि० सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० णत्थि अंतरं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० णत्थि अंतरं। णवरि सम्मामि० अणुक्क० णत्थि। अधवा सम्मामिच्छत्तअणुक्कस्साभावे सव्वत्थ उक्कस्सं पि णत्थि त्ति वत्तव्वं, ताणमण्णोण्णसव्वपेक्खत्तादो। एसो उच्चारणाइरियस्साहिप्पायो सव्वत्थ जोजेयव्वो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अट्ठावीसं पयडीणं उक्कस्साणुक्कस्साणुभागं णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। इतना विशेष है कि सामान्य देवोंमें सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। इसी प्रकार भवनवासीसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। आनतसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति-प्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट यहाँ नहीं होता। अथवा सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्टके अभावमें सर्वत्र उसका उत्कृष्ट भी नहीं होता ऐसा कहना चहिये, क्योंकि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों परस्पर सापेक्ष हैं, जहाँ एक नहीं होता वहाँ दूसरा भी नहीं होता। उच्चारणाचार्यका यह अभिप्राय सर्वत्र लगा लेना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अट्ठाईस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको लेकर अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागवाला कोई नारकी उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हुआ और अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके पुनः उत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया तो उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और

*** जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?**

§ ३१३. सुगमं ।

*** मिच्छत्त-अट्ठकसाय-अणंताणुबंधीए च मोत्तूण सेसाणं णत्थि अंतरं ।**

§ ३१४. कुदो ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-चदुसंजलण-णवणोकसायाणं खवणाए जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स णिम्मूलं विणट्ठस्स पुणरुप्पत्तिवज्जियस्स अंतराणे उवाया-

---

उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तो स्पष्ट ही है। विशेष यह है कि अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि अनुत्कृष्ट अनुभागवाला जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके वेदकसम्यक्त्वी हुआ, अन्तमें सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यादृष्टि होकर पुनः अनन्तानुबन्धीका बन्ध करके अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया। इसी प्रकार प्रत्येक नरकमें लगा लेना चाहिये। सामान्य तिर्यञ्चोंमें भी इसी प्रकार घटा लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य उत्कृष्ट भोगभूमिमें विसंयोजनाकी अपेक्षा नरककी तरह घटा लेना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है सो एक जीवकी अपेक्षा इन तीनों मार्गणाओं का जितना काल है उसमें तीन पल्य कम उतना ही अन्तर होता है, क्योंकि भोगभूमिमें उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अभाव है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है सो इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च आदिमें से किसी एकमें जन्म लेकर इनकी उद्वेलना कर दे और इस प्रकार इनसे रहित होकर कुछ कम उक्त काल पर्यन्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च आदिमें ही भ्रमण करता रहे। अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करके पुनः उक्त दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाला हो जाये। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर आता है। मनुष्य अपर्याप्त और तिर्यञ्च अपर्याप्त में अन्तर नहीं होता, क्योंकि इनमें उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध नहीं होता। पूर्वभवसे उत्कृष्ट अनुभाग लाया जा सकता है मगर उसका घातकर देनेपर पुनः उसका सत्त्व संभव नहीं है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागमें भी समझ लेना चाहिये। देवगतिमें देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अठारह सागर है, क्योंकि देवगतिमें उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध और सत्त्व बारहवें स्वर्ग तक ही पाया जाता है और उसकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक अठारह सागर है, अतः उत्कृष्ट अनुभागवाला कोई जीव बारहवें स्वर्गमें जन्म लेकर उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हुआ। जब थोड़ी आयु शेष रही तो पुनः उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके उत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया। इस तरह उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर होता है। अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर नव ग्रैवेयककी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि आगे तो सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं अतः वहाँ अन्तर होता ही नहीं है। इसी तरह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए।

*** जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ?**

§ ३१३. यह सूत्र सुगम है।

*** मिथ्याव, आठ कषाय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कको छोड़कर शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है।**

§ ३१४. क्योंकि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन कषाय और नव नोकषायोंका क्षपण होने पर जघन्य अनुभागसत्कर्म मूलसे ही नष्ट हो जाता है, उसकी पुनः उत्पत्ति नहीं

भावादो। णिस्संतकम्मियम्मि अंतरमुवलब्भदि त्ति ण पच्चवट्ठादुं जुत्तं, पुव्वुत्तरजहण्णाणुभागाणं विच्चालमंतरं। ण च तमेत्थत्थि, खविदजहण्णाणुभागस्स पुणरुप्पत्तीए अभावादो। खविदाणमणंताणुबंधीणं व पुणरुप्पत्ती एदासिं पयडीणमणुभागस्स किण्ण जायदे ? ण, अणंताणुबंधीणं व संजलणादीणं विसंजोयणाभावेण पुणरुप्पत्तीए विरोहादो। ण खविदाणं पुणरुप्पत्ती, णिव्वुआणं पि पुणो संसारित्तप्पसंगादो। ण च एवं, णिरासवाणं संसारुप्पत्तिविरोहादो। अणंताणुबंधीणं पि खवणा चेव ण विसंजोयणा, लक्खणभेदाणुवलंभादो। ण कम्मंतरभावेण कम्माणं परिणामो विसंजोयणा, संछोहणेण खविदासेसकम्माणं पि विसंजोयणप्पसंगादो। ण च एवं, तेसिमणंताणुबंधीणं व पुणरुप्पत्तिप्पसंगादो। ण च अकम्मसरूवेण परिणामो विसंजोयणा, लोभसंजलणस्स वि विसंजोयणत्तप्पसंगादो त्ति। एत्थ परिहारो वुच्चदे—कम्मंतरसरूवेण संकामिय अवट्ठाणं

होती, अतः उसके अन्तरको प्राप्त करानेका कोई उपाय नहीं है। जिन प्रकृतियों की सत्ताका अभाव हो जाता है उनमें भी अन्तर पाया जाता है, ऐसा निश्चय करना युक्त नहीं है, क्योंकि पहलेके जघन्य अनुभाग और बादके जघन्य अनुभागके बीचका जो फरक होता है उसे अन्तर कहते हैं। अर्थात् पहले जघन्य अनुभाग हुआ वह नष्ट हो गया। पुनः कालान्तरमें जघन्य अनुभाग हुआ। इन दोनोंके बीचमें जघन्य अनुभाग रहित जो काल होता है उसे अन्तरकाल कहते हैं। वह अन्तर यहाँ नहीं है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका क्षय हो जाने पर उसकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती।

शंका—जैसे अनन्तानुबन्धीका क्षपण हो जाने पर उसकी पुनः उत्पत्ति हो जाती है वैसे इन प्रकृतियोंके अनुभाग की पुनः उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनन्तानुबन्धी कषायों की तरह संज्वलन आदिके विसंयोजनका अभाव होकर उनकी पुनः उत्पत्ति होनेमें विरोध है। यदि कहा जाय कि नष्ट होने पर भी उनकी पुनः उत्पत्ति हो जाय तो क्या हानि है ? किन्तु ऐसा कहना योग्य नहीं है, क्योंकि क्षयको प्राप्त हुई प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती, यदि होने लगे तो मुक्त हुए जीवोंको पुनः संसारी होनेका प्रसंग उपस्थित होगा। किन्तु मुक्त जीव पुनः संसारी नहीं होते, क्योंकि जिनके कर्मोंका आश्रव नहीं होता उनके संसार की उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है।

शंका—अनन्तानुबन्धी कषायोंकी भी क्षपणा ही होती है, विसंयोजना नहीं होती, क्योंकि क्षपणा और विसंयोजनाके लक्षणोंमें भेद नहीं है। शायद कहा जाय कि कर्मोंका कर्मान्तर रूपसे जो परिणमन होता है उसे विसंयोजना कहते हैं, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार तो एक प्रकृतिके प्रदेशोंका अन्य प्रकृतिमें क्षेपण करनेसे नष्ट हुए सभी कर्मों की विसंयोजनाका प्रसंग उपस्थित होगा। किन्तु अन्य प्रकृतियों की विसंयोजना नहीं होती, यदि हो तो अनन्तानुबन्धी की तरह उनकी भी पुनः उत्पत्तिका प्रसंग आयेगा। शायद कहा जाय कि अकर्म रूपसे परिणमन होनेको विसंयोजना कहते हैं सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि विसंयोजनाका ऐसा लक्षण करनेसे संज्वलन लोभका भी विसंयोजनाका प्रसंग उपस्थित होगा।

समाधान—अब परिहार कहते हैं—किसी कर्मका दूसरे कर्मरूपमें संक्रमण करके ठहरे

विसंजोयणा, णोकम्मसरूवेण परिणामो खवणा त्ति अत्थि दोण्हं पि लक्खणभेदो। ण च अणंताणुबंधीणं व संछोहणाए वि णट्ठासेसकम्माणं विसंजोयणं पडि भेदाभावादो पुणरुप्पत्ती, आणुपुव्वीसंकमवसेण लोभभावं गंतूण अकम्मसरूवेण परिणमिय खवणभावमुवगयाणं पुणरुप्पत्तिविरोहादो। अणंताणुबंधीणं व मिच्छत्तादीणं विसंजोयणपयडिभावो आइरिएहि किण्ण इच्छिज्जदे ? ण, विसंजोयणभावं गंतूण पुणो णियमेण खवणभावमुवणमंति त्ति तत्थ तदणुब्भुवगमादो। ण च अणंताणुबंधीसु विसंजोइदासु अंतोमुहुत्तकालब्भंतरे तासिमकम्मभावगमणणियमो अत्थि जेण तासिं विसंजोयणाए खवणसण्णा होज्ज। तदो अणंताणुबंधीणं व सेसविसंजोइदपयडीणं ण पुणरुप्पत्ती अत्थि त्ति सिद्धं।

❀ मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

रहना विसंयोजना है। और कर्मका नोकर्म अर्थात् कर्माभावरूपसे परिणमन होना क्षपणा है। इसप्रकार दोनोंके लक्षणोंमें भेद है। यदि कहा जाय कि प्रदेश क्षेपणसे नष्ट हुए अशेष कर्मोंमें विसंयोजनाके प्रति कोई भेद नहीं है अतः अनन्तानुबन्धीकी तरह उन कर्मोंकी भी पुनः उत्पत्ति हो जायेगी सो यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि आनुपूर्वीसंक्रमके कारण लोभपनेको प्राप्त होकर अकर्मरूपसे परिणमन करके नष्ट हुई उन प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति होनेमें विरोध है।

शंका—अनन्तानुबन्धीकी तरह मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंको भी आचार्योंने विसंयोजना प्रकृति क्यों नहीं माना ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व आदि प्रकृतियाँ विसंयोजनपनेको प्राप्त होकर अनन्तर नियमसे क्षय अवस्थाको प्राप्त होती हैं, इसलिये उनमें विसंयोजनपना नहीं माना गया। किन्तु अनन्तानुबन्धी कषायोंका विसंयोजन होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर उनके अकर्मपनेको प्राप्त होनेका नियम नहीं है जिससे उनकी विसंयोजनाकी क्षपणसंज्ञा हो जाय। अतः अनन्तानुन्धीकी तरह शेष विसंयोजित प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और नव नोकषायोंमें नहीं होता, क्योंकि इनका जघन्य अनुभाग क्षपणाकालमें होता है अतः एक बार नष्ट होकर पुनः वह उत्पन्न नहीं हो सकता। इस पर यह शंका की गई कि अनन्तानुवन्धीकी तरह इन प्रकृतियोंका क्षपण हो जाने पर भी पुनः उत्पति हो जानी चाहिये। इसका उत्तर दिया गया कि अनन्तानुबन्धीकी क्षपणा नहीं होती, विसंयोजना होती है। तब पुनः शंका हुई कि दोनों में अन्तर क्या है तो उत्तर दिया गया कि एक कर्मके अन्य कर्मरूपसे संक्रमण करके अवस्थित रहनेको विसंयोजना कहते हैं, और कर्मका अभाव हो जानेको क्षपणा कहते हैं। यद्यपि संज्वलन क्रोध मानरूपसे, मान मायारूपसे और माया लोभ रूपसे संक्रमण करते हैं किन्तु संक्रमण करके वे अवस्थित नहीं रहते किन्तु उनका विनाश हो जाता है परन्तु अनन्तानुवन्धीमें यह बात नहीं है अतः अनन्तानुबन्धीकी तरह उक्त पन्द्रह प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये उनके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर भी नहीं होता।

❀ मिथ्यात्व, और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ?

§ ३१५. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३१६. कुदो ? जहण्णाणुभागसंतकम्मिएण सुहुमणिगोदेण मिच्छत्तट्ठकसायाणमजहण्णाणुभागं बंधिदूण अंतरिदेण अणुभागखंडयं घादिय पुणो जहण्णाणुभागसंतकम्मे कदे पुव्वुत्तरजहण्णाणुभागसंतकम्माणं विच्चालस्स सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तस्स उवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।

§ ३१७. जहण्णाणुभागसंतकम्मियस्स सुहुमेइंदियस्स परिणामपच्चएण बद्धमिच्छत्तट्ठकसायअजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स असंखेज्जलोगमेत्तघादट्ठाणपरिणामेसु असंखेज्जलोगमेत्तकालं परिभमिय पुणो जहण्णाणुभागट्ठाणपाओग्गघादपरिणामेहि अणुभागसंतकम्मं घादिय जहण्णाणुभागसंतकम्मसरूवेण परिणयस्स असंखेज्जलोगमेत्तअंतरकालुवलंभादो ।

❀ अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ३१८. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

---

§ ३१५. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३१६. क्योंकि जघन्य अनुभागसत्कर्मसे युक्त सूक्ष्म निगोदिया जीवके मिथ्यात्व और आठ कषायोंका अजघन्य अनुभाग बाँधकर अनुभागका काण्डकघात करके पुनः जघन्य अनुभागसत्कर्म करने पर पूर्व जघन्य अनुभागसत्कर्म और उत्तर जघन्य अनुभागसत्कर्मके बीचमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तरकाल पाया जाता है ।

विशेषार्थ—इन कर्मोंका जघन्य अनुभाग सूक्ष्म निगोदिया जीव करता है । अनन्तर वह अजघन्य अनुभागका बन्ध कर और पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर उसका घात करके जघन्य अनुभाग कर सकता है, इसलिए इन नौ कर्मोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ३१७. जघन्य अनुभागसत्कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव परिणामोंके द्वारा मिथ्यात्व और आठ कषायोंके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका बंध करके असंख्यात लोक मात्र घातस्थान रूप परिणामोंमें असंख्यात लोकमात्र कालतक भ्रमण करके पुनः जघन्य अनुभागस्थानके योग्य घातरूप परिणामोंसे अनुभागसत्कर्मका घात करके जघन्य अनुभागसत्कर्म रूपसे परिणत हुआ । उसके असंख्यात लोकमात्र अन्तरकाल पाया जाता है ।

* अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ?

§ ३१८. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३१९. कुदो ? अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्तपढमसमए तेसिमणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मं कादूण विदियसमए अंतरिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मत्तं घेत्तूण तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्तपढमसमए बद्धजहण्णाणुभागस्स अंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णंतरकालुवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

§ ३२०. कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिम्मि समयाविरोहेण पडिवण्णपढमसम्मत्तम्मि पढमसम्मत्तकालब्भंतरे अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्तपढमसमए अणंताणुबंधिचउक्काणुभागं जहण्णं काऊण विदियसमए अंतरिय कमेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं परियट्टिय थोवावसेसे संसारे पढमसम्मत्तं घेत्तूण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्तपढमसमए अंतरमुप्पाइय पुणो अंतोमुहुत्तेण णिव्वुअम्मि उवड्ढपोग्गलपरियट्टमेत्तंतरकालुवलंभादो । एवं देसामासियचुण्णिसुत्तमवलंबिय जहण्णाणुभागंतरपरूवणं काऊण संपहि उच्चारणमस्सिदूण परूवेमो ।

§ ३२१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज०·जहण्णुक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० जहण्णाणु० णत्थि अंतरं । अज० ज० एगस०,

---

§ ३१९. क्योंकि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करके पुनः संयुक्त होनेके प्रथम समयमें उन अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मको करके, दूसरे समयमें अन्तर आरम्भ करके सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक ठहर कर, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, सम्यक्त्व दशामें अन्तर्मुहूर्त तक रहकर, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके पुनः संयुक्त होनेके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागबन्ध करनेपर अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तरकाल पाया जाता है।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ?

§ ३२०. क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके आगमके अविरुद्ध प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके, प्रथम सम्यक्त्वके कालके भीतर अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके, संयुक्त होनेके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभाग करके तथा दूसरे समयमें अन्तर आरम्भ करके क्रमसे कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तन कालतक परिभ्रमण करके, संसार भ्रमणका काल थोड़ा अवशेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके, पुनः संयुक्त होनेके प्रथम समयमें जघन्य अनुभागके अन्तरकालको उत्पन्न करके पुनः अन्तर्मुहूर्त बाद मोक्ष चले जानेपर कुछकम अर्धपुद्गल परावर्तन मात्र अन्तरकाल पाया जाता है। इस प्रकार देशामर्षक चूर्णिसूत्रोंका अवलम्बन लेकर जघन्य अनुभागसत्कर्मके अन्तरका कथन किया। अब उच्चारणाका अवलम्बन लेकर कहते हैं।

§ ३२१. प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल

उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । अणंताणु०चउक्क० जहण्णा० ज० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० देसूणाणि । चदुसंजलण-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं ।

§ ३२२. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । सम्मत्त० जहण्णाणु० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवं पढमाए । णवरि सगट्ठिदी देसूणा । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्त--सोलसक०--णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा ।

§ ३२३. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त--बारसक०-णवणोक० जहण्णाणु० जह० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०--सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । अणंताणु०चउक्क० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपो०परियट्टं देसूणं ।

नहीं है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम दो छियासठ सागर है। चारों संज्वलन कषायों और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है ।

§ ३२२. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी स्थितिप्रमाण है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

§ ३२३. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरावतनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और

अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । पंचिंदियतिरिक्खतिय० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जहण्णाणु० णत्थि अंतरं । [सम्मत्त-सम्मामि०] अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी० । अज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि । णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० जहण्णाणु० णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । मणुसतिय० पंचिंदियतिरिक्खतियभंगो । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो ।

§ ३२४. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जहण्णाणु० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । भवण०-वाण० णेरइयभंगो । णवरि सगट्ठिदी । सम्मत्तस्स जहण्णं णत्थि । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । णवरि सगट्ठिदी । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छत्त--बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु०

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च,पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियों में सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । मनुष्यके शेष तीन भेदों में पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकके समान भंग हैं । इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है ।

§ ३२४. देवगतिमें सामान्य देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । भवनवासी और व्यन्तरोंमें नारकियोंके समान भंग है । इतना विशेष है की उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । वहाँ सम्यक्त्वका जघन्य अनुँभागसत्कर्म नहीं होता । ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीकी तरह भंग है । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर ज्योतिषी देवोंकी स्थितिप्रमाण है । सौधर्मसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है ।

णत्थि अंतरं। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सम्मत्त० जहण्णाणु० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ।

§ ३२५. अहियारसंभालणसुत्तमेदं। सुगमं।

अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशसे सामान्य नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभाग जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय नरकमें जन्म लेता है उसके होता है अतः जब वह नरकमें जन्म लेकर उस अनुभागको बढ़ा लेता है तो पुनः जघन्य नहीं कर सकता, अतः अन्तर नहीं है। अनन्तानुबन्धीके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर उसीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरकी तरह जानना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका अन्तर उन्हींके उत्कृष्ट अनुभागके अन्तरकी तरह जानना चाहिए। दूसरे आदि नरकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इनका जघन्य अनुभाग अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टि नारकीके होता है, अतः जघन्य अनुभागवाला सम्यक्त्वसे च्युत होकर अजघन्य अनुभागवाला होकर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरकर पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके जघन्य अनुभागवाला हो गया तो जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त हुआ। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागका भी जघन्य अन्तर विचार लेना चाहिये। सामान्य तिर्यञ्चों में तो बाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर होता है, क्योंकि उनमें इनका जघन्य अनुभाग हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके होता है, अतः छूटकर पुनः प्राप्त हो सकनेके कारण वहाँ अन्तराल संभव है किन्तु पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च आदि तीन भेदोंमें उन प्रकृतियों के उक्त अनुभागोंका अन्तर नहीं है, क्योंकि इनका जघन्य अनुभाग जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला एकेन्द्रिय इनमें जन्म लेता है उसीके होता है, अतः इन पर्यायोंमें जघन्य अनुभागको बढ़ा लेने पर पुनः उसका जघन्य होना संभव नहीं है इसलिये अन्तर नहीं है। इसी प्रकार इनके अपर्याप्त तथा मनुष्योंमें भी घटा लेना चाहिये। देवगतिमें सामान्य देवोंमें तथा सौधर्मसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त बाईस प्रकृतियोंके तथा ऊपर सभी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है, क्योंकि उनमें जघन्य अनुभागके नष्ट होनेपर पुनः उसकी उत्पत्ति नहीं होती या प्रारम्भमें जो अनुभाग रहता है अन्ततक वही रहता है। अन्य प्रकृतियोंके अन्तरको पहले कहे गये उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरकी तरह घटा लेना चाहिये।

❀ नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है।

§ ३२५. अधिकारकी सम्हालके लिए यह सूत्र आया है। इसका अर्थ सुगम है।

❀ तत्थ अट्ठपदं ।

§ ३२६. तत्थ णाणाजीवभंगविचए अट्ठपदं वुच्चदे। किमट्ठपदं णाम ? जेण अवगएण भंगा अवगम्मंति तमट्ठपदं ।

❀ जे उक्कस्साणुभागविहत्तिया ते अणुक्कस्सअणुभागस्स अविहत्तिया।

§ ३२७. कुदो ? उक्कस्साणुक्कस्साणुभागाणं सहाणवट्ठाणलक्खणविरोहादो ।

❀ जे अणुक्कस्सअणुभागस्स विहत्तिया ते उक्कस्सअणुभागस्स अविहत्तिया ।

§ ३२८. अणुक्कस्साणुभागम्मि उक्कस्साणुभागस्स संभवविरोहादो ।

❀ जेसिं पयडी अत्थि तेसु पयदं, अकम्मे अव्ववहारो ।

§ ३२९. जेसिं जीवाणं मोह० उत्तरपयडीओ अत्थि तेसु जीवेसु पयदं अहियारो। अकम्मे मोहकम्मवज्जिए अव्ववहारो ववहारो णत्थि[1] खीणकसायादिउवरिमजीवेहि णत्थि ववहारो, मोहणीयकम्माभावादो त्ति भणिदं होदि ।

❀ एदेण अट्ठपदेण ।

---

* उसमें यह अर्थपद है ।

§ ३२६. उसमें अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय नामके अधिकारमें अर्थपदको कहते हैं।

शंका–अर्थपद किसे कहते हैं ।

समाधान–जिसके जान लेने पर भंगोंका ज्ञान हो जाता है उसे अर्थपद कहते हैं।

* जो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव हैं वे अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं होते।

§ ३२७. क्योंकि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागोंमें सहानवस्थान रूप विरोध पाया जाता है। अर्थात् ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं।

* जो अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव हैं वे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं है ।

§ ३२८. क्योंकि अनुत्कृष्ट अनुभागके रहते हुए उत्कृष्ट अनुभागके होनेमें विरोध है ।

* जिन जीवोंके मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियाँ पाई जाती हैं वे प्रकृत हैं। जो मोहसे रहित हैं उनमें व्यवहार नहीं होता ।

§ ३२९. जिन जीवोंके मोहनीय की उत्तर प्रकृतियाँ हैं उन जीवोंका प्रकरण है अर्थात् उनका अधिकार है। जो मोहकर्मसे रहित हैं उनका अव्यवहार है अर्थात् उनका व्यवहार नहीं है। तात्पर्य यह है कि बारहवें गुणस्थानसे लेकर ऊपरके जीवोंकी अपेक्षा व्यवहार नहीं है, क्योंकि उनके मोहनीयकर्मका अभाव है ।

* इस अर्थपदके अनुसार—

---

1 ता० प्रतौ अव्ववहारो णत्थि इति पाठः ।

§ ३३०. एदेण अणंतरं परूविदअट्ठपदेण करणभूदेण णाणाजीवेहि भंगविचओ वुच्चदे।

* सव्वे जीवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे अविहत्तिया।

§ ३३१. मिच्छत्तस्से त्ति णिद्देसेण सेसकम्मपडिसेहो कदो। उक्कस्सअणुभागस्से त्ति णिद्देसो अणुक्कस्साणुभागादीणं पडिसेहफलो। सिया कम्हि वि काले सव्वे जीवा मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागस्स अविहत्तिया होंति, उक्कस्साणुभागसंतकम्मेण सह अवट्ठाणकालादो तेण विणा अवट्ठाणकालस्स बहुत्तुवलंभादो। सव्वे जीवा सव्वे अविहत्तिया त्ति दोवारं सव्वणिद्देसो ण कायव्वो, पउणरुत्तिदोसप्पसंगादो त्ति? ण एस दोसो, दोण्हं सव्वसद्दाणं पुधभूदअत्थेसु वट्टमाणाण पउणरुत्तियत्तविरोहादो[1]। तं जहा—पढमो सव्वसद्दो जीवाणं विसेसणं, विदिओ अविहत्तियाणं विसेसणं। ण च भिण्णत्थाहारबहुत्ते वट्टमाणाणं दोण्हं सव्वपदाणमेयत्थे वुत्ती, अइप्पसंगादो। ण च जीवाविहत्तियाणमेयत्तं, भिण्णविसेसणविसिट्ठाणमेयत्तविरोहादो। विसेसिज्जमाणमुभयत्थ एयमिदि पुणरुत्तदोसो किण्ण जायदे? होदु णाम तहाविह-

§ ३३० इस पहले कहे गये करणभूत अर्थपदके अनुसार नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयको कहते हैं।

* कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले हैं।

§ ३३१. मिथ्यात्वपदके निर्देशसे शेष कर्मोंका प्रतिषेध कर दिया। 'उत्कृष्ट अनुभाग' पदके निर्देशसे अनुत्कृष्ट अनुभागादिकका प्रतिषेध कर दिया। 'सिया' अर्थात् किसी भी समय सब जीव मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले होते हैं; क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके साथ रहनेका जितना काल है उस कालसे उसके बिना रहनेका काल बहुत पाया जाता है।

शंका—'सव्वे जीवा, सव्वे अविहत्तिया' इस प्रकार दो बार 'सर्व' शब्दका निर्देश नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे पुनरुक्तिदोषका प्रसङ्ग आता है।

समाधान—पुनरुक्ति दोष नहीं आता है, क्योंकि भिन्न भिन्न अर्थोंमें वर्तमान दो 'सर्व' शब्दोंके पुनरुक्त होनेमें विरोध है। खुलासा इस प्रकार है—पहला 'सर्व' शब्द जीवोंका विशेषण है और दूसरा 'सर्व' शब्द अविभक्तियोंका विशेषण है। इस प्रकार जब दोनों सर्व शब्द भिन्न भिन्न अर्थोंके बहुत्वमें विद्यमान हैं तो उनकी एक अर्थमें वृत्ति नहीं हो सकती, अन्यथा अतिप्रसङ्ग दोष आयेगा। अर्थात् यदि भिन्न भिन्न अर्थमें वर्तमान शब्द भी एकार्थवृत्ति कहे जायेंगे तो घट पट आदि सभी शब्द एकार्थवृत्ति हो जायेंगे और उस अवस्थामें घट पट शब्दके भी एक साथ कहनेसे पुनरुक्ति दोषका प्रसङ्ग उपस्थित होगा। यदि कहा जाय कि जीव शब्द और अविभक्तिक शब्द एक हैं सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो शब्द भिन्न भिन्न विशेषणोंसे विशिष्ट हैं अर्थात् जब उन दोनोंके साथ अलग अलग विशेषण लगा हुआ है तो उनके एक होनेमें विरोध है।

1. आ० प्रतौ पउणरुत्तिय त्ति विरोहादो इति पाठः।

विवक्खाए, ण पुण एत्थ, पहाणीकयविसेसणत्तादो, तम्हा ण पुणरुत्तदोसो त्ति सद्दहेयव्वं ।

❀ सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च ।

§ ३३२. कम्हि वि काले मिच्छत्तउक्कस्साणु० अविहत्तिगेहि सह एक्कस्स उक्कस्साणुभागविहत्तियजीवस्स संभवो होदि, णिम्मूलाभावे उवलंभमाणे एक्कस्स उक्कस्साणुभागविहत्तियजीवस्स संभवं पडि विरोहाभावादो ।

❀ सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

§ ३३३. कम्हि वि काले उक्कस्साणुभागस्स अविहत्तिएहि सह उक्कस्साणुभागविहत्तियजीवाणं संभवो होदि, विरोहाभावादो ।

❀ अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया ।

§ ३३४. पुव्वसुत्तादो मिच्छत्तस्से त्ति अणुवट्टदे । अणुक्कस्सअणुभागस्से त्ति णिद्देसो उक्कस्साणुभागपडिसेहफलो । कम्हि वि काले मिच्छत्तस्स अणुक्कस्साणुभागस्स सव्वे जीवा विहत्तिया चेव होंति, उक्कस्साणुभागसंतकम्मियाणं जीवाणं सांतरभावेण पउत्तिदंसणादो ।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च ।

शंका—दोनों जगह विशेष्य तो एक ही है अतः पुनरुक्त दोष क्यों नहीं आता ?

समाधान—उस प्रकारकी विवक्षाके होने पर पुनरुक्त दोष होओ, किन्तु यहाँ वह नहीं है, क्योंकि यहाँ विशेषण ही प्रधान हैं, अतः पुनरुक्त दोष नहीं है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

* कदाचित् नाना जीव अविभक्तिवाले हैं और एक जीव विभक्तिवाला है ।

§ ३३२. किसी भी समय मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले जीवोंके साथ एक उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला जीव संभव है, क्योंकि जब कदाचित् उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोंका कतई अभाव पाया जाता है तो एक उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवके रहनेमें कोई विरोध नहीं है । अर्थात् उनके निर्मूल अभावमें भी कमसे कम एक जीव उत्कृष्ट अनुभागवाला रह सकता है ।

* कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले हैं और बहुत जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं ।

§ ३३३. किसी भी समय उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले जीवो के साथ उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव होते हैं इसमें कोई विरोध नहीं है ।

* कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं ।

§ ३३४. पहलेके सूत्रसे मिथ्यात्व पद की अनुवृत्ति होती है । उत्कृष्ट अनुभागका निषेध करनेके लिए अनुत्कृष्टअनुभागका निर्देश किया है । किसी भी समय सब जीव मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले ही होते हैं, क्यो कि उत्कृष्ट अनुभाग की सत्तावाले जीवो की प्रवृत्ति सान्तर रूपसे देखी जाती है ।

* कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाला है ।

§ ३३५. कुदो? बहुएहि मिच्छत्ताणुक्कस्साणुभागविहत्तिएहिं सह एक्कस्स मिच्छत्तुक्कस्साणुभागविहत्तियजीवस्सुवलंभादो।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च।

§ ३३६. मिच्छत्तस्स अणुक्कस्साणुभागविहत्तिएहि सह बहुआणमुक्कस्साणुभाग-विहत्तियाणं संभवुवलंभादो।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्तसम्मामिच्छत्तवज्जाणं।

§ ३३७. जहा मिच्छत्तस्स भंगाणं मीमांसा कदा तहा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-वज्जाणं सेसकम्माणं पि कायव्वा, विसेसाभावादो।

❀ सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया।

§ ३३८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मियाणं व अविहत्तियाणं पि सव्वकालसंभवो अत्थि, छव्वीससंतकम्मियाणं जीवाणं[2] सव्वकालमाणंतियभावेण अवट्ठिदाणमुवलंभादो त्ति? ण, अकम्मे ववहारो णत्थि त्ति पुव्वं परूविदत्तादो। मिच्छत्ता-

§ ३३५. क्योंकि मिथ्यात्व की अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले बहुत जीवोंके साथ मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला एक जीव पाया जाता है।

❀ कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले और बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले हैं।

§ ३३६. क्योंकि मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंके साथ बहुतसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं।

❀ इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मोंका भी जान लेना चाहिये।

§ ३३७. जैसे मिथ्यात्वके भंगोंकी मीमांसा की है वैसे ही सम्यक्त्व और सम्य-ग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मों की कर लेनी चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कुछ विशेष नहीं है।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अपेक्षा कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं।

§ ३३८. **शंका**—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले जीवोंके समान उत्कृष्ट अनुभागकी अविभक्तिवाले जीव भी सदा संभव हैं, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सिवाय मोहनीयकी शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी सतावाले जीव सदा अनन्तरूपसे अवस्थित पाये जाते हैं। अतः उत्कृष्ट अनुभागसे सहित जीवोंके समान उससे रहित जीवोंको भी कहना चाहिये।

समाधान—नहीं, क्योंकि पहले कह आये हैं कि जिन जीवोंके मोहनीयकी प्रकृतियां नहीं

1. आ० प्रतौ अणुभागविहत्तिएहि इति पाठः। 2. ता० प्रतौ संतकम्मियाणं पि अविहत्तियाणं पि सव्वकालसंभवो अत्थि सव्वकालजीवाणं इति पाठः।

णुक्कस्साणुभागस्स विहत्तिया इव अविहत्तिया वि सव्वकालमत्थि त्ति तत्थ एगो चेव भंगो किण्ण परूविदो ? अकम्मेहि ववहाराभावेण एगभंगाणुप्पत्तीए।

❀ एवं तिण्णि भंगा।

§ ३३९. सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च। सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च। एवमेदे मूलिल्लभंगेण सह तिण्णि भंगा।

❀ अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे अविहत्तिया।

§ ३४०. खवणं मोत्तूण अण्णत्थ सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताणमणुक्कस्साणुभागस्स संभवाभावादो। ण च दंसणमोहणीयक्खवया सव्वकालमत्थि, तेसिमुक्कस्सेण छम्मासंतरुवलंभादो।

❀ एवं तिण्णि भंगा।

§ ३४१. सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च। सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च[1]। एवं पुव्विल्लभंगेण सह तिण्णि भंगा। देसामासियं चुण्णिसुत्तमस्सियूण

है उनका यहां अधिकार नहीं है। अत: सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तासे रहित जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग नहीं बतलाया।

शंका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंकी तरह अनुत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले जीव भी सदा रहते हैं, अत: वहां एक ही भङ्ग क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मसे रहित जीवोंमें भङ्गका व्यवहार नहीं होता, अत: एक भङ्ग नहीं होता।

*** इस प्रकार तीन भङ्ग होते हैं।**

§ ३३९. कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं और एक जीव उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाला है। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं और अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले हैं। इस प्रकार ये दोनों पहले कहे हुए मूल भङ्गके साथ मिलकर तीन भङ्ग होते हैं।

*** कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले हैं।**

§ ३४०. क्योंकि क्षपण अवस्थाको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका अभाव है। शायद कहा जाय कि दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीव सदा रहते हैं, अत: सभी जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिसे रहित नहीं हो सकते, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहके क्षपकोंका उत्कृष्टसे छमास अन्तरकाल पाया जाता है।

*** इस प्रकार तीन भंग होते हैं।**

§ ३४१. कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला है। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं। इस प्रकार पहले कहे गए एक भङ्गके साथ ये दो भङ्ग

---

1. आ० प्रतौ विहत्तिओ च इति पाठः ॥

णाणाजीवभंगविचयपरूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण णाणाजीवभंगविचयपरूवणं कस्सामो—

§ ३४२. णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो— ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागविहत्तिया भजियव्वा। अणुक्कस्सविहत्तिया णियमा अत्थि। सिया एदे च उक्कस्साणुभागविहत्तिओ च। सिया एदे च उक्कस्साणुभागविहत्तिया च। धुवभंगे पक्खित्ते तिण्णि भंगा। एवमणुक्कस्सस्स वि। णवरि विवरीयं वत्तव्वं। एवं सोलसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया। सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च। सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च। धुवेण सह तिण्णि भंगा। अणुक्कस्सस्स सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया। एवमेत्थ वि तिण्णि भंगा वत्तव्वा। मणुसतियम्मि ओघभंगो।

§ ३४३. आदेसेण णेरइएसु एवं चेव। णवरि सम्मामिच्छत्तस्स अणुक्कस्सं णत्थि। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख--पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि

मिलानेसे तीन भङ्ग होते हैं। देशामर्षक चूर्णिसूत्र के आश्रयसे नाना जीवों की अपेक्षा भङ्गविचय का कथन करके अब उच्चारणाके आश्रयसे नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयका कथन करते हैं—

§ ३४२. नाना जीवों की अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव भजितव्य हैं—कदाचित् होते भी हैं और कदाचित् नहीं भी होते। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला होता है। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले और अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं। इन दो भङ्गों में अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले नियमसे होते हैं। इस ध्रुव भङ्गके मिलानेसे तीन भङ्ग होते हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्टके भी तीन भङ्ग होते हैं। इतना विशेष है कि उन भङ्गों को उत्कृष्टके भङ्गों से विपरीत कहना चाहिये। अर्थात् कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं। कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला और अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले होते हैं। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं। इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायों के भङ्ग होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट विभक्तिसे रहित होता है। कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले और अनेक जीव उससे रहित होते हैं। ध्रुव भङ्गके साथ तीन भङ्ग होते हैं। अनुत्कृष्टकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिसे रहित होते हैं। इस प्रकार अनुत्कृष्टके भी तीन भङ्ग कहने चाहिए। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों में ओघके समान भङ्ग होते हैं।

§ ३४३. आदेशसे नारकियों में इसी प्रकार भङ्ग होते हैं। इतना विशेष है कि उनमें सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग नहीं होता। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चे०

जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्तस्स एक्को चेव भंगो, अणुक्कस्साणुभागाभावादो। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचि०तिरि०--अपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसि०। मणुसअपज्ज० छब्बीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु-भागस्स अट्ठ भंगा वतव्वा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं उक्कस्साणुभागस्स दो भंगा। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छब्बीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु० णियमा अत्थि। सम्मत्तस्स ओघभंगो। सम्मामि० उक्कस्साणु० णियमा अत्थि। भंगो एक्को चेव। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३४४. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकसा० जहण्णाजहण्णाणु० णियमा अत्थि। सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु-चउक्क०-चदुसंज०-णवणोक० जहण्णाणुभागस्स सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया। एत्थ तिण्णि भंगा। अज० अणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया। एत्थ वि तिण्णि भंगा वतव्वा।

§ ३४५. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणं जहण्णाजहण्णाणुभागस्स तिण्णि भंगा। एवं पढमपुढवि--पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० देवोघं च। विदियादि

न्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका एक ही भङ्ग होता है, क्योंकि इन नरकोंमें उसका अनुत्कृष्ट अनुभाग नहीं होता। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके आठ भङ्ग कहने चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके दो भङ्ग होते हैं। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग नियमसे होता है सम्यक्त्वके भंग ओघकी तरह होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग नियमसे होता है। भंग एक ही है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ३४४. अब जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले नियमसे होते हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चारों संज्वलन और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभाग-के कदाचित् सब जीव अविभक्तिक अर्थात् जघन्य अनुभागसे रहित होते हैं। यहाँ तीन भंग होते हैं—एक भंग पूर्वोक्त और दो ये—कदाचित् अनेक जीव जघन्य अनुभागविभक्तिसे रहित और एक जीव उससे सहित होता है। कदाचित् अनेक जीव उससे रहित और अनेक जीव उससे सहित होते हैं। अजघन्यकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं। यहाँ भी तीन भंग कहने चाहिये।

§ ३४५. आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके तीन भंग होते हैं। कदाचित् सब जीव जघन्य अनुभागसे रहित, कदाचित् अनेक जीव रहित और एक जीव सहित, कदाचित् अनेक जीव रहित और अनेक जीव सहित। अजघन्यके इससे

जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णियमा अत्थि। सम्मत्त-सम्मामि० एक्को चेव भंगो, अजहण्णाणुभागविहत्तिएहि मोत्तूण अण्णेसिं तत्था-भावादो। तत्थ जहण्णाणुभागेण विणा कथमजहण्णत्तमणुभागस्स। ण, ववएसिवब्भा-वेण तत्थ तस्स सिद्धीदो। अणंताणु०चउक्क० ओघं। एवं जोदिसि०। तिरिक्खा एवं चेव। णवरि सम्मत्त० ओघं। जोणिणी० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्कस्सभंगो। भवण०-वाण० पढमपुढवि०भंगो। णवरि सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। सोहम्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्ण० णियमा अत्थि। सम्मत्त-अणंताणु० चउक्क० ओघं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

§ ३४६. भागाभागो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसपयडीणमुक्कस्साणुभागविह-

---

विपरीत समझना। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और सामान्य देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य और अजघन्य अनुभाग नियमसे होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक ही भंग होता है, क्योंकि अजघन्य अनुभागविभक्तिसे सहित जीवोंको छोड़कर अन्य भंगोंका वहाँ अभाव है।

शंका—जब जघन्य अनुभागका अभाव है तो उसके विना वहाँके अनुभागका अजघन्य-पना कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी शंका उचित नहीं है, क्योंकि व्यपदेशिवद्भावसे अर्थात् अजघन्य अनुभाग-के समान अनुभागमें अजघन्यका व्यपदेश कर लेनेसे वहाँ अजघन्य अनुभाग पद संभव है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके भंग ओघके समान होते हैं। इसी प्रकार ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए। तिर्यञ्चोंमें भी इसीप्रकार भंग होते हैं। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वके भंग ओघकी तरह जान लेना चाहिए। तिर्यञ्चयोनिनियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भंग होते हैं। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्टके समान भंग होते हैं। भवनवासी और व्यन्तरोंमें पहली पृथिवीके समान भंग होते हैं। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका जघन्य नहीं होता। सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका जघन्य और अजघन्य अनुभाग नियमसे होता है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—यद्यपि जघन्य और अजघन्य दोनों सापेक्ष हैं और इसलिये जघन्यके अभावमें अजघन्यका व्यवहार नहीं हो सकता तथापि दूसरे आदि नरकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका जो अनुभाग पाया जाता है वह अन्यत्र पाये जानेवाले अजघन्य अनुभागके समान होता है, अतः उसे अजघन्य कह देते हैं।

§ ३४५. भागाभाग दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट

त्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो। अणुक्क० अणंता भागा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणुभागविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखेज्जा भागा। अणुक्क० केव० ? असंखे०भागो। एवं तिरिक्खाणं। णवरि सम्मामि० णत्थि भागाभागं।

§ ३४७. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसप्पयडीणमुक्कस्साणु० सव्वजीवा के० ? असंखे०भागो। अणुक्क० असंखेज्जा भागा। सम्मत्त० ओघं। सम्मामि० णत्थि भागाभागं। एवं पढमपुढवि-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइदो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि समत्त० भागाभागं णत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी--पंचिंदियतिरि०अपज्ज०--मणुस्सअपज्ज०--भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति। मणुस्साणं णेरइयभंगो। णवरि सम्मामि० ओघं। एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुस्सिणीसु। णवरि संखेज्जं कायव्वं। एवं सव्वट्ठसिद्धि त्ति देवाणं। णवरि सम्मामिच्छत्तवज्जं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३४८. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्ठकसाय० जहण्णाणु० सव्वजी० के० ? असंखे०भागो।

अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है।

§ ३४६. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सम्यक्त्वका भागाभाग ओघकी तरह जानना चाहिए। सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। सामान्य मनुष्योंमें नारकियोंकी तरह भंग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग ओघकी तरह है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ असंख्यातकी जगह संख्यात करना चाहिये। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—जहाँ सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभाग ही पाया जाता है वहाँ उनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं बतलाया है, जैसे नरकमें।

§ ३४७. अब जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब

अज० अप्पप्पणो सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा। अणंताणु०चउक्क०-चदुसंज०-णवणोक० जहण्णाणु० अणंतिमभागो। अज० अणंता भागा।

§ ३४९. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणं जहण्णाणु० असंखे०भागो। अज० असंखेज्जा भागा। सम्मामि० णत्थि भागाभागं। एवं पढमपुढवि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइदो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं जोणिणी-पंचिंदिय-तिरिक्ख०अपज्जत्त-मणुस्सअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति।

§ ३५०. तिरिक्ख० मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाणु० के० ? असंखे०भागो। अज० असंखेज्जा भागा। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० अणंतिमभागो। अज० अणंता भागा। मणुस्स० अट्ठावीस० जहण्णाणु० असंखे०भागो। अज० असंखेज्जा भागा। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी०। णवरि संखेज्जं कायव्वं। एवं सव्वट्ठसिद्धिदेवाणं। णवरि सम्मामिच्छत्तवज्जं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चारों संज्वलन कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।

§ ३४९. आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका भागाभाग सम्यग्मिथ्यात्व की तरह है। इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३५०. सामान्य तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। मनुष्योंमें अट्ठाईस प्रकृतियों की जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि असंख्यातके स्थानमें संख्यात कर लेना चाहिये। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

---

१. आ० प्रतौ तिरिक्ख० मणुस्स० इति पाठः।

§ ३५१. परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सयं चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण छव्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुभागविहत्तिया केत्तिया? असंखेज्जा । अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागविहत्तिया दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा । अणुक्क० संखेज्जा । एवं तिरिक्खोघं । णवरि सम्मामि० अणुक्कस्साणु० णत्थि ।

§ ३५२. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० ओघं । एवं पढमपुढवि-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइद त्ति। एवं विदियादि जाव सत्तमि त्ति। णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं जोणिणी-पंचिंदियतिरिक्ख० [अपज्जत्त-] मणुसअपज्ज०-भवण-वाण०-जोदिसिए त्ति । मणुस्साणं णेरइयभंगो । णवरि सम्मामि० ओघं । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि सव्वपयडीणमुक्क० अणुक्क० संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ-सिद्धिदेवाणं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ३५३. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त०-अट्ठक० ज० अज० दव्वपमाणेण केव० ? अणंता । सम्मत्त०-सम्मामि० ज०

---

§ ३५१. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोंमें सम्यग्मि-थ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं है ।

§ ३५२. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वका ओघ की तरह भङ्ग जानना चाहिए । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्व की तरह है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें जानना चाहिए । सामान्य मनुष्योंमें नारकियोंके समान भंग है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वमें ओघ की तरह भङ्ग है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें जानना चाहिए । इस प्रकार जानकर अनाहारी पयन्त लेजाना चाहिये ।

§ ३५३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्मग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात

संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० केत्तिया ? असंखेज्जा। अजह० के० अणंता। चदु०संज०-णवणोक० जहण्णाणु० संखेज्जा। अज० अणंता।

§ ३५४. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० असंखेज्जा। सम्मत्त० जहण्णाणु० संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। सम्मामि० अज० असंखेज्जा। एवं पढमपुढवि०--पंचिंदियतिरिक्ख--पंचिं०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइदो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं जोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति।

§ ३५५. तिरिक्ख० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० केत्तिया ? अणंता। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० असंखेज्जा। अज० अणंता। सम्मत्त० ज० संखेज्जा। अज० असंखेज्जा। सम्मामि० अज० असंखेज्जा।

§ ३५६. मणुस्सेसु मिच्छत्त-अट्ठक० जहण्णाजहण्णाणु० असंखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि०--अणंताणु०चउक्क०--चदुसंज०--णवणोक० जहण्णाणु० संखेज्जा। अज०

हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य अनुभाग विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। चार संज्वलन और नव नोकषायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त हैं।

§ ३५४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें ऐसे ही जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३५५. सामान्य तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त हैं। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं।

§ ३५६. सामान्य मनुष्योंमें मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और नव नोकषायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। अजघन्य

असंखेज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्ठावीसं पयडीणं जहण्णाजहण्ण० संखेज्जा। एवं सव्वट्ठसिद्धिम्मि। णवरि सम्मामि० जहण्णाणुभागो णत्थि। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३५७. खेत्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सयं चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणमुक्कस्साणु०विहत्तिया जीवा केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखे०भागे। अणुक्क० के० खेत्ते? सव्वलोगे। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणुक्कस्सविहत्तिया के०? लोग० असंखे०भागे। एवं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मामि० अणुक्कस्साणु० णत्थि। सेससव्वादेसपदेसु सव्वपयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणुभागविहत्तिया जीवा केवडि खेत्ते? लोग० असंखे०भागे। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पदविसेसो जाणियव्वो। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३५८. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० जहण्णाजहण्णाणु० के० खेत्ते? सव्वलोए। सम्मत्त-सम्मामि० जहण्णाजहण्णाणु० के० खेत्ते? लोग० असंखे०भागे। अणंताणु०चउक्क०-चदुसंज०-णवणोक० जहण्णाणु० के० खे०? लोगस्स असंखे०भागे। अज० सव्वलोगे। एवं तिरिक्खोघं।

अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ३५७. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है सर्व लोक क्षेत्र है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यग्मिथ्यात्व की अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति नहीं है। आदेश की अपेक्षा शेष सब स्थानोंमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवों का कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवेंभाग प्रमाण क्षेत्र है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पदों में कुछ विशेषता है सो जान लेना चाहिये। इस प्रकार अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

§ ३५८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायों की जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? सर्व लोक क्षेत्र है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अनन्तानुवन्धी चतुष्क, चार संज्वलन और नव नोकषायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका सर्व लोकप्रमाण क्षेत्र है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि चार

णवरि चदुसंज०-णवणोकसायाणं मिच्छत्तभंगो । सम्मामि० जहण्णं णत्थि । सेसमग्गणासु सव्वपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० लोग० असंखे०भागे । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ३५९. पोसणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुभागविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा । अणुक्कस्सविहत्तिएहि के० खे० पोसिदं ? सव्वलोगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द० देसूणा सव्वलोगो वा । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो ।

§ ३६०. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणं उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०-भागो छचोद्दसभागा वा देसूणा । सम्मामि० उक्क० लोग० असंखेभागो छचोद्दस० देसूणा । सम्मत्त० उक्क० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा । अणुक्क० लोग०

संज्वलन और नव नोकषायोंका मिथ्यात्वकी तरह भंग है । यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग नहीं है । शेष मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ३५९. स्पर्शन दो प्रकार का है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है–ओघ और आदेश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्वलोकका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग, चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके स्वामी एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तक होते हैं, अतः ओघसे मारणान्तिक और उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और विक्रियाकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और इतरकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है । अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सर्वत्र पाये जाते हैं, अतः उनका स्पर्शन सर्वलोक है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका स्पर्शन पूर्ववत् लोकका असंख्यातवाँ भाग, आठ बटे चौदह राजु और सर्वलोक है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि उनका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म दर्शनमोहके क्षपकके ही होता है ।

§ ३६०. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छ भागप्रमाण क्षेत्रका

१. आ० प्रतौ देसूणा । सम्मत्त-सम्मामि० इति पाठः ।

असंखे०भागो। पढमपुढवि० खेत्तं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति छव्वीसंपयडीणं उक्कस्साणुक्कस्स० लोग० असंखे०भागो एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोद्दसभागा वा देसूणा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० उक्कस्साणुभागस्स मिच्छत्तभंगो।

§ ३६१. तिरिक्खेसु छव्वीसंपयडीणमुक्कस्साणु० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अणुक्क० सव्वलोगो। सम्मत्त० उक्क० मिच्छत्तभंगो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो। सम्मामि० उक्क० सम्मत्तभंगो। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणीसु छव्वीसंपयडीणमुक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं तिरिक्खोघं। णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० अणुक्कस्सा० णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०छव्वीसंपयडीणमुक्कस्साणु० लोग० असंखे०-भागो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं मणुसअपज्ज०। मणुसतिय०पंचिंदियतिरिक्ख-

स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भंग है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और चौदह भागोंमें से क्रमशः कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवालोंका स्पर्शन मिथ्यात्व की तरह है।

§ ३६१. तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन मिथ्यात्वकी तरह है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन सम्यक्त्वकी तरह है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंकी तरह है। इतना विशेष है कि योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग नहीं है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्तातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लाकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियोंके समान भंग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वका स्पर्शन

१. आ० प्रतौ सव्वलोगो वा। सम्मामि० उक्क० सम्मत्तभंगो। पंचिंदियतिरिक्ख पंचि० तिरि० पज्ज० सम्मत्त इति पाठः।

तियभंगो। णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो।

§ ३६२. देवेसु छव्वीसंपयडीणं उक्कस्साणुक्कस्स० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णव चोद्दस० देसूणा। सम्मत्त० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो। एवं सव्वदेवाणं। णवरि सग-सगपोसणं वत्तव्वं। भवण०-वाण०-जोदिसि० सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३६३. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकसाय० जहण्णाजहण्ण० सव्वलोगो। सम्मत्त-सम्मामि० जह० खेत्तं०। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। सेसपयडीणं

सम्यक्त्वकी तरह है।

§ ३६२. देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और नव भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व की अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सबमें पृथक् पृथक् अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। भवनवासी,व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके दोनों अनुभागवाले जीवोंने तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीवोंने अतीतकालमें मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह राजू स्पर्शन किया है और अतीत तथा वर्तमान कालमें संभव शेष पदोंके द्वारा लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है। सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग नरकमें नहीं होता। सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग केवल प्रथम नरकमें होता है, अतः उसका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग है। दूसरेसे लेकर सातवें नरक तक छब्बीस प्रकृतियोंके दोनों अनुभागवाले जीवोंका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग पूर्ववत् है तथा अतीतकालमें मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा क्रमशः एक बटे चौदह आदि भाग है। इसी प्रकार तिर्यञ्च और उसके भेद प्रभेदोंमें यथायोग्य लोकका असंख्यातवाँ भाग और सर्वलोक स्पर्शन समझना चाहिए। देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके दोनों अनुभागवालों तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका स्पर्शन अतीतकालमें विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और विक्रिया पदके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिक पदके द्वारा नीचे दो ऊपर सात इस तरह कुछ कम नौ बटे चौदह राजू है और अतीत तथा वर्तमान कालमें शेष संभव पदोंके द्वारा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है।

§ ३६३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्र की तरह है अर्थात् जो उनका क्षेत्र है वही स्पर्शन है। इनके अजघन्य अनुभागवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग, चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका

जहण्णाणु० खेत्तं । अज० सव्वलोगो । णवरि अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द० देसूणा । अज० सव्वलोगो ।

§ ३६४. आदेसेण णेरएसु छव्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो छचोद्दसभागा देसूणा । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सत्तिमि त्ति छव्वीसं पयडीणं जहण्णाणु० खेत्तं[1] । अज० लोग० असंखे०भागो एक-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोद्दसभागा देसूणा । सम्मत्त-सम्मामि० अजह० उक्कस्सभंगो ।

§ ३६५. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त--बारसक०--णवणोक० जहण्णा-जहण्णाणु० सव्वलोगो। सम्मत्त० ज० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं सम्मामि०। णवरि जहण्णं णत्थि। अणंताणु०चउक्क० ज० लोग० असंखे०-

---

स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रकी तरह है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भाग मेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभाग-विभक्तिवालोंने सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन सर्वलोक है, क्यों कि हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले एकेन्द्रिय जीवके उस पर्यायमें तथा जहाँ जहाँ वह जन्म लेता है उन उन पर्यायों में जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है और उसको बढ़ा लेने पर अजघन्य अनुभागसत्कर्म होता है सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन उन्हींके उत्कृष्ट अनुभागवालों के स्पर्शनकी तरह है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ३६४. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियों की जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें क्षेत्र की तरह स्पर्शन है। दूसरीसे सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियों की जघन्य अनु-भागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असं-ख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे क्रमशः कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पाँच और छः भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अजघन्य अनुभागविभक्ति-वालोंका स्पर्शन उत्कृष्ट की तरह है।

§ ३६५. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रकी तरह है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सम्यग्मि-थ्यात्वका स्पर्शन जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य अनुभाग-विभक्ति नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका

---

1. ता० प्रतौ पयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० खेत्तं इति पाठः ।

भागो। अज० सव्वलोगो वा। पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि छव्वीसं पयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। णवरि अणंताणु०चउक्क० ज० खेत्तं। सम्मत्त०-सम्मामि० तिरिक्खोघं। णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। पंचिं० तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा। सम्मत्त-सम्मामि० अज० उक्कस्सभंगो।

§ ३६६. मणुसतियम्मि मिच्छत्त-अट्ठक० जहण्णाजहण्णाणु० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सेसाणं पयडीणं ज० खेत्तं। अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा।

§ ३६७. देवेसु मिच्छत्त--सम्मत्त--बारसक०--णवणोक० जह० खेत्तं। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ--णवचोद्दसभागा देसूणा। अणंताणु०चउक्क० ज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ--णवचोद्दस-भागा वा देसूणा। एवं भवण०-वाण०। णवरि सगपोसणं। सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। जोदिसियदेवेसु छव्वीसं पयडीणं जहण्णाणु० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठ-अट्ठचो०

स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियों की जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चों की तरह है। इतना विशेष है कि योनिनियों में सम्यक्त्व की जघन्य अनुभागविभक्ति नहीं है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकों में छब्बीस प्रकृतियों की जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अजघन्य अनुभागविभक्तिवालों का स्पर्शन उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालों की तरह है।

§ ३६६. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों में मिथ्यात्व और आठ कषायों की जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियों की जघन्य अनुभागविभक्तिवालों का स्पर्शन क्षेत्र की तरह है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ ३६७. देवों में मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायों की जघन्य अनुभागविभक्तिवालों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभाग-विभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिए। उनमें सम्यक्त्व की जघन्य अनुभागविभक्ति नहीं है। ज्योतिष्क देवों में छब्बीस प्रकृतियों की जघन्य अनुभाग

देसूणा। अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुट्ठ--अट्ठ--णवचोद्दसभागा देसूणा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेवं चेव। णवरि जहण्णं णत्थि। सोहम्मीसाणदेवेसु छव्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा। सम्मत्त० देवोघं। एवं सम्मामि०। सणक्कुमारादि जाव अच्चुदकप्पो त्ति एवं चेव। णवरि सगपोसणं। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाणिदूणं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

विभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन तथा कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्पर्शन इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि इनमें उनका जघन्य नहीं है। सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वका स्पर्शन सामान्य देवों की तरह है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका जानना चाहिए। सानत्कुमार स्वर्गसे लेकर अच्युतकल्प पर्यन्त स्पर्शन इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए। अच्युत कल्पसे ऊपर क्षेत्रके समान स्पर्शन है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियोंमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन उत्कृष्ट अनुभागवालोंके स्पर्शनकी तरह घटा लेना चाहिये। सामान्य तिर्यंचोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके दोनों अनुभागवालोंका स्पर्शन सर्वलोक ओघकी तरह जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागवालोंने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा सर्वलोक और शेषके द्वारा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट किया है। पञ्चेन्द्रियतिर्यंचत्रिकमें छब्बीस प्रकृतियोंके दोनों अनुभागवालोंने वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग और अतीतकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है। मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व और आठ कषायोंके दोनों अनुभागवालोंने तथा शेप प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवालोंने स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और विक्रिया पदके द्वारा लोकका असंख्यातवाँ भाग और मारणान्तिक तथा उपपाद पदके द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया है। देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है और अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रियाकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा नौ बटे चौदह राजु है। ज्योतिष्क देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागवालों और अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है और अतीतकालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रिया पदके द्वारा चौदह राजुमेंसे कुछ कम साढ़े तीन अथवा कुछ कम आठ राजू है तथा अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन मारणान्तिक पद के द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजु है। इसी प्रकार सौधर्मादिकमें भी लगा लेना चाहिये।

---

१. ता० प्रतौ एवं [खेत्तभंगो] जाणिदूण इति पाठः।

❀ णाणाजीवेहि कालो ।

§ ३६८. अहियारसंभालणसुत्तमेदं । सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ?

§ ३६९. एदं पि सुत्तं सुगमं, पुच्छासुत्तत्तादो ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३७०. कुदो ? सत्तट्ठजीवेसु बंधुक्कस्साणुभागेसु सव्वजहण्णेणंतोमुहुत्तकालेण घादिदाणुभागखंडएसु उक्कस्साणुभागस्स सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ३७१. कुदो ? एगजीवस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मद्धमंतोमुहुत्तमेत्तं ठविय पलिदो० असंखे०भागमेत्ताहि उक्कस्साणुभागपवेससलागाहि गुणिदे पलिदो० असंखे० भागमेत्तकालुवलंभादो ।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं ।

§ ३७२. जहा मिच्छत्तुक्कस्साणुभागस्स णाणाजीवे अस्सिदूण जहण्णुक्कस्सकाल-परूवणा कदा तहा सेसकम्माणं पि कायव्वा, विसेसाभावादो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-

---

* नाना जीवों की अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ३६८. अधिकार की सम्हाल करना इस सूत्रका कार्य है । इसका अर्थ सुगम है ।

* मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ।

§ ३६९. यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि यह पृच्छासूत्र है ।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३७०. क्योंकि सात आठ जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागका बंध करके और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा अनुभागकाण्डकोंका घात कर देने पर उत्कृष्ट अनुभागका सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ३७१. क्योंकि एक जीवके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है और उत्कृष्ट अनुभागमें प्रवेश करनेकी शलाकाएँ पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं अर्थात् लगातार इतनी बार जीव उत्कृष्ट अनुभागमें प्रवेश कर सकते हैं, अतः अन्तमुहूर्त मात्र कालको पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करने पर नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र पाया जाता है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व को छोड़कर इसी प्रकार शेष कर्मोंके अनुभागसत्कर्मका काल कहना चाहिये ।

§ ३७२. जैसे नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन किया है वैसे ही शेष कर्मोंका भी कथन कर लेना चाहिये, क्योंकि दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है ।

वज्जाणं इदि ण परूवेदव्वं, उवरिमसुत्तादो चेव तव्वज्जणावगमादो ? ण, उत्तावलसिस्स-मइबाउलविणासणट्ठं तप्परूवणादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ?

§ ३७३. सुगमं० ।

❀ सव्वद्धा ।

§ ३७४. कुदो ? एगजीवम्मि उक्कस्साणुभागम्मि अवट्ठाणकालं पेक्खिदूण तं पडिवज्जमाणजीवाणमंतरकालस्स असंखे०गुणहीणत्तदंसणादो। संपहि चुण्णिसुत्तमस्सि-दूण उक्कस्साणुभागकालपरूवणं करिय उच्चारणमस्सिदूण कस्सामो ।

§ ३७५. कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसंपयडीणं उक्कस्साणुभागस्स कालो केवचिरं ? जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सव्वद्धा । अणुक्क० ज० उक्क० अंतोमु० ।

शंका—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि आगेके सूत्रमें जो उन दोनोंके कालका अलगसे प्ररूपण किया है उससे ही ज्ञात हो जाता है कि यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व को छोड़ दिया है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि उतावले शिष्योंकी बुद्धिकी व्याकुलताको नष्ट करनेके लिये यह कथन किया है ।

❀ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ?

§ ३७३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ सर्वदा है ।

§ ३७४. क्योंकि एक जीवमें उत्कृष्ट अनुभागके अवस्थान कालकी अपेक्षा उसको प्राप्त करनेवाले जीवोंका अन्तरकाल असंख्यातगुणा हीन देखा जाता है । अर्थात् एक जीवके उत्कृष्ट अनुभागमें रहनेका जितना काल है उसकी अपेक्षा उसके उत्कृष्ट अनुभागमें न रहनेका काल असंख्यातगुणा हीन है, अतः जब अवस्थान कालसे अन्तर काल बहुत कम है तो नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभाग सर्वदा बना रह सकता है । अब चूर्णिसूत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभाग कालका कथन करके उच्चारणाकी अपेक्षा उसका कथन करते हैं ।

§ ३७५ काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टके कथनका अवसर है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३७६. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणमुक्कस्साणुभागो केव० ? ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सव्वद्धा । सम्मत्त० अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खतिय-सोहम्मादि जाव सहस्सारे त्ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि । एवं जोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०--भवण०--वाण०-जोदिसिए त्ति ।

§ ३७७. मणुस्सेसु सव्वपयडीणमुक्क० अणुक्क० ओघं । णवरि उक्क० जहण्णेण एगसमओ छव्वीसंपयडीणं । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु छव्वीसंपयडीणमुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सव्वद्धा । अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु० । णवरि मणुसपज्जत्तएसु सम्मत्त० अणुक्क० ज० एगस० । मणुसिणीसु सम्मत्तअणुभागस्स एगसमओ णत्थि । मणुसअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं उक्क० ज० एगस० । अणुक्क० ज० अंतो०, उक्क० दोण्हं पि पलिदो० असंखे०भागो । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणं उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० सव्वद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० देवोघं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

---

§ ३७६. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग वहाँ नहीं होता। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३७७. सामान्य मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका काल ओघ की तरह है। इतना विशेष है कि छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है। मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्वके अनुभागका एक समय काल नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट काल पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण है। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका काल सामान्य देवोंकी तरह है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

❀ **मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति।**

§ ३७८. सुगमं।

❀ **सव्वद्धा।**

§ ३७९. कुदो ? एदेसिं वुत्तकम्माणं जहण्णाणुभागस्स तिसु वि कालेसु विरहाभावादो।

❀ **सम्मत्त-अणंताणुबंधिचत्तारि-चदुसंजलण-तिवेदाणं जहण्णाणुभाग-कम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति।**

§ ३८०. सुगमं।

❀ **जहण्णेण एगसमओ।**

§ ३८१. कुदो ? सम्मत्त-चदुसंजलण-तिवेदाणं णिल्लेविज्जमाणचरिमसमए उप्पण्णजहण्णाणुभागस्स एगसमयावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो। संजुत्तपढमसमए समुप्पण्णअणंताणुवंधिचउक्क० जहण्णाणुभागस्स वि एगसमयावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका काल जघन्यसे एक समय है, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक मरण करके नरकमें जन्म लेते हैं उनके सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है। एक साथ कई एक कृतकृत्यवेदक मरकर नरकमें उत्पन्न हुए, दूसरे समयमें सम्यक्त्व प्रकृति नष्ट करके वे क्षायिकसम्यक्त्वी हो गये, अतः एक समय जघन्य काल हुआ। और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका काल जघन्यसे एक समय कहा है सो छब्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका दूसरे समयमें घात करनेकी अपेक्षा और सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलनाकी अपेक्षा जानना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

❀ **मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ?**

§ ३७८. यह सूत्र सुगम है।

❀ **सर्वदा है।**

§ ३७९. क्योंकि इन उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता है।

❀ **सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चारों संज्वलन कषाय और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ?**

§ ३८०. यह सूत्र सुगम है।

❀ **जघन्य काल एक समय है।**

§ ३८१. क्योंकि सम्यक्त्व, चार संज्वलन और तीन वेदोंका जघन्य अनुभाग क्षपकके अन्तिम समयमें होता है अतः उसके एक समय तक रहनेमें कोई विरोध नहीं है। तथा विसंयोजनके पश्चात् अन्य कषायोंके प्रदेशोंको पुनः अनन्तानुबन्धी रूप परिणमानेके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभाग उत्पन्न होता है, अतः उसके भी एक समय तक

❀ **उक्कस्सेण संखेज्जा समया ।**

§ ३८२. कुदो ? संखेज्जेसु जीवेसु कमेण वुत्तकम्माणं जहण्णाणुभागं कुणमाणेसु संखेज्जाणं चेव समयाणं जहण्णाणुभागसंबंधीणमुवलंभादो । असंखेज्जा जीवा कमेण जहण्णाणुभागं किण्ण पडिवज्जंति ? ण, मणुसपज्जत्ताणमसंखेज्जाणमभावादो । ण च मणुसपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ कम्माणं खवणा अत्थि, विरोहादो ।

❀ **णवरि अणंताणुबंधीणमुक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।**

§ ३८३. कुदो ? अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइदसम्माइट्ठीहिंतो कमेण संजु-ज्जमाणाणमुवक्कमणकालस्स उक्कस्सस्स आवलियाए असंखे०भागपमाणत्तुवलंभादो । संखेज्जावलियमेत्तो किण्ण होदि ? ण, एवं विहसुत्ताणुवलंभादो ।

❀ **सम्मामिच्छत्त-छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ?**

§ ३८४. सुगमं ।

❀ **जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।**

ठहरनेमें कोई विरोध नहीं है ।

* उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ?

§ ३८२. क्योंकि उक्त कर्मोंका जघन्य अनुभाग लगातार संख्यात जीव ही करते हैं, अतः जघन्य अनुभाग सम्बन्धी काल संख्यात समय ही पाया जाता है ।

शंका—असंख्यात जीव जघन्य अनुभागको क्यों नहीं प्राप्त होते हैं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि मनुष्य पर्याप्त असंख्यात नहीं है । और मनुष्य पर्याप्तकोंको छोड़कर अन्यके कर्मोंका क्षपण नहीं होता है, क्योंकि अन्यत्र उसके होनेमें विरोध है ।

* किन्तु अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यावें भागप्रमाण है ।

§ ३८३. क्योंकि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करनेवाले सम्यग्दृष्टियोंमेंसे क्रमसे अन्य कषायोंके परमाणुओंको पुनः अनन्तानुबन्धी रूप परिणमानेवालोंके उपक्रमणका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण पाया जाता है । अर्थात् यदि विसंयोजक सम्यग्दृष्टि लगातार एक एक करके अनन्तानुबन्धीका पुनः संयोजन करें तो आवलीके असंख्यातवें भाग काल तक ही ऐसा कर सकते हैं, अतः उसके जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल उतना ही है ।

शंका—संख्यात आवली प्रमाण काल क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इस प्रकारका सूत्र नहीं पाया जाता है जो इतना काल बत-लाता हो ।

* सम्यग्मिथ्यात्व और छः नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका] कितना काल है ?

§ ३८४ यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३८५. कुदो अप्पप्पणो खवणाए चरिमाणुभागखंडयम्मि जादजहण्णाणु- भागस्स अंतोमुहुत्तं मोत्तूण अहियकालाणुवलंभादो। तं पि कुदो ? उक्कीरणद्धाए उक्कस्साए वि अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो। उक्कस्सकालो असंखेज्जावलियमेत्तो किण्ण होदि ? ण, संखेज्जुक्कीरणद्धाणं समूहम्मि असंखेज्जावलियाणं संभवविरोहादो। तं पि कुदो णव्वदे ? अंतोमुहुत्तमिदि सुत्तणिद्देसादो। एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण जहण्णाणुभाग- कालपरूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण कस्सामो।

§ ३८६. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० जहण्णाजहण्णाणु० सव्वद्धा। सम्मत्त० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा। सम्मामि० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० सव्वद्धा। अणंताणु०चउक्क० जह० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० सव्वद्धा। छण्णोक० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० सव्वद्धा। चदुसंज०-तिण्णिवेद० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा।

---

§ ३८५. क्योंकि अपनी अपनी क्षपणावस्थाके अन्तिम अनुभागकाण्डकमें इन प्रकृतियों- का जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका काल अन्तमुहूर्तसे अधिक नहीं पाया जाता है।

शंका—उसका काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक क्यों नहीं पाया जाता है।

समाधान—क्योंकि उत्कीरणका उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है।

शंका—उत्कृष्ट काल असंख्यात आवली प्रमाण क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि संख्यात उत्कीर्णकालोंके समूहमें असंख्यात आवलियाँ नहीं हो सकती हैं।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—क्योंकि सूत्रमें अन्तर्मुहूर्त कालका निर्देश किया है।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे जघन्य अनुभागके कालका कथन करके अब उच्चारणाके आश्रयसे कथन करते हैं।

§ ३८६. जघन्यके कथनका अवसर है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। चार संज्वलन और तीन वेदोंके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है।

§ ३८७. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक०णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अज० सव्वद्धा। सम्मत्त-अणंताणु०-चउक्क० ओघं। सम्मामि० ओघं। णवरि जहण्णाणु० णत्थि। एवं पढमपुढवि०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति वावीस-पयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० सव्वद्धा। अणंताणु०चउक्क० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० ओघं। णवरि जहण्णाणु० णत्थि। एवं जोदिसि०।

§ ३८८. तिरिक्खेसु वावीसंपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० सव्वद्धा। सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० ओघं। सम्मामि० ओघं। णवरि जहण्णं णत्थि। पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीणं पढमपुढविभंगो। णवरि सम्मत्त० ज० णत्थि। एवं भवण०-वाणवेंतरा त्ति। पंचिं०तिरि०अपज्ज० छव्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अज० सव्वद्धा। सम्मा०-सम्मामि० जोणिणीभंगो।

§ ३८९. मणुस्सेसु मिच्छत्त-अट्ठक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सम्मत्त०-अट्ठक०-तिण्णिवेद० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। सम्मामि०--छण्णोक० जहण्णाणु० ज० उक्क० अंतोमु०। सव्वासि-

---

§ ३८७. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघ की तरह है। सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघ की तरह है। इतना विशेष है कि नरकमें उसका जघन्य अनुभाग नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और सामान्य देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघ की तरह है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघ की तरह है। इतना विशेष है कि उनमें जघन्य अनुभाग नहीं है। इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ३८८. सामान्य तिर्यञ्चोंमें बाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघ की तरह है। सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघ की तरह है। इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोंमें उसका जघन्य अनुभाग नहीं है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनियोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग योनिनियोंके समान है।

§ ३८९. मनुष्योंमें मिथ्यात्व और आठ कषायके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व, आठ कषाय और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सम्यग्मिथ्यात्व और छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्त-

मज० सव्वद्धा । एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुसिणीणं । णवरि जम्हि पलिदो० असंखे० भागो तम्हि अंतोमु० । मणुसपज्ज० इत्थि० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु० । मणुसिणी० पुरिस०-णवुंस० छण्णोक०भंगो । मणुसअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ३९०. सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति बावीसंपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० सव्वद्धा । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० ओघं । एवमणुदिसादि जाव अवराइद त्ति । णवरि अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवं सव्वट्ठे । णवरि अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

मुहूर्त है । सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि जिसका काल पल्यके असंख्यातवें भाग बतलाया है उसका यहाँ अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए । मनुष्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग छह नोकषायों की तरह है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

§ ३९०. सौधर्म स्वर्गसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आदेशसे सामान्य नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग मरकर नरकमें जन्म लेनेवाले हतसमुत्पत्तिककर्मा असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके होता है । एक साथ अनेक ऐसे जीव जन्म लें और दूसरे समयमें अनुभागको यदि बढ़ा लें तो जघन्य काल एक समय होता है और यदि लगातार ऐसे जीव उत्पन्न होते जांय तो उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें लगा लेना । मनुष्योंमें मिथ्यात्व आदि नौ प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके जघन्य और उत्कृष्ट कालको भी इसी तरह घटा लेना चाहिये । अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग संयुक्त होनेके प्रथम समयमें होता है, अतः नाना जीवोंकी अपेक्षा भी उसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । देवोंमें अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग विसंयोजकके होता है, अतः उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपराजित पर्यन्त पल्यका असंख्यातवाँ भाग है और सर्वार्थसिद्धिमें अन्तर्मुहूर्त है ।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं।

§ ३९१. सुगममेदं, अहियारसंभालणत्तादो ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमंतर केवचिरं कालादो होदि ?

§ ३९२. सुगममेदं ।

❀ जहण्णेण एगसमओ ।

§ ३९३. कुदो ? उक्कस्साणुभागेण विणा तिहुवणासेसजीवेसु एगसमयमच्छिदेसु विदियसमए तत्थ केत्तिएहि वि उक्कस्साणुभागे बंधे एगसमयअंतरुवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।

§ ३९४. कुदो ? उक्कस्साणुभागेण विणा असंखे०लोगमेत्तकालमच्छिय पुणो तिहुवणजीवेसु केत्तिएसु वि उक्कस्साणुभागमुवगएसु असंखेज्जलोगमेत्तुक्कस्संतरुवलंभादो। अणंतमंतरं किण्ण जादं ? ण, परिणामेसु आणंतियाभावादो[1] । अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि चेवे त्ति कुदो णव्वदे ? अणुभागबंधट्ठाणाणमसंखेज्जलोगपमाणत्तण्णहाणुववत्तीदो । ण च कारणेसु अणंतेसु संतेसु कज्जाणि असंखेज्ज-

---

❀ नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका प्रकरण है ।

§ ३९१. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसके द्वारा अधिकारकी सम्हाल की गई है।

❀ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ३९२. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ३९३. क्योंकि तीनों लोकोंके समस्त जीवोंके एक समय तक उत्कृष्ट अनुभागके बिना रहने पर और दूसरे समयमें उनमेंसे कितने ही जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर एक समय अन्तर पाया जाता है ।

❀ उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ३९४. क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागके बिना असंख्यात लोकप्रमाण काल तक रहने पर, पुनः तीन लोकके जीवोंमें से कुछके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध कर लेने पर असंख्यात लोक मात्र उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

शंका—अनन्त काल अन्तर क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि परिणाम अनन्त नहीं हैं ।

शंका—अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक मात्र ही हैं यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकमात्र न होते तो अनुभागबन्धके स्थान असंख्यात लोकप्रमाण नहीं होते। यदि कहा जाय कि अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान अनन्त रहें और अनुभागबन्धस्थान असंख्यात लोक मात्र रहें। किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि कारणके अनन्त होने पर कार्य असंख्यात लोकमात्र नहीं हो सकते, क्योंकि

---

१. ता० प्रतौ आणंतिय (या) भावादो, आ० प्रतौ आणंतियभावादो इति पाठः ।

लोगमेत्ताणि चेव होंति, विरोहादो ।

❀ एवं सेसकम्माणं[1]

§ ३९५. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णमुक्कस्सं च उक्कस्साणुभागंतरं परूविदं तहा सेसासेसकम्माणं परूवेदव्वं, विसेसाभावादो । एत्थतणविसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि ।

❀ णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि अंतरं ।

§ ३९६. कुदो ? सम्मादिट्ठीहिंतो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणाणमंतरं पेक्खिय सम्मत्तसंतकम्मेण मिच्छाइट्ठीणं सम्माइट्ठीणं च अच्छणकालस्स असंखे०गुणत्तादो । एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूणंतरपरूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सियूण अंतरपरूवणं कस्सामो ।

§ ३९७. अंतरं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसंपयडीणमुक्कस्साणु०अंतरं केव० ? ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणुक्क० णत्थि अंतरं । सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताणमुक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा ।

§ ३९८. आदेसेण णेरइएसु एवं चेव । णवरि सम्मत्त० अणुक्क० ज० एगस०,

---

अनन्त कारणोंसे असंख्यात कार्योंके होनेमें विरोध है ।

* इसी प्रकार शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका अन्तरकाल कहना चाहिये ।

§ ३९५. जैसे मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा वैसे ही बाकीके सभी कर्मोंका कहना चाहिये, उससे इनके अन्तरकालमें कोई विशेष नहीं हैं । जो कुछ विशेष हैं उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तरकाल नहीं है ।

§ ३९६. क्योंकि सम्यग्दृष्टियोंमें से मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्तरकालकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी सत्ताके साथ मिथ्यादृष्टियों और सम्यग्दृष्टियोंके रहनेका काल असंख्यात गुणा है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे अन्तरको कहकर अब उच्चारणाके आश्रयसे अन्तरका कथन करते हैं—

§ ३९७. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्ट अवसर प्राप्त है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ।

§ ३९८. आदेशसे नारकियोंमें इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है । सम्यग्मि-

---

१, ता० प्रतौ सेसाणं कम्माणं इति पाठः ।

उक्क० वासपुधत्तं । सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं । एवं पढमपुढवि--तिरिक्खतिय-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सम्मत्त० अणुक्कस्साणु० णत्थि । एवं जोणिणी--पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त-भवण०-वाण०-जोदिसिओ त्ति ।

§ ३९९. मणुसतिय० ओघं । णवरि मणुसिणीसु सम्मत्त-सम्मामि० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० छब्बीसंपयडीणं उक्क० ओघं । अणुक्क० सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ४००. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छब्बीसंपयडीणमुक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । णवरि सव्वट्ठे पलिदो० असंखे०भागो । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

थ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिये । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग उनमें नहीं है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए ।

§ ३९९. सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें ओघकी तरह भङ्ग है । इतना विशेष है कि मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघकी तरह है । उनके अनुत्कृष्ट अनुभागका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ४००. आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । इतना विशेष है कि सर्वार्थसिद्धिमें उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग दर्शनमोहके क्षपकके होता है, अतः नाना जीवोंकी अपेक्षा क्षपकका जितना अन्तर है उतना ही अन्तर इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका भी होता है। आदेशसे नारकियोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर जघन्यसे तो एक ही समय है किन्तु उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है, अर्थात् कोई कृतकृत्यवेदक इतने काल तक नरकमें नहीं पाया जाता । मनुष्यिनियोंमें भी उत्कृष्ट अन्तर इतना ही है, क्योंकि मनुष्यिनियोंमें क्षपकका भी अन्तरकाल इतना ही बतलाया है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है, क्योंकि यह सान्तर मार्गणा

❀ जहण्णाणुभागकम्मंसियंतरं णाणाजीवेहि ।

§ ४०१. सुगममेदं अहियारसंभालणसुत्तादो ।

❀ मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं णत्थि अंतरं ।

§ ४०२. कुदो ? आणंतियादो ।

❀ सम्मत्त--सम्मामिच्छत्त--लोभसंजलण-छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४०३. सुगमं ।

❀ जहण्णेण एगसमओ ।

§ ४०४. सुगमं ।

❀ उक्कस्सेण छम्मासा ।

§ ४०५. खवगसेढीए एदासिं पयडीणं जहण्णाणुभागसमुप्पत्तीदो । का खवगसेढी णाम ? कम्मखवणपरिणामपंती । जदि एवं तो अणंताणुबंधिचउक्क० विसंजोयणपरिणामपंतीए वि खवगसेढी सण्णा पावदे ? ण, तेसिं पुणरुप्पज्जमाणसहावाणं

है और उसका अन्तरकाल भी इतना ही बतलाया है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट तथा अनुत्कृष्ट अनुभाग और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग सदा पाया जाता है, अतः अन्तर नहीं है। सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है जो कि वहां उत्पन्न होनेवाले कृतकृत्यवेदक सम्यग्मिदृष्टियोंकी अपेक्षा जानना, क्योंकि उन्हींके सम्यक्त्वका अनत्कृष्ट अनुभाग होता है। इतना विशेष है कि सर्वार्थसिद्धिमें यह अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

* नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर कहते हैं।

§ ४०१. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसमें अधिकारको सम्भाला गया है।

* मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर नहीं है।

§ ४०२. क्योंकि इनका प्रमाण अनन्त है।

* सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्वलन लोभ, और छ नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ४०३. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तर एक समय है।

§ ४०४. यह सूत्र सुगम है।

* उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ?

§ ४०५. क्योंकि इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणीमें उत्पन्न होता है।

शंका—क्षपकश्रेणी किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्मोंके क्षपणके कारणभूत परिणामोंकी पंक्तिको क्षपकश्रेणी कहते हैं।

शंका—यदि क्षपकश्रेणीका यह लक्षण है तो अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेवालेपरिणामों [illegible] भी क्षपकश्रेणी नाम प्राप्त होता है ?

खीणत्तविरोहादो।

❀ अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केविचरं कालादो होदि ?

§ ४०६. सुगमं।

❀ जहण्णेण एगसमओ।

§ ४०७. सुगमं।

❀ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।

§ ४०८. कुदो ? संजुज्जमाणपरिणामाणमसंखे०लोगपमाणत्तादो। ण च सव्वेहि परिणामेहि संजुज्जंतस्स जहण्णाणुभागो होदि, सव्वविसुद्धपरिणामं मोत्तूण अण्णत्थ तदणुवलंभादो।

❀ इत्थि-णवुंसयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४०९. सुगमं।

❀ जहण्णेण एगसमओ।

४१०. सुगमं।

❀ उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि।

समाधान—नहीं, क्योंकि वे पुनः उत्पन्न स्वभाववाली हैं अतः उन्हें क्षीण माननेमें विरोध आता है।

❀ अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर काल कितना है ?

§ ४०६. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तर एक समय है।

§ ४०७. यह सूत्र सुगम है।

* उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

§ ४०८. क्योंकि अनन्तानुबन्धीके संयोजनके कारणभूत परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। और सभी परिणामोंसे संयुक्त होनेवालोंके अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग नहीं होता, क्योंकि सर्वविशुद्ध परिणामको छोड़कर अन्यत्र वह नहीं पाया जाता है।

* स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तरकाल कितना है।

§ ४०९. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तर एक समय है।

§ ४१०. यह सूत्र सुगम है।

* उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्ष है।

§ ४११. कुदो ? इत्थि-णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिमारुहंताणं वासपुधत्तंतरुवलंभादो ।

❀ तिसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४१२. सुगमं ।

❀ जहण्णेण एगसमओ ।

§ ४१३. सुगमं ।

❀ उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं ।

§ ४१४. पुरिसवेदस्स ताव उच्चदे । तं जहा—पुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चढिय तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं काऊण छम्मासमंतरिय पुणो इत्थिवेदेण खवगसेढिं चढिय छम्मासमंतरिय पुणो णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिं चढावेदव्वो । एवं संखेज्जेसु वारेसु गदेसु पच्छा पुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चढिय तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मे कदे सादिरेगेगवस्समेत्तमुक्कस्संतरं होदि । संखेज्जाणि वस्साणि किण्ण होंति ? ण, सव्वेसिमंतराणं छम्मासपमाणत्ताभावादो । सव्वाणि अणंताणि छम्मासपमाणाणि ण होंति त्ति कुदो णव्वदे ? वासं सादिरेयमंतरमिदि सुत्तणिद्देसादो । एवं तिण्हं संजलणाणं

§ ४११. क्योंकि स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवालोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व पाया जाता है ।

*** तीन संज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर काल कितना है ?**

§ ४१२. यह सूत्र सुगम है ।

*** जघन्य अन्तर एक समय है ।**

§ ४१३. यह सूत्र सुगम है ।

*** उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है ।**

§ ४१४. पहले पुरुषवेदका अन्तर कहते हैं, जो इस प्रकार है—पुरुषवेदके उदयसे क्षपक श्रेणि पर चढ़कर और उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म करके क्षपकश्रेणिका छह मासका अन्तर दिया पुनः स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़कर छह मासका अन्तर दिया पुनः नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़ाना चाहिए । इस प्रकार संख्यात वार होनेपर पीछे पुरुषवेदके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़कर पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होनेपर पुरुषवेदके जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष होता है ।

शंका—संख्यात वर्ष अन्तर क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सभी अन्तरोंका प्रमाण छः मास नहीं है ।

शंका—सभी अन्तरोंका प्रमाण छः मास नहीं है यह कैसे जाना ?

---

१. ता० प्रतौ वस्ससहस्साणि किण्ण इति पाठः।

वत्तव्वं, सादिरेयवस्संतरत्तेण विसेसाभावादो। कोधसंजलणस्स दो वस्साणि अंतरं किण्ण होदि ? ण, सव्वेसिमंतराणमेगादिसंजोगजणिदाणं छम्मासणियमाभावादो। एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण अंतरपरूणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण परूवेमो।

§ ४१५. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तअट्ठ-कसा० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि०-लोभसंज०-छण्णोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक० छम्मासा। अज० णत्थि अंतरं। अणंताणुचउक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क असंखे० लोगा। अज० णत्थि अंतरं। तिण्णिसंज०-पुरिस० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक० वासं सादिरेयं। अज० णत्थि अंतरं। इत्थि-णवुंस० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक० वासपुधत्तं। अज० णत्थि अंतरं। एवं मणुस्सोघं। णवरि मिच्छत्त-अट्ठकसा० जह० ज० एगस०, उक० असंखे०लोगा।

§ ४१६. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणं जहण्णाणु० ज० एगस०, उक०

समाधान—क्यों कि सूत्रमें पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट अन्तर एक वर्षसे कुछ अधिक बतलाया है। इससे जाना कि सभी अन्तरोंका प्रमाण छः मास नहीं होता। इसी प्रकार तीनों संज्वलन कषायोंका भी अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि साधिक एक वर्षप्रमाण अन्तरसे उसमें कुछ विशेषता नहीं है।

शंका—संज्वलन क्रोधका अन्तर दो वर्ष क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एकादि संयोगसे उत्पन्न हुए सभी अन्तर छह मासप्रमाण होते हैं ऐसा कोई नियम नहीं है। तात्पर्य यह है कि क्रोध, मान, माय और लोभके उदयसे छह छह माहके अन्तरसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है ऐसा कोई नियम नहीं है, अतः तीनों संज्वलनोंके जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर दो वर्ष न कह कर साधिक एक वर्ष कहा है।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे अन्तरका कथन करके अब उच्चारणाके आश्रयसे अन्तर का कथन करते हैं—

§ ३१५. जघन्यका कथन अवसर प्राप्त है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्वलनलोभ और छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। तीन संज्वलन कषाय और पुरुषवेदके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्योंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

§ ४१६. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर

असंखे०लोगा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि० अज० णत्थि अंतरं । एवं पढमपुढवि०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं त्ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा । अज० णत्थि अंतरं । एवं जोदिसि० ।

- ४१७. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु बावीसंपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । एवं सम्मामि० । णवरि जहण्णं णत्थि । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० णत्थि अंतरं । एवं सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति । जोणिणी० छब्बीसंपयडीणं जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० अज० णत्थि अंतरं । एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-भवण०-वाणवेंतराणं । मणुसपज्ज० मणुस्सोघं । णवरि इत्थि० हस्सभंगो । मणुसिणी० एवं चेव । णवरि खवगपयडीणमंतरं वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० छब्बीसंपयडीणं ज० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०-

---

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और सामान्य देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार ज्योतिषीदेवोंमें जानना चाहिए।

§ ४१७. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें बाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोंमें उसका जघन्य अनुभाग नहीं होता। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सौधर्म स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। योनिनियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिए। मनुष्य-पर्याप्तकोंमें सामान्य मनुष्योंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका अन्तर हास्यके समान है। मनुष्यिनियोंमें भी इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि इनमें क्षपकश्रेणिमें जिन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग होता है उनका अन्तर वर्षपृथक्त्व है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और

भागो। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक०ज० अज० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। सव्वट्ठे पलिदो० संखे०भागो। अजह० णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४१८. सण्णियासो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तस्स जो उक्कस्साणुभागविहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ णियमा उक्कस्सविहत्तिओ। सोलसक०-णवणोक० णियमा विहत्तिओ। तं तु छट्ठाणपदिदो। एवं सोलसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त० उक्कस्साणुभागस्स जो विहत्तिओ सो सम्मामिच्छत्तस्स णियमा उक्कस्सविहत्तिओ। मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० णिय०

उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। सर्वार्थसिद्धिमें इनका उत्कृष्ट अन्तर पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर जिस प्रकार चूर्णिसूत्रोंमें कहा है वैसे ही ओघसे और आदेशसे भी जानना चाहिए। आदेशसे कहीं कहीं कुछ विशेषता है, जैसे तिर्यञ्चयोनिनियोंमें और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक कहा है सो इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग इन पर्यायोंमें मरकर जन्म लेनेवाले हतसमुत्पत्तिककर्मा यथायोग्य एकेन्द्रियादिक जीवोंके होता है, उन्हींकी उत्पत्तिकी अपेक्षासे यह अन्तर काल कहा है। सम्यक्त्व प्रकृतिके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व उसी प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरकी तरह जानना।

§ ४१८. सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका अवसर है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला होता है कदाचित् अविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। तथा वह सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी अनुभागविभक्तिवाला नियमसे होता है किन्तु वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। यदि अनुत्कृष्ट होती है तो नियमसे षट्स्थानपतित होती है। इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायों की अपेक्षा जानना चाहिए। जो जीव सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। तथा वह मिथ्यात्व बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अनुभागविभक्तिवाला नियमसे होता है जो उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला

तं तु छट्ठाणपदिदो। अणंताणु०चउक्क० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ तं तु छट्ठाणपदिदो। एवं सम्मामिच्छत्तस्स। णवरि सम्मत्त० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ णियमा उक्कस्सविहत्तिओ। एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं।

§ ४१६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त० उक्क० जो विहत्तिओ सो सम्म०-सम्मामि० सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ णियमा उक्कस्सविहत्तिओ। सोलसक०-णवणोक० णियमा० तं तु छट्ठाणपदिदो। एवं सोलसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त० जो उक्क० विहत्तिओ सो सम्मामि० णियमा उक्क० विहत्तिओ। मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० तं तु छट्ठाणपदिदो। अणंताणु०चउक्क० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। तं तु छट्ठाणपदिददो। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि। णवरि सम्मत्तस्स सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ णियमा उक्कस्सविहत्तिओ। एवं पढमपुढवि-तिरिक्खतिय--देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सार

होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी कदाचित् विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है यदि विभक्तिवाला होता है तो वह उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वह कदाचित् सम्यक्त्वकी विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्टविभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें कहना चाहिये।

§ ४१९. आदेशसे नारकियोंमें जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुभागविभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। वह सोलह कषाय और नव नोकषायों की नियमसे विभक्तिवाला होता है। किन्तु वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है, और अनुत्कृष्टविभक्तिवाला होता है। यदि अनुत्कृष्टविभक्तिवाला होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष होता है। जो सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाला है वह नियमसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। वह मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है। किन्तु वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्टविभक्तिवाला भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी कदाचित् विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह षट्स्थान पतित विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भी जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला कदाचित् सम्यक्त्वकी विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय

त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। एवं जोणिणी०--पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण-वाण०-जोदिसिया त्ति। णवरि पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज० सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्साणु०विहत्ति० अणंताणु०चउक्क० बारसकसायभंगो।

§ ४२०. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छत्त० उक्कस्साणुभागविहत्तिओ सम्मत्त-सम्मामि० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ णियमा उक्कस्सा। सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क०। एवं सोलसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त० उक्क० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०--णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० तं तु अणंतगुणहीणा। अणंताणु० चउक्क० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ तं तु अणंतगुणहीणा। सम्मामि० णियमा उक्क० विहत्तिओ। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं। णवरि सम्मत्तस्स सिया विहत्तियो सिया अविहत्तिओ। जदि विहत्तिओ णियमा उक्कस्सविहत्तिओ।

§ ४२१. अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त० उक्कस्साणुभागविहत्तिओ

तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंके अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग बारह कषायोंके समान है।

§ ४२०. आनत स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। सोलह कषायों और नव नोकषायकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है अथवा अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है या अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह अनन्तगुणी हीन विभक्तिवाला होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी कदाचित् विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह नियमसे अनन्तगुण हीन विभक्तिवाला होता है। तथा वह नियमसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्ष कहना चाहिये। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला कदाचित् सम्यक्त्वकी विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है।

§ ४२१. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभाग विभक्ति-

सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क०? णियमा उक्कस्सविहत्तिओ। एवं सोलसकसाय--णवणोकसायाणं। सम्मत्त० उक्क० विहत्तिओ मिच्छ०--बारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? तं तु अणंतगुणहीणा। अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि तं तु अणंतगुणहीणा। सम्मामि० णियमा उक्कस्सविहत्तिओ। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४२२. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तस्स जो जहण्णाणुभागविहत्तिओ तस्स सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताणि सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया। अणंताणु०चउक०-चदुसंज०-णवणोक० णियमा अज० अणंतगुणब्भहिया। अट्ठक० णियमा तं तु छट्ठाण-पदिदा। एवं अट्ठकसायाणं। सम्मत्त० जहण्णाणु०विहत्ति० बारसक०--णवणोक० णियमा अज० अणंतगुणब्भहिया। सेसपयडीओ णत्थि। सम्मामि० जहण्णाणु०विहत्ति० सम्मत्त०--बारसक०--णवणोक० णियमा अज० अणंतगुणब्भहिया। अणंताणु०कोध०

वाला सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है या अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? वह नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है या अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्ति वाला भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह अनन्तगुण हीन विभक्तिवाला होता है। उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् होता है कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो वह उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट होता है तो वह अनन्त-गुण हीन होता है। वह सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भी कहना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

§ ४२२. अब जघन्य अवसरप्राप्त है। निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। ओघसे जो मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाला है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। यदि होते हैं तो नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और नव नोकषाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होते हैं। आठ कषाय नियमसे होती हैं किन्तु वे जघन्य भी होती हैं और अजघन्य भी होती हैं। यदि अजघन्य होती हैं तो नियमसे षट्स्थान पतित अनुभागको लिये हुए होती हैं। इसी प्रकार आठ कषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके बारह कषाय और नव नोकषाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। उसके शेष प्रकृतियां अर्थात् अनन्तानुबन्धी चतुष्क, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये प्रकृतियाँ नहीं होतीं। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी

जहण्णाणु०विहत्ति० मिच्छत्त--सम्मत्त-सम्मामि०--बारसक०--णवणोक० णियमा अज० अणंतगुण०भहिया। माण-माया-लोभाणं किं ज० किमज० ? तं तु छट्ठाणपदिदा। एवं सेसतिण्हं कसायाणं। कोधसंजल० जहण्णाणु०विहत्ति० तिण्हं संजल० किं ज० अज० ? णि० अज० अणंतगुण०भहिया। माणसंज० ज० विहत्ति० माया-लोभसंज०- किं ज० अज० ? णियमा अज० अणंतगुण०भहिया। कोधसंजलणादिहेट्ठिमपयडीओ णत्थि। मायसंज० ज० विहत्ति० लोभसंज० णियमा अज० अणंतगुण०भहिया। लोभसंज० जहण्णाणु० सेसपयडीओ णत्थि। इत्थि० जहण्णाणु० सत्तणोक०-चदुसंज० णियमा अज० अणंतगुण०भहिया। एवं णवुंसयवेदस्स। पुरिस० जहण्णाणु०विहत्ति० चदु-संज० णियमा अज० अणंतगुण०भहिया। हस्स-जहण्णाणु०वि० पुरिस०–चदुसंज० णि० अज० अणंतगुण०भहिया। पंचणोक० णि० जहण्णा। एवं पंचणोकसायाणं।

§ ४२३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त० जहण्णाणु० सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि णि० अज० अणंतगुण०भहिया। अणंताणु०चउक्क० णि० अज० अणंतगुण०भहिया। बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? तं तु छट्ठाणपदिदा।

जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। उसके अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका क्या जघन्य अनुभाग होता है या अजघन्य अनुभाग होता है ? उनका जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो षट्स्थानपतित अनुभाग होता है। इसी प्रकार शेष तीन कषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। संज्वलन क्रोधकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मान, माया और लोभ संज्वलनका क्या जघन्य होता है या क्या अजघन्य होता है ? नियमसे अजघन्य अनुभाग होता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मान संज्वलनकी जघन्य विभक्तिवालेके माया संज्वलन और लोभ संज्वलनका क्या जघन्य होता है या अजघन्य होता है ? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है। नीचेकी क्रोध संज्वलन आदि प्रकृतियाँ उसके नहीं होतीं। माया संज्वलनकी जघन्य विभक्तिवालेके लोभ संज्वलन नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होता है। लोभ संज्वलनकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके शेष प्रकृतियाँ नहीं होतीं। स्त्रीवेदकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सात नोकषाय और चारों संज्वलन कषाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके चार संज्वलनकषाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। हास्यकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके पुरुषवेद और चारों संज्वलन नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। पांच नोकषाय नियमसे जघन्य होती हैं। इसी प्रकार शेष पांचों नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ४२३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सम्यक्त्व कदाचित् होता है कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होता है। बारह कषाय और नव नोकषायका क्या जघन्य होता है या

एवं बारसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त० जहण्णाणु० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णि० अज० अणंतगुणब्भहिया। अणंताणु०कोध० जहण्णाणु० मिच्छत्त०-सम्मत्त०-बारसक०-णवणोक० णि अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया। तिण्णिक० तं तु छट्ठाणपदिदा। एवं तिण्हमणंताणुबंधीणं। पढमपुढवि० देवोघं। भवण०-वाणवेंतराणं णेरइयभंगो। णवरि भवण०-वाणवें० सम्म० जहण्णं णत्थि।

§ ४२४. विदियादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्त० जहण्णाणु० अणंताणु०चउक० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि किं ज० अज०? तं तु छट्ठाणपदिदा। बारसक०-णवणोक० णियमा जहण्णा। एवं बारसक०-णवणोकसायाणं। अणंताणु०कोध० जह० मिच्छ०-बारसक०--णवणोक० किं ज० अज०? णि० जहण्णा। माण--माया--लोभ० किं ज० किमज०? तं तु छट्ठाणपदिदा। एवं माण-माया-लोभाणं।

§ ४२५. तिरिक्खगदीए तिरिक्ख--पंचिंदियतिरिक्ख--पंचिं०तिरि०पज्ज० मिच्छत्त० जहण्णाणु० सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि णियमा अज०

अजघन्य होता है? वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके बारह कषाय और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है। अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार शेष तीन अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोंमें नारकियोंके समान भंग होता है। इतना विशेष है कि भवनवासी और व्यन्तरोंमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता।

§ ४२४. दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो जघन्य होता है या अजघन्य? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थानपतित होता है। बारह कषाय और नव नोकषाय नियमसे जघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। इसी प्रकार बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व, बारह कषाय, और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? नियमसे जघन्य होता है। अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ४२५. तिर्यञ्चगतिमें सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सम्यक्त्व कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होता है।

अणंतगुण०भहिया। अणंताणु०चउक० णियमा अज०अणंतगुण०भहिया। बारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? तं तु छट्ठाणपदिदा। एवं बारसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त० जहण्णाणु० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णियमा अज० अणंतगुण०भहिया। अणंताणु०कोध० जहण्णाणु० मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णि० अज० अणंतगुण०भहिया। तिण्णिकसाय० किं ज० किमज०? तं तु छट्ठाणपदिदा। एवं सेसतिण्हमणंताणुबंधीणं। एवं जोणिणी०। णवरि सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त० जहण्णाणु० सोलसक०--णवणोक०--णियमा तं तु छट्ठाणपदिदा। एवं सोलसक०-णवणोक०। मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

§ ४२६. मणुस्साणमोघं। मणुसपज्ज० एवं चेव। णवरि इत्थिवेद-जहण्णाणुभागविहत्तियस्स णवुंस० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि णियमा अज० अणंतगुण०भहिया। मणुसिणीणमोघं। णवरि णवुंस० जहण्णाणु० इत्थि० णि० अज० अणंतगुण०भहिया। पुरिस० छण्णोकसायभंगो।

अनन्तानुबन्धी चतुष्कका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभाग होता है। बारह कषाय और नव नोकषायका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके बारह कषाय और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभाग होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारहकषाय और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभाग होता है। अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार शेष तीन अनन्तानुबन्धिकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वका जघन्य नहीं होता। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सोलह कषाय और नव नोकषायोंका अनुभागसत्कर्म नियमसे होता है किन्तु वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भंग है।

§ ४२६. सामान्य मनुष्योंमें ओघवत् जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि स्त्रीवेदकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके नपुंसकवेद कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो नियमसे अनन्तगुण अधिक अनुभागको लिए हुए अजघन्य होता है। मनुष्यिनियोंमें ओघवत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि नपुंसकवेदकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके स्त्रीवेदका नियमसे अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुए अजघन्य होता है तथा पुरुषवेदका भङ्ग छह नोकषायके समान है।

§ ४२७. जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि० जाव णवगेवज्ज० मिच्छत्त० जहण्णाणु० सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० णि० अज० अणंतगुणब्भहिया। सम्मत्त० जहण्णाणु० बारसक०-णवणोक० किं ज० किमज० ? तं तु अणंतगुणब्भहिया। अणंताणु०कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० णि० अज० अणंतगुणब्भहिया। तिण्हमणंताणुबंधीणं तं तु छट्ठाणपदिदा। एवं सेसतिण्हमणंताणुबंधीणं। अपच्चक्खाणकोध० ज० एक्कारसक० णवणोक० णि० जहण्णा। सम्मत० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि तं तु अणंतगुणब्भहियं। एवमेक्कारसक० णवणोकसायाणं। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति एवं चेव। णवरि अणंताणुकोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० णियमा० अज० अणंतगुणब्भहिया। तिण्णिक० णि० जहण्णा। एवं सेसतिण्हं कसायाणं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४२८. भावाणु० सव्वत्थ ओदइओ भावो।

❀ अप्पाबहुअमुक्कस्सयं जहा उक्कस्सबंधो तहा।

---

§ ४२७. ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। सौधर्म स्वर्गसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुए अजघन्य होता है। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके बारह कषाय और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुए होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अजघन्य होता है जो अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुए होता है। शेष तीनों अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य भी होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह षट् स्थान पतित होता है। इसी प्रकार शेष तीनों अनन्तानुबन्धियोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके शेष ग्यारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे जघन्य होता है। सम्यक्त्व कदाचित् होता है कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो जघन्य भी होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुये होता है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें ऐसे ही जानना चाहिये। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभाग होता है। शेष तीनों अनन्तानुबन्धियोंका नियमसे जघन्य होता है। इसी प्रकार शेष तीनों अनन्तानुबन्धी कषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

§ ४२८. भावानुगमकी अपेक्षा सब विभक्तिवालोंके औदयिक भाव होता है।

* जैसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अल्पबहुत्व है वैसे ही उत्कृष्ट सत्कर्मका अल्प-

§ ४२६. जहा उक्कस्साणुभागबंधे उक्कस्सोणुभागस्स अप्पाबहुअं परूविदं तहा परूवेयव्वं, विसेसाभावादो। तं जहा—सव्वतिव्वो मिच्छत्तुक्कस्साणुभागबंधो। अणंताणुबंधिलोभाणुभागबंधो अणंतगुणहीणो। मायाए उक्कस्साणुभागबंधो विसेसहीणो। कोधुक्कस्साणु० विसेसहीणो। माणुक्कस्सा० विसेसहीणो। लोभसंजलणउक्कस्साणुभागबंधो अणंतगुणहीणो। मायाए उक्कस्साणु० विसेसहीणो। पच्चक्खाणलोभ० अणंतगुणहीणो। माया० विसेसहीणो। कोधुक्क० विसेसहीणो। माणुक्कस्सा० विसेसहीणो। अपच्चक्खाणलोभुक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो। माया० विसेसहीणो। कोधुक्क० विसेसहीणो। माणुक्कस्सा० विसेसहीणो। णवुंस०उक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो। अरदिउक्क० अणंतगुणहीणो। सोग०उक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो। भय० उक्क० अणंतगुणहीणो। दुगुंछाए उक्क० अणंतगुणहीणो। इत्थि० उक्क० अणंतगुणहीणो। पुरिस० उक्क० अणंतगुणहीणहीणो। रदीए उक्क० अणंतगुणहीणो। हस्स० उक्क० अणंतगुणहीणो। एदमुक्कस्सबंधस्स अप्पाबहुअं उक्कस्साणुभागसंतस्स कधं होदि? कधं च ण होदि? बंधावलियादिक्कंतट्ठिदीणं व अण्णोण्णसंकमेण अणुभागस्स सरिसत्तुवलंभादो।

बहुत्व है।

§ ४२९. जैसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें उत्कृष्ट अनुभागका अल्पबहुत्व कहा है वैसे ही यहाँ भी कहना चाहिए। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। वह अल्पबहुत्व इस प्रकार है—मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सबसे तीव्र है। उससे अनन्तानुबन्धी लोभका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे मायाका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे क्रोधका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे मानका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे संज्वलन लोभका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे मायाका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे क्रोधका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे मानका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे प्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्त गुणा हीन है। उससे मायाका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे क्रोधका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे मानका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणाहीन हैं। उससे मायाका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे क्रोधका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे मानका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है उससे अरतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे शोकका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे भयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे जुगुप्साका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे स्त्रीवेदका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे पुरुषवेदका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे रतिका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे हास्यका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है।

शंका—यह तो उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अल्पबहुत्व है। यह अल्प बहुत्व उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्मका कैसे हो सकता है?

समाधान—क्यों नहीं हो सकता? जैसे बन्धावलीसे बाह्य कर्मोंकी स्थितियाँ परस्परके

होदु णाम संकमेण बंधावलियादिक्कंतट्ठिदीणं सरिसत्तं णाणुभागस्स सगवज्झमाणाणु-भागसरूवेण संकामिज्जमाणपदेसाणुभागाणं परिणामुवलंभादो। बंधाणुसारी अणु-भागसंतकम्मो त्ति कुदो णव्वदे? जहा उक्कस्सबंधो तहा उक्कस्साणुभागअप्पाबहुअं णेदव्वमिदि चुण्णिसुत्तादो। बंधप्पाबहुआदो एदस्स अप्पाबहुअस्स विसेसपरूवणट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि।

❀ णवरि सव्वपच्छा सम्मामिच्छत्तमणंतगुणहीणं।

§ ४३०. सव्वपच्छा बंधुक्कस्साणुभागसव्वप्पाबहुएहिंतो पच्छा हस्सुक्कस्साणु-भागादो सम्मामिच्छत्तुक्कस्साणुभागो अणंतगुणहीणो त्ति वत्तव्वं। कुदो? सम्मामि-च्छत्तुक्कस्साणुभागसंतकम्मं दारुसमाणफद्दयाणमणंतिमभागे अवट्ठिदं हस्सुक्कस्साणुभाग-बंधो पुण सेलसमाणफद्दएसु अवट्ठिदो तेण हस्सुक्कस्साणुभागादो सम्मामिच्छत्तुक्कस्सा-णुभागो अणंतगुणहीणो। बंधे सम्मामिच्छत्तप्पाबहुअं किण्ण कयं? ण, संतपयडीए बंधम्मि अहियाराभावादो।

संक्रमणसे समान हो जाती हैं वैसे ही बन्धावलीसे बाह्य अनुभाग भी परस्परके संक्रमणसे समान हो जाता है। यदि कहा जाय कि संक्रमणसे बन्धावलीसे बाह्य स्थितियाँ भले ही समान हो जाओ, किन्तु अनुभाग समान कैसे हो सकता है; सो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि संक्रमको प्राप्त होनेवाले प्रदेशोंका अनुभाग. बँधनेवाले अपने कर्मोंके अनुभागरूपसे परिणमन करता हुआ उपलब्ध होता है। तात्पर्य यह है कि विवक्षित कर्मका बन्ध होते समय बन्धावलि बाह्य विवक्षित कर्मका द्रव्य संक्रमण करता है, इसलिए उसमें अनुभागसंक्रमण भी हो जाता है, इसमें कोई बाधा नहीं है।

शंका—अनुभागसत्कर्म अनुभागबन्धके अनुसार ही होता है यह किसप्रमाणसे जाना?

समाधान—जैसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अल्प बहुत्व है वैसे ही उत्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्मका अल्पबहुत्व जानना चाहिए इस चूर्णि सूत्रसे जाना।

उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अल्पबहुत्वसे इस अल्पबहुत्वका अन्तर बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु सबसे अन्तिम अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।**

§ ४३०. सबपश्चात् अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागबन्धके सब अल्पबहुत्वोंमें अन्तिम हास्यके उत्कृष्ट अनुभागसे सम्यमिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म दारु समान स्पर्धकोंके अनन्तवें भाग में अवस्थित है और हास्यका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध शैल समान स्पर्धकोंमें अवस्थित है; अतः हास्यके उत्कृष्ट अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

शंका—बन्ध प्रकरणमें सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं कहा, क्योंकि सत्व प्रकृतिका बन्धमें अधिकार नहीं है। अर्थात् सम्य-ग्मिथ्यात्व प्रकृतिका बन्ध नहीं होता किन्तु वह सत्व प्रकृति है, अतः उसका बन्धमें कथन नहीं किया।

❀ सम्मत्तमणंतगुणहीणं।

§ ४३१. कुदो? सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागफद्दयादो हेट्ठा अणंतगुणहीणं होदूण सम्मत्तुक्कस्सफद्दयस्स अवट्ठाणादो। जथा ओघप्पाबहुअं परूविदं तहा चदुसु वि गदीसु णेयव्वं, विसेसाभावादो। एवमुवरि जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

❀ जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियदंडओ।

§ ४३२. जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियजीवाणमणुभागमस्सिदूण अप्पाबहुअ-दंडओ कीरदि त्ति भणिदं होदि।

❀ सव्वमंदाणुभागं लोभसंजलणस्स अणुभागसंतकम्मं।

§ ४३३. कुदो? कोधकिट्टिवेदयपढमसमयप्पहुडि अणंतगुणहीणाए सेढीए अणुसमयमोवट्टणघादमुवणमिय पुणो सुहुमसांपरायचरिमसमए सुहुमकिट्टिसरूवाणु-भागम्मि जहण्णत्तुवलंभादो।

❀ मायासंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।

§ ४३४. कुदो? मायावेदगचरिमसमयम्मि बद्धस्स मायावेदगतदियबादर-संगहकिट्टिसरूवस्स णवगबंधस्स गहणादो। लोभबादरतिण्णिसंगहकिट्टीहिंतो अणंत-

---

* सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

§ ४३१. क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभाग स्पर्धकोंसे नीचे अनन्तगुणे हीन होकर सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागस्पर्धक अवस्थित हैं। अर्थात् सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभाग स्पर्धक सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागस्पर्धकोंसे भी नीचे अवस्थित हैं और वह भी अनन्त-गुणे हीन होकर, अतः उसका उत्कृष्ट अनुभाग सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसे अनन्त गुणा हीन है। जैसे ओघसे अल्पबहुत्व कहा है वैसे ही आदेशसे भी चारों ही गतियोंमें जानना चाहिये, दानोंमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार जानकर आगे अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

❀ जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंके आश्रयसे दण्डक कहते हैं।

§ ४३२. जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंके अनुभागका आश्रय लेकर अल्पबहुत्व-दण्डकका कथन कहते हैं, ऐसा इस सूत्रका अभिप्राय है।

❀ लोभ संज्वलनका अनुभागसत्कर्म सबसे मन्द अनुभागवाला है।

§ ४३३. क्योंकि क्रोधकृष्टिके वेदकके प्रथम समयसे लेकर प्रति समय अनन्तगुण हीन श्रेणि रूपसे अपवर्तन घातको प्राप्त होकर सूक्ष्म साम्परायके अन्तिम समयमें सूक्ष्म कृष्टिरूप अनुभागके रहते हुए जघन्यपना पाया जाता है, अतः वह सबसे मन्द है।

* उससे संज्वलनमायाका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है।

§ ४३४. क्योंकि यहाँ पर माया वेदक कालके अन्तिम समयमें बांधा गया जो नवक समयप्रबद्ध है जो कि माया वेदककी तीसरी बादर संगहकृष्टि स्वरूप है उसका ग्रहण किया है। क्योंकि माया वेदक कालके अन्तिम समयमें बद्ध नवक समयप्रबद्धका अनुभाग लोभ कषाय की तीनों बादर संगृह कृष्टियोंसे अनन्तगुणा है और लोभकी उन तीनों बादर संग्रह कृष्टियोंसे

गुणो मायावेदगचरिमसमयणवकबंधाणुभागो तेहिंतो अणंतगुणहीणलोभसुहुमकिट्टिं पेक्खिदूण णिच्छएण[1] अणंतगुणो त्ति घेत्तव्वं।

❀ माणसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।

§ ४३५. कुदो ? तदियमाणसंगहकिट्टिवेदगचरिमसमयम्मि बद्धणवकबंधम्मि माणसंजलणाणुभागस्स जहण्णत्तब्भुवगमादो। मायासंजलणजहण्णाणुभागादो माण-संजलणजहण्णाणुभागस्स अणंतगुणत्तं कुदो णव्वदे ? किट्टीणमप्पाबहुआदो। तं जहा-सव्वत्थोवो मायासंजलणचरिमसमयणवकबंधाणुभागो। मायाए तदियविदियपढमसंगह-किट्टीणमणुभागो जहाकमेण अणंतगुणो। मायावेदगपढमसंगहकिट्टिअणुभागादो माण-णवकबंधाणुभागो अणंतगुणो त्ति।

❀ कोधसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।

४३६. कुदो ? चरिमसमयकोधवेदगेण बद्धाणुभागस्स गहणादो। एत्थ वि अणंतगुणत्तं पुव्वं व किट्टीणमप्पाबहुआदो साहेयव्वं।

❀ सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।

लोभ की सूक्ष्मकृष्टि अनन्त गुणी हीन है। अत: लोभ कषायके सूक्ष्म कृष्टिरूप जघन्य अनुभागसे संज्वलन मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म नियमसे अनन्तगुणा है ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

*** उससे संज्वलन मानका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है।**

§ ४३५. क्योंकि मान कषाय की तीसरी संग्रह कृष्टिके वेदक कालके अन्तिम समयमें बद्ध नवक समय प्रबद्धमें जो अनुभाग है उसे जघन्य माना गया है।

शंका—माया संज्वलनके जघन्य अनुभागसे मान संज्वलनका जघन्य अनुभाग अनन्त गुणा है यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—कृष्टियोंके अल्प बहुत्वसे जाना। खुलासा इस प्रकार है—अन्तिम समयमें माया संज्वलनका जो नवक बन्ध होता है, उसका अनुभाग सबसे थोड़ा है। उससे माया की तीसरी, दूसरी और पहली संग्रह कृष्टियोंका अनुभाग क्रमश: अनन्त गुणा है। और मायाके वेदक कालकी प्रथम संग्रह कृष्टिके अनुभागसे मान कषायके नवकबन्धका अनुभाग अनन्त गुणा है।

*** उससे संज्वलन क्रोधका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है।**

§ ४३६. क्योंकि क्रोधका वेदन करनेवाले क्षपकके द्वारा अन्तिम समयमें जो अनुभाग-बन्ध किया जाता है उसका यहाँ ग्रहण किया जाता है। यहाँ परभी पहलेकी तरह कृष्टियोंके अल्पबहुत्वसे अनन्तगुणत्व साध लेना चाहिये। अर्थात् जैसे पहले मायासंज्वलनके जघन्य अनु-भागसे मानसंज्वलनके जघन्य अनुभागको अनन्तगुणा सिद्ध किया है वैसेही यहाँ परभी सिद्ध करना चाहिए।

*** उससे सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्त गुणा है।**

---

१. ता प्रतौ णिच्छएण अणंतगुणहीणो त्ति इति पाठः।

§ ४३७. कुदो ? कोधबादरकिट्टिणवकबंधाणुभागं पेक्खिदूण सम्मत्तजहण्णाणुभागस्स फद्दयगदस्स अणंतगुणत्तं पडि विरोहाभावादो। अणंतगुणहीणकमेण अंतोमुहुत्तकालमणुसमयमोवट्टणाए पत्तघादो सम्मत्ताणुभागो सगजहण्णफद्दयादो किट्टीणमणुभागो व्व हेट्ठा णिवददि दारुसमाणस्सणंतिमभागे लदासमाणफद्दएसु च छट्ठाणाणमभावादो। ण च छट्ठाणेहि विणा अणंतगुणहाणीए घादिज्जमाणाणुभागो फद्दयभावं पडिवज्जदि, विरोहादो त्ति ? ण एस दोसो, तत्थ वि अणेयाणं छट्ठाणाणं संभवादो। सम्मत्तस्स बंधाभावे कथं तत्थ छट्ठाणाणं संभवो ? ण, मिच्छत्तकम्मक्खंधाणं विसोहिवसेण घादं पाविदूण अणंतगुणहीणाणुभागेण परिणमिय सम्मत्तकम्मभावमुवणमणकाले चेव तेण सरूवेण अवट्ठाणादो। किंच ण देसघादिफद्दयाणुभागो अणुसमयओवट्टणाए घादिज्जमाणो सगजहण्णफद्दयादो हेट्ठा णिवददि, चारित्तमोहक्खवणाए चदुसंजलणपच्चग्गबंधोदयाणमणुसमयओवट्टणाए घादिज्जमाणाणं पि किट्टित्तपसंगादो। ण च एवं तहाणुवलंभादो।

❀ पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४३८. खवगसेढीए अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि अणंतगुणहीणकमेण

---

§ ४३७. क्योंकि क्रोधकी वादर कृष्टिके अन्तमें होनेवाले नरकबन्धके अनुभागकी अपेक्षा सम्यक्त्वके जघन्य स्पर्धकमें पाया जानेवाला अनुभाग अनन्तगुणा है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—जैसे प्रतिसमय अनन्तगुणे हीन क्रमसे होनेवाले अपवर्तन घातके द्वारा कृष्टियोंका अनुभाग उत्तरोत्तर हीन होकर नीचे गिरता है वैसेही अन्तर्मुहूर्त कालतक अनन्तगुणे हीन क्रमसे प्रति समय अपवर्तनाके द्वारा घातको प्राप्त होने पर सम्यक्त्वका अनुभाग अपने जघन्य स्पर्धकसे नीचे गिर जाता है अर्थात् उससे भी कम हो जाता है दारु समानके अनन्तवें भागमें तथा लता समान स्पर्धकोंमें षट्स्थान नहीं होते है और षट्स्थानोंके बिना अनन्तगुण हानिके द्वारा घाता हुआ अनुभाग स्पर्धक अपनेको नहीं प्राप्त हो सकता, क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध है।

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है क्योंकि सम्यक्त्वके अनुभागमें भी अनेक पट्स्थानों का होना संभव है

शंका—जब सम्यक्त्व प्रकृतिका बन्ध ही नहीं होता तो उसमें पट्स्थान कैसे हो सकते हैं।

समाधान—नहीं मिथ्यात्वके कर्मस्कन्ध विशुद्धपरिणामोंके वशसे घाते जाकर अनन्तगुणे हीन अनुभागरूपसे परिणमन करके जिस समय सम्यक्त्वकर्मपनेको प्राप्त होते हैं उसी समय वे पट्स्थानरूपसे अवस्थित रहते हैं। दूसरे, देशघातीस्पर्धकोंका अनुभाग प्रति समय अपवर्तनाके द्वारा घाता जाकर अपने जघन्य स्पर्धकसे नीचे नहीं जाता। यदि ऐसा हो तो चारित्रमोहकी क्षपणामें चारों संज्वलकषायोंके नवक बन्ध और उदयके भी प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा घाते जाकर कृष्टि रूपताको प्राप्त होनेका प्रसंग उपस्थित होगा। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है।

❀ पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

४३८. **शंका**—क्षपकश्रेणिमें अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अनन्तगुणे हीन क्रमसे

हाइदूण गदसवेदिचरिमसमय पुरिसवेदणवकबंधो कथं सम्मत्तजहण्णाणुभागादो अणंतगुणो ? ण, पुरिसवेदणवकबंधस्स अणुसमयओवट्टणाकालादो सम्मत्तअणुसमयओवट्टणाकालस्स संखेज्जगुणत्तादो।

* इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४३९. कुदो ? पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागेण विसईकयसमयं पेक्खिदूण हेट्ठा अंतोमुहुत्तमोसरिय ट्ठिदइत्थिवेदुदयाणुभागग्गहणादो। तं जहा, चरिमसमयसवेदेण बद्धपुरिसवेदाणुभागो थोवो। तत्थेव तस्सेव वेदस्स उदयाणुभागो अणंतगुणो। तत्तो दुचरिमबंधो अणंतगुणो। तत्थेव तदुदओ अणंतगुणो। तत्तो तिचरिमतब्बंधो अणंतगुणो। तत्थेव उदओ अणंतगुणो। एदेण कमेण हेट्ठा गंतूण इत्थिवेदजहण्णाणुभागेण विसयीकयसमए पुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चढिदस्स पच्चग्गबंधो उवरिमतदुदयादो अणंतगुणो। तत्थतणो चेव पुरिसवेदोदओ अणंतगुणो। तत्तो इत्थिवेदोदएण खवगसेढिं चडिदस्स चरिमसमयउदओ अणंतगुणो, मुम्मुरग्गिसमाणत्तादो। तेण पुरिसवेदजहण्णाणुभागादो इत्थिवेदजहण्णाणुभागो अणंतगुणो त्ति सिद्धं।

कम करके सवेद भागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जो नवकबन्ध प्राप्त होता है वह सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तगुणा कैसे हो सकता है ? अर्थात् पुरुषवेदका बन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानके पहले समयसे ही अनन्तगुण हीन अनन्तगुण हीन अनुभागको लेकर होता है तब सवेदभागके अन्तिम समयमें उसका जो नवकबन्ध होता है वह सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तगुणा कैसे है।

समाधान—नहीं, क्योंकि पुरुषवेदके नवकबन्धका प्रति समय अपवर्तन घात होनेका जितना काल है उससे सम्यक्त्वके प्रति समय अपवर्तन घात होनेका काल संख्यातगुणा है। अतः सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

* उससे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

§ ४३९. क्योंकि जिस समयमें पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग होता है उससे पीछे एक अन्तर्मुहूर्त जाकर उदय प्राप्त स्त्रीवेदका जो अनुभाग पाया जाता है उस अनुभागका यहाँ पर ग्रहण किया है। खुलासा इस प्रकार है—सवेदी जीवके द्वारा अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जो अनुभाग बँधता है वह थोड़ा है। उससे वहींपर पुरुषवेदका जो अनुभाग उदयमें आता है वह अनन्तगुणा है। उससे द्विचरम समयमें जो अनुभाग बँधता है वह अनन्तगुणा है। उससे वहींपर पुरुषवेदका जो अनुभाग उदयमें आता है वह अनन्तगुणा है। उससे त्रिचरम समयमें होनेवाला पुरुषवेदका अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे वहींपर उदयागत अनुभाग अनन्त गुणा है। इस क्रमसे पीछे जाकर, जिस समयमें स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग होता है उस समयमें पुरुषवेदके उदयसे चपक श्रेणि चढ़नेवाले जीवके जो नवीन अनुभागबन्ध होता है वह उससे अगले समयमें उदयागत पुरुषवेदके अनुभागसे अनन्त गुणा है। उससे उसी समयमें होनेवाला पुरुषवेदका उदय अनन्त गुणा है। उससे स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि चढ़नेवाले जीवके अन्तिम समयमें होनेवाला अनुभागोदय अनन्त गुणा है। क्योंकि स्त्रीवेद कण्डे की अग्निके समान है। अतः पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, यह सिद्ध हुआ।

❀ णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४४०. जत्थ इत्थिवेदोदएण खवगसेढिं चढिदस्स जहण्णाणुभागो इत्थिवेदस्स जादो। जदि वि तत्थेव णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिं चढिदस्स णवुंसयवेदाणुभागो जहण्णो जादो तो वि अणंतगुणो, इट्टावग्गिसमाणत्तादो। तं पि कुदो? पयडि-विसेसादो।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४४१. कुदो? सव्वघादिवेट्टाणियत्तादो। णवुंसयवेदजहण्णाणुभागो जेण देसघादी एगट्टाणिओ तेण सव्वघादि-वेट्टाणियसम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागो अणंत-गुणो त्ति भणिदं होदि।

❀ अणंताणुबंधिमाणजहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४४२. सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागो व्व अणंताणुबंधिमाणाणुभागो सव्वघादी विट्टाणिओ संतो कथमणंतगुणो जादो? उच्चदे—सम्मामिच्छत्तजहण्णफद्दयप्पहुडि अणंता-णुबंधीणं फद्दयरचणा अवट्ठिदा, सव्वघादित्तादो। तेण पढमसमयसंजुत्तस्स जहण्णाणु-भागबंधफद्दयाणं रचणा वि सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागफद्दयप्पहुडिं होदि। होंती वि

❀ उससे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

§ ४४०. जिस स्थानमें स्त्रीवेदके उदयसे क्षपक श्रेणि चढ़नेवाले जीवके स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग होता है, यद्यपि उसी स्थानमें नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि चढ़नेवाले जीवके नपुंसक वेदका जघन्य अनुभाग होता है। फिर भी स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागसे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि नपुंसकवेद इष्ट पाककी अग्निके समान होता है।

शंका—नपुंसकवेद इष्ट पाककी अग्निके समान क्यों होता है?

समाधान—क्योंकि वह एक विशेष प्रकृति है।

* उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्त गुणा है।

§ ४४१. क्योंकि वह सर्वघाती और द्विस्थानिक होता है। तात्पर्य यह है कि नपुंसकवेद का जघन्य अनुभाग देशघाती और एकस्थानिक है, और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग सर्वघाती और द्विस्थानिक है, अत: वह उससे अनन्तगुणा है।

❀ उससे अनन्तानुबन्धिमानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

§ ४४२. शंका—सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागकी तरह सर्वघाती और द्विस्थानिक होता हुआ भी अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा कैसे है?

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे लेकर अनन्तानुबन्धी कषायोंकी स्पर्धक रचना अवस्थित है, क्योंकि वह सर्वघाती है। अत: अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके प्रथम समयमें जघन्य अनुभागबन्धके स्पर्धकोंकी रचना भी सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागस्पर्धकसे प्रारम्भ होती है। इस प्रकार प्रारम्भ होकर भी अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभाग

मिच्छत्तजहण्णफद्दयादो उवरिमणंताणि फद्दयाणि गंतूणाणंताणुवंधीणं जहण्णाणुभाग-ट्ठाणस्स फद्दयरयणा परिसमप्पदि। कुदो एदं णव्वदे? उवरिमआदेसप्पाबहुअसुत्तादो। सम्मामिच्छत्तउक्कस्साणुभागो पुण मिच्छत्तजहण्णफद्दयाणुभागादो अणंतगुणहीणो; तत्तो हेट्ठिमउव्वंकावट्ठाणादो। सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागो पुणो सगुक्कस्साणुभागादो अणंत-गुणहीणो, संखेज्जेसु अणंतगुणहाणिकंडएसु पदिदेसु पत्तजहण्णभावादो[1]। तदो सम्मा-मिच्छत्तजहण्णाणुभागादो अणंताणुबंधिमाणजहण्णाणुभागो अणंतगुणो त्ति सिद्धं।

❀ कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ।

§ ४४३. केत्तियमेत्तेण? अणंतफद्दयमेत्तेण। सेसं सुगमं।

❀ मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ।

§ ४४४. केत्तियमेत्तो विसेसो? अणंतफद्दयमेत्तो।

❀ लोभस्स जहण्णओ अणुभागो विसेसाहिओ।

§ ४४५. केत्तियमेत्तो विसेसो? अणंतफद्दयमेत्तो। कुदो? साभावियादो।

स्थानके स्पर्धकोंकी रचना मिथ्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे ऊपर अनन्त स्पर्धक जाकर समाप्त होती है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना?

समाधान—आगे आदेश की अपेक्षा अल्पबहुत्वका प्रतिपादन करनेवाले सूत्रसे जाना।

सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग तो मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागस्पर्धकसे अनन्तगुणा हीन है, क्योंकि वह उससे अधस्तन उर्वङ्कमें अवस्थित है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अपने उत्कृष्ट अनुभागसे अनन्तगुणा हीन है, क्योंकि संख्यात अनन्तगुणहानि काण्डकों के होनेपर उसे जघन्यपना प्राप्त होता है। अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागमें जब संख्यात अनन्तगुण हानि काण्डक होते है तब वह उत्कृष्ट अनुभाग जघन्यपनेको प्राप्त होता है अतः उससे वह अनन्तगुण हीन है। अतः सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्त गुणा है यह सिद्ध हुआ।

*** उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है।**

§ ४४३. **शंका**—अनन्तानुबन्धी मानके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग कितना अधिक है?

समाधान—अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है।

शेष सुगम है।

*** उससे अनन्तानुबन्धि मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है।**

§ ४४४. **शंका**—कितना अधिक है।

समाधान—अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है।

*** लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है।**

§ ४४५. **शंका**—कितना विशेष अधिक है?

समाधान—अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है? क्योंकि ऐसा होना स्वाभाविक है।

---

१. आ० प्रतौ पत्तजहण्णाभावादो इति पाठः।

❀ हस्सस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४४६. कुदो[1] ? पुव्विल्लस्स पच्चग्गवंधत्तादो । खवगसेढीए अणंतगुणहाणिक्कमेण संखेज्जवारं पत्तघादहस्साणुभागादो अणंताणुवंधिलोभजहण्णाणुभागो कथमणंतगुणहीणो ? ण, हस्सस्स अणंतगुणहाणिवारेहिंतो अणंताणुवंधिलोभाणुभागवंधस्स अणंतगुणहाणिवाराणमसंखेज्जगुणत्तादो । तं जहा—सुहुमअणंताणुवंधिलोभसव्वजहण्णाणुभागवंधादो तप्पाओग्गविसुद्धवादरेइंदियस्स अणंताणुवंधिलोभजहण्णाणुभागवंधो पढमसमइओ अणंतगुणहीणो । विदियसमए तस्सेव जहण्णाणुभागवंधो तत्तो अणंतगुणहीणो । एवं णेदव्वं जाव उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण ट्ठिदसव्वविसुद्धवादरेइंदियचरिमसमयउक्कस्सविसोहीए वद्धलोभजहण्णाणुभागवंधो त्ति । तत्तो तप्पाओग्गविसुद्धवेइंदियजहण्णाणुभागवंधो अणंतगुणहीणो । एवं[2] विदियसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालमणंतगुणहीणाए सेढीए णेदव्वं जाव सव्वविसुद्धवेइंदिएण वद्धजहण्णाणुभागवंधो त्ति । एवं तेइंदिय-चउरिंदिय-असण्णिपंचिंदिएसु पादेक्कमंतोमुहुत्तकालमणंतगुणहीणाए सेढीए[3]

* उससे हास्यका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४४६. क्योंकि अनन्तानुवन्धी लोभका नवीन अनुभागवन्ध है इसलिए उसका हास्यसे जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

शंका—क्षपक श्रेणीमें अनन्तगुणहानिक्रमसे संख्यातवार घातको प्राप्त हुए हास्यके अनुभागसे अनन्तानुवन्धी लोभका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा हीन कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि हास्यमें जितनीबार अनन्तगुणहानि होती है उन बारोंसे अनन्तानुवन्धी लोभके अनुभागबन्धमें अनन्तगुणहानि होनेके वार असंख्यातगुणे हैं । खुलासा इस प्रकार है—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके अनन्तानुबन्धी लोभका जो सबसे जघन्य अनुभागवन्ध होता है उससे अपने योग्य विशुद्ध परिणामवाले बादर एकेन्द्रियके प्रथम समयमें अनन्तानुवन्धी लोभका जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है वह अनन्तगुणा हीन है । दूसरे समयमें उसी बादर एकेन्द्रिय जीवके जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है वह प्रथम समयमें होनेवाले अनुभागवन्धसे अनन्तगुणा हीन है । इस प्रकार इस क्रमसे ऊपर एक एक समय बढ़ाते बढ़ाते अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समय बिताकर स्थित हुए सबसे विशुद्ध बादर एकेन्द्रियके अन्तिम समयमें होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धिसे बाँधे गये लोभके जघन्य अनुभागबन्ध पर्यन्त ले जाना चाहिये । सबसे विशुद्ध बादर एकेन्द्रियके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धिसे लोभका जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है उससे अपने योग्य विशुद्ध परिणामी दो इन्द्रिय जीवके प्रथम समयमें होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । इसी प्रकार दूसरे समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समय बिताकर स्थित हुए सबसे विशुद्ध दो इन्द्रिय जीवके द्वारा बाँधे गये जघन्य अनुभागबन्ध पर्यन्त अनन्तगुणी हीन श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिये । अर्थात् उक्त प्रकारके दो इन्द्रियके प्रथम समयमें होनेवाले जघन्य अनुभागबन्धसे दूसरे समयमें होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे तीसरे समयमें होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । इसी प्रकार आगे भी अन्तिम समय पर्यन्त जानना चाहिए । इस प्रकार तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञिपञ्चेन्द्रियोंमेंसे प्रत्येकमें

१. ता० प्रतौ कुदो इति पाठो नास्ति । २. आ० प्रतौ अणंतगुणा एवं इति पाठः । ३. आ० प्रतौ अणंतगुणाए सेढीए इति पाठः ।

अणुसंधिय णेदव्वं जाव असण्णिपंचिंदियसव्वुक्कस्सविसोहीए बद्धजहण्णाणुभागबंधो त्ति। पुणो असण्णिपंचिंदियचरिमविसोहीए बद्धजहण्णाणुभागबंधादो तप्पाओग्गविसुद्ध-सण्णिपंचिंदिएण पढमसमयसंजुत्तेण बद्धजहण्णाणुभागो अणंतगुणहीणो त्ति। एदासिं पंचण्हमद्धाणं जत्तिया समया तत्तिया चेव जेण अणंतगुणहाणिवारा तेण तत्तो असंखेज्ज-गुणत्तं सिद्धं। हस्साणुभागस्स अंतरकरणे कदे पच्छा सुहुमणिगोदजहण्णाणुभागेण सरिसत्तमुवगयस्स अणंतगुणहाणिवारा असंखेज्जा किण्ण होंति? ण, हस्साणुभागसंतस्स अणुसमओवट्टणाए अभावादो। ण च कंडयघादेण समुप्पण्णअणंतगुणहाणीणं वारा असंखेज्जा अत्थि, खवगसेढिअद्धाए असंखेज्जअणुभागकंडयउक्कीरणद्धाणमभावादो।

❀ रदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४४७. कुदो? पयडिविसेसेण संसारावत्थाए अणंतगुणक्कमेण अवट्ठाणादो।

❀ दुगुंछाए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४४८. कुदो? पयडिविसेसादो।

❀ भयस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४४९. सुगमं।

प्रथम समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त, अनन्तगुणहीन गुणश्रेणि क्रमसे होनेवाले जघन्य अनुभागबन्धको असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिसे बांधे गये जघन्य अनुभागबन्ध पर्यन्त ले जाना चाहिये। पुनः असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके अन्तिम विशुद्धिसे बाँधे गये जघन्य अनुभाग-बन्धसे तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले संज्ञी पञ्चेन्द्रियके द्वारा संयुक्त होनेके प्रथम समयमें बांधा गया जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है। एकेन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त इन पाँचों अन्तर्मुहूर्तोंके जितने समय होवे हैं यतः उतने ही अनन्तगुणहानिके वार है अतः हास्यकी अनन्तगुणहानिके वारोंसे अनन्तानुबन्धी लोभके जघन्य अनुभागबन्धकी अनन्तगुणहानिके वार असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध हुआ।

शंका—हास्यके अनुभागका अन्तरकरण करने पर पीछे वह अनुभाग सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य अनुभागके समान हो जाता है, अतः उसकी अनन्तगुणहानिके वार असंख्यात क्यों नहीं होते?

समाधान—नहीं, क्योंकि हास्यके अनुभागसत्कर्मका प्रति समय अपवर्तनघात नहीं होता है। और काण्डकघातसे उत्पन्न अनन्तगुणहानिके वार असंख्यात हो नहीं सकते, क्योंकि क्षपक-श्रेणिके कालमें असंख्यात अनुभागकाण्डकोंके उत्कीरणकालका अभाव है।

*** उससे रतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।**

§ ४४७. क्योंकि प्रकृति विशेष होनेके कारण संसार अवस्थामें रतिकर्म अनन्तगुणरूपसे अवस्थित है।

*** उससे जुगुप्साका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।**

§ ४४८. क्योंकि जुगुप्सा भी एक प्रकृति विशेष है।

*** उससे भयका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।**

§ ४४९. यह सूत्र सुगम है।

❀ सोगस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४५०. सुगमं ।

❀ अरदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४५१. एदेसिं छण्णोकसायाणं जदि वि एक्कम्मि चेव ट्ठाणे जहण्णमणुभागसंतकम्मं जादं तो वि अण्णोण्णं पेक्खिऊण अणंतगुणा जादा, पयडिविसेसादो । महल्लाणुभागाणं महल्ले अणुभागखंडए पदिदे वि अवसेसाणुभागो खवगसेढीए वि अणंतगुणकमेणेव चेट्ठदि त्ति भणिदं होदि ।

❀ अपच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४५२. कुदो ? सुहुमणिगोदेसु पत्तजहण्णाणुभागत्तादो । खवगसेढीए अट्ठकसायाणं जहण्णसामित्तं किण्ण दिण्णं ? अंतरकरणे अकदे चेव विणट्ठत्तादो । अंतरकरणे कदे जाणि कम्माणि अच्छंति तेसिमणुभागसंतकम्मं सुहुमेइंदियसव्वजहण्णाणुभागसंतकम्मादो अणंतगुणहीणं होदि, ण अण्णेसिमिदि भणिदं होदि ।

❀ कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५३. केत्तियमेत्तेण ? अणंतफद्दयमेत्तेण ।

---

* उससे शोकका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४५०. यह सूत्र सुगम है ।

* उससे अरतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४५१. यद्यपि इन छ नोकषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म एक ही स्थानपर हो जाता है तो भी एक दूसरेको देखते हुए अनन्तगुणा है, क्योंकि प्रत्येक प्रकृति भिन्न है । तात्पर्य यह है कि बड़े अनुभागोंका बड़े अनुभाग काण्डकोंमें क्षेपण कर देने पर भी बाकी बचा हुआ अनुभाग क्षपक श्रेणीमें भी अनन्तगुणे रूपसे ही स्थित रहता है ।

* उससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४५२. क्योंकि सूक्ष्म निगोदिया जीवोंमें उसका जघन्य अनुभाग पाया जाता है । अर्थात् छ नोकषायोंका जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणीमें पाया जाता है और अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग सूक्ष्म निगोदियाके पाया जाता है, अतः वह अनन्तगुणा है ।

शंका—आठ कषायोंका जघन्य स्वामित्व क्षपकश्रेणीमें क्यों नहीं दिया ?

समाधान—क्योंकि अन्तरकरण किये विना ही आठों कषाय नष्ट हो जाती हैं । तात्पर्य यह है कि अन्तरकरण करनेपर जो कर्म रहते हैं उनका अनुभागसत्कर्म सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके सबसे जघन्य अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुणा हीन है, अन्यका नहीं ।

* उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५३. शंका—कितना अधिक है ?

समाधान—अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है ।

❀ मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५४. सुगमं ।

❀ लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५५. सुगमं ।

❀ पच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४५६. कुदो ? देससंजमघादिअपच्चक्खाणावरणाणुभागादो पच्चक्खाणावरणाणुभागस्स अणंतगुणत्ताभावे तस्स देससंजमादो अणंतगुणसयलसंजमघाइत्ताणुववत्तीदो ।

❀ कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५७. केत्तियमेत्तेण ? अणंतफद्दयमेत्तेण[1] ।

❀ मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५८. सुगमं ।

❀ लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५९. सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६०. पच्चक्खाणावरणाणुभागादो मिच्छत्ताणुभागेण समाणेण होदव्वं, सव्व-

---

* उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५४. यह सूत्र सुगम है ।

* उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५५. यह सूत्र सुगम है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४५६. क्योंकि देशसंयमके घाती अप्रत्याख्यानावरण कषायके अनुभागसे प्रत्याख्यानावरण कषायका अनुभाग यदि अनन्तगुणा न हो तो वह देशसंयमसे अनन्तगुणे सकलसंयमका घाती नहीं हो सकता है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५७ शंका—कितना अधिक है ?

समाधान—अनन्त स्पर्धक मात्र अधिक है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५८ यह सूत्र सुगम है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५९. यह सूत्र सुगम है ।

* उससे मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४६०. शंका—मिथ्यात्वका अनुभाग प्रत्याख्यानावरणके अनुभागके समान होना चाहिए,

---

१. ता० आ० प्रत्योः अणंतफद्दयमेत्तेण इति स्थाने पयडिविसेसेण इदि पाठः ।

दव्वपज्जयविसयसम्मत्त-संजमघादित्तणेण दोण्हं समाणत्तुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, सत्तिं पडुच्च अणंतगुणत्तं पडि विरोहाभावादो। कज्जदुवारेण दोण्हमणुभागाणं समाणत्ते संते सत्तीए सगकज्जमकुणंतीए अत्थित्तं कुदो णव्वदे ? पमेयादो सव्वपज्जयस्स अणंतगुणत्तं व जिणवयणादो णव्वदे।

❀ णिरयगईए जहण्णयमणुभागसंतकम्मं।

§ ४६१. सुगममेदं, अहियारसंभालणहत्तादो।

❀ सव्वमंदाणुभागं सम्मत्तं।

§ ४६२. कुदो ? अणुसमयमोवट्टणकुणंतुप्पण्णकदकरणिज्जचरिमसमयसम्मत्ताणुभागस्स गुणसेढिचरिमणिसेगावट्ठिदस्स गहणादो।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४६३. कुदो ? सव्वघादिविट्ठाणियत्तादो। सम्मत्तजहण्णाणुभागो वि सव्वघादी विट्ठाणियो त्ति णासंकणिज्जं, तस्स देसघादिएगट्ठाणियत्तादो। कधमेत्थ सम्मामिच्छत्तुक्कस्साणुभागस्स जहण्णववएसो त्ति णासंकणिज्जं, ववएसिवब्भावमस्सिऊण तस्स तव्ववएसोववत्तीदो।

क्योंकि मिथ्यात्व सब द्रव्य और पर्यायोंको विषय करनेवाले सम्यक्त्वका घातक है और प्रत्याख्यानावरण कषाय सब द्रव्य-पर्यायविषयक संयमका घातक है, अतः दोनोंमें समानता पाई जाती है।

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है क्योंकि शक्तिकी अपेक्षा प्रत्याख्यानावरणके अनुभागसे मिथ्यात्वके अनुभागके अनन्तगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—कार्यकी अपेक्षा जब दोनों कर्मोंका अनुभाग समान है तो मिथ्यात्वमें इस शक्तिका अस्तित्व कैसे जाना जा सकता है जो कि अपना कार्य ही नहीं करती है।

समाधान—जैसे जिनवचनसे पदार्थोंसे उनकी सब पर्यायोंका अनन्तगुणत्व जाना जाता है उसी प्रकार उसी जिनवचनसे यह भी जाना जाता है।

*** अब नरकगतिमें जघन्य अनुभागसत्कर्मको कहते हैं।**

§ ४६१. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकार की सम्हाल करना इसका कार्य है।

❀ सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य अनुभाग सबसे मन्द है।

§ ४६२. क्योंकि यहाँ पर प्रति समय अपवर्तन घातके करनेसे कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वका जो अनुभाग उत्पन्न होता है अर्थात् शेष बचता है जो कि गुणश्रेणिके अन्तिम निषेकमें अवस्थित है, उसका ग्रहण किया है।

*** उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।**

§ ४६३. क्योंकि वह सर्वघाती और द्विस्थानिक है। सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग भी सर्वघाती और द्विस्थानिक है ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि वह देशघाती और एकस्थानिक है। चूर्णिसूत्रमें सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य शब्दसे व्यपदेश क्यों किया ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि व्यपदेशिवद्भाव की अपेक्षा उत्कृष्टका जघन्य

❀ अणंताणुबंधिमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४६४. सम्मामिच्छत्तुक्कस्सफद्दयाणुभागादो अणंतगुणो होदूणावट्ठिदमिच्छत्त-जहण्णफद्दएण समाणं होदूण पुणो उवरि वि अणंतेसु फद्दएसु अणंताणुबंधिमाणाणु-भागस्स फद्दयरयणाए उवलंभादो । ण च संजुत्तपढमसमए बज्झमाणजहण्णाणुभागो[1] जहण्णेगफद्दयमेत्तो, असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणसहियस्स एगफद्दयत्तविरोहादो ।

❀ कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६५. सुगमं ।

❀ मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६६. सुगमं ।

❀ लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६७. सुगमं ।

❀ सेसाणि जधा सम्मादिट्ठीए बंधे तधा णेदव्वाणि ।

§ ४६८. एदस्स अत्थो वुच्चदे, तं जहा—सम्मादिट्ठिअणुभागबंधस्स जहा

शब्दसे व्यपदेश हो सकता है अर्थात् उत्कृष्टमें जघन्यपनेका आरोप करके उत्कृष्ट को जघन्य कह दिया है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४६४. क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागस्पर्धकोंके अनुभागसे अनन्तगुणा होकर अवस्थित हुए मिथ्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे समान होकर पुनः आगे भी अनन्त स्पर्धकोंमें अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागकी स्पर्धक रचना पाई जाती है, अतः सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । शायद कहा जाय कि अनन्तानुबन्धीका पुनः संयोजन होनेके प्रथम समयमें बँधनेवाला जघन्य अनुभाग जघन्य एक स्पर्धकमात्र है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जो अनुभाग असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान सहित है उसके एक स्पर्धक मात्र होनेमें विरोध है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४६५. यह सूत्र सुगम है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४६६. यह सूत्र सुगम है ।

* उससे अनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४६७. यह सूत्र सुगम है ।

* शेष कर्मोंका जैसे सम्यग्दृष्टिके बन्धमें अल्पबहुत्व है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिये ।

§ ४६८. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि के अनुभागबन्धका

---

१. ता० प्रतौ जहण्णाणुभागे (गो.), आ० प्रतौ जहण्णाणुभागेण इति पाठः ।

अप्पाबहुअं परूविदं तहा एत्थ वि परूवेयव्वं, अविसेसादो। संपहि बंधप्पाबहुआदो थोवयरविसेसाणुविद्धं संतकम्ममप्पाहुअमेवमणुगंतव्वं। तं जहा—अणंताणुबंधिलोभ-जहण्णाणुभागस्सुवरि हस्सजहण्णाणुभागो अणंतगुणो, असण्णिपच्छायदणेरइयहद-समुप्पत्तियजहण्णाणुभागग्गहणादो। रदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। पुरिस० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। इत्थि० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। दुगुंछा० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। भय० जह० अणंतगुणो। सोग० जह० अणंतगुणो। अरइ० जह० अणंतगुणो। णवुंसयवेदस्स जह० अणंतगुणो। अपच्चक्खाणमाण० जह० अणंतगुणो। कोह० जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ। माया० जह० विसे०। लोभ० जह० विसे०। पच्चक्खाणमाण० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। कोह० जह० विसेसाहिओ। माया० जह० विसे०। लोभ० जह० विसे०। माणसंजलण० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। कोहसंजल० जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ। मायासंज० जह० विसे०। लोभसंज० जह० विसे०। मिच्छत्तजह-ण्णाणुभागो अणंतगुणो। एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण जहण्णाणुभागस्स अप्पाबहुअ-परूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिऊण परूवेमो।

जिस प्रकार अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, क्योंकि दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। फिर भी अनुभागबंधके अल्पबहुत्वसे थोड़ी सी विशेषताको लिये हुए अनुभागसत्कर्मक अल्पबहुत्व जानना चाहिये। यथा—अनन्तानुबन्धी लोभके जघन्य अनुभागके ऊपर हास्यका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि यहाँ असंज्ञी पञ्चेन्द्रियसे आकर उत्पन्न हुए नारकीके हतसमुत्पत्तिक जघन्य अनुभागका ग्रहण किया है। उससे रतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जुगुप्साका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे भयका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे शोकका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अरतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण माया का जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे संज्वलन मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे संज्वलन क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे संज्वलन मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे संज्वलन लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे मिथ्यात्व का जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे जघन्य अनुभागके अल्पबहुत्वका कथन करके अब उच्चारणाका आश्रय लेकर कथन करते हैं।

---

१ ता० आ० प्रत्योः तं कथं इति स्थाने तं जहा इति पाठः।

§ ४६९. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघमस्सिदूण भण्णमाणे जहा चुण्णिसुत्ते परूपणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो। एवं मणुसतियस्स। णवरि मणुसपज्जत्तप्पाबहुए भण्णमाणे पुरिसवेदजहण्णाणुभागस्सुवरि णवुंसय० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। सम्मामि० जह० अणंतगुणो। अणंताणुबंधिमाण० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। कोधे० विसेसा०। मायाए विसे०। लोहे० विसे०। तदो हस्सादिपरिवाडीए छण्णोकसाया जहाकममणंतगुणा होऊण पुणो इत्थि० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। कुदो? चरिमाणुभागखंडए जादजहण्णाणुभागत्तादो। अपच्चक्खाणमाणजहण्णाणुभागो अणंतगुणो। सेसं पुव्वं व। मणुसिणीसु सम्मत्तजहण्णाणुभागस्सुवरि इत्थि० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। सम्मामि० जह० अणंतगुणो। अणंताणुबंधिमाण० जह० अणंतगुणो। कोहे० विसे०। मायाए विसे०। लोहे० विसे०। तदो छण्णोकसायहस्सादिपरिवाडीए जहाकममणंतगुणा होऊण पुणो पुरिस० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। णवुंस० जह० अणंतगुणो। अपच्चक्खाणमाण० जह० अणंतगुणो। उवरि णत्थि विसेसो।

§ ४७०. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु जहा चुण्णिसुत्तम्मि णेरइओघप्पाबहुअपरूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो। एवं पढमपुढवि०-तिरि-

---

§ ४६९. जघन्यके कथनका अवसर है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कथन करने पर जैसा चूर्णिसूत्रमें कथन किया है वैसा ही यहाँ भी करना चाहिये। उससे इसमें कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। किन्तु मनुष्यपर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्वका कथन करते हुए इतना विशेष जानना चाहिए कि पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसे आगे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे क्रोधका विशेष अधिक है। उससे मायाका विशेष अधिक है। उससे लोभका विशेष अधिक है। उससे हास्य आदिके क्रमसे छ नोकषायोंका जघन्य अनुभाग क्रमानुसार अनन्तगुणा अनन्तगुणा होता हुआ पुनः स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि उसका अन्तिम अनुभागकाण्डकमें जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। शेष पूर्ववत् जानना चाहिए। मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे आगे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे क्रोधका विशेष अधिक है। उससे मायाका विशेष अधिक है। उससे लोभका विशेष अधिक है। उससे हास्य आदिके क्रमसे छह नोकषायों का जघन्य अनुभाग क्रमानुसार अनन्तगुणा होता हुआ पुनः पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। आगे कोई विशेषता नहीं है।

§ ४७०. आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें जैसे चूर्णिसूत्रमें सामान्य नारकियोंमें अल्पबहुत्वका कथन किया है वैसा ही यहाँ भी करना चाहिये, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

क्खोघं पंचिंदियतिरिक्खदुग-[देव] सोहम्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० जहण्णं णत्थि। एवं पंचितिरि० जोणिणी-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति।

एवमप्पाबहुआणुगमो समत्तो।

*** जहा बंधे भुजगार--पदणिक्खेव-वड्ढीओ तहा संतकम्मे वि काय-व्वाओ[1]।**

§ ४७१. अणुभागबंधे जहा भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढीणं परूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो। एवं चुण्णिसुत्तेण सूइदअत्थाणं उच्चारणमस्सिदूण परूवणं कस्सामो। भुजगारविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति—समुक्कित्तणादि जाव अप्पाबहुए त्ति। तत्थ समुक्कित्तणाए दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अत्थि भुज०-अप्पदर०-अवट्ठिद०। सम्मत्त०-सम्मामि० अत्थि अप्पदर-अवट्ठि०-अवत्तव्व०। अणंताणु०चउक्क० अत्थि भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि०-अवत्तव्व०।

§ ४७२. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसपयडीणमोघं। सम्मामि० अत्थि अवट्ठि०-अवत्तव्व०। एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खतिय-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति।

इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

*** जैसे वन्धमें भुजकार, पदनिक्षेप और वृद्धिका कथन किया वैसे ही सत्तामें भी करना चाहिये।**

§ ४७१. अनुभागवन्धमें जैसे भुजकार, पदनिक्षेप और वृद्धिका कथन किया है वैसे ही यहाँ भी करना चाहिये, दोनोंमें कोई विशेष नहीं है। इस प्रकार चूर्णिसूत्रसे सूचित अर्थका उच्चारणाका आलम्बन लेकर कथन करते हैं। भुजकार विभक्तिमें ये तेरह अनुयोगद्वार जानने चाहिये—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्वपर्यन्त। उनमेंसे समुत्कीर्तना की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायों की भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तियां होती हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तियाँ होती हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क की भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तियाँ होती हैं।

§ ४७२. आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियों की ओघके समान विभक्तियाँ होती हैं। सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे

---

1. आ० प्रतौ कायव्वो इति पाठः।

विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति।

§ ४७३. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्जत्तएसु छव्वीसं पयडीणमत्थि भुज०--अप्पदर०--अवट्ठि०। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमत्थि अवट्ठिदं। मणुसतियस्स ओघभंगो। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति वावीसं पयडीणमत्थि अवट्ठि०-अप्पदर०। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं देवोघभंगो। अणंताणु०चउक्क० अत्थि भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि०-अवत्तव्व०। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सत्तावीसं पयडीणमत्थि अप्पदर०-अवट्ठि०। सम्मामि० अत्थि अवट्ठिदविहत्तिया। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्व की तरह होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ४७३. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियों की भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तियाँ होती हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्ति होती है। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें ओघके समान भंग है। आनत स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियों की अवस्थित और अल्पतर-विभक्तियाँ होती हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सामान्य देवोंके समान भंग है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क की भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तियाँ होती हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियों की अल्पतर और अवस्थित विभक्तियाँ होती हैं। सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्थितविभक्ति होती है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे अवक्तव्यविभक्ति सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीमें ही होती है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होकर पुनः उसका सत्त्व हो जाता है। तथा शेष दोनों प्रकृतियोंका भी अनादि मिथ्यादृष्टिके असत्त्व होता है और सम्यक्त्वके होने पर सत्त्व हो जाता है। तथा सादि मिथ्यादृष्टिके भी उद्वेलना कर देने पर इनका असत्त्व हो जाता है और सम्यक्त्वके होने पर पुनः सत्त्व हो जाता है अन्य प्रकृतियोंमें यह बात नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंमें भुजकारविभक्ति नहीं होती, क्योंकि इनका जो अनुभाग रहता है दर्शनमोह के क्षपण कालमें वह घट तो जाता है, किन्तु बढ़ता कभी भी नहीं है, क्योंकि ये बन्ध प्रकृतियां नहीं हैं। आदेशसे नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें अल्पतरविभक्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ दर्शनमोह का क्षपण नहीं होता। सम्यक्त्व प्रकृतिमें कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा अल्पतर विभक्ति वहाँ होती है। जहाँ कृतकृत्यवेदक जन्म नहीं लेता, जैसे दूसरे आदि नरक और भवनत्रिकमें वहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिमें भी अल्पतरविभक्ति नहीं होती। मनुष्य अपर्याप्त और तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें अवक्तव्य विभक्ति भी नहीं होती, क्योंकि वहाँ सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता। आनत से लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त अनन्तानुबन्धी कषाय में तो भुजकार विभक्ति होती है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीका विसंयोजक मिथ्यात्वमें आकर पुनः उसका संयोजन करने पर अनुभाग को बढ़ाता है किन्तु अन्य किसी भी प्रकृति में भुजगार

§ ४७४. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज० कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छाइट्ठिस्स। अप्पदर०-अवट्ठि० कस्स ? अण्णदर० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं अप्पदर०-अवत्तव्व० कस्स ? सम्माइट्ठिस्स। अवट्ठिद० अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। णवरि अवत्तव्व० कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स।

§ ४७५. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसंपयडीणमोघभंगो। सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्तव्व० ओघभंगो। एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खतिय--देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारे त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी--भवण०--वाण०--जोदिसिए त्ति। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठि० कस्स ? अण्णद० मिच्छादिट्ठिस्स। मणुसतियस्स ओघभंगो। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अप्पद०-अवट्ठि० ओघं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० देवोघं। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवत्तव्व० कस्स ? मिच्छा-

---

विभक्ति नहीं होती और अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक तो केवल दो ही विभक्तियाँ होती हैं अल्पतर और अवस्थित।

§ ४७४. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी भुजकारविभक्ति किसके होती है ? किसी एक मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अल्पतर और अवस्थित विभक्ति किसके होती है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर और अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? सम्यग्दृष्टि जीवके होती है। अवस्थितविभक्ति किसी भी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वकी तरह है। इतना विशेष है कि अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? मिथ्यादृष्टिके होती है।

§ ४७५. आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंका ओघ के समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। तीन प्रकारके मनुष्योंमें ओघके समान भंग है। आनत स्वर्गसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायों की अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व का भंग सामान्य देवोंकी तरह है। अनन्तानुबन्धी

इट्ठिस्स ? सेसपदाणमोघभंगो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सत्तावीसंपयडीण-मप्पदर०-अवट्ठि० सम्मामि० अवट्ठि० कस्स ? अण्णद०। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४७६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकसाय--अट्ठणोक० भुज ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अप्पदर० जहण्णुक० एगस०। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयं। एवमणंताणु०चउक्क०। णवरि अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगस०। सम्मत्त० अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मामि० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस०, दोण्हं पि अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० तीहि पलिदोवमस्स असंखे० भागेहि सादिरेयाणि। दोण्हं पि अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगस०। चदुसंज० भुज०-अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो, धुवबंधित्तादो। सम्मा-दिट्ठिम्मि णिरंतरं वज्झमाणचदुसंजलणाणमणुभागस्स कथमवट्ठिदत्तं, अणुभागखंडय-

चतुष्ककी भुजगार और अवक्तव्य विभक्तियां किसके होती हैं ? मिथ्यादृष्टिके होती हैं। शेष पदोंका भंग ओघके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर और अवस्थित विभक्ति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? किसीके भी होती है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अल्पतर विभक्ति दर्शनमोहके क्षपकके होती है और अवक्तव्य विभक्ति प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिके होती है, अतः दोनों विभक्तियाँ सम्यग्दृष्टिके बतलाई हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यात्वमें आकर पुनः संयोजन करनेवाले के होती है अतः उसका स्वामी मिथ्यादृष्टि को बतलाया है। शेष बाईस प्रकृतियों की भुजगार विभक्ति तो मिथ्यादृष्टिके ही होती है, क्यों कि इनका अनुभाग मिथ्यादृष्टि ही बढ़ा सकता है। और अल्पतर तथा अवस्थित विभक्ति सम्यग्दृष्टि के भी होती है और मिथ्यादृष्टिके भी। इसी प्रकार आदेशसे भी लगा लेना चाहिये।

§ ४७६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी भुजकारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका काल जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्परविभक्ति का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। दोनों ही प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भाग अधिक दो छियासठ सागर है। दोनों ही प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। चार संज्वलनोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्त-र्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है, क्योंकि संज्वलन कषाय ध्रुवबन्धी है।

शंका—सम्यग्दृष्टिमें निरन्तर बँधनेवाली चारों संज्वलन कषायोंका अनुभाग अवस्थित

घादाभावेण सगाणुभागसंतादो उवरि बंधेणाणुभागफद्दयवुड्ढीए वि अभावादो च। सरिसधणियपरमाणुअणुभागे बंधमस्सिदूण वड्ढमाणे अधट्ठिदिगलणाए गलमाणे च कथमवट्ठिदत्तं संभवइ? ण, अणुभागट्ठाणस्स दव्वट्ठियणयावलंबणाए चरिमफद्दय-चरिमवग्गणेगपरमाणुम्हि अवट्ठिदस्स सगंतोक्खित्तसरिसधणियाणुभागत्तणेण अणोसारियअणुभागकंडयफालिस्स अवट्ठाणविरोहादो[1]। एवं पुरिस०। णवरि अप्पद० ज० एगस०, उक्क० दो आवलियाओ समऊणाओ।

कैसे है?

समाधान—एकतो वहाँ अनुभागका काण्डक घात नहीं होता है, दूसरे उसके जो अनुभाग की सत्ता होती है उससे ऊपर बन्धके द्वारा अनुभाग स्पर्धकों की वृद्धि नहीं होती, इसलिए वहाँ संज्वलन कषायोंके अनुभागका अवस्थितपना बन जाता है।

शंका—बन्ध की अपेक्षा समान धनवाले परमाणुओंके अनुभागकी वृद्धि होते हुए और अधःस्थितिगलनाके द्वारा उसका गलन होने पर अवस्थितपना कैसे संभव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग अवस्थित है और अपने भीरत सदृश धनवाले परमाणुओंके अनुभाग को गर्भित कर लेनेसे जिसके अनुभागकाण्डकोंकी फालियोंका अनुभाग अपसारित नहीं हुआ है उसका अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है।

इसी प्रकार पुरुषवेदका जानना चाहिए। इतना विशेष है कि पुरुषवेदकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवली है।

विशेषार्थ—एक जीवके अनुभाग की लगातार वृद्धि कमसे कम एक समय और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक हो सकती है, इसीलिये भुजकार विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। अल्पतर विभक्तिमें भी यही बात है अर्थात् एक जीवके अनुभाग की लगातार हानि कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होती है किन्तु अन्तर्मुहूर्त तक अनुभाग की हानि काण्डकघातके बाद ही होती है। अतः जहाँ जिन प्रकृतियोंका काण्डकघातके पश्चात् प्रति समय अनुभाग घटता जाकर क्षय होता है वहाँ ही उन प्रकृतियोंमें अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। अवक्तव्य विभक्ति का काल तो एक समयसे अधिक हो ही नहीं सकता, क्योंकि प्रथम समयमें ही अविद्यमान प्रकृतिका सत्त्व होजाने पर अवक्तव्य विभक्ति होती है। अवस्थित विभक्तिका काल सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वको प्राप्तकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की सत्ताको करके यदि वेदकसम्यग्दृष्टि होकर दर्शन मोहका क्षपण कर देता है तो अन्तर्मुहूर्त काल होता है। उत्कृष्ट काल दो छियासठ सागर और पल्यके तीन असंख्यातवें भाग है जो कि पहले बतला आये हैं। शेष प्रकृतियोंमें अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। वह भी पहले बतला आये हैं। संज्वलन कषायके विषयमें यह शंका की गई कि जब सम्यग्दृष्टिमें निरन्तर संज्वलन कषायका बंध होता है तो उसका अनुभाग अवस्थित कैसे रहता है, तो उत्तर दिया गया कि काण्डकघात नहीं होता, इस लिए तो अनुभाग घटता नहीं और सत्तामें स्थित अनुभागसे अधिक अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिये अनुभाग बढ़ता नहीं है अतः अवस्थित रहता है।

---

1. आ० प्रतौ अवट्ठाणविरोहादो इति पाठः।

§ ४७७. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज० ज एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्पद० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० ओघभंगो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० सव्वपदाणमोघं । णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि । दोण्हं पि अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० संपुण्णाणि । एवं पढमपुढवि० । णवरि सगट्ठिदी । विदियादि जाव सत्तमि त्ति छव्वीसंपयडीणमेवं चेव । णवरि सगट्ठिदी देसूणा । सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी संपुण्णा । अवत्त० ओघं ।

§ ४७८. तिरिक्ख० णेरइयभंगो । णवरि सव्वासिं पयडीणमवट्ठिदं ज० एगस०, उक्क० छव्वीसंपयडीणमंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । पंचिंदियतिरिक्खदुगस्स एवं चेव । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण सादिरेयाणि । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणमेवं चेव । णवरि सम्म० अप्पदर० णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं भुज०-अवट्ठि० सम्मत्त०-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-

§ ४७७. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछकम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सब विभक्तियोंका भङ्ग ओघकी तरह है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती । दोनों ही प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल पहले नरककी स्थिति प्रमाण है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तियोंका काल इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल कुछकम अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति प्रमाण है । अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघकी तरह है ।

§ ४७८. सामान्य तिर्यञ्चोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और छब्बीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तके भी ऐसे ही जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनियोंमें भी ऐसे ही जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको

सम्मामिच्छत्तवज्जाणमप्पदर० जहण्णुक्क० एगस० । एवं मणुसअपज्ज० ।

§ ४७९. मणुस्साणमोघं । णवरि सव्वेसिमवट्ठि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि मणुसिणीसु पुरिस० अप्पद० जहण्णुक्क० एगस० ।

§ ४८०. देवाणं णेरइयभंगो । णवरि अट्ठावीसंपयडीणमवट्ठि० उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । भवण०-वाण०-जोइसि० एवं चेव । णवरि सगट्ठिदी देसूणा । सम्मत्त--सम्मामि० अवट्ठि० सगट्ठिदी । सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि । सोहम्मादि जाव सहस्सारे त्ति देवोघं । णवरि सगट्ठिदी । आणदादि जाव णवगेवज्ज० छव्वीसंपयडीणमप्पद० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० अंतोमु० । अणंताणु०चउक्कस्स एगस०, उक्क० सव्वासिं सगट्ठिदी । अणंताणुचउक्क० भुज०--अवत्तव्व० ओघं । सम्मत्त० अप्पद० ओघं । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अवत्तव्व० ओघं । सम्मामि० एवं चेव । णवरि अप्पद० णत्थि । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणमप्पद० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त० अप्पद० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि०

छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ४७९. सामान्य मनुष्योंमें ओघकी तरह जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका काल पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेदकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ४८०. देवोंके नारकियोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल कुछकम अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। सौधर्मसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें सामान्य देवोंकी तरह काल है। इतना विशेष है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सबका अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार और अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघकी तरह है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिका काल ओघकी तरह है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघ की तरह है। सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि अल्पतर विभक्ति नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतरविभक्तिका काल ओघके समान

अवट्ठि० जहण्णुक्कस्सट्ठिदी । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ४८१. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण बावीसं पयडीणं भुजगारस्स अंतरं ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं अंतोमुहुत्तमब्भहियतीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं । अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयं । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पदर० जहण्णुक्क० अंतोमु०, चरिम-दुचरिमकंडयाणं पढम-विदिय-

---

है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघ की तरह आदेशसे भी काल को लगा लेना चाहिये। नरकमें छव्वीस प्रकृतियोंमें अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि नरकमें जन्म लेकर सम्यग्दृष्टि होने पर इतना काल पाया जाता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें अवस्थित विभक्तिका काल पूर्ण तेतीस सागर है, क्योंकि वह सम्यग्दृष्टिके भी होती है और मिथ्यादृष्टिके भी होती है। इसी प्रकार प्रत्येक नरकमें यथायोग्य समझना। सामान्य तिर्यञ्चोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है, क्योंकि कोई तिर्यञ्च तिर्यञ्चकी आयु बाँधकर देवकुरु-उत्तरकुरुमें तीन पल्यकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ तो उसके अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य काल अवस्थित विभक्तिका होता है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य होता है, क्योंकि एक मिथ्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की सत्तावाला हुआ। पुनः मिथ्यात्वमें आकर पल्यके असंख्यातवें भाग काल तक तिर्यञ्च पर्यायमें भ्रमण करके जब सम्यक्त्वके उद्वेलना कालमें अन्तर्मुहूर्त बाकी रहा तो मर कर तीन पल्य की स्थिति लेकर देवकुरु-उत्तरकुरुमें उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वको प्राप्त हो गया तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तमें इन दोनों प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है सो ही इन दोनों पर्यायों का उत्कृष्ट काल है अतः उसी तरह जानना। सामान्य देवोंमें सभी प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा जानना। भवनत्रिकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है किन्तु छब्बीस प्रकृतियोंमें कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है, क्योंकि जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् सम्यग्दृष्टि होने पर उक्त काल पाया जाता है। सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सभी प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण जानना।

§ ४८१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यका असंख्यातवाँ अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थितका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि यहाँपर चरम और द्विचरम

कंडयाणं च अंतरालस्स जहण्णुक्कस्संतरभावेण गहणादो। अवट्ठि० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० दोण्हं पि उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। णवरि अवट्ठिद० ज० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि। अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

§ ४८२. आदेसेण णेरइएसु वावीसं पयडीणं भुज० अप्पदर० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अवट्ठिद० ओघं। सम्मत्त० अप्पद० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० जह० एगस०, अधवा वे समया, अवत्त० जह०

काण्डकके अन्तरालका जघन्य अन्तररूपसे ग्रहण किया है और प्रथम तथा द्वितीय काण्डकके अन्तरालका उत्कृष्ट अन्तररूपसे ग्रहण किया है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा दोनों विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वकी तरह है। इतना विशेष है कि अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गल परावर्तनकाल प्रमाण है।

विशेषार्थ—ओघसे बाईस प्रकृतियों की भुजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर दो बार वेदक सम्यक्त्व, एक बार उपरिम ग्रैवयक और एक बार देवकुरु उत्तरकुरुके कालको तथा अन्तर्मुहूर्त सम्यक्त्वके उत्पत्तिकालको जोड़नेसे एक सौ त्रेसठ सागर और अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य होता है, अधिकसे अधिक इतने काल तक भुजगार विभक्ति बाईस प्रकृतियोंमें नहीं होती। अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर जितना पहले ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल कहा है उतना ही होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इन दोनों प्रकृतियोंमें दर्शनमोहके क्षपण कालमें जब काण्डकघात होता है तभी अल्पतर विभक्ति होती है, सो प्रथम काण्डक होकर दूसरा काण्डक होता है, अत: प्रथम काण्डक और दूसरे काण्डकमें जितना अन्तरकाल है उतना तो उत्कृष्ट अन्तर है और उपान्त्यकाण्डक और अन्तिम काण्डककी जितना अन्तरकाल है उतना जघन्य अन्तरकाल होता हैं। इन दोनों प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वके द्वारा इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता को करके अवक्तव्य विभक्ति करता है। तथा पल्यके असंख्यावें भाग कालमें दोनोंकी उद्वेलना करके पुनः प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करके पुनः इन दोना प्रकृतियोंकी सत्ता को करके अवक्तव्य विभक्ति करता है, अत: जघन्य अन्तर काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन काल है, क्योंकि प्रथमोपशमके द्वारा दोनों प्रकृतियोंकी सत्ताको करके सम्यक्त्वसे च्युत होकर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक भ्रमण करके अन्तिम भव में पुनः सम्यक्त्व को उत्पन्न करके दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता करने पर उत्कृष्ट अन्तर होता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका अन्तर भी इसी प्रकार जान लेना।

§ ४८२, आदेशसे नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार और अल्पतर विभक्तिका क्रमशः जघन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है। अवस्थितविभक्तिका अन्तर ओघकी तरह है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं

पलिदो० असंखेभागो, उक्क० दोएहं पि तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, अप्पदर० अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिं तेत्तीसं साग० देसूणाणि। एवं पढमपुढवि०। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि।

§ ४८३. तिरिक्खेसु बावीसं पयडीणं भुज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। कुदो? पंचिंदिएसु भुजगारं कादूण पुणो एइंदिएसु पविसिय पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालेण एइंदियबंधेण सरिसमणुभागसंतकम्मं काऊण पुणो सत्थाणे चेव भुजगारे कदे पलिदो० असंखे०भागमेत्तंतरकालुवलंभादो। अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० अंतोमु० सादिरेयाणि। अवट्ठि० ओघं। सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० अवत्तव्वं ओघं। अणंताणु०४ मिच्छत्त-भंगो। णवरि भुज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि। अवट्ठि० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। अवत्तव्व० ओघं।

§ ४८४. पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्जत्तएसु बावीसंपयडीणं भुज० ज०

है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय अथवा दो समय है। अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा सभी विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी स्थिति प्रमाण है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी ऐसे ही जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं है।

§ ४८३. तिर्यञ्चोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियोंमें भुजगारको करके पुनः एकेन्द्रियोंमें जन्म लेकर वहां पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा एकेन्द्रियके बन्धके समान अनुभाग सत्कर्मको करके पुनः स्वस्थानमें भुजगारके करनेपर भुजगार विभक्तिका अन्तर काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। अवस्थित विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर काल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पल्य है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है।

§ ४८४. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तकोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार

एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अप्पदर०-अवट्ठि० तिरिक्खोघं। सम्मत्त० अप्पद० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्तव्व० ज० एगस० पलिदो० असंखे०-भागो, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। णवरि भुज०-अवट्ठि० तिरिक्खोघं। अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं। णवरि सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि। पंचिं०तिरि०अपज्ज० छव्वीसंपयडीणं भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, अप्पद० अंतोमु०, उक्क० सव्वे० अंतोमु०। सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवं मणुसअपज्ज०।

§ ४८५. मणुसतियम्मि मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। अप्पद०-अवट्ठि० तिरिक्खभंगो। सम्मत्त--सम्मामि० अप्पदर० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अवट्ठि०-अवत्तव्व० ज० एगस० पलिदो० असंखे०-भागो, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। णवरि भुज०-अवट्ठि०-अवत्तव्व० पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

§ ४८६. देवेसु बावीसंपयडीणं भुज० ज० एगस०, उक्क० अट्ठारस० सागरो०

विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। अल्पतर विभक्ति और अवस्थित विभक्तिका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य-विभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि भुजगार और अवस्थितविभक्तिका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ४८५. तीन प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। अल्पतर और अवस्थित विभक्तिका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वकी तरह है। इतना विशेष है कि भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

§ ४८६. देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और

अद्धसागरोवमेण सादिरेयाणि। अप्पदर० ज०अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसू-णाणि। अवट्ठि० ओघं। सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि अंतरं। सम्मत्त०-सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्तव्व० ज० एगस० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि०-अप्पदर०-अवत्तव्व० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। एवं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। एवं भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। सम्मत्त० अप्पद० णत्थि। आणदादि जाव णवगेवज्ज० बावीसंपयडीण-मवट्ठि० जहण्णुक्क० एगस०। अप्पद० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सम्मत्त० अप्पद० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्तव्व० अणंताणु०-चउक्क० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि०-अवत्तव्व० ज० ओघं, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुदि-सादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसंपयडीणमवट्ठिद० जहण्णुक्क० एगस०। अप्पद० जहण्णुक्क० अंतोमु०। सम्मत्त० अप्पद० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

उत्कृष्ट अन्तर आधासागर अधिक अठारह सागर है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अवस्थित विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार, अवस्थित, अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। इसी प्रकार सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियों में बाईस प्रकृतियों की भुजगार और अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उतना ही कहा है जितना नरकमें पहले इन प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका

उत्कृष्ट काल कहा है। भुजगार या अल्पतर विभक्ति होकर कुछ कम तेतीस सागर पर्यन्त अवस्थितविभक्ति रही, उसके पश्चात् पुनः भुजगार या अल्पतर विभक्तिके होनेसे दोनों विभक्तियोंका अन्तर काल होता है। नरक में सम्यक्त्व प्रकृतिके अल्पतरका अन्तर काल नहीं है, क्योंकि वहाँ उसका अल्पतर कृतकृत्य वेदक के ही होता है और वह लगातार क्षय पर्यन्त होता है। और सम्यग्मिथ्यात्वका तो वहाँ अल्पतर होता ही नहीं है। इन दोनों प्रकृतियोंकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय अथवा दो समय कहा है कोई २८ की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि उद्वेलना करता हुआ प्रथमोपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ और अनिवृत्तिकरणके द्विचरम समयमें उद्वेलना कर सम्यक्त्व प्रकृतिका अभाव कर चरम समयमें २७ की सत्तावाला हो गया या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर चरम समयमें २६की सत्तावाला हो गया। अगले समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि हो सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला हो गया इस प्रकार अनवृत्तिकरणके एक चरम समयका अवस्थितमें अन्तर पड़ा अतः एक समय कहा। परन्तु जिन्होंने सम्यक्त्वके प्रथम समयको अवक्तव्यमें ले लिया उनके मतमें दो समय अन्तर होता है। उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि अवस्थित विभक्तिके पश्चात उद्वेलना करके जब तेतीस सागर काल पूर्ण होने में कुछ काल अवशेष रहे तो सम्यग्दृष्टि होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व करके दूसरे समयमें अवस्थित विभक्तिके होनेसे उतना अन्तर काल पाया जाता है। इसी प्रकार अवक्तव्यविभक्तिका भी उत्कृष्ट अन्तर काल लगा लेना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जितना उत्कृष्ट काल पहले कहा है उतना ही उनमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर काल होता है। इसी तरह अनन्तानुबन्धीमें भुजगारका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिए। अनन्तानुबन्धीकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है, क्योंकि देवकुरु उत्तरकुरुका कोई तिर्यञ्च अनन्तानुबन्धीकी अवस्थित विभक्ति करके उसका विसंयोजन करदे। अन्त समयमें सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें आकर अनन्तानुबन्धीका बन्ध करके पुनः अवस्थित विभक्ति यदि करे तो उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तीन पल्य होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है जब कि उनमें अवस्थित विभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है, इसका कारण यह है कि तीन पल्यकी स्थिति भोगभूमिमें होती है किन्तु वहां भुजगार विभक्ति नहीं होती, अतः उक्त दोनों तिर्यञ्चोंमें पूर्वकोटि पृथक्त्व असंज्ञियोंके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे अन्तरकाल कहा है। मनुष्यके तीन भेदोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम पूर्वकोटि है, क्योंकि भुजगार विभक्ति करके सम्यग्दृष्टि होजाने पर और अन्तमें सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें आकर पुनः भुजगार करनेसे उतना अन्तर पाया जाता है। मनुष्योंमें असंज्ञी नहीं होते, अतः वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा अन्तर कहा है। वेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्यसे मनुष्य नहीं होता, अतः कर्मभूमियाके एक भवकी अपेक्षा उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर काल कहा है। देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर साढ़े अठारह सागर सहस्रार स्वर्गकी अपेक्षा जानना चाहिए, क्योंकि इन प्रकृतियोंमें आगे भुजगार नहीं होता। तथा अल्पतरविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर उपरिमग्रैवेयककी अपेक्षा जानना चाहिए, क्योंकि आगे सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, इस लिये अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ही होता है। सामान्य देवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर भी उपरिम ग्रैवेयक की अपेक्षासे होता है, क्योंकि उससे ऊपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्ति

§ ४८७, णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण बावीसंपयडीणं भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णियमा अत्थि। एवं अणंताणु०चउक्क०। णवरि अवत्तव्व० भयणिज्जा। भंगा तिण्णि। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। भंगा णव। एवं तिरिक्खोघं।

§ ४८८, आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणं भुज०-अवट्ठि० सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। बावीसंपयडीणं सम्मामि० भंगा तिण्णि। सम्मत्त० अणंताणु०चउक्काणं भंगा णव। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदिय तिरिक्ख–मणुसतिय–देवोघं भवणादि जाव सहस्सार त्ति। णवरि विदियादिपुढवि०-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी०–भवण०--वाण०–जोइसिए त्ति सम्मत्त भंगा तिण्णि। पंचि०तिरि०अपज्ज० सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि भंगा। सेससव्वपयडीणं तिण्णि चेव भंगा। मणुसअपज्ज० सव्वपयडीणं सव्वपदा भयणिज्जा। छव्वीसं पयडीणं भंगा छव्वीस। सम्मत्त-सम्मामि० भंगा दोण्णि।

§ ४८९, आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। णवरि आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति तेवीसं पयडीणं

तो संभव ही नहीं है, अवस्थितविभक्ति होती है, किन्तु इन प्रकृतियोंमें उसका इतना अन्तराल तभी संभव हो सकता है जब कोई उनकी उद्वेलना करदे और अन्तमें पुनः सम्यक्त्वके साथ दोनों प्रकृतियोंकी सत्ताको उत्पन्न करके अवस्थित विभक्ति करे, यह बात अनुदिशादिकमें संभव नहीं है। इसीप्रकार सौधर्मादिकमें भी अन्तर समझना चाहिए।

§ ४८७. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अवक्तव्य विभक्ति भजनीय है। भंग तीन होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष विभक्तियां भजनीय हैं। भंग नौ होते हैं। इसीप्रकार सामान्य तिर्यंचोंमें जानना चाहिए।

§ ४८८. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष विभक्तियाँ भजनीय हैं। बाईस प्रकृतियोंके और सम्यग्मिथ्यात्वके तीन भंग होते हैं। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके नौ भंग होते हैं। इसप्रकार सातों पृथिवी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सामान्य देव तथा भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि दूसरी आदि पृथिवियोंमें तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें सम्यक्त्वके तीन भंग होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भंग नहीं होते। शेष सब प्रकृतियोंके तीन ही भंग होते हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके सभी पद भजनीय हैं। छब्बीस प्रकृतियोंके छब्बीस भंग होते हैं तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके दो भंग होते हैं।

§ ४८९. आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके

भंगा तिण्णि। सम्मत्तभंगा णव। अणंताणु०चउक्क० सत्तावीसं। उवरि सत्तावीसं पयडीणं भंगा तिण्णि०। सम्मामि० भंगा णत्थि। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

देवोंमें तेईस प्रकृतियोंके तीन भङ्ग होते हैं, सम्यक्त्व प्रकृतिके नौ भङ्ग होते हैं और अनन्तानुवन्धी चतुष्कके सत्ताईस भङ्ग होते हैं। नवग्रैवेयकसे ऊपर सत्ताईस प्रकृतियोंके तीन भङ्ग होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके भङ्ग नहीं होते। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव सदा पाये जाते हैं और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं अतः तीन भंग होते हैं। कदाचित् उक्त विभक्तिवाले जीवोंके साथ एक जीव अवक्तव्यविभक्तिवाला होता है, कदाचित् उक्त विभक्तिवालोंके साथ अनेक जीव अवक्तव्यविभक्तिवाले होते हैं। मूल भंगके साथ तीन भंग होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव सदा पाये जाते हैं और शेष विभक्तिवाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं, अतः नौ भंग होते हैं। अवस्थितविभक्तिवालोंके साथ १ कदाचित् एक जीव अल्पतर विभक्तिवाला होता है, २ कदाचित् अनेक जीव अल्पतर विभक्तिवाले होते हैं, ३ कदाचित् एक जीव अवक्तव्यविभक्तिवाला होता है, ४ कदाचित् अनेक जी अवक्तव्य विभक्तिवाले होते हैं, ५ कदाचित् एक जीव अल्पतरवाला और एक जीव अवक्तव्य वाला होता है, ६ कदाचित् एक जीव अल्पतरवाला और अनेक जीव अवक्तव्यवाले होते हैं, ७ कदाचित् अनेक जीव अल्पतरवाले और एक जीव अवक्तव्यवाला होता है, ८ कदाचित् अनेक जीव अल्पतरवाले और अनेक जीव अवक्तव्यवाले होते हैं। मूल भंगके साथ ये नौ भंग होते हैं। आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले नियमसे होते हैं शेष विभक्तिवाले विकल्पसे होते हैं। अतः बाईस प्रकृतियोंके तीन भंग हैं। बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिवालोंके साथ कदाचित् एक जीव अल्पतर विभक्तिवाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अल्पतर विभक्तिवाले होते हैं। मूल भङ्गके साथ ये तीन भंग होते हैं। नरकमें सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती, अतः उसके भी तीन भंग होते हैं—सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिके साथ कदाचित् एक जीव अवक्तव्य विभक्तिवाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अवक्तव्य विभक्तिवाले होते हैं, मूल भंगके साथ ये तीन भङ्ग होते हैं। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीके नौ भङ्ग होते हैं। सम्यक्त्वकी अल्पतर और अवक्तव्य विभक्ति विकल्पसे होती है, अतः अवस्थित विभक्तिके साथ १ कदाचित् एक जीव अल्पतरवाला होता है, २ कदाचित् अनेक जीव अल्पतरवाले होते हैं इत्यादि पूर्ववत् जानना। इसी तरह अनन्तानुबन्धीकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिवालोंके साथ शेष दो विभक्तिवालोंको मिलानेसे भी नौ भङ्ग होते हैं। दूसरेसे लेकर सातवें नरक तक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी तथा भवनत्रिकमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं। अल्पतरवाले होते ही नहीं हैं और अवक्तव्यवाले विकल्पसे होते हैं, इसलिए तीन ही भङ्ग होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं इसलिए भङ्ग नहीं है। शेष सब प्रकृतियोंकी भुजगार व अवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं इसलिये प्रत्येक प्रकृतिके तीन तीन भङ्ग होते हैं। मनुष्य अपर्याप्त सान्तर मार्गणा है अतः सभी प्रकृतियोंके सभी पद भजनीय हैं। और एक एक प्रकृतिके तीन तीन पद होते हैं अतः प्रत्येक प्रकृतिके छब्बीस छब्बीस भङ्ग होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका केवल एक अवस्थित पद ही होता है, अतः दो दो भङ्ग होते हैं—कदाचित् एक जीव अवस्थितवाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अवस्थितवाले होते हैं। आनतसे

§ ४९०. भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त--बारसक०--णवणोक० भुज० सव्वजीवाणं केव० ? संखे०भागो । अप्प० असंखे०भागो। अवट्ठि० संखेज्जा भागा। एवमणंताणु०चउक्क०। णवरि अवत्तव्व० अणंतिमभागो । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पद०—अवत्तव्व० असंखे०भागो । अवट्ठि० असंखेज्जा भागा। एवं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि।

§ ४९१. आदेसेण णेरइएसु तिरिक्खभंगो। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० असंखे०भागो। एवं पढमपुढवि०--पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सार त्ति । विदियादि जाव सत्तमपुढवि०--पंचिं०तिरिक्ख-जोणिणी०--भवण०--वाण०--जोइसि० एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अप्पद० णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्ज० णेरइयभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० णत्थि। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि भागाभागो।

लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त सभी प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं शेष पद विकल्पसे होते हैं, अतः आनतसे नव ग्रैवेयक पर्यन्त तेईस प्रकृतियोंके तीन तीन भङ्ग होते हैं; क्योंकि बाईसकी अल्पतर विभक्ति विकल्पसे होती है और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्ति विकल्पसे होती है। अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य, भुजगार और अल्पतर ये तीन विभक्ति विकल्पसे होती हैं इसलिये सत्ताईस भङ्ग होते हैं सम्यक्त्व प्रकृतिकी दो विभक्ति विकल्पसे होती हैं इसलिये नौ भङ्ग होते हैं। अनुदिशादिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्ति विकल्पसे होती है इसलिये प्रत्येकमें तीन तीन भङ्ग होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वकी केवल अवस्थित विभक्ति वाले ही नियमसे होते हैं, अतः भङ्ग नहीं है।

§ ४९०. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी भुजगार विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अल्पतर विभक्तिवाले असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर और अवक्तव्य विभक्ति-वाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है।

§ ४९१. आदेशसे नारकियोंमें तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि अनन्ता-नुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकी, पञ्चे-न्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि उनमें अन-न्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति नहीं होती। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भाग-

§ ४९२. मणुसा० ओघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० असंखे०भागो। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी०। णवरि जम्मि असंखे०भागो तम्मि संखे०भागो कायव्वो। आणदादि जाव णवगेवज्ज० सत्तावीसं पयडीणमप्पद० सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० अवत्तव्व० असंखे०भागो। सव्वेसिमवट्ठिद० असंखेज्जा भागा। णवरि अणंताणु०४ भुज० असंखे०भागो। अणुद्दिसादि जाव अवराइदं ति एवं चेव। णवरि सम्म०--सम्मामि०--अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० अणंताणु० भुज० णत्थि। सव्वट्ठे सत्तावीसपयडीणमप्पद० संखे०भागो। अवट्ठि० संखेज्जा भागा। सम्मामि० णत्थि भागाभागो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४९३. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं तिण्णि पद० दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता। अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० असंखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि० दो पदा असंखेज्जा। अप्पद० संखेज्जा।

§ ४९४. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदवि० असंखेज्जा। णवरि सम्म० अप्पद० ओघं। एवं पढमपुढवि० पंचिंदियतिरिक्ख--पंचिं०तिरि०पज्ज०-

---

भाग नहीं है।

§ ४९२. सामान्य मनुष्योंमें ओघकी तरह भंग है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि जिनका भागाभाग असंख्यातवें भाग प्रमाण है उनमें संख्यातवें भाग प्रमाण कर लेना चाहिए। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार विभक्ति वहाँ नहीं है। सर्वार्थसिद्धिमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग वहाँ नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

§ ४९३. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? अनन्त हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य और अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं और अल्पतर विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं।

§ ४९४. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सब विभक्तिवालोंका परिमाण असंख्यात है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्तिवालोंका परिमाण ओघकी तरह जानना चाहिए। इसीप्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यंच, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य

देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अप्पद० णत्थि। एवं पंचिंदियतिरि०जोणिणी-भवण०-वाण-जोदिसिए त्ति।

§ ४९५. तिरिक्खाणमोघं। णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि। पंचि०तिरि०-अपज्ज० छब्बीसं पयडीणं तिण्णि पदवि० सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० असंखेज्जा। एवं मणुसअपज्ज०। मणुस्सेसु छब्बीसं पयडीणं तिण्णिपदविह० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० असंखेज्जा। दोण्हमप्पद० छण्हमवत्तव्व० संखेज्जा। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वपय० सव्वपदवि० संखेज्जा। आणदादि जाव अवराइदं त्ति अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदवि० असंखेज्जा। णवरि सम्मत्त० अप्पद० ओघं। सव्वट्ठे सव्वपयडीणं सव्वपदविहत्तिया संखेज्जा। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४९६. खेत्ताणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छब्बीसं पयडीणं तिण्णिपदवि० केवडि० खेत्ते? सव्वलोगे। अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० सम्म०-सम्मामि० तिण्णिपदवि० लोग० असंखे०भागे। एवं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि। आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदवि० लोग०

देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसीप्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिवाले वहाँ नहीं हैं। इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यंच योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए।

§ ४९५. सामान्य तिर्यंचोंमें ओघकी तरह भंग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले वहाँ नहीं है। पञ्चेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति-वाले जीव असंख्यात हैं। इसीप्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। सामान्य मनुष्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले और सम्यक्त्व तथा सम्य-ग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले तथा इन दोनों और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंकी सब विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सब विभक्ति-वाले जीव असंख्यात हैं। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्तिवालोंका परिमाण ओघकी तरह है। सर्वार्थसिद्धिमें सब प्रकृतियोंकी सब विभक्तिवालोंका परिमाण संख्यात है। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

§ ४९६. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है। सब लोक क्षेत्र है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्य-ग्मिथ्यात्वकी तीन विभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सब विभक्तिवाले जीवोंका

असंखे०भागे। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-सव्वदेवे त्ति। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ४९७. पोसणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं तिण्णि पदवि० खेत्तभंगो। अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० सम्म०-सम्मामि० अवत्तव्व० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। सम्म-सम्मामि० अप्पद० खेत्तं। अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा सव्वलोगो वा।

§ ४९८. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणं तिण्णिपदवि० सम्मत्त०-सम्मामि० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। सम्म० अप्प० छण्हमवत्तव्व० खेत्तं। पढमपुढवि० खेत्तं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति छव्वीसं पयडीणं तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सगपोसणं। छण्हमवत्तव्व० खेत्तं।

§ ४९९. तिरिक्ख० छव्वीसं पयडीणमोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० खेत्तं। सम्म० अप्पद०-अवत्तव्व० सम्मामि० अवत्त० खेत्तं। दोण्हमवट्ठि०[1] लो० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि छव्वीसं पयडीणं

क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्यंच, सब मनुष्य, और सब देवोंमें जानना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

§ ४९७. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और चौदह राजुमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और चौदह राजुमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ ४९८. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और चौदह राजुमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्तिवालोंका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवालोंका और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंका अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए। छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

§ ४९९. सामान्य तिर्यंचोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका स्पर्शन ओघकी तरह है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्वकी अल्पतर और अवक्तव्यविभक्तिवालोंका तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितिविभक्तिवाले जीवोंने

[1] आ० प्रतौ सम्मामि० अप्पद० खेत्तं। अवट्ठि० इति पाठः।

तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० लो० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सम्म० अप्पद० छण्हमवत्त० इत्थि-पुरिस० भुज० लोग० असंखे०भागो। बादर-सुहुमएइंदिएहिंतो आगंतूण पंचिंदियतिरिक्खेसु उप्पण्णाणमित्थि-पुरिसवेदभुजगारस्स सव्वलोगो किण्ण लब्भदे? ण, विसोहिवसेण पंचिंदियतिरिक्खेसुप्पज्जमाणाणं विग्गहगईए भुजगारबंधाभावादो। णवरि जोणिणी० सम्म० अप्पद० णत्थि। पंचिं०तिरि०अपज्ज० छब्बीसं पयडीणं तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। णवरि इत्थि--पुरिस० भुज० लोग० असंखे०भागो। एवं मणुसअपज्ज०। मणुसतियस्स पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि सम्मामि० अप्प० खेत्तं।

§ ५००. देवे० छब्बीसं पयडीणं तिण्णि पदवि० सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० देसूणा। इत्थि-पुरिस० भुज० छण्हमवत्तव्व० अट्ठचोद्दस देसूणा। सम्मत्त० अप्प० खेत्तं। एवं सोहम्मीसाणे। भवण०--वाण०-

लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवोंने तथा छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने और स्त्रीवेद तथा पुरुषवेदकी भुजगारविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

शंका—बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें से आकर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगारविभक्तिका स्पर्शन सर्वलोक क्यों नहीं पाया जाता?

समाधान—नहीं, क्योंकि विशुद्ध परिणामोंके वशसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके विग्रहगतिमें भुजगारका अभाव है।

इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पशन किया है। इतना विशेष है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

§ ५००. देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और चौदह राजूमेंसे कुछकम आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार विभक्तिवाले जीवोंने और छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिवालोंका

१. आ० प्रतौ देसूणा सव्वलोगो वा सम्म० इति पाठः।

जोदिसि० एवं चेव। णवरि सगपोसणं। सम्म० अप्पद० णत्थि। सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो त्ति अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदवि० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस देसूणा। णवरि सम्म अप्प० खेत्तं। आणदादि जाव अच्चुदे त्ति अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदवि० सगपोसणं। सम्म० अप्पद० खेत्तं। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५०१. कालाणु० दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सव्वद्धा। सम्म० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मामि० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०-

---

स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सौधर्म और ईशान स्वर्गमें जानना चाहिए। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिए। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं होती। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सब विभक्तिवाले देवोंने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और चौदह राजुमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत-कल्प तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सब विभक्तिवालोंका स्पर्शन अपने अपने स्पर्शनके समान है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अच्युत स्वर्गसे ऊपर स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सम्यग्मिथ्यात्व की अवक्तव्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन जो आठ बटे चौदह राजु कहा है सो देवगति की अपेक्षा समझना। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंने अतीत कालमें सर्वलोक स्पर्श किया है, विहारवत्स्वस्थान और विक्रिया पदके द्वारा वर्तमानमें लोकका असंख्यातवाँ भाग और अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्श किया है। आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने वर्तमान कालमें लोकका असंख्यातवाँ भाग तथा अतीत कालमें लोकका असंख्यातवाँ भाग और मारणान्तिक तथा उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिवालोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंका स्पर्शन वर्तमान की अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग और अतीत काल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु तथा मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजू है। इतना विशेष है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेद की भुजगार विभक्तिवालोंने तथा छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिवालोंने अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार शेष स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

§ ५०१ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तियोंका और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य

भागो। एवं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि।

§ ५०२. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणं भुज० अवट्ठि० सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठि० सव्वद्धा। छव्वीसंपयडीणमप्पद० छण्हमवत्त० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म० अप्पद० ओघं। एवं पढमपुढवि०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्म० अप्पद० णत्थि। एवं जोणिणि--भवण०--वाण०-जोदिसिए त्ति। पंचिं०तिरि०अपज्ज० अट्ठावीसंपयडीणमप्पप्पणो पदवि० णेरइयभंगो।

§ ५०३. मणुसतिएसु छव्वीसंपयडीणं तिण्णिपदवि० णेरइयभंगो। णवरि चदुसंज०-पुरिस० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्म०-सम्मामि० अप्प०-अवट्ठि० ओघं। छण्हमवत्तव्व० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। णवरि मणुसपज्ज० मिच्छ०-बारसक०-अट्ठणोक० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया।

विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्ति उनमें नहीं होती।

विशेषार्थ—ऊपर नाना जीवोंकी अपेक्षा विभक्तियोंका काल बतलाया है। ओघसे सम्यक्त्व प्रकृति की अल्पतर विभक्तिवालोंका काल जघन्यसे एक समय है। जैसे अनेक जीवोंने दर्शनमोहके क्षपणा कालमें एक साथ एक समयके लिये सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्ति की। इसी प्रकार उत्कृष्ट काल भी समझना।

§ ५०२. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका और छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका काल ओघकी तरह है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यत्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क-देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अपनी अपनी विभक्तियोंका काल नारकियोंके समान है।

§ ५०३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तियोंका काल नारकियोंकी तरह है। इतना विशेष है कि चार संज्वलन और पुरुषवेदकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका काल ओघकी तरह है। छह प्रकृतियों की अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इतना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार

एवं मणुसिणी० । णवरि पुरिस० अप्प० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । मणुसअपज्ज० छब्बीसंपयडीणं भुज०-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । छब्बीसंपय० अप्प० णेरइयभंगो ।

§ ५०४. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अट्ठावीसंपयडीणमवट्ठि० सव्वद्धा । छब्बीसंपय० अप्प० छण्हमवत्तव्व० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । सम्म० अप्पद० ओघं । अणंताणु०४ भुज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । अणुद्दिसादि जाव अवराइदो त्ति एवं चेव । णवरि छण्हमवत्त० अणंताणु०४ भुज० णत्थि । सव्वट्ठे छब्बीसंपयडीणमप्प० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्ठि० सव्वद्धा । सम्म० अप्प० ओघं । सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सव्वद्धा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५०५. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण छब्बीसंपयडीणं तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । दोण्हमवत्त० अणंताणु०चउक्क० अवत्त० अंतरं ज० एगस०, उक्क० चउवीसं अहोरत्ते सादिरेगे ।

मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि पुरुषवेदकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजकार और अवस्थितविभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका काल नारकियोंके समान है।

§ ५०४. आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिका और छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका काल ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजकारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्ति और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार विभक्ति नहीं होती। सर्वार्थसिद्धिमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व की अल्पतर विभक्तिका काल ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५०५. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तियोंका और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छ मास है। इन दोनोंकी तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक चौबीस

§ ५०६. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणं भुज०-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अंतरं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्म० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। सम्मामि० अप्पद० णत्थि। छण्हमवत्तव्व० ओघं। एवं पढमपुढवि० पंचिंदियतिरिक्खदोण्णि देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्म० अप्पद० णत्थि। एवं पंचिं०तिरि०-जोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति।

§ ५०७. तिरिक्ख० छव्वीसंपयडीणमोघं। सम्म०--सम्मामिच्छत्ताणं णेरइय-भंगो। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णेरइयभंगो। मणुसतिण्णि छव्वीसंपयडीणं णेरइयभंगो। सम्म०--सम्मामि० ओघं। णवरि मणुसिणी० सम्म०-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। मणुसअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं तिण्णि पदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

§ ५०८. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति छव्वीसंपयडीणमप्पद० ज० एगस०,

रात दिन है।

§ ५०६. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व प्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं होती। छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें जानना चाहिए।

§ ५०७. सामान्य तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघकी तरह है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग नारकियोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका भङ्ग नारकियोंके समान है। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान है। इतना विशेष है कि मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तीनों विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

§ ५०८. आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है। अवस्थितविभक्तिका अन्तर

उक्क० सत्त रादिंदियाणि। अवट्ठि० णत्थि अंतरं। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवत्तव्व० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे। सम्म०-सम्मामि० देवोघं। अणुद्दि-सादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सत्तावीसंपयडीणमप्प० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो० संखे०भागो[1]। अट्ठावीसंपयडीणमवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५०९. भावाणु० सव्वत्थ ओदइओ भावो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५१०. अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० सव्वत्थोवा अप्पदरविहत्तिया जीवा। भुज०विहत्ति० जीवा असंखे०गुणा। अवट्ठि० जीवा संखे०गुणा। सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा अप्पदरवि०। अवत्त० असंखे०गुणा। अवट्ठि० असंखे०गुणा। अणंताणु०चउक्क० सव्वत्थोवा अवत्तव्व०। अप्पद० अणंतगुणा। भुज० असंखे०गुणा। अवट्ठि० संखे०गुणा।

नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अवक्तव्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक चौबीस रात दिन है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर विजयादिक चारमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण और सर्वार्थसिद्धिमें पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण है। अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे जिन प्रकृतियोंके जो विभक्तिवाले जीव सदा पाये जाते हैं उनमें अन्तर हो ही कैसे सकता है? ओघसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवालों का उत्कृष्ट अन्तर छ मास है, क्योंकि इन प्रकृतियोंकी यह विभक्ति दर्शनमोहके क्षपकके होती है और नाना जीवोंकी अपेक्षा उसके क्षपणकालका उत्कृष्ट अन्तर छ मास होता है। शेष सुगम है।

§ ५०९. भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदयिक भाव है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

§ ५१०. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगार विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अल्पतर विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे भुजकार विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं।

---

1. ता० प्रतौ पलिदो० असंखे०भागो इति पाठः।

§ ५११. आदेसेण णेरइएसु तेवीसंपयडीणमोघं। सम्मामि० सव्वत्थोवा अवत्त०। अवट्ठि० असंखे०गुणा। अणंताणु०चउक्क० ओघं। णवरि अप्पद० असंखे०गुणा। एवं पढमपुढवि-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सार त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अप्प० णत्थि। एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति।

§ ५१२. तिरिक्खा० ओघं। णवरि सम्मामि० णेरइयभंगो। पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज० छव्वीसंपयडीणं सव्वत्थोवा अप्पद०। भुज० असंखे०गुणा। अवट्ठि० संखे०-गुणा। सम्म०--सम्मामि० णत्थि अप्पाबहुअं। एवं मणुसअपज्ज०। मणुसाणं णेरइय-भंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा अप्प०। अवत्त० संखे०गुणा। अवट्ठि० असंखे०गुणा। एवं [मणुस-] पज्जत्त-मणुसिणीणं। णवरि सव्वत्थ संखेज्जगुणं कायव्वं।

§ ५१३. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति बावीसंपयडीणं सव्वत्थोवा अप्पद०। अवट्ठि० असंखे०गुणा। सम्म०-सम्मामि० देवोघं। अणंताणु०चउक्क० सव्वत्थोवा अवत्त०। अप्पदर० संखे०गुणा। भुज० असंखे०गुणा। अवट्ठि० असंखे०गुणा। अणुद्दिसादि

§ ५११. आदेशसे नारकियोंमें तेईस प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इतना विशेष है कि अल्पतर विभक्तिवाले असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव तथा सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ५१२. सामान्य तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग नारकियोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगार विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पबहुत्व वहाँ नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। मनुष्योंमें नारकियोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सर्वत्र असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये।

§ ५१३. आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पबहुत्व सामान्य देवोंके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य-विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगार विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे वअस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे

जाव अवराइद त्ति सत्तावीसंपयडीणं सव्वत्थोवा अप्पद० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । सम्मामि० णत्थि अप्पाबहुअं । सव्वट्ठसिद्धिम्मि एवं चेव । णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

पदणिक्खेवो

§ ५१४. पदणिक्खेवे त्ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तं अप्पाबहुअं चेदि । समुक्कित्तणाणु० दुविहो णियमा—जह० उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी उक्कस्सिया हाणी अवट्ठाणं च । सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणं अत्थि उक्कस्सिया हाणी अवट्ठाणं च । एवं तिण्हं मणुस्साणं ।

§ ५१५. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमोघं । सम्म० अत्थि उक्क० हाणी० । एवं पढमपुढवि-तिरिक्खतिय[1]-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारकप्पो त्ति । एवं विदियादि जाव सत्तमि त्ति । णवरि सम्मत्त० उक्क० हाणी णत्थि । एवं पंचिं०तिरि०-जोणिणी-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति ।

§ ५१६. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणमत्थि उक्क० हाणी

हैं । अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अल्पबहुत्व नहीं है । सर्वार्थसिद्धिमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

पदनिक्षेप

§ ५१४. पदनिक्षेपमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व । समुत्कीर्तनानुगम नियमसे दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और अवस्थान होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान होता है । इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए ।

§ ५१५. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार पहली पृथिवी सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि नहीं होती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्यअपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए ।

§ ५१६. आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि

---

१. ता० आ० प्रत्योः पढमपुढवि पंचिंदियतिरिक्खतिय इति पाठः ।

अवट्ठाणं च । णवरि आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अणंताणु०४ ओघं । सम्मत्त० देवोघं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५१७. जहण्णयं पि एवं चेव भाणिदव्वं । णवरि जहण्णणिद्द सो कायव्वो।

§ ५१८. सामित्ताणु० दुविहो—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्द सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरो जो चदुट्ठाणियजवमज्झस्सुवरिमंतोमुहुत्तमणंतगुणाए वड्ढीए वड्ढिदो तदो उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण उक्कस्साणु०भागं बंधमाणस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्साणुभाग-संतकम्मिओ तेण उक्कस्साणुभागकंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । सम्मत्त-सम्मामि-च्छत्ताणमुक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवओ तेण पढमे अणुभाग-कंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । एवं तिण्हं मणुस्साणं ।

§ ५१९. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमोघं । सम्म० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवओ सम्मत्तट्ठिदी अंतोमुहुत्तमत्थि त्ति णेरइएसु उववण्णो तस्स विदियसमयणेरइयस्स उक्क० हाणी । एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खतिय-देवोघं

और अवस्थान होता है । इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तानु-बन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५१७. इसी प्रकार जघन्यका भी कथन कर लेना चाहिये । अन्तर केवल इतना है कि उत्कृष्टके स्थानमें जघन्यका निर्देश करना चाहिये ।

§ ५१८. स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तगुणी वृद्धिसे बढ़ा, बादमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर जिसने उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध किया उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है । जिस उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले जीवने उत्कृष्ट अनुभाग का काण्डक घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो दर्शनमोहका क्षपक जीव है उसके द्वारा प्रथम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है । उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए ।

§ ५१९. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो दर्शनमोहका क्षपक जीव सम्यक्त्व प्रकृतिकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके रहते हुए नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस नारकीके सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार प्रथम नरक, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें

सोहम्मादि जाव सहस्सारे त्ति । एवं विदियादि जाव सत्तमि त्ति । णवरि सम्मत्त० उक्क० हाणी णत्थि । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति ।

§ ५२०. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छब्बीसं पयडीणमुक्क० वड्ढी कस्स ? जो तप्पाओग्गजहण्णाणुभागसंतकम्मिओ तेण तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागे पवद्धे तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ उक्कस्साणुभागखंडयमागाएदूण पुणो पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो तेण उक्कस्साणुभागखंडए घादिदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । एवं मणुस०अपज्ज० ।

§ ५२१. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति छब्बीसं पयडीणमुक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो पढमसम्मत्ताहिमुहो तेण पढमे अणुभागखंडए हदे तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । णवरि अणंताणु०४ उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्ण० विसंजोएदूण संजुत्तस्स तप्पाओग्गउक्कस्ससंकिलेसं गदस्स तस्स उक्क० वड्ढी । सम्मत्त० देवोघं । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छब्बीसं पयडीणमुक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएमाणओ तेण पढमे अणुभागखंडए हदे तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । सम्मत्त० देवोघं । एवं जाणिदूण णेदव्वं

जानना चाहिए। इसी प्रकार दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ५२०. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जिसके अपने योग्य जघन्य अनुभागकी सत्ता है उसके अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ता है वह उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकको ग्रहण कर पुनः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ५२१. आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो जीव प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख है उसके द्वारा प्रथम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करके जो जीव पुनः उनसे संयुक्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होता है उस जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करनेवाला जो जीव प्रथम अनुभाग काण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। सम्यक्त्वका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी

जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५२२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकसाय० तिण्हं पदाणं जहण्णि० कस्स[1] ? अण्णदरो जो सुहुमेइंदिय-जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ तेण अणंतभागवड्डीए एगपक्खेवे वड्डिदूण पवद्धे जहण्णिया वड्डी । तम्मि चेव घादिदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्थ अवट्ठाणं । सम्मत्त० जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयो तस्स जहण्णिया हाणी । जहण्णमवट्ठाणं कस्स ? चरिममणुभागखंडयोवट्टंतस्स । सम्मामि० जह० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवओ तेण दुचरिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं । अणंताणु०चउक्क० ज० वड्डी कस्स ? अण्णदरो जो विसंजोएदूण पुणो संजुज्जमाणओ तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स विदियसमयसंजुत्तस्स जहण्णिया वड्डी । जहण्णिया हाणी कस्स? अण्णदरो जो विसंजोएदूण अंतोमुहुत्तसंजुत्तो विस्संतो जाव सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मादो हेट्ठा बंधदि ताव तेण सव्वत्थोवे अणुभागे घादिदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं । लोभसंजलण० जह० वड्डी कस्स ? जो सुहुमेइंदियअणुभागसंत-

पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५२२. प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान किसके होता है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाला जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अनन्तभागवृद्धिमें एक प्रक्षेपकको बढ़ाकर बन्ध करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है । उसी प्रक्षेपकके घात किये जाने पर जघन्य हानि होती है । तथा दोनोंमेंसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमोहका क्षय करनेवालेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य हानि होती है । जघन्य अवस्थान किसके होता है ? अन्तिम अनुभाग काण्डकका अपवर्तन करनेवालेके सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य अवस्थान होता है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमोहके क्षपकके द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके जघन्य हानि होती है । उसीके अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उसका संयोजन करनेवाले तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले जीवके संयोजनके दूसरे समयमें जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? जो विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्त बाद संयोजन कर लेने पर विश्राम करता हुआ जब तक सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य अनुभाग सत्कर्मसे नीचे बंध करता है तब तक उसके द्वारा सबसे थोड़े अनुभागका घात किये जाने पर उसके जघन्य हानि होती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । लोभसंज्वलनकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य अनुभागकी सत्ता वाले जिस सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके सबसे जघन्य अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागकी वृद्धि होती

१. ता० प्रतौ पदाणं जहण्णि० [वड्डी] कस्स, अ० प्रतौ पदाणं जहण्ण० कस्स इति पाठः ।

कम्मिओ सव्वजहण्णअणंतभागेण वड्ढिदो तस्स जहण्णिया वड्ढी। ज० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स खवयस्स चरिमसमयसकसायस्स। जहण्णमवट्ठाणं कस्स ? अण्णदरस्स खवयस्स चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणस्स। इत्थि-णवुंसयवेदाणं ज० वड्ढी कस्स ? सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मियस्स तप्पाओग्गजहण्णअणंतभागवड्ढीए वड्ढिदस्स जहण्णिया वड्ढी। जह० हाणी कस्स ? इत्थि-णवुंसयवेदोदएणुवट्ठिदक्खवएणं[1] चरिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी। जहण्णमवट्ठाणं कस्स ? तेणेव दुचरिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णमवट्ठाणं। पुरिस० तिण्हं संजलणाणं जहण्णवड्ढीए मिच्छत्तभंगो। जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदस्स तस्स जह० हाणी। जहण्णमवट्ठाणं कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमे अणुभागस्स खंडए वट्टमाणस्स। छण्णोक० जहण्णवड्ढीए मिच्छत्तभंगो। जह० हाणी कस्स ? खवगेण दुचरिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी। तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं। एवं तिण्हं मणुस्साणं। णवरि मणुसपज्जत्तएसु इत्थि० छण्णोकसायाणं भंगो। मणुसिणीसु पुरिस-णवुंस० छण्णोकसायभंगो।

§ ५२३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त--वारसक०-णवणोक० जहण्णिया वड्ढी

है उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? क्षपकके सकषाय अवस्थाके अन्तिम समयमें संज्वलन लोभकी जघन्य हानि होती है। जघन्य अवस्थान किसके होता है ? संज्वलन लोभके अन्तिम अनुभाग काण्डकमें वर्तमान अन्यतर क्षपकके जघन्य अवस्थान होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाले सूक्ष्म एकेन्द्रियके तत्प्रायोग्य जघन्य अनन्तभागवृद्धिके होने पर जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवाले क्षपकके द्वारा अन्तिम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य हानि होती है। जघन्य अवस्थान किसके होता है ? उसी क्षपकके द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके जघन्य अवस्थान होता है। पुरुषवेद और लोभके सिवा शेष तीन संज्वलन कषायोंकी जघन्य वृद्धिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। जघन्य हानि किसके होती है ? अन्तिम समयवर्ती अनिर्लेपित अन्यतर क्षपकके इन प्रकृतियोंकी जघन्य हानि होती है। जघन्य अवस्थान किसके होता है ? अन्तिम अनुभाग काण्डकमें वर्तमान क्षपकके जघन्य अवस्थान होता है। छह नोकषायोंकी जघन्य वृद्धिका भंग मिथ्यात्वके समान है। जघन्य हानि किसके होती है ? क्षपक के द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जानेपर उसके छह नोकषायोंकी जघन्य हानि होती है। तथा उसी के अनन्तर समय में जघन्य अवस्थान होता है। इसी प्रकार तीनों प्रकार के मनुष्यों में जानना चाहिये। इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेद का भङ्ग छह नोकषायों के समान है और मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेद तथा नपुंसकवेदका भङ्ग छह नोकषायों के समान है।

§ ५२३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी जघन्य

१. ता० प्रतौ इत्थिणंवुसयवेदोदएणुवड्ढिदक्खवएण इति पाठः।

कस्स ? असण्णिपच्छायदेण हदसमुप्पत्तियकम्मेणागदेण अणंतभागेण वड्ढिदूण बंधे तस्स जहण्णिया वड्ढी । तम्मि चेव खंडयघादेण घाइदे जह० हाणी । एगदरत्थ अवट्ठाणं । सम्मत्त० जहण्णिया हाणी कस्स ? चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । अणंताणु०-चउक्क० ओघं । एवं पढमपुढवि-देवोघं ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति बावीसंपयडीणं जहण्णिया वड्ढी कस्स ? मिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गअणंतभागेण वड्ढिदस्स । तम्हि चेव घादिदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्थ अवट्ठाणं । अणंताणु०चउक्क० ओघं ।

§ ५२४. तिरिक्खेसु बावीसं पयडीणं जह० वड्ढी कस्स ? सुहुमेइंदिएण जहण्णाणुभागसंतकम्मिएण अणंतभागेण वड्ढिदूण पबद्धे जहण्णिया वड्ढी । तम्मि चेव घाइदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्थ अवट्ठाणं । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० णेरइय-भंगो । पंचिंदियतिरिक्खतिएसु बावीसं पयडीणं जह० वड्ढी कस्स ? सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मेण आगंतूण अणंतभागेण वड्ढिदूण पबद्धे जह० वड्ढी । तम्हि चेव घाइदे जहण्णि० हाणी । एगदरत्थ अवट्ठाणं । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० तिरिक्खोघं । णवरि जोणिणी० सम्म०वज्जं । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० बावीसं पयडीणमेवं चेव । अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवं मणुसअपज्ज० । भवण०-वाण० पढमपुढविभंगो ।

वृद्धि किसके होती है ? हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ असंज्ञी पर्यायसे आकर जो नरकमें जन्म लेता है और सत्तामें स्थित अनुभागसे अनन्तभागवृद्धिको लिए हुए बंध करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है । और उस बढ़े हुए अनुभागका काण्डक घातके द्वारा घात किए जाने पर जघन्य हानि होती है । इन्हीं दोनोंमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमोहके क्षपकके अन्तिम समयमें होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार पहली पृथिवी और सामान्य देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य वृद्धिके योग्य अनन्तभागवृद्धिसे युक्त मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । उसीका घात करने पर जघन्य हानि होती है । दोनों अवस्थाओंमेंसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है ।

§ ५२४. तिर्यञ्चोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके द्वारा अनन्तभागवृद्धिरूप बन्ध करने पर जघन्य वृद्धि होती है । उसीका घात कर देने पर जघन्य हानि होती है । दोनोंमेंसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्व प्रकृति और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें जन्म लेकर जब अनन्त-भागवृद्धिको लिए हुये अनुभागका बन्ध करता है तो उसके जघन्य वृद्धि होती है । उसीका घात करने पर जघन्य हानि होती है । तथा दोनोंमेंसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग तिर्यञ्चोंके समान है । इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें बाईस प्रकृतियोंकी वृद्धि आदिका स्वामिपना इसी प्रकार है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । भवनवासी और व्यन्तरोंमें पहली

णवरि सम्मत्तवज्जं। जोदिसिय० विदियपुढविभंगो। एवं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। णवरि सम्मत्त० णेरइयभंगो।

§ ५२५. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छब्बीसं पयडीणं जहण्णिया हाणी कस्स? अणंताणु०चउक्क० विसंजोयंतेण अपच्छिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जह० हाणी। तस्सेव से काले जहण्णमवट्ठाणं। सम्मत्त० ज० देवोघं। णवरि अणंताणु० चउक्कस्स दुचरिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी। तस्सेव से काले जहण्ण मवट्ठाणं। णवरि आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अणंताणु०४ ओघं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५२६. अप्पाबहुअं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णि०— ओघेण आदेसेण य। ओघेण छब्बीसं पयडीणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी। वड्डी अवट्ठाणाणि दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि अप्पाबहुअं, उक्क०हाणि-अवट्ठाणाणं सरिसत्तादो। एवं तिण्हं मणुस्साणं।

§ ५२७. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसं पयडीणमोघं। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-चउक्क०-देवोघं भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छब्बीसं पय-

---

पृथिवीके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है।

§ ५२५. आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य हानि किसके होती है? अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेवाले जीवके द्वारा अन्तिम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर जघन्य हानि होती है। उसीके अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य हानिका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कके द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसकी जघन्य हानि होती है और उसीके अनन्तर समयमें उसका जघन्य अवस्थान होता है। इतना विशेष और है कि आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५२६. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि सबसे अल्प है। उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान दोनों समान हैं, किन्तु उत्कृष्ट हानिसे कुछ अधिक हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि उनकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थानका प्रमाण समान है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए।

§ ५२७. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे अल्प है। उत्कृष्ट हानि

डीणं सव्वत्थोवा उक्कसिया वड्ढी। हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि अणंतगुणाणि। एवं मणुसअपज्ज०।

§ ५२८. आणदादि जाव सवट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणमुक्क० हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिणाणि। णवरि आणदादि णवगेवज्जा त्ति अणंताणु०४ सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी। हाणी अवट्ठाणं च अणंतगुणं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५२९. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० ज० वड्ढी हाणी अवट्ठाणाणि तिण्णि वि सरिसाणि। सम्मत्त० सव्वत्थोवा जह० हाणी। अवट्ठाणमणंतगुणं। अणंताणु०चउक्क० सव्वत्थोवा ज० वड्ढी। हाणी अवट्ठाणाणि दो वि सरिसाणि अणंतगुणाणि। चदुसंज०-पुरिस० सव्वत्थोवा ज० हाणी। अवट्ठाणमणंतगुणं। वड्ढी अणंतगुणा। एवमित्थि-णवुंसयवेदाणं। छण्णोक० सव्वत्थोवा जहण्णहाणी अवट्ठाणं च। वड्ढी अणंतगुणा। सम्मामि० जह० हाणी अवट्ठाणाणि दो वि सरिसाणि। एवं तिण्हं मणुस्साणं। णवरि मणुसपज्ज० इत्थि० छण्णोकसायभंगो। मणुस्सिणी० पुरिस०-णवुंस० छण्णोक०भंगो।

§ ५३०. आदेसेण णेरइएसु वावीसंपयडीणं तिण्ण पदा सरिसा। अणंताणु०-चउक्क० ओघं। सम्मत्त० णत्थि अप्पाबहुअं। एवं सत्तसु पुढवीसु तिरिक्खचउक्क०

और अवस्थान दोनों समान हैं किन्तु उत्कृष्ट वृद्धिसे अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ५२८. आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों समान हैं। इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे अल्प है। उत्कृष्ट हानि और अवस्थान अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५२९. अब जघन्य का प्रकरण है। निर्देश दो प्रकार का है— ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और अवस्थान तीनों ही समान हैं। सम्यक्त्वकी जघन्य हानि सबसे अल्प है। उससे अवस्थान अनन्तगुणा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य वृद्धि सबसे अल्प है। जघन्य हानि और अवस्थान दोनों ही समान हैं; किन्तु जघन्य वृद्धिसे अनन्तगुणे हैं। चारों संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य हानि सबसे अल्प है। उससे जघन्य अवस्थान अनन्तगुणा है। उससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए। छह नोकषायोंकी जघन्य हानि और अवस्थान सबसे थोड़े हैं। उनसे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य हानि और अवस्थान दोनों ही समान हैं। इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका भङ्ग छह नोकषायोंके समान है और मनुष्यिनियों में पुरुषवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग छह नोकषायोंके समान है।

§ ५३०. आदेशसे नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंके तीनों पद समान हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग ओघकी तरह है। सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, सामान्य देव

देवोघं भवणादि जाव सहस्सारो त्ति । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छब्बीसं पयडीणं तिण्णि पदा सरिसा । एवं मणुसअपज्ज०। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छब्बीसं पयडीणं ज० हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि । णवरि आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अणंताणु०चउक्क० देवोघं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं पदणिक्खेवो समत्तो ।

वड्डिविहत्ती

§ ५३१. वड्डिविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा—समुक्कित्तणा एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागं परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुअं चेदि । तत्थ समुक्कित्तणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छब्बीसं पयडीणमत्थि छव्विहा वड्डी छव्विहा हाणी अवट्ठाणं च अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्वं च । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमत्थि अणंतगुणहाणी अवट्ठाणमवत्तव्वं च । एवं णेरइयाणं । णवरि सम्मामि० अणंतगुणहाणी णत्थि । एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खतिय०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया त्ति ।

और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके तीनों पद समान हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य हानि और अवस्थान दोनों ही समान हैं । इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ ।

वृद्धिविभक्ति

§ ५३१. वृद्धि विभक्तिमें ये तेरह अनुयोगद्वार जानने चाहिये । जो इस प्रकार हैं—समुत्कीर्तना, एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व । उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी छह प्रकार की वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थान होता है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्यविभक्ति भी होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि, अवस्थान और अवक्तव्यविभक्ति होती हैं । इसी प्रकार नारकियोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ सम्यग्मिथ्यात्व की अनन्तगुणहानि नहीं होती । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वप्रकृतिका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये ।

§ ५३२. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं अत्थि छव्विहा वड्ढी छव्विहा हाणी अवट्ठाणं च। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमत्थि अवट्ठिदं। एवं मणुसअपज्ज०। तिण्हं मणुस्साणमोघं। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति बावीसं पयडीणमत्थि अणंतगुणहाणी अवट्ठिदं। अणंताणु०चउक्क० छवड्ढी हाणी अवट्ठिदं अवत्तव्वं च। सम्मत्त-सम्मामि० देवोघं। अणुद्दिस्सादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सत्तावीसं पयडीणमत्थि अणंतगुणहाणी अवट्ठिदं च। सम्मामि० अत्थि अवट्ठिदं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५३३. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० छव्विहा वड्ढी पंचविहा हाणी कस्स? अण्णदरस्स मिच्छादिट्ठिस्स। अणंतगुणहाणी अवट्ठिदं च कस्स? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। एवमणंताणु०चउक्क०। णवरि अवत्तव्व० पढमसमयसंजुत्तस्स। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणंतगुणहाणी कस्स? अण्णदरस्स दंसणमोहक्खवयस्स। एत्थ अण्णदरसद्दो वेदोगाहणविसेसावेक्खो। अवट्ठि० अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। अवत्तव्वं कस्स? पढमसमयसम्माइट्ठिस्स। एवं तिण्हं मणुस्साणं।

§ ५३४. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणमोघं। सम्मामि० अवट्ठि०

---

§ ५३२. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थान होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्थितविभक्ति होती है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें ओघकी तरह भङ्ग है। आनतसे लेकर नव ग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियों की अनन्तगुणहानि और अवस्थान होते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि, अवस्थिति और अवक्तव्यविभक्तियां होती हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग सामन्य देवोंकी तरह है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि और अवस्थान होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति होती है। इस प्रकार जानकार अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

§ ५३३. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी छह प्रकारकी वृद्धि और पाँच प्रकारकी हानि किसके होती है? किसी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अनन्तगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं? किसी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टिके होते हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अवक्तव्य विभक्ति अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः संयोजन करनेवालेके प्रथम समयमें होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि किसके होती है? किसी भी दर्शनमोहके क्षपकके होती है। यहाँ अन्यतर शब्द किसी खास वेद या अवगाहनाकी अपेक्षा नहीं करता है। अवस्थितविभक्ति किसी भी सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टिके होती है। अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है? सम्यग्दृष्टि जीवके प्रथम समयमें होती है? इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए।

§ ५३४. आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघकी तरह है। सम्य-

अवत्तव्व० ओघं। एवं पढमपुढवि-तिरिणतिरिक्ख-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण-जोदिसिए त्ति।

§ ५३५. पंचिंदियतिरिक्ख०--मणुसअपज्ज० छब्बीसं पयडीणं छवड्ढि-छहाणि-अवट्ठाणाणि सम्म०-सम्मामि० अवट्ठिदं च कस्स? अण्णद०। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति वावीसं पयडीणमणंतगुणहाणी अवट्ठिदं च कस्स? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। सम्मत्त० अणंतगुणहाणी कस्स? अण्णद० कदकरणिज्जस्स। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठि०-अवत्त० ओघं। अणंताणु० चउक्क० ओघं। अणुदिस्सादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणी अवट्ठि० सम्मामिच्छ० अवट्ठिदं च कस्स? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स। अण्णदरसद्दो[1] विमाणोगाहणविसेसाभावपदुप्पायणफलो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५३६. कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक०-अट्ठणोक० पंचवड्ढिकालो जह० एगसमओ, उक्क० आवलियाए असंखे०भागो।

मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति और अवक्तव्यविभक्तिका भङ्ग ओघकी तरह है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ५३५. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियां, छह हानियां और अवस्थान तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती हैं? किसी भी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तके होती हैं। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें वाईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होते हैं। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि किसके होती है? किसी भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तियोंका भङ्ग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि और अवस्थित तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तियाँ किसके होती हैं? किसी भी सम्यग्दृष्टिके होती हैं। यहाँ 'अन्यतर' शब्दका प्रयोजन किसी विमान विशेष या अवगाहन विशेषके अभावको बतलाता है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५३६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी पाँच वृद्धियोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य काल एक

---

1. आ० प्रतौ अण्णदस्सद्दो इति पाठः।

अणंतगुणवड्ढिकालो ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । छहाणिकालो जहण्णुक्क० एगस० । कुदो ? ओकड्डणाए अणुभागकंडयदुचरिमादिफालिसु वा णिवदमाणियासु अणुभागट्ठाणस्स घादाभावादो । तं पि कुदो ? अप्पहाणीकयसरिसधणियकम्मक्खंधत्तादो चरिमवग्गणाए पविट्ठाणं दुचरिमादिवग्गणाणं पहाणत्ताभावादो च । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदोवमस्स असंखे०भागेण सादिरेयं । सम्मत्त० अणंतगुणहाणिकालो ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अवट्ठिद० ज० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरोवमाणि तीहि पलिदो० असंखे०भागेहि सादिरेयाणि । अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । सम्मामि० अणंतगुणहाणि-अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० जह० अंतोमु०, उक्क० सम्मत्तभंगो । अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । णवरि अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । चदुसंजलण० मिच्छत्तभंगो । णवरि अणंतगुणहाणिकालो उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं पुरिस० णवरि अणंतगुणहाणिकालो ज० एगस०, उक्क० दो आवलियाओ समयूणाओ ।

§ ५३७. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसं पयडीणं छवड्ढिकालो ओघं । छहाणिकालो जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० ओघं । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि-अवत्त० सम्मामि०

समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। छह हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि अपकर्षणके द्वारा अनुभागकाण्डककी द्विचरम आदि फालियोंके पतन होने पर अनुभागस्थानका घात नहीं होता है। यह कैसे जाना ? क्योंकि प्रथम तो समान धनवाले कर्मस्कन्ध अप्रधान हैं। दूसरे अन्तिम वर्गणामें प्रविष्ट हुई द्विचरम आदि वर्गणाओंकी यहाँ प्रधानता नहीं हैं। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यात भागोंसे अधिक दो छियासठ सागर है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट कालका भङ्ग सम्यक्त्वके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। चार संज्वलन कषायोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि अनन्तगुणहानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम एक आवली है।

§ ५३७. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियोंका काल ओघके समान है। छह हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य विभक्तिका काल तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघके समान है। सम्यक्त्व

अवत्त० ओघं। दोण्हमवट्ठिदं ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० संपुण्णाणि। एवं पढमपुढवि०। णवरि सगट्ठिदी। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी। सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि।

§ ५३८. तिरिक्ख० छव्वीसं पयडीणं छवड्ढि-हाणीणं णेरइयभंगो। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि। अणंताणु०-चउक्क० अवत्त० ओघं। सम्मामि० अवत्त० सम्मत्त० अणंतगुणहाणि-अवत्त० ओघं। दोण्हमवट्ठि० मिच्छत्तभंगो। णवरि सादिरेयपमाणं पलिदो० असंखे०भागो। एवं तिण्हं पंचिंदियतिरिक्खाणं। णवरि सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण सादिरेयाणि। जोणिणीसु सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं छवड्ढि-हाणीणं णेरइयभंगो। अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। तिण्हं मणुस्साणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि पुरिस०-चदुसंजल०-सम्मामि० अणंतगुणहाणी ओघं। मणुसिणीसु पुरिस० अणंतगुणहाणी जहण्णुक्क० एगस०।

§ ५३९. देवाणं णेरइयभंगो। णवरि सव्वेसिमवट्ठिदं जह० एगस०, उक्क०

और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तेतीस सागरके स्थानमें पहले नरककी स्थिति लेनी चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अपने अपने नरककी स्थिति लेनी चाहिए। तथा सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि दूसरे आदि नरकोंमें नहीं होती।

§ ५३८. सामान्य तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियों और छह हानियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका तथा सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघके समान है। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी अवस्थित विभक्तिका काल मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि कुछ अधिकका प्रमाण पल्यका असंख्यातवाँ भाग है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छह वृद्धि और छह हानियोंका काल नारकियोंके समान है। इनकी अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तीनों प्रकारके मनुष्योंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि पुरुषवेद, चारों संज्वलन और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिका काल ओघके समान है। मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेदकी अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ५३९. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इतना विशेष है कि सब प्रकृतियोंकी

तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि। भवण-वाण-जोदिसि० विदियपुढविभंगो। णवरि अवट्ठिदस्स सगट्ठिदी। सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति पढमपुढविभंगो। णवरि अवट्ठि० सगट्ठिदी। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति बावीसं पयडीणमणंतगुणहाणिकालो जहण्णुक्क० एगस०। अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क०सगट्ठिदी। सम्म०-सम्मामि० देवोघं। णवरि सगट्ठिदी। अणंताणु०चउक्क० छवड्ढी छहाणी० देवोघं। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। अवत्तव्व० ओघं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसं पयडीणमणंतगुणहाणी० जहण्णुक्क० एगस०। अवट्ठि० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त० देवोघं। णवरि सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० जहण्णुक्क० सगट्ठिदी। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५४०. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण बावीसं पयडीणं पंचवड्ढी पंचहाणी० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणंतगुणवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं। अणंतगुणहाणी० ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयं। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्म०-सम्मामि० अणंतगुणहाणी

अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है, और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। इतना विशेष है कि अवस्थितविभक्तिका काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है। इतना विशेष है कि अवस्थितविभक्तिका काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है। इतना विशेष है कि यहाँ अपनी अपनी स्थिति लेनी चाहिये। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी छह वृद्धि और छह हानियोंका काल सामान्य देवोंकी तरह है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५४०. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धि और पाँच हानियोंका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर

जहण्णुक्क० अंतोमु० । अवट्ठि०-अवत्त० ज० एगस० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० दोण्हं पि उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। णवरि अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० देसूणाणि । अवत्त० ज० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढ-पोग्गलपरियट्टं ।

§ ५४१. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० छवड्ढी छहाणी ज० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि । अवट्ठि० ओघं । अणंताणु०-चउक्क० छवड्ढि-अवट्ठि०-छहाणि-अवत्त० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस साग० देसूणाणि । सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्त० ज० एगस० पलिदो० असंखे० भागो, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि । एवं सव्व-णेरइय०। णवरि सगट्ठिदी। विदियादि जाव सत्तमि त्ति सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि ।

§ ५४२. तिरिक्ख० वावीसंपयडीणं पंचवड्ढि-पंचहाणि-अवट्ठि० ओघं । अणंत-गुणवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अणंतगुणहाणी० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि । सम्मत्त० अणंतगुणहाणी० णत्थि

अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है तथा दोनों विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्द्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तनप्रमाण है।

§ ५४१. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी छ वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय है और छ हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितका अन्तर ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छ वृद्धियों और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, छह हानियों और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तेतीस सागरके स्थानमें प्रत्येक नारकीकी अपनी अपनी स्थिति लेनी चाहिये। दूसरेसे लेकर सातवें नरक तकके नारकियोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि नहीं होती।

§ ५४२. सामान्य तिर्यञ्चोंमें बाईस प्रकृतियोंकी पांच वृद्धियों, पांच हानियों और अवस्थित विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी अनन्तगुणहानिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य

अंतरं। दोण्हमवट्ठि०-अवत्तव्व० ओघं। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। णवरि अणंतगुणवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। अवत्त० ओघं। तिण्हं पंचिंदियतिरिक्खाणं बावीसंपयडीणं छवड्ढि-पंचहाणी० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। [अणंत]गुणहाणि०-अवट्ठि० तिरिक्खोघं। सम्मत्त० अणंतगुणहाणी० णेरइयभंगो। सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्त० ज० ओघं, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०-चउक्क० छवड्ढि-छहाणी० जह० एगस० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि। अवट्ठि० तिरिक्खोघं। अवत्त० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। जोणिणी० सम्म० अणंतगुणहाणी णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसपयडीणं छवड्ढि-अवट्ठि० ज० एगस०, छहाणी० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिमंतोमु०। सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अंतरं। एवं मणुसअपज्ज०।

§ ५४३. तिण्हं मणुस्साणं बावीसंपयडीणं पंचवड्ढि-छहाणि-अवट्ठि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। अणंतगुणवड्ढी० ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। अणंताणु०-

---

विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पल्य है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियोंमें वाईस प्रकृतियोंकी छ वृद्धियों और पाँच हानियोंका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है। अनन्तगुणहानि और अवस्थित विभक्तिका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका भङ्ग नारकियोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी छह वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय है और छह हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पल्य है। अवस्थितका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोंकी तरह है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि नहीं होती। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियों और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, छह हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा सब विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ५४३. तीन प्रकारके मनुष्योंमें बाईस प्रकृतियोंकी पांच वृद्धियों छह हानियों और अवस्थित विभक्तिका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटी है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका

चउक्क० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्त० पंचिं०तिरिक्ख-भंगो। अणंतगुणहाणी० ओघं।

§ ५४४. देवेसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० छवड्ढि-पंचहाणी० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि। अवट्ठि० ओघं। अणंतगुणहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०चउक्क० छवड्ढि-अवट्ठि०-छहाणि-अवत्त० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। सम्मत्त० अणंतगुणहाणी० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्त० ज० ओघं, उक्क० एक्कत्तीसं साग० देसूणाणि। भवण०--वाण०--जोदिसि० विदियपुढविभंगो। णवरि सगट्ठिदी। सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति पढमपुढविभंगो। णवरि सगट्ठिदी। आणदादि णवगेवज्जा त्ति बावीसंपयडीणं अणंतगुणहाणी० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगस०। सम्म०-सम्मामि० देवोघं। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० छवड्ढि-अवट्ठि० जह० एगस०, छहाणि-अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिं सगट्ठिदी देसूणा। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छव्वीसंपयडीणमणंतगुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगस०।

भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। तथा अनन्तगुणहानिका अन्तर ओघके समान है।

§ ५४४. देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी छह वृद्धियों और पांच हानियोंका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय है और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अठारह सागर है। अवस्थितका अन्तर ओघके समान है। अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छह वृद्धियों और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और छह हानियों तथा अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर ओघकी तरह है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। इतना विशेष है कि दूसरी पृथिवीकी स्थितिके स्थानमें अपनी स्थिति लेनी चाहिये। सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है। इतना विशेष है कि यहाँ अपनी-अपनी स्थिति लेनी चाहिये। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतना विशेष है कि यहाँ कुछ कम अपनी स्थिति लेनी चाहिये। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छह वृद्धियों और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है। छह हानियों और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छब्बीस

सम्मत्त० अणंतगुणहाणि-अवट्टि० सम्मामि० अवट्टि० णत्थि अंतरं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५४५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण वावीसं पयडीणं तेरसपदा णियमा अत्थि। अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० भयणिज्जं। सेसपदा णियमा अत्थि। भंगा तिण्णि। सम्म०--सम्मामि० अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा० भयणिज्जा। भंगा णव। एवं तिरिक्खा०। णवरि सम्मामि० अणंतगुणहाणी णत्थि। भंगा तिण्णि।

प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य और एक सौ त्रेसठ सागर कहा है सो अनन्तगुणवृद्धि मिथ्यादृष्टिके ही होती है और भोगभूमिमें तथा आनतादिकमें मिथ्यादृष्टिके भी नहीं होती, अतः दो बार छियासठ छियासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ विताने तथा एक वार उपरिम ग्रैवेयकमें और तीन पल्यकी स्थितिके साथ उत्कृष्ट भोगभूमिमें वितानेसे अनन्तगुणवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य और एक सौ त्रेसठ सागर होता है। अनन्तगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेसठ सागर और पल्यके असंख्यातवें भाग होता है सो उतना ही अवस्थितका उत्कृष्ट काल है, अतः अनन्तगुणहानि करके उतने काल तक अवस्थित रहकर पुनः अनन्तगुणहानि करनेसे उतना अन्तर काल होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल पल्यका असंख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन पूर्ववत् जानना। अनन्तानुबन्धकी अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी अवस्थित विभक्ति करके अनन्तानुबन्धीके विसंयोजन पूर्वक वेदक सम्यग्दृष्टि होकर कुछ कम छियासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें जाकर पुनः सम्यक्त्व ग्रहण करके कुछ कम छियासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वमें जाकर अनन्तानुबन्धीका बन्ध करनेके पश्चात् अवस्थित विभक्तिको करता है। आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियों और छह हानियों आदिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। वृद्धि मिथ्यादृष्टिके होती है और हानि दोनोंके होती है। और नरकमें मिथ्यात्वका अन्तर काल भी कुछ कम तेतीस सागर है और सम्यक्त्वका अन्तर काल भी कुछ कम तेतीस सागर है अतः उतना ही उन विभक्तियोंका भी अन्तर काल जानना। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका भी उत्कृष्ट अन्तर काल इसी प्रकार जानना। प्रत्येक नरकमें यह अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है।

§ ५४५. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे बाईस प्रकृतियोंके तेरह पद नियमसे होते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद भजनीय है, शेष पद नियमसे होते हैं। भंग तीन हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अवस्थित पद नियमसे होता है, शेष पद भजनीय हैं। भंग नौ हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती।

§ ५४६. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमणंतगुणवड्ढि--अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसएक्कारसपदा भयणिज्जा। अक्खपरावत्तेण सुत्तगाहाए च आणिदभंगा एत्तिया होंति १७७१४७। णवरि अणंताणु०चउक्क० भयणिज्जपदाणि वारह। तेसिं भंगा ५३१४४१। सम्म० अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा०। भंगा णव। एवं सम्मामि०। णवरि भंगा तिण्णि। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-तिण्णिमणुस-देव-भवणादि जाव सहस्सारो त्ति। णवरि विदियादिपुढवि-पंचिं०तिरि०-जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिएसु सम्मत्तस्स तिण्णि भंगा। पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० सम्म०-सम्मामि० णत्थि भंगा। मणुस्सअपज्ज० सव्वपयडी० सव्वपदा भयणिज्जा। छव्वीसं पयडीणं भंगसमासो एसो १५९४३२२। सम्म०-सम्मामि० भंगा दोण्णि। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। णवरि आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अणंताणु०४ अणंतगुणवड्ढि-अवट्ठिदं णियमा अत्थि। वावीसं पयडीणं भंगा तिण्णि। अणंताणु०चउक्क० भंगा जाणिय वत्तव्वा। सम्मत्तभंगा णव। सम्मामि० भंगा तिण्णि। उवरि सत्तावीसं पयडीणं भंगा तिण्णि। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

भंग तीन होते हैं।

§ ५४६. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थित विभक्ति नियमसे होती हैं। शेष ग्यारह पद भजनीय हैं। अक्षपरावर्तन और सूत्र गाथाके द्वारा निकाले गये भंगों की संख्या १७७१४७ होती है। इतना विशेष है कि अनन्तानुवन्धीचतुष्कके भजनीय पद वारह हैं उनके भंग ५३१४४१ होते हैं। सम्यक्त्वकी अवस्थितविभक्ति नियमसे होती है, शेष पद भजनीय हैं। भंग नौ होते हैं। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके विषयमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उसके तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार सव नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि दूसरी आदि पृथिवीयों, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्कों में सम्यक्त्वके तीन भंग होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके भंग नहीं होते। मनुष्य अपर्याप्तकों में सव प्रकृतियों के सभी पद भजनीय हैं। छब्बीस प्रकृतियों के भंगों का जोड़ १५९४३२२ होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके दो भंग होते हैं। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों में अट्ठाईस प्रकृतियों का अवस्थित पद नियमसे होता है, शेष पद भजनीय हैं। इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्ति नियमसे होती है। वाईस प्रकृतियोंके तीन भंग होते हैं। अनन्तानुवन्धीचतुष्कके भंग जानकर कहने चाहिये। सम्यक्त्व प्रकृतिके नौ भंग होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके तीन भंग होते हैं। नवग्रैवेयकसे ऊपर सत्ताईस प्रकृतियोंके तीन भंग होते हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे वाईस प्रकृतियों में छह वृद्धियां, छ हानियां और अवस्थितविभक्ति ये तेरह पद नियमसे होते हैं। अनन्तानुवन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद सदा नहीं होता, विकल्पसे

§ ५४७. भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं पंचवड्ढि--छहाणिविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखे०-भागो। अणंतगुणवड्ढिविहत्तिया सव्वजी० केव० भागो ? संखे०भागो। अवट्ठि० [अ] संखेज्जा भागा। अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० अणंतिमभागो। सम्म०-सम्मामि०

होता है, क्योंकि अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना करके सम्यक्त्वसे च्युत हुआ जीव मिथ्यात्वमें आकर अनन्तानुवन्धीका वन्ध करके जव उसके सत्त्ववाला होता है तो अवक्तव्य विभक्ति होती है। अनन्तानुवन्धीके शेष पद नियमसे होते हैं। अतः तीन भंग होते हैं। कदाचित सब जीव शेष पद विभक्तिवाले होते है, कदाचित् अनेक जीव शेप पद विभक्तिवाले और एक जीव अवक्तव्य विभक्तिवाला होता है। कदाचित् अनेक जीव शेष पद विभक्तिवाले और अनेक जीव अवक्तव्य विभक्तिवाले होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्य ये तीन पद होते हैं। इनमेंसे अवस्थित पद नियमसे होता है और शेष दो पद विकल्पसे होते हैं, अत: दो पदोंके नौ भंग होते हैं। सामान्य तिर्यञ्चोंमें सम्यग्मिथ्यात्वका अनन्तगुणहानि पद नहीं होता, अत: एक अवक्तव्य पद विकल्पसे होता है और इसलिये तीन ही भंग होते हैं। आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंके दो पद नियमसे होते हैं, और शेष ग्यारह पद विकल्पसे होते हैं। अत: पहले कही गई गाथाके अनुसार ग्यारह अध्रुव पदोंके १७७१४६ भंग होते हैं। उनमें एक ध्रुव भंगके मिला देनेसे १७७१४७ कुल भंग होते हैं। अनन्तानुवन्धीके एक अवक्तव्य पदके होनेसे अध्रुव पद वारह होते हैं और वारह अध्रुव पदोंके ५३१४४० भंग होते हैं। उनमें एक ध्रुव भंगके मिलानेसे कुल भंग होते हैं। दूसरे आदि नरकोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका अनन्तगुणहानि पद नहीं होता है अत: तीन ही भंग होते हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी एक अवस्थित विभक्ति ही होती है अत: भंग नहीं होते। मनुष्य अपर्याप्त सान्तर मार्गणा है अत: उसमें सभी प्रकृतियोंके सभी पद विकल्पसे होते हैं, अतः छव्वीस प्रकृतियोंके तेरह पदोंके १५९४३२२ भंग होते हैं, और सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके दो भंग होते हैं—कदाचित् एक जीव अवस्थितविभक्तिवाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तक वाईस प्रकृतियोंके अनन्तगुणहानि और अवस्थित ये दो पद होते हैं, इनमें अवस्थित पद ध्रुव है और अनन्तगुणहानि पद अध्रुव है अत: तीन भंग होते हैं। अनन्तानुवन्धीमें अनन्तगुण वृद्धि और अवस्थित पद ध्रुव हैं और शेष वारह पद अध्रुव हैं, अतः उसमें भंग ५३१४४१ होते हैं। सम्यक्त्व प्रकृतिके अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य पद अध्रुव हैं अत: नौ भंग होते हैं और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका केवल एक अवक्तव्य पद अध्रुव है अत: तीन भंग होते हैं। अनुदिशादिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंका अवस्थित पद ध्रुव है और अनन्तगुणहानि पद अध्रुव है अतः तीन भंग होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वका केवल एक अवस्थित पद ही होता है अतः भंग नहीं होते।

§ ५४७. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धि और छह हानि विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनन्तगुणवृद्धि विभक्तिवाले जीव सव जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले संख्यात वहुभाग प्रमाण हैं। अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले अनन्तवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व

अणंतगुणहाणि०--अवत्तव्व० सव्वजी० केव० ? असंखे०भागो। अवट्ठि० असंखेज्जा भागा। एवं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मामि० अणंतगुणहाणी णत्थि।

§ ५४८. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणं तिरिक्खभंगो। एवं पढमपुढवि०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं पंचिं०-तिरि०जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिए त्ति। पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं णेरइयभंगो। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्त० णत्थि। सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि भागाभागं। एवं मणुसअपज्ज०।

§ ५४९. मणुसाणं णेरइयभंगो। णवरि सम्मामि० ओघं। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अट्ठावीसं पयडीणमवट्ठि० संखेज्जा भागा। सेसपदा० संखेज्जदिभागो। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति बावीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अवट्ठि०[1] असंखेज्जा भागा। अणंताणु०चउक्क० सम्मत्त०-सम्मामि०

और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि नहीं होती।

§ ५४८. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भागाभाग ओघकी तरह है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग सामान्य तियञ्चोंकी तरह है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिका भागाभाग सम्यग्मिथ्यात्वकी तरह है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भागाभाग नारकियोंकी तरह है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद वहाँ नहीं होता। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ५४९. सामान्य मनुष्योंमें नारकियोंके समान भंग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघकी तरह है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिवाले संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। शेष पदवाले संख्यातवें भागप्रमाण हैं। आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह

1. आ० प्रतौ केव० ? असंखेज्जा। अवट्ठि० इति पाठः।

देवोघं। णवरि अणंताणु० अणंतगुणवड्ढि० असंखे०भागो। अणुद्दिसादि जाव अवराइदो त्ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० असंखे०भागो। अवट्ठि० असंखेज्जा भागा। सम्मामि० णत्थि भागाभागो। एवं सव्वट्ठे। णवरि संखेज्जं कायव्वं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५५०. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण वावीसं पयडीणं तेरसपदवि० दव्वपमाणेण केव०? अणंता। एवमणंताणु०चउक्क०। णवरि अवत्त० असंखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि० अणंतगुणहाणि० दव्वपमाणेण केव०? संखेज्जा। सेसपदवि० असंखेज्जा। एवं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मामि० अणंत-गुणहाणी णत्थि।

§ ५५१. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदवि० असंखेज्जा। णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ओघं। एवं पढमपुढवि०-पंचिं०तिरिक्ख०-पंचिं०-तिरिक्खपज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि। एवं जोणिणी--भवण०--वाण०-जोदिसिए त्ति। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छब्बीसं पयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-

---

है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनन्तगुणवृद्धिवाले असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि असंख्यातके स्थानमें संख्यात कर लेना चाहिये। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

§ ५५०. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे बाईस प्रकृतियोंके तेरह पदविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? अनन्त हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा परिमाण जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इसके अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं? संख्यात हैं। शेष पद विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं है।

§ ५५१. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके सब पद विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानिवालोंका परिमाण ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके तेरह पद विभक्तिवाले और

सम्मामि० अवट्ठि० असंखेज्जा । एवं मणुसअपज्ज० ।

§ ५५२. मणुसेसु छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० असंखेज्जा । अणंताणुचउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० अणंतगुणहाणी० अवत्त० संखेज्जा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अट्ठावीसंपयडीणं सव्वपदवि० संखेज्जा । आणदादि जाव अवराइदो त्ति अट्ठावीसंपयडीणं सव्वपदवि० असंखेज्जा । णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० संखेज्जा । सव्वट्ठसिद्धिविमाणे अट्ठावीसंपयडीणं सव्वपदवि० संखेज्जा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५५३. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० सव्वपदविहत्ति० के० खेत्त० ? लोग० असंखे०भागे । एवं तिरिक्खोघं । णवरि सम्मामि० अणंतगुणहाणी णत्थि । सेसमग्गणासु सव्वपयडीणं सव्वपदविह० लोग० असंखे०भागे । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५५४. पोसणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० के० खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो । अणंताणु०चउक्क० अवत्त०

सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकों में जानना चाहिए ।

§ ५५२. सामान्य मनुष्यों में छब्बीस प्रकृतियों की तेरह पदविभक्तिवाले और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले, तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों में अट्ठाईस प्रकृतियों की सब पद विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । आनतसे लेकर अपराजित विमान तकके देवों में अट्ठाईस प्रकृतियों की सब पद विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । सर्वार्थसिद्धि विमानमें अट्ठाईस प्रकृतियों की सब पद विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५५३. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सर्व पद विभक्तिवाले जीवों का कितना क्षेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चों में जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती । शेष मार्गणाओं में सब प्रकृतियों की सब पद विभक्तिवाले जीवों का लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

§ ५५४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्व लोकका स्पर्शन किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भागका

लो० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। सम्म०-सम्मामि० अणंतगुणहाणि० खेत्तं। अवट्ठि० लो० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा सव्वलोगो वा। अवत्त० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा।

§ ५५५. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० केव० ? लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। सम्म० अणंतगुणहाणि० छण्हमवत्त० खेत्तं। पढमपुढवि० खेत्तं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सगपोसणं वत्तव्वं। छण्हमवत्त० खेत्तं।

§ ५५६. तिरिक्ख० छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० ओघं। सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० छण्हमवत्त० खेत्तं। सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज० छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सम्म० अणंतगुणहाणि० इत्थि-पुरिस० छवड्ढी० छण्हमवत्त० खेत्तं। एवं जोणिणी०। णवरि सम्मत्त० अणंत-

---

और चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजु प्रमाण क्षेत्रके स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अवस्थित विभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य विभक्तिवालाने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ ५५५. आदेशसे नारकियोमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालों और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालेने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह राजूमेंसे कुछ कम छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान स्पर्शन है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालों तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंका अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

§ ५५६. सामान्य तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालोंका स्पर्शन ओघके समान है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी छह वृद्धिवालोंका और सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान

गुणहाणी णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। णवरि इत्थि-पुरिस० छवड्ढी० खेत्तं। एवं मणुसअपज्ज०। तिण्हं मणुस्साणं पंचिं०तिरिक्खभंगो। णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणंतगुणहाणि० ओघं।

§ ५५७. देवेसु छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०--सम्मामि० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० देसूणा। सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० खेत्तं। छण्हमवत्त० इत्थि-पुरिस० छवड्ढी० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द० देसूणा। एवं भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति। णवरि सगपोसणं। सम्म० अणंतगुणहाणी णत्थि। सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०--सम्मामि० अवट्ठि० छण्हमवत्त० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्द० देसूणा। सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० खेत्तं। णवरि सोहम्मीसाणेसु अट्ठ-णवचोद्दसभागा देसूणा। आणदादि जाव अच्चुदो त्ति वावीसंपयडीणमवट्ठि० अणंतगुणहाणि० अणंताणु० सव्वपदवि० सम्म०-

---

है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि नहीं है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालोंने तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी छह वृद्धिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। शेष तीन प्रकारके मनुष्योंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भंग है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिका स्पर्शन ओघके समान है।

§ ५५७. देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालोंने तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी छह वृद्धिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ अपना-अपना स्पर्शन लेना चाहिए। तथा उनमें सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि नहीं है। सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालोंने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवालोंने तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतना विशेष है कि सौधर्म और ईशान स्वर्गमें चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आनतसे लेकर अच्युत स्वर्ग तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्ति और अनन्तगुणहानिवालोंने, अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी सर्व पद विभक्तिवालोंने तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और

सम्मामि० अवट्ठि०-अवत्तव्व० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० खेत्तं। उवरि अट्ठावीसंपयडीणं सव्वपदवि० खेत्तं। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५५८. णाणाजीवेहि कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सव्वद्धा। छण्हमवत्त० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सम्म० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मामि० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। एवं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मामि० अणंतगुणहाणी णत्थि।

अवक्तव्य विभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह राजूमेंसे कुछ कम छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अच्युत स्वर्गसे ऊपर अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सर्व पद विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे अनन्तानुबन्धी, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्ति वालोंका जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्शन कहा है सो अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान आदि संभव पदोंके द्वारा जानना चाहिए। आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पदविभक्तिवालोंका स्पर्शन अतीत कालकी अपेक्षा मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह राजू होता है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा तीनों कालोंमें सर्वलोकका स्पर्शन किया है और विहारवत्स्वस्थान आदि संभव पदोंके द्वारा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन किया है। सामान्य देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालोंने विहारवत्स्वस्थान, विक्रिया आदि पदोंके द्वारा अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पशन किया है और मारणान्तिक समुद्घातके द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और वर्तमानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सौधर्मादिक में जानना चाहिए। विशेष यह है कि मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजू स्पर्शन ईशान पर्यन्त ही होता है, क्योंकि ईशान तकके देव ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, ऊपरके देव नहीं करते। तथा आनतादिक स्वर्गोंमें मारणान्तिक आदि पदोंके द्वारा कुछकम छह बटे चौदह राजू स्पर्शन होता है, क्योंकि चित्रा पृथिवीके ऊपरके तलसे नीचे इनका गमन नहीं होता।

§ ५५८. नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं है।

§ ५५६. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणं पंचवड्डि-छहाणि० छण्हमवत्त० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणंतगुणवड्डि-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सव्वद्धा। सम्म० अणंतगुहाणि० ओघं। एवं पढमपुढवि०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति। पंचिं०तिरि०अपज्ज० छव्वीसंपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णेरइयभंगो। एवं मणुसअपज्ज०। णवरि छव्वीसंपयडीण-मणंतगुणवड्डि--अवट्ठि० सम्म०--सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

§ ५६०. मणुस्सेसु छव्वीसं पयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णेरइयभंगो। णवरि चदुसंज०-पुरिस०-सम्म० अणंतगुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। छण्णमवत्त० सम्मामि० अणंतगुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। मणुसपज्ज० छव्वीसं पयडीणं पंचवड्डी० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०-

§ ५५९. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी पांच वृद्धियों और छ हानियोंका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। छब्बीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका काल ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पयाप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि दूसरे आदि नरकोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्त-गुणहानि नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल नारकियोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि छब्बीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ५६०. मनुष्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल नारकियोंके समान है। इतना विशेष है कि चारों संज्वलन कषाय, पुरुषवेद और सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्त गुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्य पर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी पांच वृद्धियोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल

१. आ० प्रतौ सम्म० अणंतगुणहाणी जह० एगस० उक्क० संखेज्जा समया इति पाठः।

भागो। छहाणी० सम्मामि० अणंतगुणहाणि० छण्हमवत्त० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अणंतगुणवड्ढि-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सव्वद्धा। णवरि चदुसंजल०-पुरिस०-सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं मणुसिणी०। णवरि पुरिस० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया।

§ ५६१. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति छव्वीसं पयडीणं अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। एवं छण्हमवत्त०। सव्वासिमवट्ठि० सव्वद्धा। सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ओघं। अणंताणुबंधी० सव्वपदा० देवोघं। अणुद्दिसादि जाव अवराइदो त्ति सत्तावीसं पयडीणं दोपदवि० सम्मामि० अवट्ठि० आणदभंगो। एवं सव्वट्ठे। णवरि छव्वीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५६२. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं तेरसपदवि० णत्थि अंतरं। एवं सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदस्स। छण्ह-

---

आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। छह हानियोंका, सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिका और छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थित्त विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। इतना विशेष है कि चारों संज्वलन कषाय, पुरुषवेद और सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि पुरुषवेदकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

§ ५६१. आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका काल जानना चाहिए। सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका काल ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीकषायके सब पदोंका काल सामान्य देवोंकी तरह है। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी दो पद विभक्तियोंका तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल आनत स्वर्गके समान है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे अनेक जीव एक साथ अवक्तव्य विभक्तिवाले हुए और दूसरे समयमें अन्य विभक्तिवाले होगये तो एक समय काल होता है और यदि लगातार अनेक जीव अवक्तव्य विभक्तिवाले होते रहे तो आवलिका असंख्यातवाँ भाग काल होता है। लगातार इससे अधिक समय तक अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव नहीं पाये जाते। इसी प्रकार अन्य विभक्तिवालोंका तथा आदेशसे चारों गतियोंमें भी काल घटित कर जानना चाहिए।

§ ५६२. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तियोंका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और

मवत्त० ज० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ताणि सादिरेयाणि । सम्म०-सम्मामिच्छ-त्ताणमणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा ।

§ ५६३. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणं पंचवड्ढि-पंचहाणी० जह० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा । अणंतगुणवड्ढि०-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० छण्हमवत्त० ओघं । एवं पढमपुढवि०-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०--देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति । विदियादि जाव सत्तम-पुढवि०--पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी--भवण०--वाण०--जोइसिए त्ति एवं चेव । णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि ।

§ ५६४. तिरिक्ख० छव्वीसंपयडीणमोघं । सम्म०-सम्मामि० णेरइयभंगो । पंचिं०तिरि०अपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणं सव्वपदवि० णेरइयभंगो । तिण्हं मणुस्साणं पि णेरइयभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० ओघं । मणुस्सिणीसु सम्म०-सम्मामिच्छ-त्ताणं अणंतगुणहाणि० उक्क० वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं पंचवड्ढि०-पंचहाणि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणंतगुणवड्ढि-हाणि-अवट्ठि० सम्म०-

सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है । छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक चौबीस रात दिन है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ।

§ ५६३. आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी पाँचों वृद्धियों और पाँचों हानियोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका तथा छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती ।

§ ५६४. सामान्य तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सब पद विभक्तियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । तीन प्रकारके मनुष्योंमें भी नारकियोंके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धियों और पाँच हानियोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनन्त-गुणवृद्धि, अनन्तगुणहानि और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी

सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ५६५. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति बावीसं पयडीणं अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि । अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अंतरं । दोण्हमवत्त० सम्म० अणंतगुणहाणि० अणंताणु० सव्वपदा० देवोघं । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो० संखे०भागो[1] । एदेसिमवट्ठि० सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५६६. भावाणु० सव्वत्थ ओदइओ भावो । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५६७. अप्पाबहुगाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण बावीसं पयडीणं सव्वत्थोवा अणंतभागहाणिविहत्तिया जीवा । असंखेज्जभागहाणिवि० असंखे०गुणा । संखेभागहाणिवि० संखे०गुणा । संखे०गुणहाणिवि० संखे०गुणा । असंखे०गुणहाणिवि० असंखे०गुणा । अणंतभागवड्ढिविह० असंखे०गुणा । असंखे० भागवड्ढिवि० असंखे०गुणा । संखे०भागवड्ढिवि० संखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढिवि०

अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ५६५. आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है । बाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका, सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके सब पदोंका अन्तर सामान्य देवोंकी तरह है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनुदिशसे अपराजित तक वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण है । इन प्रकृतियोंकी तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५६६. भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदयिक भाव है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५६७. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी अनन्तभागहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे असंख्यात भागहानि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागहानि विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणहानि विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे है । इनसे असंख्यातगुणहानि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तभागवृद्धि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धि विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

1. ता० प्रतौ पलिदो० असंखेज्जदिभागो इति पाठः ।

संखे०गुणा। असंखे०गुणवड्डिवि० असंखे०गुणा। अणंतगुणहाणिवि० असंखे०गुणा। अणंतगुणवड्डिवि० असंखे०गुणा। अवट्ठिदवि० संखेज्जगुणा। एवमणंताणु०चउक्क०। णवरि सव्वत्थोवा अवत्त०विह० जीवा। अणंतभागहाणिविह० अणंतगुणा। सेसं तं चेव। सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अणंतगुणहाणिवि० जीवा। अवत्त०विहत्ति० असंखे०गुणा। अवट्ठि०विहत्ति० असंखे०गुणा।

§ ५६८. आदेसेण णेरइएसु बावीसंपयडीणमोघं। अणंताणु०चउक्क० सव्वत्थोवा अवत्त०विहत्तिया जीवा। अणंतभागहाणिवि० असंखे०गुणा। उवरि ओघं। सम्मत्त० ओघं। सम्मामि० सव्वत्थोवा अवत्त०विहत्ति० जीवा। अवट्ठि०वि० असंखे०गुणा। एवं पढमपुढवि--पंचिं०तिरिक्ख--पंचिं०तिरिं०पज्ज०--देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारे त्ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी०-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। तिरिक्खा० ओघं। णवरि सम्मामि० णेरइयभंगो। पंचिं०तिरि०अपज्ज० छव्वीसंपयडीणमोघं। [णवरि अणंताणु०] मिच्छत्तभंगो। सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि अप्पाबहुअं, एयपदत्तादो। एवं मणुसअपज्ज०।

इनसे असंख्यातगुणवृद्धि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिवाले संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अल्पबहुत्व है। किन्तु इनमें अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनन्तभागहानि विभक्तिवाले अनन्तगुणे हैं। शेष पूर्ववत् जानना। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि विभक्ति वाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ५६८. आदेशसे नारकियोंमें बाईस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनन्तभागहानि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। आगे ओघकी तरह भङ्ग है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग ओघकी तरह है। सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरे नरकसे लेकर सातवें पर्यन्त तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघकी तरह है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है अर्थात् इनका अवक्तव्य पद नहीं होता। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि यहाँ उनका एक ही पद पाया जाता है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए।

§ ५६९. मणुस्सेसु छव्वीसंपयडीणं णेरइयभंगो । सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अणंतगुणहाणिविहत्तिया जीवा । अवत्त०विहत्ति० संखे०गुणा । अवट्ठि० विहत्ति० असंखे०गुणा । एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि सव्वत्थ संखेज्जगुणं कायव्वं । आणदादि जाव णवगेवेज्जा त्ति वावीसंपयडीणं सव्वत्थोवा अणंतगुणहाणिविहत्ति० जीवा । अवट्ठि०विहत्ति० असंखेज्जगुणा । सम्म०-सम्मामिच्छ०-अणंताणु०चउक्क० देवोघं । आणदादिसु अणंताणु०बंधीणं छवड्ढि-छहाणिसंभवो उच्चारणाहिप्पाएण लिहिदो, विसंजोएदूण संजुत्तम्मि तदुवलंभादो । मूलवक्खाणाहिप्पाएण पुण अणंतगुणहाणि-अवट्ठिद-अवत्तव्वाणि चेव । एवं जाणिय वत्तव्वं । अणुद्दिसादि जाव अवराइदो त्ति सत्तावीसंपयडीणं सव्वत्थोवा अणंतगुणहाणिविहत्तिया जीवा । अवट्ठिद-विहत्ति० असंखे०गुणा । सम्मामि० णत्थि अप्पाबहुअं । एवं सव्वट्ठे । णवरि संखेज्ज-गुणं कायव्वं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं णीदे वड्ढि त्ति अणियोगद्दारं समत्तं होदि ।

ट्ठाणपरूवणा ।

*** संतकम्मट्ठाणाणि तिविहाणि—बंधसमुप्पत्तियाणि हदसमुप्पत्तियाणि हदहदसमुप्पत्तियाणि ।**

§ ५६९. सामान्य मनुष्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका नारकियोंके समान भङ्ग है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवक्तव्य-विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सर्वत्र संख्यात-गुणा कर लेना चाहिये । आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अनन्त-गुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है । आनत आदिमें अनन्तानुबन्धी कषायकी छह वृद्धि और छह हानियोंका होना उच्चारणाके अभिप्रायसे लिखा है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन करके पुनः उसका संयोजन करने पर छह वृद्धियाँ और छह हानियाँ पाई जाती हैं । किन्तु मूल व्याख्यानके अभिप्रायसे आनत आदिमें अनन्तानुबन्धी कषायके अनन्तगुणहानि, अवस्थित और अवक्तव्य पद ही होते हैं । इस प्रकार जानकर उनका कथन करना चाहिये । अनुदिशसे लेकर अपराजितविमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अल्पबहुत्व नहीं है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

इस प्रकार वृद्धि अनियोगद्वार समाप्त हुआ ।

स्थानप्ररूपणा ।

*** सत्कर्मस्थान तीन प्रकारके हैं—बन्धसमुत्पत्तिक, हतसमुत्पत्तिक और हतहत-समुत्पत्तिक ।**

§ ५७०. बन्धात्समुत्पत्तिर्येषां तानि बन्धसमुत्पत्तिकानि। हते समुत्पत्तिर्येषां तानि हतसमुत्पत्तिकानि। हतस्य हतिः हतहतिः, ततः समुत्पत्तिर्येषां तानि हतहतिसमुत्पत्तिकानि। 'एए छच्च समाणा' त्ति इकारस्स अकारो। एवं तिण्णि चेव अणुभागट्ठाणाणि होंति, संगहणयावलंबणादो। संपहि सण्णादिचउवीसअणियोगद्दारेसु परूविय समत्तेसु अणुभागस्स किं वड्ढी हाणी अवट्ठाणं वा अत्थि णत्थि त्ति पुच्छिदे तण्णिण्णयविहाणट्ठं भुजगारपरूवणा कदा। वड्ढमाणो अणुभागो जहण्णेण उक्कस्सेण वा केत्तिओ वड्ढदि, हायमाणो वि जहण्णेण उक्कस्सेण वा केत्तिओ हायदि त्ति पुच्छिदे तण्णिण्णयविहाणट्ठं पदणिक्खेवपरूवणा कदा। अणुभागस्स वड्ढि-हाणीओ जहण्णिया उक्कस्सिया चेदि किं वे चेव आहो अण्णाओ अत्थि त्ति पुच्छिदे वड्ढीओ छव्विहाओ हाणीओ वि तत्तियाओ चेवे त्ति जाणावणट्ठं वड्ढिपरूवणा वि कदा। संपहि ट्ठाणपरूवणा ण कायव्वा, अपुव्वपमेयाभावादो। ण च पुव्वं परूविदस्सेव परूवणा जुत्ता जाणाविदजाणावणे फलाभावादो त्ति? एत्थ परिहारो उच्चदे। ण ट्ठाणपरूवणा विहला, वड्ढिपरूवणाए परूविदछट्ठाणाणं विसेसपरूवयत्तादो। वड्ढीओ छच्चेव, अणंतासंखेज्जसंखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जासंखेज्जाणंतगुणवड्ढिभेएण। ताओ च वड्ढिपरूवणाए तेरसअणियोगद्दारेहि सवित्थरं परूविदाओ। तदो पमेयाभावादो ण ट्ठाणपरूवणा कायव्वा त्ति ण पच्चवट्ठेयं,

---

§ ५७०. जिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति बन्धसे होती है उन्हें बन्धसमुत्पत्तिक कहते हैं। घात किये जानेपर जिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होती है उन्हें हतसमुत्पत्तिक कहते हैं। घाते हुएका पुनः घात किये जानेपर जिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होती है उन्हें हतहतसमुत्पत्तिक कहते हैं। 'ए ए छच्च समाणा' इस नियमके अनुसार इकारके स्थानमें अकार आदेश होनेसे हत शब्द बना है। इस प्रकार संग्रहनयका अवलम्बन करनेसे अनुभागस्थान तीन प्रकारके ही होते हैं।

शंका—संज्ञा आदि चौबीस अनुयोगद्वारोंका प्ररूपण समाप्त होने पर, अनुभागकी क्या वृद्धि, हानि और अवस्थान होता है या नहीं होता? ऐसा प्रश्न किये जाने पर उसका निर्णय करनेके लिये भुजगार प्ररूपणा की। अनुभाग यदि बढ़ता है तो जघन्य और उत्कृष्ट रूपसे कितना बढ़ता है? यदि घटता है तो जघन्य और उत्कृष्ट रूपसे कितना घटता है? ऐसा पूछने पर उसका निर्णय करनेके लिये पदनिक्षेपका कथन किया। अनुभागकी वृद्धि और हानि क्या जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे दो ही प्रकारकी होती है या अन्य प्रकारकी भी होती है? ऐसा पूछने पर वृद्धि छह प्रकारकी होती है और हानि भी छह ही प्रकारकी होती है यह बतलानेके लिये वृद्धिका कथन किया। अतः अब सत्कर्मस्थानोंका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि कथन करनेके लिये अपूर्व प्रमेयका अभाव है। और पहले कही हुई बातका पुनः कथन करना युक्त नहीं है, क्योंकि जानी हुई वस्तुकी पुनः जानकारी करानेसे कोई लाभ नहीं है।

समाधान—इस शंकाका समाधान करते हैं—स्थानका कथन करना निष्फल नहीं है, क्योंकि वृद्धिका कथन करते समय जिन छह स्थानोंका कथन किया है उसमें इसके द्वारा विशेष कथन किया गया है। अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिके भेदसे वृद्धियाँ छह ही हैं। वृद्धि प्ररूपणामें तेरह अनुयोगद्वारोंके द्वारा उन वृद्धियोंका विस्तारसे कथन किया है। अतः नई वस्तु न होनेसे स्थानका

पादेक्कमसंखेज्जभेयभिण्णछण्हं वड्ढीणं विसेसपरूवणादुवारेण हाणपरूवणाए अपुव्व-पमेयोवलंभादो। तासिं वड्ढीणं सगंतब्भूदविसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ सव्वत्थोवाणि बंधसमुप्पत्तियाणि।

§ ५७१. एत्थ अणुभागट्ठाणाणि त्ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्टदे, अण्णहा सुत्तत्थाणुववत्तीदो। सव्वत्थोवाणि बंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणि त्ति एदेण सुत्तेण उवरि भणिस्समाणघादट्ठाणेहिंतो बंधट्ठाणाणं थोवत्तं चेव जेण परूविदं तेण णाणुभागट्ठाणाणि-ओगद्दारं छण्णं वड्ढीणं विसेसपरूवयमिदि? ण, देसामासियभावेण परूविदतव्विसेसादो। संपहि एदेण सुत्तेण सूइदत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा—सुहुमणिगोदस्स सव्वजहण्णाणुभागसंतट्ठाणं सव्वाणुभागट्ठाणाणं पढमं होदि; एदम्हादो हेट्ठा अण्णेसिं मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मट्ठाणाणमभावादो। एत्थेव जहण्णं होदि त्ति कुदो णव्वदे?

कथन नहीं करना चाहिये ऐसी शंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि छह वृद्धियोंके असंख्यात भेद हैं, उनमेंसे प्रत्येकका विशेष कथन होनेसे स्थान प्ररूपणामें अपूर्व विषयका कथन पाया जाता है।

विशेषार्थ—सत्कर्मस्थान तीन प्रकारके होते हैं। कर्मका बन्ध होनेपर जिस कर्मस्थानकी प्राप्ति होती है उसे वन्धसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थान कहते हैं अर्थात् वन्धसे उत्पन्न होनेवाला सत्कर्मस्थान। उस कर्मस्थानके अनुभागका घात किये जानेपर जो सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है उसे हतसमुत्पत्तिक कर्मस्थान कहते हैं। तथा उस घातसे उत्पन्न सत्कर्मस्थानके अनुभागका पुनः घात करने पर जो सत्कर्मस्थान होता है उसे हतहतसमुत्पत्तिक कर्मस्थान कहते हैं। ऊपर शंका की गई है कि इन सत्कर्मस्थानोंका कथन तो प्रकारान्तरसे पहले कर ही आये हैं पुनः उनके कहनेकी क्या आवश्यकता है तो उसका समाधान किया गया है कि पहले वृद्धि विभक्ति में छह वृद्धियोंकी अपेक्षासे ही कथन किया है, किन्तु यहाँ उन वृद्धियोंके असंख्यात अनन्तर भेदोंमेंसे प्रत्येक भेदकी अपेक्षा वृद्धिका कथन किया गया है यही इस कथनमें विशेषता है।

उन वृद्धियोंके अन्तर्भूत विशेषोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ वन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे थोड़े हैं।

§ ५७१. इस सूत्रमें पूर्वसूत्रसे अनुभागस्थान शब्दकी अनुवृत्ति आती है, उसके बिना सूत्रका अर्थ नहीं हो सकता है।

शंका—सबसे थोड़े बन्धसमुत्पत्तिक स्थान हैं इस सूत्रके द्वारा आगे कहे गये हतसमुत्पत्तिक स्थानोंसे बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंको थोड़ा बतलाया है, अतः यह अनुभागस्थान नामक अनुयोगद्वार छह वृद्धियोंके विशेषका प्ररूपक नहीं है।

समाधान—नहीं, क्योंकि देशामर्षकरूपसे इसके द्वारा वृद्धियोंके विशेषका कथन किया गया है।

अब इस सूत्रसे सूचित अर्थका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—सूक्ष्म निगोदिया जीवका सबसे जघन्य अनुभागसत्त्वस्थान सब अनुभागस्थानोंमें प्रथम है, क्योंकि उससे नीचे मिथ्यात्वके अन्य अनुभागसत्त्वस्थानोंका अभाव है।

शंका—सूक्ष्म निगोदिया जीवके ही सबसे जघन्य अनुभागसत्त्वस्थान होता है यह किस प्रमाणसे जाना?

मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? सुहुमस्स हदसमुप्पत्तियकम्मियस्से त्ति सामिसुत्तादो । जदि एदं जहण्णाणुभागट्ठाणं सुहुमणिगोदेण हदसमुप्पत्तियकम्मेणुप्पाइदं तो णेदं बंधसमुप्पत्तियट्ठाणं, घादेणुप्पाइदस्स बंधदो समुप्पत्तिविरोहादो त्ति ? ण बंध-समुप्पत्तियट्ठाणमेवे त्ति उवयारेण हदसमुप्पत्तियट्ठाणस्स वि बंधसमुप्पत्तियट्ठाणत्तं पडि विरोहाभावादो । कथमेदस्स बंधसमुप्पत्तियट्ठाणसमाणत्तं ? ण, अट्ठंक-उव्वंकाणं विच्चालेसु अणुप्पण्णत्तणेण बंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणुभागाविभागपडिच्छेदेहि सरिसाविभाग-पडिच्छेदत्तणेण च बंधसमुप्पत्तियट्ठाणसमाणत्तुवलंभादो । एदं च[1] जहण्णाणुभागट्ठाण-मट्ठंकावट्ठिदं । किमट्ठंकं णाम ? अणंतगुणवड्ढी । कथमेदिस्से अट्ठंकसण्णा ? अट्ठण्ह-मंकाणमणंतगुणवड्ढी त्ति ट्ठवणादो । जहण्णाणुभागट्ठाणमणंतगुणवड्ढीए अवट्ठिदमिदि कुदो णव्वदे ? अणंतभागवड्ढिकंडयं गंतूण असंखेज्जभागब्भहियट्ठाणं होदि । असंखेज्ज-भागवड्ढिकंडयं गंतूण संखेज्जभागब्भहियट्ठाणं होदि । संखेज्जभागवड्ढिकंडय गंतूण संखे०-

समाधान–मिथ्यात्वका जघन्य, अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले सूक्ष्म निगोदिया जीवके होता है इस स्वामित्वको बतलानेवाले सूत्रसे जाना।

शंका–यदि यह जघन्य अनुभागस्थान निगोदिया जीवके द्वारा कर्मका घात करके उत्पन्न किया गया है तो यह बन्धसमुत्पत्तिक स्थान नहीं हुआ, क्योंकि जो अनुभास्थान घातसे उत्पन्न किया गया है उसकी बन्धसे उत्पत्ति होनेमें विरोध आता है। आशय यह है कि बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंकी यह चर्चा है और सबसे जघन्य बन्धसमुत्पत्तिक स्थान हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले निगो-दिया जीवके बतलाया है, अतः वह हतसमुत्पत्तिकस्थान हुआ बन्धसमुत्पत्तिक स्थान नहीं हुआ।

समाधान–नहीं, क्योंकि यह बन्धसमुत्पत्तिक स्थान ही है। कारण कि उपचारसे हतसमु-त्पत्तिक स्थानके भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका–यह हतसमुत्पत्तिक स्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान कैसे है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि प्रथम तो यह स्थान अष्टांक और उर्वंकके बीचमें उत्पन्न नहीं हुआ है। दूसरे इसके अविभागी प्रतिच्छेद बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके अनुभागके अविभागी प्रति-च्छेदोंके समान हैं, अतः यह स्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान पाया जाता है।

यह जघन्य अनुभागस्थान अष्टांकरूपसे अवस्थित है।

शंका–अष्टांक किसे कहते हैं ?

समाधान–अनन्तगुणवृद्धिको।

शंका–अनन्तगुणवृद्धिकी अष्टांक संज्ञा है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि आठके अंककी अनन्तगुणवृद्धिरूपसे स्थापना की गई है।

शंका–जघन्य अनुभागस्थान अनन्तगुणवृद्धिरूपसे अवस्थित है यह कैसे जाना ?

समाधान–काण्डक प्रमाण अनन्तभागवृद्धिके होनेपर असंख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डक प्रमाण असंख्यातभागवृद्धिके होनेपर संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। काण्डक

---

१. आ० प्रतौ एवं च इति पाठः।

गुणब्भहियट्ठाणं होदि । संखेज्जगुणवड्ढिकंडयं गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियट्ठाणं होदि । असंखे०गुणवड्ढिकंडयं गंतूण अणंतगुणब्भहियट्ठाणं होदि त्ति वेयणाए कंडयपरूवणा-सुत्तादो णव्वदे । ण च जहण्णट्ठाणे अणट्ठंके संते तदुवरि संपुण्णकंडयमेत्ताणं पंचण्हं वड्ढीणमेगअणंतगुणवड्ढीए च संभवो अत्थि, विरोहादो । किं कंडयं णाम ? सूचिअंगु-लस्स असंखे०भागो । तस्स को पडिभागो ? तप्पाओग्गअसंखे०रूवाणि ।

§ ५७२. एसा च कंडयआयामसंखा छसु वि वड्ढीसु सरिसा त्ति दट्ठव्वा । कुदो ? सुत्ताविरुद्धाइरियवयणादो । एदं जहण्णाणुभागट्ठाणं संतकम्मट्ठाणं बंधट्ठाण-समाणमिदि कुदो णव्वदे ? अणुभागसंकमजहण्णपदणिक्खेवसुत्तादो । तं जहा—

प्रमाण संख्यातभागवृद्धिके होनेपर संख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है । काण्डक प्रमाण संख्यातगुण-वृद्धिके होनेपर असंख्यातगुणवृद्धि स्थान होता है । काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिके होनेपर अनन्तगुणवृद्धि स्थान होता है । काण्डकका कथन करनेवाले वेदनाखण्डके इस सूत्रसे जाना । यदि जघन्य अनुभागस्थान अष्टांक प्रमाण न होता तो उसके ऊपर सम्पूर्ण काण्डकप्रमाण पांचों वृद्धियां और एक अनन्तगुणवृद्धि संभव नहीं होती, क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध है ।

शंका—काण्डक किसे कहते हैं ?

समाधान—सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागको काण्डक कहते हैं ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—उसके योग्य असंख्यात उसका प्रतिभाग है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्म निगोदिया जीवका जो सबसे जघन्य अनुभाग स्थान होता है वह सब अनुभागस्थानोंमें प्रथम अनुभाग स्थान है उससे जघन्य कोई दूसरा अनुभागस्थान, नहीं होता । मगर वह अनुभागस्थान घातसे उत्पन्न होता है और यहाँ कथन बन्ध समुत्पत्तिक स्थानोंका है तो उसका यहाँ ग्रहण नहीं होना चाहिये था । किन्तु घातसे उत्पन्न होने पर भी सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य अनुभागस्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान ही है । और इसके दो कारण हैं—एक तो यह स्थान अष्टांक और उर्वंकके बीचमें उत्पन्न नहीं होता, दूसरे इसके अविभागी प्रतिच्छेद बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके अविभागी प्रतिच्छेदोंके बराबर ही होते हैं । इन दोनों कारणोंका विवेचन क्रमसे किया जाता है—(१) यह जघन्य अनुभाग स्थान अष्टांक रूप है, इसलिये इसकी उत्पत्ति अष्टांक और उर्वंकके बीचमें नहीं होती । तथा इसके ऊपर सम्पूर्ण काण्डकप्रमाण पाँचों वृद्धियाँ और एक अनन्तगुणवृद्धि होती है इसलिये यह अष्टांक रूप है, क्योंकि अष्टांकके ऊपर ही इतनी वृद्धियाँ हो सकती हैं और जो स्थान अष्टांक और उर्वंकके बीचमें उत्पन्न होता है उसपर केवल अनन्तगुणवृद्धि ही होती है, शेष वृद्धियाँ नहीं होतीं ।

§ ५७२. सूत्रसे अविरुद्ध आचार्यवचनोंसे काण्डकका यह प्रमाण छहों वृद्धियोंमें समान जानना चाहिये ।

शंका—यह जघन्य अनुभाग सत्कर्मस्थान बन्धस्थानके समान है यह कैसे जाना ?

समाधान—अनुभाग संक्रम अनुयोगद्वारमें जघन्यपदनिक्षेपका कथन करनेवाले सूत्रसे

सुहुमणिगोदजहण्णट्ठाणस्सुवरि अणंतभागब्भहियं वड्ढिदूण बंधिय पुणो बंधावलियादीदम्हि तम्हि संकामिदे जहण्णिया वड्ढि त्ति। ण च जहण्णट्ठाणे संतकम्मट्ठाणे संते अणंतगुणवड्ढिं मोत्तूण अण्णा वड्ढी संभवदि, अट्ठंकुव्वंकाणं विचाले समुप्पण्णस्स सेसवड्ढीणं संभवविरोहादो। ण च बंधेण विणा उक्कड्डणाए अणुभागट्ठाणस्स वड्ढी अत्थि, सरिसधणियपरमाणुवुड्ढीए अणुभागट्ठाणस्स वुड्ढीए अभावादो। उक्कड्डिदे संते पुव्विल्लअविभागपडिच्छेदसंखादो संपहियअविभागपडिच्छेदसंखाए वड्ढी किमत्थि आहो णत्थि ? जदि अत्थि, अणुभागट्ठाणवुड्ढीए होदव्वं जोगट्ठाणाणं व। ण च अविभागपडिच्छेदसमूहं मोत्तूण अण्णमणुभागट्ठाणमत्थि, अणुवलंभादो। अह णत्थि, बंधेण फद्दयवड्ढीए संतीए वि अणुभागट्ठाणवुड्ढीए ण होदव्वं। तत्थ वि उक्कड्डणाए इव अविभागपडिच्छेदवड्ढिं मोत्तूण अण्णवड्ढीए अणुवलंभादो। बंधे पदेसाणं वुड्ढी अत्थि त्ति णाणुभागवुड्ढी तत्थ वोत्तुं सक्किज्जइ, अणुभागपदेसाणमेगत्ताभावादो। ण च अण्णस्स वहुत्तेण अण्णस्स वुड्ढी होदि, विरोहादो। बंधे फद्दयवुड्ढी अत्थि त्ति ण ट्ठाणवुड्ढी वोत्तुं सक्किज्जइ, अविभागपडिच्छेदवदिरित्तफद्दयाणमणुवलंभादो। तम्हा बंधेणेव उक्कड्डणाए वि अणुभागट्ठाणवुड्ढीए होदव्वमिदि ? एत्थ परिहारो वुच्चदे। तं जहा—ण ताव पढमपक्खुत्त-

---

जाना। वह इस प्रकार है—सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य स्थानके ऊपर अनन्तभागवृद्धिको लिए हुए बंध करने पर पुनः उसका वन्धावलीसे बाह्य निषेकोंमें वन्धावलीको बिताकर संक्रमण करने पर जघन्य वृद्धि होती है। यदि सूक्ष्म जीवका जघन्य अनुभागस्थान वन्धस्थानके समान न होकर, सत्कर्मस्थान रूप होता तो उसमें अनन्तगुणवृद्धिको छोड़कर दूसरी वृद्धि नहीं होती, क्योंकि जो स्थान अष्टांक और उर्वंकके बीचमें उत्पन्न हुआ है उसमें शेष वृद्धियोंके होनेमें विरोध आता है। तथा बंधके विना उत्कर्षणके द्वारा अनुभागस्थानकी वृद्धि होती है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि समान धनवाले परमाणुओंकी वृद्धि होने पर अनुभागस्थानकी वृद्धिका अभाव है।

शंका—उत्कर्षणके होने पर पहलेके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्यासे वर्तमान अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्यामें वृद्धि होती है या नहीं ? यदि होती है तो योगस्थानकी तरह अनुभागस्थानकी वृद्धि भी होनी चाहिये। और अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको छोड़कर अनुभागस्थान कोई अन्य वस्तु नहीं है, क्योंकि ऐसा पाया नहीं जाता है। यदि उत्कर्षणके होने पर पहलेके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्यासे वर्तमान अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्यामें वृद्धि नहीं होती है तो वन्धके द्वारा स्पर्धकोंकी वृद्धिके होने पर भी अनुभागस्थानकी वृद्धि नहीं होनी चाहिये, क्योंकि उत्कर्षणकी तरह उसमें भी अविभागी प्रतिच्छेदोंकी वृद्धिको छोड़कर अन्य वृद्धि नहीं पाई जाती है। वंधके होने पर प्रदेशोंकी वृद्धि होती है इसलिये अनुभागकी भी वृद्धि होती है ऐसा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि अनुभाग और प्रदेश एक नहीं हैं। और अन्यकी वृद्धि होने पर अन्यकी वृद्धि होती नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है। तथा वन्धके होने पर स्पर्धकोंकी वृद्धि होती है इसलिये स्थानकी भी वृद्धि होती है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अविभागी प्रतिच्छेदोंसे अतिरिक्त स्पर्धक नहीं पाये जाते हैं। अतः वंधकी तरह उत्कर्षणके द्वारा भी अनुभागस्थानकी वृद्धि होनी चाहिये।

दोसो संभवइ, उक्कड्डिदे अणुभागट्ठाणाविभागपडिच्छेदाणं वुड्ढीए अभावादो। अणुभागट्ठाणं णाम चरिमफद्दयचरिमवग्गणाए एगपरमाणुम्हि ट्ठिदअणुभागट्ठाणाविभागपडिच्छेदकलावो। ण सो उक्कड्डणाए वड्ढदि, बंधेण विणा तदुक्कड्डणाणुववत्तीदो। ण च बंधेण जादवड्ढी उक्कड्डणावड्ढि त्ति वुच्चदि, बंधे उक्कड्डणाए पहाणत्ताभावादो। ण च हेट्ठिमपरमाणूणमणुभागे अणणुभागट्ठाणे उक्कड्डणाए वड्ढिदे अणुभागट्ठाणस्स वुड्ढी होदि, अण्णवुड्ढीए अण्णस्स वुड्ढिविराहादो। ण च उक्कड्डणाए इव बंधेण वि अणुभागट्ठाणवुड्ढीए अभावो, पुव्विल्लअणुभागट्ठाणसण्णिदअणुभागाविभागपडिच्छेदकलावादो संपहियअणुभागट्ठाणसण्णिदअणुभागाविभागपडिच्छेदकलावस्स अणंतभागादिसरूवेण वड्ढिदंसणादो। चरिमफद्दयचरिमवग्गणाए एगपरमाणुम्हि ट्ठिदअणुभागस्स ट्ठाणत्ते इच्छिज्जमाणे एगाणुभागट्ठाणम्मि अणंताणि फद्दयाणि त्ति सुत्तेण सह विरोहो होदि त्ति णासंकणिज्जं, जहण्णट्ठाणस्स जहण्णफद्दयप्पहुडि उवरिमासेसफद्दयाणं तत्थुवलंभादो। ण च हेट्ठिमाणुभागट्ठाणाणं तत्थाभावो, तेहि विणा पयदाणुभागट्ठाणस्स वि अभावप्पसंगेण तेसिं तत्थ अत्थित्तसिद्धीदो। एगपरमाणुम्मि अवट्ठिदगुणस्स अणुभागट्ठाणत्ते

समाधान—अब इस शंकाका समाधान करते हैं जो इस प्रकार है—प्रथम पक्षमें दिया गया दोष तो संभव नहीं है. क्योंकि उत्कर्षणके होने पर अनुभागस्थानके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि नहीं होती है। अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें स्थित अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको अनुभागस्थान कहते हैं। अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंका समूहरूप वह अनुभागस्थान उत्कर्षणसे नहीं बढ़ता है, क्योंकि बंधके विना उसका उत्कर्षण नहीं बन सकता है। यदि कहा जाय कि बंधके द्वारा होनेवाली वृद्धिको उत्कर्षण वृद्धि कहते हैं सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि बंधमें उत्कर्षणका प्राधान्य नहीं है। यदि कहा जाय कि नीचेके परमाणुओंके अनुभागमें जो कि अनुभागस्थान नहीं है, उत्कर्षणके द्वारा बढ़ने पर अनुभागस्थानकी वृद्धि हो जायगी सो भी कहना ठीक नहीं है. क्योंकि अन्यकी वृद्धि होने पर अन्यकी वृद्धिका विरोध है। शायद कहा जाय कि जैसे उत्कर्षणके द्वारा अनुभागस्थानकी वृद्धि नहीं होती है वैसे ही बन्धके द्वारा भी नहीं होती, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पहलेके अनुभागस्थान संज्ञावाले अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहसे साम्प्रतिक अनुभागस्थान संज्ञावाले अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहकी अनन्तभाग आदि रूपसे वृद्धि देखी जाती है।

शंका—अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें स्थित अनुभागको अनुभागस्थान मानने पर एक अनुभागस्थानमें अनन्त स्पर्धक होते हैं इस सूत्रके साथ विरोध आता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानके जघन्य स्पर्धकसे लेकर ऊपरके सब स्पर्धक उसमें पाये जाते हैं। शायद कहा जाय कि नीचेके अनुभागस्थानोंका उसमें अभाव है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसके विना प्रकृत अनुभागस्थानके भी अभावका प्रसंग उपस्थित होता है, अतः उसमें नीचेके अनुभागस्थानोंका अस्तित्व है यह सिद्ध होता है।

शंका—यदि एक परमाणुमें स्थित अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको अनुभाग-

इच्छिज्जमाणे एगाणुभागट्ठाणस्स जहण्णवग्गणप्पहुडि जावुक्कस्सट्ठाणुक्कस्सवग्गणे त्ति कमवड्ढीए अवट्ठिदपदेसपरूवणाए अभावो होदि, एगपरमाणुम्मि उक्कस्साणुभागाधारम्मि सेसाणंतपरमाणूणमभावादो। तेण णेदं घडदि त्ति ? ण, जत्थ एसो उक्कस्साणुभागट्ठाणपरमाणू अत्थि तत्थ किमेसो एक्को चेव होदि आहो अण्णे[1] वि अत्थि त्ति पुच्छिदे एक्को चेव ण होदि अणंतेहि तत्थ कम्मक्खंधेहि होदव्वं तेसिं च अवट्ठाणक्कमो एसो त्ति जाणावणट्ठं तप्परूवणाकरणादो। जहा जोगट्ठाणे सव्वजीवपदेसाणं सव्वजोगाविभागपडिच्छेदे घेत्तूण ट्ठाणपरूवणा कदा तहा एत्थ किण्ण कीरदे ? ण, तथा कीरमाणे अधट्ठिदिगलणाए परपयडिसंकमेण अणुभागकंडयचरिमफालिं मोत्तूण दुचरिमादिफालीसु च अणुभागट्ठाणस्स घादप्पसंगादो। ण च एवं, कंडयघादं मोत्तूण अण्णत्थ तग्घादाभावादो। तम्हा एत्थ जोगट्ठाणे व्व पज्जवट्ठियणयो णावलंबेयव्वो। किमट्ठमेत्थ दव्वट्ठियणयो चेव अवलंविज्जयि ? ट्ठिदीए इव पदेसगलणाए अणुभागघादो णत्थि त्ति जाणावणट्ठं। जदि मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागबंधट्ठाणमिच्छिज्जदि तो संजमाहि-

स्थान माना जाता है तो एक अनुभागस्थानमें जघन्य वर्गणासे लेकर उत्कृष्ट स्थानकी उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त क्रमसे बढ़ते हुए प्रदेशोंके रहनेका जो कथन किया जाता है उसका अभाव प्राप्त होता है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागके आधारभूत एक परमाणुमें शेष अनन्त परमाणुओंका अभाव है। अतः अनुभागस्थानका उक्त लक्षण घटित नहीं होता है।

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ यह उत्कृष्ट अनुभागस्थानवाला परमाणु है वहां क्या यह एक ही परमाणु है या अन्य भी परमाणु हैं ऐसा पूछे जानेपर कहा जायगा कि वहां वह एक ही परमाणु नहीं है किन्तु वहां अनन्त कर्मस्कन्ध होने चाहिए और उन कर्मस्कन्धोंके अवस्थानका यह क्रम है यह बतलानेके लिये अनुभागस्थानकी उक्त प्रकारसे प्ररूपणा की है।

शंका—जैसे योगस्थानमें जीवके सब प्रदेशोंकी सब योगोंके अविभागी प्रतिच्छेदोंको लेकर स्थान प्ररूपणा की है वैसा कथन यहां क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा कथन करनेपर अधःस्थितिगलनाके द्वारा और अन्य प्रकृतिरूप संक्रमणके द्वारा अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिको छोड़कर द्विचरम आदि फालियोंमें अनुभागस्थानके घातका प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि काण्डकघातको छोड़कर अन्यत्र उसका घात नहीं होता। अतः यहाँ योगस्थानकी तरह पर्यायर्थिकनयका अवलम्बन नहीं लेना चाहिए।

शंका—यहां पर द्रव्यार्थिक नयका ही अवलम्बन किसलिए लिया गया है ?

समाधान—प्रदेशोंके गलनेसे जैसे स्थितिघात होता है वैसे प्रदेशोंके गलनेसे अनुभागका घात नहीं होता यह बतलानेके लिए यहां द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन लिया गया है।

शंका—यदि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागबन्धस्थान इष्ट है तो संयमके अभिमुख हुए

१, ता० प्रतौ अण्णो वि इति पाठः।

मुहचरिमसमयमिच्छादिट्ठिस्स जहण्णबंधो किण्ण गहिदो ? ण, तत्थतणजहण्णबंधादो तत्थेवाणुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणत्तुवलंभादो। जदि एवं तो संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स अणुभागसंतकम्मं घेत्तव्वं, सुहुमेइंदियस्स सव्वुक्कस्सविसोहीदो अणंतगुणसण्णिपंचिंदियसंजमाहिमुहमिच्छाइट्ठिचरिमसमयविसोहिए पत्तघादत्तादो त्ति ? ण, तस्स सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मादो अणंतगुणत्तुवलंभादो। तदणंतगुणत्तं कुदो[2] णव्वदे ? सव्वत्थोवो संजमाहिमुहसव्वविसुद्धचरिमसमयमिच्छादिट्ठिस्स जहण्णाणुभागबंधो। असण्णिपंचिंदियस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णाणु० बंधो अणंतगुणो। चउरिंदिय० जहण्णाणु० बंधो अणंतगुणो। तेइंदिय० जहण्णाणु० बंधो अणंतगुणो। बेइंदिय० जहण्णाणु० अणंतगुणो। बादरेइंदिय० जहण्णाणु० बंधो अणंतगुणो। सुहुमेइंदियअपज्ज० सव्वविसुद्धस्स जहण्णाणुभागबंधो अणंतगुणो। तस्सेव हदसमुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। बादरेइंदिएण हदसमुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। बेइंदिएण जहण्णाणु० संतकम्ममणंतगुणं। तेइंदिएण जहण्णाणु०-

---

अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके अनुभागबन्धका जघन्य बन्धरूपसे ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां होनेवाले जघन्य अनुभागबन्धसे वहीं प्राप्त होनेवाला अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा पाया जाता है।

शंका—यदि ऐसा है तो संयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके अनुभागसत्कर्मका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवकी सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिसे संयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यदृष्टि जीवके जो विशुद्धि होती है वह अनन्तगुणी होती है और उस विशुद्धिद्वारा उस अनुभागका घात हुआ है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागसत्कमसे उसके अनन्तगुणा अनुभागसत्कर्म पाया जाता है।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागसत्कर्मसे उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—संयमके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है वह सबसे थोड़ा है। उससे सर्वविशुद्ध असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे चौइन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे तेइन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे दोइन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे उसी जीवके घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे बादर एकेन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे दोइन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे तेइन्द्रिय जीवके द्वारा

---

१. आ० प्रतौ अणंतगुणासण्णिपंचिंदिय– इति पाठः। २. ता० प्रतौ तदणंतगुणत्तं कत्ता णव्वदे इति पाठः।

संतकम्ममणंतगुणं। चउरिंदिएण जहण्णाणु०संतकम्ममणंतगुणं। असण्णिपंचिंदिएण जहण्णाणु०संतकम्ममणंतगुणं। संजमाहिमुहसव्वविसुद्धचरिमसमयमिच्छाइट्ठिणा हद-समुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं त्ति भणिदअप्पाबहुअसुत्तादो। होदु णाम अणु-भागबंधाणमणंतगुणत्तं ण संतकम्माणं; अणंतगुणाए विसोहीए पत्तघादाणमणंतगुणत्तविरो-हादो त्ति ण पच्चवट्ठेयं, जादिसंबंधेण अणंतगुणहीणविसोहीदो[1] वि बहुआणुभाग-खंडयस्स दंसणादो, तम्हा सुहुमेइंदिएण हदसमुप्पाइदअणुभागसंतकम्मं चेव जहण्ण-मिदि घेत्तव्वं। सुहुमेइंदिएण सव्वविसुद्धेण जहण्णजोगेण[2] हदसमुप्पाइदअणुभागो जहण्णो त्ति किण्ण वुच्चदे? ण जोगविसेसणेण एत्थ पओजणं, जोगादो अणुभाग-वड्ढीए अभावादो। सव्वुक्कस्सविसोहीए अणुभागसंतकम्मं हणंतस्स सव्वजहण्णजोगेण थोवे कम्मक्खंधे संगलंतस्स ओकड्डणाए बहुकम्मक्खंधे णिज्जरंतस्स जेण थोवा चेव पर-माणू होंति तेण अणुभागसंतकम्मस्स वि जहण्णत्तं होदि त्ति जोगविसेसणं णियमेणेत्थ कायव्वं? ण, परमाणूणं बहुत्तमप्पत्तं वा अणुभागवड्ढिहाणीणं ण कारणमिदि बहुसो

घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे चौइन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे असंज्ञिपञ्चेन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे संयमके अभिमुख सर्वविशुद्ध चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभाग-सत्कर्म अनन्तगुणा है। इस प्रकार कहे गये अल्पबहुत्व सूत्रसे जाना जाता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागसत्कर्मसे संयमके अभिमुख हुए चरम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है।

शंका—अनुभागबन्ध उत्तरोत्तर अनन्तगुणे होवें, किन्तु अनुभागसत्कर्म उत्तरोत्तर अनन्तगुणे नहीं हो सकते; क्योंकि अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा घातको प्राप्त हुए अनुभागोंके अनन्तगुणे होनेमें विरोध है।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जातिविशेषके सम्बन्धसे अनन्त-गुणी हीन विशुद्धिसे भी बहुतसे अनुभागका काण्डकघात देखा जाता है। इसलिये सूक्ष्म एकेन्द्रियके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया अनुभागसत्कर्म ही जघन्य है ऐसा मानना चाहिये।

शंका—जघन्य योगवाले सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया अनुभाग जघन्य है ऐसा क्यों नहीं कहते?

समाधान—यहाँ पर योगविशेषसे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि योगके द्वारा अनुभागकी वृद्धि नहीं होती।

शंका—जो जीव सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिके द्वारा अनुभागसत्कर्मका घात करता है, सबसे जघन्य योगके द्वारा थोड़े कर्म स्कन्धोंको गलाता है और अपकर्षणके द्वारा बहुतसे कर्मस्कन्धोंकी निर्जरा करता है उसके यत: थोड़े ही परमाणु होते हैं अतः उसके अनुभागसत्कर्म भी जघन्य होता है, इसलिये यहाँ नियमसे योगको भी विशेषण रूपसे ग्रहण करना चाहिये।

समाधान—ऐसा कथन ठीक नहीं है, क्योंकि परमाणुओंका बहुतपना या अल्पपना

1. आ० प्रतौ अणंतगुणविसोहीदो इति पाठः। 2. ता० प्रतौ जहण्णजोगिणा इति पाठः।

परूविदत्तादो । किं च, ण परमाणुबहुत्तमणुभागबहुत्तस्स कारणं, सम्मत्तसम्मामिच्छत्तुक्कस्साणुभागसामित्तसुत्तण्णहाणुववत्तीदो[1] । तं जहा—दंसणमोहक्खवगं मोत्तूण सव्वम्हि उक्कस्समिदि सामित्तसुत्तं णेदं घडदे, गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सम्मत्तं पडिवण्णस्स गुणसंकमचरिमसमए वट्टमाणस्स चेव सम्मत्तुक्कस्साणुभागदंसणादो । सुत्ताहिप्पाएण पुण खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सम्मत्तं पडिवज्जिय वेछावट्ठि० भमिय दंसणमोहक्खवणं पारभिय जाव अपुव्वकरणपढमाणुभागकंडयस्स चरिमफाली ण पददि ताव सम्मत्तस्सुक्कस्समणुभागसंतकम्ममिदि । ण च सुत्तमप्पमाणं, जिणवयणविणिग्गयस्स अप्पमाणत्तविरोहादो । तम्हा पदेसबहुत्तमणुभागबहुत्तस्स कारणमिदि सिद्धं । वेयणसण्णियासस्सुत्तण्णहाणुववत्तीदो च णज्जदे जहा[3] अणुभागवड्ढीए कसाओ चेव कारणं ण जोगो त्ति । तं जहा—जस्स णामा-गोद-वेदणीयवेदणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स भावदो णियमा उक्कस्सा त्ति वेयणासुत्तं । णेदं घडदे, खविदकम्मंसियसजोगिम्मि लोगपूरणाए वट्टमाणम्हि उक्कस्साणुभागाभावादो । तदो ण जोगत्थोवत्तमणुभागथोवत्तस्स कारणमिदि सद्दहेयव्वं । जदि वि कसाओ असुहपयडीणमणुभाग-

अनुभागकी वृद्धि और हानिका कारण नहीं है। अर्थात् यदि परमाणु बहुत हों तो अनुभाग भी बहुत हो और यदि परमाणु कम हों तो अनुभाग भी कम हो ऐसा नहीं है, यह अनेक बार कहा जा चुका है। तथा परमाणुओंका बहुत होना अनुभागके बहुत्वका कारण नहीं है, अन्यथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका कथन करनेवाला स्वामित्वका सूत्र नहीं बन सकता। उसका खुलासा इस प्रकार है—दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म पाया जाता है यह स्वामित्व सूत्र है परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि गुणितकर्मांशिकलक्षणसे आकर सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें वर्तमान रहते हुए ही सम्यक्त्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग देखा जाता है। किन्तु सूत्रके अभिप्रायसे क्षपितकर्मांशिकलक्षणसे आकर सम्यक्त्वको प्राप्त करके दो छियासठ सागर तक भ्रमण करके दर्शनमोहके क्षपणको प्रारम्भ करके जब तक अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन नहीं होता तब तक सम्यक्त्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग रहता है। शायद कहा जाय कि सूत्र अप्रमाण है किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जिन भगवानके मुखसे निकला हुआ वचन अप्रमाण नहीं हो सकता। अतः प्रदेशबहुत्व अनुभागके बहुत्वका कारण नहीं है यह सिद्ध हुआ। तथा वेदनाखण्डका सन्निकर्ष सूत्र भी अन्यथा नहीं बन सकता अतः जाना जाता है कि अनुभागकी वृद्धिमें कषाय ही कारण है, योग नहीं। उसका खुलासा इस प्रकार है—जिस जीवके नाम, गोत्र और वेदनीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके भावकी अपेक्षा नियमसे उत्कृष्ट होती है। यह वेदनासूत्र है परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि लोकपूरण समुद्धातमें वर्तमान क्षपित कर्मांशिक सयोग केवलीके उत्कृष्ट अनुभागका अभाव है। अतः योगका अल्पपना अनुभागके अल्पपनेका कारण नहीं है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये।

१. आ० प्रतौ -सामित्तं सुत्तण्णहाणुववत्तीदो इति पाठः। २. आ० प्रतौ तम्हा एगपदेस- इति पाठः। ३. आ० प्रतौ च ण जुज्जदे जहा इति पाठः।

वुड्ढीए विसोही वि सुहकम्माणुभागवुड्ढीए कारणं तो वि ण लोगपूरणमहिट्ठियसजोगि-केवलिस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं संभवइ, चरिमसमयसुहुमसांपराइएण बद्धवेयणीय-ट्ठिदीए बारसमुहुत्तमेत्ताए पुव्वकोडिअवट्ठाणाभावादो ? ण, चिराणट्ठिदीए पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्ताए अवट्ठिदपरमाणूणं बज्झमाणाणुभागम्मि तिरिच्छेण उक्कड्डिदाणं तत्तियमेत्तकालमवट्ठाणदंसणादो ।

शंका—यद्यपि कषाय अशुभ प्रकृतियोंके अनुभागकी वृद्धिमें कारण है और विशुद्धिरूप परिणाम शुभ प्रकृतियोंके अनुभागकी वृद्धिमें कारण है तो भी लोकपूरण समुद्घातमें वर्तमान सयोगकेवलीके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका होना संभव नहीं है, क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायिक जीव अन्तिम समयमें वेदनीय कर्मकी जो बारह मुहूर्तप्रमाण स्थिति बाँधता है, वह स्थिति एक पूर्वकोटि काल तक नहीं ठहर सकती ।

समाधान—नहीं, क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण पुरानी स्थितिमें जो परमाणु मौजूद हैं उनके बध्यमान अनुभागमें आकर तिर्यक् रूपसे उत्कर्पित होने पर उतने काल तक अवस्थान देखा जाता है ।

विशेषार्थ—एक जीवमें एक समयमें कर्मका जो अनुभाग पाया जाता है उसे स्थान कहते हैं। वह स्थान दो प्रकारका है—अनुभागबन्धस्थान और अनुभागसत्कर्मस्थान । बन्धसे जो अनु-भागस्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें अनुभागबन्धस्थान या बन्धसमुत्पत्तिक स्थान कहते हैं। सत्तामें स्थित अनुभागका घात करनेपर जो स्थान उत्पन्न होते हैं उनका अनुभाग यदि बंधनेवाले अनु-भागके बराबर ही होता है तो उन्हें भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान ही कहते हैं, क्योंकि उनका अनुभाग बध्यमान अनुभागस्थानके बराबर है। किन्तु जो अनुभागस्थान घातसे ही उत्पन्न होते हैं, बंधसे नहीं, तथा जिनका अनुभाग घाता जाकर बंधनेवाले अनुभागसे कम होता है, अर्थात् अष्टांक और उर्वंकके बीचमें नीचेके उर्वंकसे अनन्तगुणा और ऊपरके अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन होता है उन्हें अनुभागसत्कर्मस्थान कहते हैं। उन्हींका दूसरा नाम हतसमुत्पत्तिक स्थान है। हतसमुत्पत्तिक स्थानके अनुभागको भी घातने पर जो स्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें हतहतसमुत्पत्तिक स्थान कहते हैं । इन तीनों स्थानोंमें बन्धसमुत्पत्तिक स्थान सबसे थोड़े हैं। क्यों सबसे थोड़े हैं यह बतलानेके लिए ही आगेका कथन किया गया है। बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंमें सबसे जघन्य स्थान सूक्ष्म निगोदिया जीवका अनुभागस्थान है। यद्यपि यह स्थान घातसे उत्पन्न होता है तथापि यह बन्धस्थानके समान है, क्योंकि इसके ऊपर एक प्रक्षेपाधिक बन्ध होनेपर अनुभागकी जघन्य वृद्धि होती है और अन्तर्मुहूर्तके द्वारा इसीका काण्डकघातके द्वारा घात किये जानेपर जघन्य हानि होती है। यदि सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य अनुभागस्थान बन्धस्थानके समान न होता तो इतनी जघन्य वृद्धि और हानि नहीं होती, क्योंकि बन्धके बिना वृद्धि नहीं होती। शायद कहा जाय कि जघन्य स्थानके ऊपर एक प्रक्षेप वृद्धि क्यों नहीं होती तो इसका समाधान इस प्रकार है कि घात सत्त्वस्थान बन्धसदृश अष्टांक और उर्वंकके बीचमें नीचेके उर्वंकसे अनन्तगुणा और ऊपरके अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन होता है। इसके ऊपर यदि विशुद्ध जघन्य वृद्धिको लेकर भी बन्ध हो तो भी ऊपरके अष्टांकप्रमाण ही बन्ध होता है, अतः घात सत्त्वस्थानके ऊपर अनन्तगुणवृद्धि ही होती है अनन्तभागवृद्धि नहीं होती। तथा हानिमें भी अनन्तगुणहानि ही होती है, अनन्तभागहानि नहीं होती। अतः सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य स्थान सत्त्वस्थान नहीं है किन्तु बन्धस्थान है, इसलिए

उसे बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंमें सबसे जघन्य कहा है। यह जघन्य स्थान अनन्तगुणवृद्धिरूप होनेसे अष्टांक प्रमाण कहा जाता है। वृद्धियां छह होती हैं—अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यात-भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि। इन वृद्धियोंकी सहनानी क्रमसे, उर्वंक, चतुरङ्क, पञ्चांक, षष्ठांक, सप्तांक और अष्टांक है। काण्डकप्रमाण पहलेकी वृद्धिके होनेपर आगेकी वृद्धि होती है। जैसे काण्डकका प्रमाण यदि दो कल्पना करे तो दो वार पहलेकी वृद्धिके होनेपर एकवार आगेकी वृद्धि होती है। जिसमें छहों वृद्धियां हों उसे षट्स्थान कहते हैं। षट्स्थानमें अगली अगली वृद्धिके पूर्व काण्डकप्रमाण पिछली पिछली वृद्धि और अन्तमें एक अनन्तगुणवृद्धि होती है। तदनुसार एक स्थानकी संदृष्टि इस प्रकार है—

उ उ ४	उ ३ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ ३ ४	उ उ ५	उ ३ ४	उ ३ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ ३ ५	उ ३ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ ३ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ ३ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ ३ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ ३ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ ३ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ ३ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

सूक्ष्म निगोदियाके जघन्य स्थानके ऊपर ये वृद्धियां होती हैं, अतः वह अष्टांकरूप है। यदि वह अष्टांक और उर्वंकके बीचमें स्थित होता तो उसपर केवल अनन्तगुणवृद्धि ही होती, अन्य वृद्धियां नहीं होतीं। और अनुभागस्थानकी वृद्धि केवल उत्कर्षणमात्रसे नहीं होती, क्योंकि उत्कर्षण द्वारा नीचेके अल्प अनुभागवाले निषेकोंका ऊपरके अधिक अनुभागवाले निषेकोंमें निक्षेपण करके उनका अनुभाग बढ़ाया जाता है किन्तु इससे अनुभागस्थानकी वृद्धि नहीं होती, अनुभागस्थान तो ज्योंका त्यों रहता है, क्योंकि अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग होता है उसे अनुभागस्थान कहते हैं। इसका विशेष खुलासा आगे करेंगे कि सबसे अधिक अनुभाग अन्तिम वर्गणाके अन्तिम परमाणुमें ही होता है और उत्कर्षणके द्वारा उसमें क्षेपण होना संभव नहीं है। अतः उत्कर्षणके द्वारा कुछ परमाणुओंमें अनुभागकी वृद्धि भले ही हो जाओ किन्तु अनुभागस्थानकी वृद्धि नहीं होती। पूर्वमें अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग होता है उसे अनुभागस्थान कहा है। इसपर एक शंका यह की गई है कि जैसे योग्यस्थानमें जीवके सब प्रदेशोंका ग्रहण किया जाता है वैसे अनुभागस्थानमें सब स्पर्धकोंके सब अविभागी प्रतिच्छेदोंको न लेकर अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें पाये जानेवाले अविभागी प्रतिच्छेदोंको ही क्यों लिया तो इसका यह समाधान किया गया कि यदि सब स्पर्धकोंके सब परमाणुओंमें पाये जानेवाले अनुभागको अनुभागस्थान माना जायगा तो काण्डकघातके

विना भी अनुभागके घातका प्रसंग उपस्थित होगा। अतः जैसे किन्हीं परमाणुओंकी स्थिति कम हो जाने पर भी उनके अनुभागके घट जानेका कोई नियम नहीं है वैसे ही प्रदेशोंका गलन हो जाने पर भी अनुभागस्थानका घात काण्डकघात हुए विना नहीं होता यह बतलानेके लिये ही यहां द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन लेकर अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें अनुभागस्थान कहा है। जैसे एक समयमें बांधे गये मिथ्यात्व कर्मकी किसी जीवके ७० कोड़ी-कोड़ी सागरकी स्थिति पड़ी। यह स्थिति एक समयमें बांधे गये सब परमाणुओंकी नहीं है किन्तु जो निषेक सबसे अन्तिम समयमें उदयमें आनेवाला है उसकी है, किन्तु द्रव्यार्थिकनयसे वह सभी निषेकोंकी स्थिति कही जाती है, उसी प्रकार अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें सबसे अधिक अनुभाग पाया जाता है अतः उसे ही अनुभागस्थान कहा जाता है। उसीमें अन्य सब स्पर्धकोंकी वर्गणाओंके परमाणुओंका अनुभाग गर्भित है। इस प्रकार सूक्ष्म निगोदिया हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वका जो जघन्य अनुभागस्थान होता है वह सबसे जघन्य है। इसके सिवा अन्य जो अनुभागस्थान आगे बतलाये हैं वे जघन्य नहीं हैं। मूलमें शंका की गई है कि सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य योगके द्वारा जो हतसमुत्पत्तिक अनुभाग होता है वह जघन्य है ऐसा क्यों नहीं कहा तो इसका यह समाधान किया गया है कि योग अनुभागकी हानि अथवा वृद्धिमें कारण नहीं होता, क्योंकि धवलाके वेदनाखण्डमें कहा है कि सयोगकेवली और अयोगकेवलीके वेदनीय, नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग ही होता है। यदि योगकी वृद्धि अनुभागकी वृद्धिका कारण होती तो यह नियम नहीं बन सकता, तब तो उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों ही अनुभाग संभव होते। तथा वेदनाखण्डके सन्निकर्ष विधानमें कहा है कि जिसके वेदनीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके भाववेदना नियमसे उत्कृष्ट होती है। इससे भी जाना जाता है कि योगकी वृद्धि अथवा हानि अनुभागकी वृद्धि अथवा हानिका कारण नहीं होती। सयोगकेवली जब लोकपूरण समुद्घातमें वर्तमान रहते हैं तब उनका उत्कृष्ट क्षेत्र होता है। भाव भी दसवें गुणस्थानवर्ती क्षपकके जो होता है, लोकपूरण अवस्थामें वह उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होता है, ऐसा न कहकर उत्कृष्ट ही होता है ऐसा कहा है। इससे जाना जाता है कि योगकी हानि-वृद्धि अनुभागकी वृद्धि-हानिका कारण नहीं होती। तथा इसी कसायपाहुडमें कहा है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र होता है, इससे भी उक्त बात जानी जाती है, क्योंकि उसमें कहा है कि क्षपितकर्मांशिक अर्थात् जघन्य प्रदेशसंचयकी जो सामग्री कही है उस सामग्रीसे आकर अथवा गुणितकर्मांशलक्षण अर्थात् उत्कृष्ट प्रदेशसंचयकी जो सामग्री कही है उससे आकर सम्यक्त्वको ग्रहण कर दो छियासठ सागर तक भ्रमण करके दर्शनमोहका क्षपण करते हुए अपूर्वकरणमें प्रथम अनुभागकाण्डकका जब तक पतन नहीं होता तब तक उस जीवके सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग ही होता है। यदि योगकी वृद्धि हानि अनुभागकी वृद्धि हानिका कारण होती तो क्षपितकर्मांशको छोड़कर गुणितकर्मांशसे आकर सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवके ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग होता, क्योंकि गुणितकर्मांश वालेके योगका बहुत्व पाया जाता है। और ऐसा होनेपर दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अनुभाग उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होता। किन्तु ऐसा नहीं होता; क्योंकि ऐसा कहा नहीं गया है। अतः योग अनुभागका कारण नहीं होता। अतः सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके सत्तामें स्थित अनुभागका घात करके जो अनुभागस्थान उत्पन्न होता है वही जघन्य अनुभागस्थान है यह सिद्ध होता है।

§ ५७३. संपहि एदस्स जहण्णाणुभागट्ठाणस्स सरूवपडिवोहणट्ठमिमा परूवणा कीरदे। तं जहा—जहण्णाणुभागट्ठाणस्स सव्वकम्मपरमाणुपुंजं करिय पुणो तत्थ सव्वमंदाणुभागपरमाणुप्पासगुणं पण्णाए पुध कादूण जहण्णवड्ढिगुणपमाणेण छिण्णे सव्वजीवेहि अणंतगुणा सव्वागासघणादो वि अणंतगुणअविभागपडिच्छेदा लब्भंति। तेसिं वग्गमिदि सण्णं करिय ते पुध ठवेदव्वा। पुणो पुव्विल्लपरमाणुपुंजम्मि तस्सरिसगुणं विदियपरमाणुं घेत्तूण तदणुभागस्स पुव्वं व पण्णच्छेदणए कदे तत्तिया चेव अणुभागाविभागपडिच्छेदा लब्भंति। एदेसिं पि वग्गमिदि सण्णं करिय पुव्विल्लवग्गस्स दाहिणपासे एदे वि पुध ठवेयव्वा। एवमेगेगसरिसधणियपरमाणू घेत्तूण पण्णच्छेदणए करिय दाहिणपासे कंडुज्जुवपंतिरयणा कायव्वा जाव अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तसरिसधणियपरमाणू समत्ता त्ति। एदेसिं सव्वेसिं पि वग्गणा त्ति सण्णा। पुणो गहिदसेसपरमाणुपुंजम्मि अवरेगं परमाणुं घेत्तूण पण्णच्छेदणए कदे पुव्विल्लाविभागपडिच्छेदणएहिंतो संपहियअविभागपडिच्छेदा एगेण अविभागपडिच्छेदेण अहिया होंति। एदेसिं वग्गसण्णं कादूण पुव्विल्लाणमुवरि ठवेदव्वा। पुणो एदेण परमाणुणा अविभागपडिच्छेदेहि सरिसा अभव्वसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाणमणंतभागमेत्ता परमाणू तत्थ लब्भंति। तेसिं पि अणुभागस्स पुव्वं व पण्णच्छेदणए कदे अणंता ते वग्गा भवंति। एदे सव्वे घेत्तूण विदियवग्गणा होदि। एवं

§ ५७३. अब इस जघन्य अनुभागस्थानके स्वरूपको समझानेके लिए यह कथन करते हैं। यथा—जघन्य अनुभागस्थानके सब कर्मपरमाणुओंको एकत्र करके उसमेंसे सबसे मन्द अनुभागवाले परमाणुके स्पर्शगुणको बुद्धिके द्वारा पृथक् करके, जघन्य वृद्धिरूप अविभागप्रतिच्छेदके प्रमाणसे उसका छेदन करनेपर वहां सब जीवराशिसे अनन्तगुणे और घनरूप समस्त आकाशसे भी अनन्तगुणे अविभागी प्रतिच्छेद पाये जाते हैं। उनकी 'वर्ग' संज्ञा करके उन्हें पृथक् स्थापित कर देना चाहिए। पुनः पहलेके परमाणु समूहमेंसे उस परमाणुके समान गुणवाले दूसरे परमाणुको लो। उसके अनुभागके भी पहलेके समान बुद्धिक द्वारा छेद करनेपर उतने ही अविभागी प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। इनकी भी 'वर्ग' संज्ञा रखकर पहले वर्गके दाहनी ओर उन्हें भी पृथक् स्थापित कर देना चाहिए। इस प्रकार समान धनवाले एक एक परमाणुको लेकर बुद्धिके द्वारा उसके स्पर्शगुणका छेदन करके दक्षिण पार्श्वमें बाणके समान ऋजु पंक्तिमें रचना करते जाओ और ऐसा तबतक करो जबतक अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण समान धनवाले परमाणु समाप्त हों। उन सब वर्गोंकी वर्गणा संज्ञा है। पुनः ग्रहण करनेसे बाकी बचे हुए परमाणु पुंजमेंसे अन्य एक परमाणुको लेकर बुद्धिके द्वारा उसके अनुभागका छेदन करनेपर पहलेके प्रत्येक परमाणुमें पाये जानेवाले अविभागी प्रतिचछेदोंसे इसमें पाये जानेवाले अविभागी प्रतिच्छेद एक अधिक होते हैं। इनकी भी 'वर्ग' संज्ञा रखकर इन्हें पहलेके वर्गोंके ऊपर स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार उस परमाणुपुंजमें अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण परमाणु ऐसे पाये जाते हैं जिनके अविभागी प्रतिच्छेद उस एक परमाणुके अविभागी प्रविच्छेदोंके समान होते हैं। उन परमाणुओंके भी अनुभागका पहलेके समान बुद्धिके द्वारा छेद करनेपर वे अनन्त वर्ग हो जाते हैं। इन सबको लेकर दूसरी वर्गणा होती है। इस प्रकार

दोअविभागपडिच्छेदुत्तरतिण्णि०-चत्तारि०-पंच०-छ०-सत्तादिअविभागपडिच्छेदुत्तरकमेण अवट्ठिदअणंतपरमाणू घेत्तूण तदणुभागस्स पण्णच्छेदणयं काऊण अभवसिद्धिएहि अणंता-गुणं सिद्धाणंमणंतभागमेत्तवग्गणाओ उप्पाइय उवरि उवरि रचेदव्वाओ। एवमेत्तियाहि वग्गणाहि एगं फद्दयं होदि, अविभागपडिच्छेदेहि कमवड्ढीए एगेगं पंतिं पडुच्च अव-ट्ठिदत्तादो। उवरिमपरमाणू अविभागपडिच्छेदसंखं पेक्खिदूण कमहाणीए अभावेण विरुद्धाविभागपडिच्छेदसंखत्तादो वा।

§ ५७४. पुणो पढमफद्दयचरिमवग्गणाए एगवग्गाविभागपडिच्छेदेहिंतो एगविभाग-पडिच्छेदेणुत्तरपरमाणू णत्थि, किंतु सव्वजीवेहि अणंतगुणाविभागपडिच्छेदेहि अहियपर परमाणू तत्थ चिरंतणपुज्जे अत्थि। ते घेत्तूण पढमफद्दयउप्पाइदकमेण विदियफद्दय-मुप्पाएयव्वं। एवं तदियादिकमेण अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्ताणि फद्दयाणि उप्पाएदव्वाणि। एवमेत्तियफद्दयसमूहेण सुहुमणिगोदजहण्णाणुभागट्ठाणं होदि।

दो अविभागप्रतिच्छेद अधिक, तीन, चार, पांच, छह और आत आदि अविभागप्रतिच्छेद अधिकके क्रमसे अवस्थित अनन्त परमाणुओंको लेकर उनके अनुभागका बुद्धिके द्वारा छेदन करके अभव्यराशिसे अनन्तगुणी और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाओंको उत्पन्न करके उन्हें ऊपर ऊपर स्थापित करो। इस प्रकार इतनी वर्गणाओंका एक स्पर्धक होता है, क्योंकि वहां अवि-भागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा एक एक पंक्तिके प्रति क्रमवृद्धि अवस्थितरूपसे पाई जाती है। अथवा ऊपरके परमाणुओंमें अविभागप्रतिच्छेदोंकी संख्याको देखते हुए वहां क्रमहानिका अभाव होनेसे इसके विरुद्ध अविभागप्रतिच्छेदोंकी संख्या पाई जाती है।

§ ५७४. पुनः प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गके अविभागप्रतिच्छेदोंसे एक अविभागप्रतिच्छेद अधिकवाला परमाणु आगे नहीं है, किन्तु सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभाग-प्रतिच्छेद अधिकवाले परमाणु उस चिरंतन परमाणुपुंजमें मौजूद हैं। उन्हें लेकर जिस क्रमसे प्रथम स्पर्धककी रचना की थी उसी क्रमसे दूसरा स्पर्धक उत्पन्न करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे आदि स्पर्धकोंके क्रमसे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागमात्र स्पर्धक उत्पन्न करने चाहिए। इस प्रकार इतने स्पर्धकोंके समूहसे सूक्ष्म निगोदिया जीवका जघन्य अनुभागस्थान बनता है।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागस्थानके समस्त परमाणुओंको एकत्र करके उनमेंसे सबसे मन्द अनुभागवाले परमाणुको लो और उसके रूप, रस और गन्धगुणको छोड़कर स्पर्शगुणको बुद्धिके द्वारा ग्रहण करके उसके तब तक छेद करो जब तक अन्तिम छेद प्राप्त हो। उस अन्तिम खण्डको, जिसका दूसरा खण्ड नहीं हो सकता, अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। स्पर्शगुणके उस अविभागप्रतिच्छेद प्रमाण खण्ड करनेपर सब जीवोंसे अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। एक परमाणुमें रहनेवाले उन अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं। अर्थात् प्रत्येक परमाणु एक एक वर्ग है। यद्यपि उसमें पाये जानेवाले अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण अनन्त है फिर भी संदृष्टिके लिए उसका प्रमाण ८ कल्पना करना चाहिए। पुनः उन परमाणुओंमेंसे प्रथम परमाणुके समान अविभागप्रतिच्छेदवाले दूसरे परमाणुको लो और उसके भी स्पर्शगुणके बुद्धिके द्वारा खण्ड करनेपर उतने ही अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। यहांपर यह शंका हो सकती है कि परमाणु तो खण्डरहित है उसके खण्ड कैसे किए जा सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि परमाणुद्रव्य अखण्ड अवश्य है किन्तु उसके गुणकी बुद्धिके द्वारा खण्डकल्पना की जासकती है,

क्योंकि एक परमाणुसे दूसरे परमाणुमें हीनाधिक गुणपर्याय देखा जाती है। इस दूसरे वर्गके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण यद्यपि अनन्त है तो भी संदृष्टिके लिए आठ कल्पना करना चाहिए और पूर्वोक्त वर्गके दक्षिण भागमें उसकी स्थापना कर देनी चाहिए—८ ८। इस क्रमसे पूर्वोक्त परमाणुके समान एक.एक परमाणुको लेकर उसके स्पर्शगुणके अविभागप्रतिच्छेद करनेपर एक एक वर्ग उत्पन्न होता है। ऐसा तब तक करना चाहिए जब तक जघन्य गुणवाले सब परमाणु समाप्त न हों। ऐसा करनेपर अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण वर्ग प्राप्त होते हैं। उनका प्रमाण संदृष्टिरूपमें इस प्रकार है—८ ८ ८ ८। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा इन सभी वर्गोंकी वर्गणा संज्ञा है, क्योंकि वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार इन वर्गोंको पृथक् स्थापित करके उस परमाणुपुंजमेंसे फिर एक परमाणु लो और बुद्धिके द्वारा उसका छेदन करके, छेदन करनेपर पूर्वोक्त परमाणुओंसे इसमें एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद पाया जाता है। उसका प्रमाण संदृष्टिरूपमें ९ है। यह एक वर्ग है और इसको पृथक् स्थापित करना चाहिए। इस क्रमसे उस परमाणुके समान अविभागप्रतिच्छेदवाले जितने परमाणु पाये जांय उनमेंसे एक एकके बुद्धिके द्वारा खण्ड करके अनन्त वर्ग उत्पन्न करने चाहिए। उनका प्रमाण इस प्रकार है— ९ ९ ९। यह दूसरी वर्गणा है। इसको प्रथम वर्गणाके आगे स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पांचवीं आदि वर्गणाएं, जो कि एक एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदको लिए हुये हैं, उत्पन्न करनी चाहिए। इन वर्गणाओंका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है। इन सब वर्गणाओंका एक जघन्य स्पर्धक होता है, क्योंकि वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं। इस प्रथम स्पर्धकको पृथक् स्थापित करके पूर्वोक्त परमाणुपुंजमेंसे एक परमाणुको लेकर बुद्धिके द्वारा उसका छेदन करनेपर द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रथम वर्ग उत्पन्न होता है। इस वर्गमें पाये जानेवाले अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण संदृष्टिरूपसे १६ है। इस क्रमसे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागमात्र समान अविभागप्रतिच्छेदवाले परमाणुओंको लेकर और बुद्धिके द्वारा उनका छेदन करनेपर उतने ही वर्ग उत्पन्न होते हैं। इन वर्गोंका समुदाय दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणा कहलाता है। इस प्रथम वर्गणाको प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके आगे अन्तराल देकर स्थापित करना चाहिए। इस क्रमसे वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकको जानकर तब तक उनकी उत्पत्ति करनी चाहिए जब तक पूर्वोक्त परमाणुओंका समुदाय समाप्त न हो। इस प्रकार स्पर्धकोंकी रचना करनेपर अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक और वर्गणाएं उत्पन्न होती हैं। इनमेंसे अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग पाया जाता है उसे ही जघन्य स्थान कहते हैं। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

	प्रथम स्प.	द्वि. स्प.	तृ. स्प.	चर. प.	पं. स्प.	ष. स्प.
प्र० वर्गणा	८ ८ ८ ८	१६	२४	३२	४०	४८
द्वि० वर्गणा	९ ९ ९	१७	२५	३३	४१	४९
तृ० वर्गणा	१० १०	१८	२६	३४	४२	५०
च० वर्गणा	११	१९	२७	३५	४३	५१
	... .	...	...	...	...	...

§ ५७५. संपहि एदस्स जहण्णाणुभागट्ठाणस्स अविभागपडिच्छेदपरूवणा वग्गणपरूवणा फद्दयपरूवणा अंतरपरूवणा चेदि एदेहि चदुहि अणियोगद्दारेहि परूवणं कस्सामो। तत्थ अविभागपडिच्छेदपरूवणाए परूवणा पमाणमप्पाबहुअं चेदि तिण्णि अणियोगद्दाराणि। जहण्णियाए वग्गणाए अत्थि अविभागपडिच्छेदा। एवं णेदव्वं जाव उक्कस्सिया वग्गणा त्ति। एवं परूवणा गदा।

§ ५७६. जहण्णियाए वग्गणाए अविभागपडिच्छेदा केवडिया? अणंता सव्वजीवेहि अणंतगुणा। एवं णेदव्वं जाव उक्कस्सिया वग्गणा त्ति। एवं पमाणपरूवणा गदा।

§ ५७७. सव्वत्थोवा जहण्णियाए वग्गणाए अविभागपडिच्छेदा। उक्कस्सियाए वग्गणाए अविभागपडिच्छेदा अणंतगुणा। को गुणगारो? सव्वजीवेहि अणंतगुणो। कुदो? जहण्णबंधट्ठाणप्पहुडि उवरि असंखेज्ज०लोगमेत्तछट्ठाणेसु गदेसु सुहुमेइंदियजहण्णट्ठाणचरिमवग्गणाए समुप्पत्तीदो। अजहण्णअणुक्कस्सियासु वग्गणासु अविभागपडिच्छेदा अणंतगुणा। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागमेत्तो। अणुक्कस्सियासु वग्गणासु अविभागपडिच्छेदा विसेसाहिया। अजहण्णियासु वग्गणासु अविभागपडिच्छेदा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण? जहण्णवग्गणाविभागपडिच्छेदेहि ऊणउक्कस्सवग्गणाविभागपडिच्छेदमेत्तेण। सव्वासु वग्गणासु अविभागपडिच्छेदा विसेसाहिया। के० मेत्तेण? जहण्णवग्गणाविभागपडिच्छेदमेत्तेण।

एवमविभागपडिच्छेदपरूवणा गदा।

---

§ ५७५. अब इस जघन्य अनुभागस्थानका अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा, वर्गणाप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा और अन्तरप्ररूपणा इन चार अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर कथन करते हैं। उनमें अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणाके प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अनुयोगद्वार हैं। जघन्य वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये। इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५७६. जघन्य वर्गणामें कितने अविभागप्रतिच्छेद हैं? अनन्त हैं। जो सब जीवोंसे अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये। इस प्रकार प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५७७. जघन्य वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद सबसे थोड़े हैं। उनसे उत्कृष्ट वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं। गुणकारका प्रमाण कितना है? सब जीवोंसे अनन्तगुणा है; क्योंकि जघन्य बन्धस्थानसे लेकर ऊपर असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंके जाने पर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागस्थानकी अन्तिम वर्गणाकी उत्पत्ति होती है। उनसे अजघन्य अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं। यहाँ पर गुणकारका प्रमाण कितना है? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिका अनन्तवां भागप्रमाण गुणकारका प्रमाण है। उनसे अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें अविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य वर्गणाओंमें अविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। कितने अधिक हैं? जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे कम उत्कृष्ट वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद प्रमाण अधिक हैं। उनसे सभी वर्गणाओंमें अविभाग-

§ ५७८. वग्गणपरूवणादाए ताणि चेव तिण्णि अणियोगद्दाराणि। तत्थ परूवणदाए अत्थि जहण्णिया वग्गणा। एवं णेदव्वं जाव उक्कस्सवग्गणे त्ति। एवं परूवणा गदा।

§ ५७९. पमाणं वुच्चदे—अणंतेहि सरिसधणियपरमाणूहि एगा वग्गणा होदि, दव्वट्ठियणयावलंवणादो। पज्जवट्ठियणए पुण अवलंविदे वग्गो वि वग्गणा होदि। णिव्वियप्पवग्गस्स कथं वग्गणत्तं? ण, उवरिमएगोलिं पेक्खिदूण सवियप्पस्स वग्गणत्तं पडि विरोहाभावादो। विरोहे वा महाखंडवग्गणाए धुवसुण्णवग्गणाणं च ण वग्गणत्तं होज्ज, सरिसधणियाभावादो। ण च एवं, वग्गणाणं तेवीससंखाए अभावप्पसंगादो। जहण्णट्ठाणसव्ववग्गणाओ वि अभवसिद्धिएहि अणंतगुणाओ सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ताओ। कुदो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुण-सिद्धाणमणंतिमभागमेत्त-कम्मपरमाणूहि णिप्पण्णत्तादो। एगम्मि जीवे सव्वजीवेहि अणंतगुणा परमाणू किण्ण मिलंति? ण, मिच्छत्तादिपच्चएहि आगच्छमाणपरमाणूणमभवसिद्धिएहि अणंतगुण-सिद्धाणंतिमभागपमाणत्तुवलंभादो। ण च एत्तिएसु कम्मपरमाणुपोग्गलेसु कम्मट्ठिदीए

प्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। कितने अधिक हैं? जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं।

इस प्रकार अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५७८. वर्गणाप्ररूपणामें भी वे ही तीन अनुयोगद्वार हैं, प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। उनमेंसे प्ररूपणाकी अपेक्षा जघन्य वर्गणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये। इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५७९. अव प्रमाणको कहते हैं—द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे समान अविभागप्रतिच्छेदोंके धारक अनन्त परमाणुओंकी एक वर्गणा होती है। किन्तु पर्यायर्थिकनयका अवलम्बन करने पर एक वर्ग भी वर्गणा होता है।

शंका—वर्ग तो विकल्प रहित है, उसको वर्गणा कैसे कहा जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपरिम एक पंक्तिको देखते हुए पंक्तिका वर्ग भी सविकल्प है, अत: उसके वर्गणा होनेमें कोई विरोध नहीं है। यदि विरोध हो तो महास्कन्धवर्गणा और ध्रुवशून्य वर्गणाएँ भी वर्गणा नहीं हो सकतीं; क्योंकि उनमें समान धनवालोंका अभाव है। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेसे वर्गणाओंकी जो तेईस संख्या बतलाई है उसके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है।

जघन्य अनुभागस्थानकी सब वर्गणाएं भी अभव्यराशिसे अनन्तगुणी और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं, क्योंकि वे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण कर्मपरमाणुओंसे वनी हैं।

शंका—एक जीवमें सव जीवोंसे अनन्तगुणे परमाणु क्यों नहीं एकत्र होते हैं?

समाधान—नहीं; क्योंकि मिथ्यात्व आदि कारणोंसे बन्धको प्राप्त होनेवाले परमाणु अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण ही पाये जाते हैं। इतने कर्म

गुणिदेसु सव्वजीवेहि अणंतगुणा कम्मपरमाणू होंति, विरोहादो। एक्केक्कफद्दए वि अभवसिद्धिएहि अणंतगुण-सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ताओ वग्गणाओ होंति। ताओ च सव्वफद्दएसु संखाए समाणाओ। कुदो? साहावियादो। एवं वग्गणपमाणपरूवणा गदा।

§ ५८०. जहण्णफद्दए वग्गणाओ थोवाओ। अजहण्णेसु फद्दएसु वग्गणाओ अणंतगुणाओ। सव्वेसु फद्दएसु वग्गणाओ विसेसाहियाओ। एवं वग्गणपरूवणा गदा।

§ ५८१. फद्दयपरूवणं तेहि चेव तीहि अणियोगद्दारेहि भणिस्सामो। तं जहा—अत्थि जहण्णं फद्दयं। एवं णेदव्वं जावुक्कस्सफद्दयं त्ति। परूवणा गदा।

§ ५८२. जहण्णए ट्ठाणे अभवसिद्धिएहि अणंतगुणसिद्धाणंतिमभागमेत्ताणि फद्दयाणि। पमाणपरूवणा गदा।

§ ५८३. सव्वत्थोवं जहण्णफद्दयं, एगसंखत्तादो। अजहण्णफद्दयाणि अणंतगुणाणि। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागमेत्तो। सव्वाणि फद्दयाणि विसेसाहियाणि एगरूवेण। अधवा अविभागपडिच्छेदे अस्सिदूण उच्चदे—जहण्णफद्दयं थोवं। उक्कस्सफद्दयमणंतगुणं। को गुणगारो? सव्वजीवेहि अणंतगुणो। अजहण्णअणुक्कस्सफद्दयाणि अणंतगुणाणि। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागमेत्तो। अणुक्कस्सफद्दयाणि विसेसाहियाणि। अजहण्ण-

---

परमाणुओंको कर्मोंकी स्थितिसे गुणा करने पर समस्त कर्म परमाणु सब जीवोंसे अनन्तगुणे नहीं होते हैं, क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध आता है।

एक एक स्पर्धकमें भी अभव्य राशिसे अनन्तगुणी और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाएँ होती हैं। वे वर्गणाएँ संख्यामें सभी स्पर्धकोंमें समान होती हैं, क्योंकि ऐसा होना स्वाभाविक है। इस प्रकार वर्गणाकी प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८०. जघन्य स्पर्धकमें थोड़ी वर्गणाएँ हैं। उनसे अजघन्य स्पर्धकोंमें अनन्तगुणी वर्गणाएं हैं। उनसे सब स्पर्धकोंमें विशेष अधिक वर्गणाएँ हैं। इस प्रकार वर्गणाप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८१. उन्हीं तीन अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर स्पर्धकका कथन करते हैं। यथा—जघन्य स्पर्धक है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्धक पर्यन्त लेजाना चाहिये। प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८२. जघन्य अनुभागस्थानमें अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक होते हैं। प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८३. जघन्य स्पर्धक सबसे थोड़ा है, क्योंकि उसकी संख्या एक है। उससे अजघन्य स्पर्धक अनन्तगुणे हैं। गुणकारका प्रमाण क्या है? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकारका प्रमाण है। उनसे सभी स्पर्धक विशेष अधिक हैं, क्योंकि अजघन्य स्पर्धकोंसे इनमें एक स्पर्धक अधिक होता है। अथवा अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा कहते हैं—जघन्य स्पर्धक थोड़ा है। उससे उत्कृष्ट स्पर्धक अनन्तगुणा है। गुणकार क्या है? सब जीवोंसे अनन्तगुणा गुणकार है। अजघन्य अनुत्कृष्ट स्पर्धक अनन्तगुणे हैं। गुणकार क्या है? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है। अनुत्कृष्ट स्पर्धक

फद्दयाणि विसेसा० । सव्वाणि फद्दयाणि विसे० । एवं फद्दयपरूवणा गदा ।

§ ५८४. अंतरपरूवणदाए अत्थि जहण्णयं फद्दयंतरं । एवं णेदव्वं जाव उक्कस्स-फद्दयंतरं ति । एवं परूवणा गदा ।

§ ५८५. पढमं फद्दयंतरं सव्वजीवेहि अणंतगुणं ।एवं णेदव्वं जाव उक्कस्सफद्दयंतरं ति । एवमंतरपमाणपरूवणा० ।

§ ५८६. अप्पाबहुअं—सव्वत्थोवं जहण्णफद्दयंतरं । उक्कस्सफद्दयंतरमणंतगुणं । अजहण्णअणुक्कस्सफद्दयंतराणि अणंतगुणाणि । अणुक्कस्सफद्दयंतराणि विसेसाहियाणि । अजहण्णफद्दयंतराणि विसे० । सव्वाणि फद्दयंतराणि विसे० । अहवा फद्दयंतराण-मप्पाबहुअं ण सक्किज्जदे काउं, छवड्ढि-छहाणिकमेण अवट्ठिदत्तादो । तं पि कुदो ? बंधट्ठाणाणं हेट्ठिमाणं छव्विहाए वड्ढीए अवट्ठिदत्तादो । ण च एदम्हादो ट्ठाणादो हेट्ठा बंधट्ठाणाणमभावो, सव्वविसुद्धसंजमाहिमुहमिच्छाइट्ठिआदीणं बंधस्स एदम्हादो हेट्ठा दंसणादो । तं जहा—संजमाहिमुहसव्वविसुद्धमिच्छादिट्ठिणा वज्झमाणजहण्णमिच्छत्त-ट्ठिदीए असंखेज्जलोगमेत्ताणि विसोहिट्ठाणाणि भवंति । पुणो एत्थ सव्वुक्कस्सविसोहि-ट्ठाणेण वज्झमाणअणुभागट्ठाणाणि असंखेज्जलोगछट्ठाणसरूवेण[1] होंति । पुणो तत्थतण-जहण्णाणुभागबंधट्ठाणस्सुवरि तस्सेव उक्कस्साणुभागबंधट्ठाणमणंतगुणं । पुणो तस्सेव

विशेष अधिक है। अजघन्य स्पर्धक विशेष अधिक हैं। सब स्पर्धक विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार स्पर्धकप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८४. अन्तर प्ररूपणामें जघन्य स्पर्धकका अन्तर है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्धकके अन्तर पर्यन्त ले जाना चाहिए। इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८५. प्रथम स्पर्धकका अन्तर सब जीवोंसे अनन्तगुणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्धकके अन्तर पर्यन्त ले जाना चाहिए। इस प्रकार अन्तरकी प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८६. अल्पबहुत्व—जघन्य स्पर्धकका अन्तर सबसे थोड़ा है। उत्कृष्ट स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा है। अजघन्य अनुत्कृष्ट स्पर्धकोंके अन्तर अनन्तगुणे हैं। अनुत्कृष्ट स्पर्धकोंके अन्तर विशेष अधिक हैं। अजघन्य स्पर्धकोंके अन्तर विशेष अधिक हैं। सब स्पर्धकोंके अन्तर विशेष अधिक हैं। अथवा स्पर्धकोंके अन्तरोंमें अल्पबहुत्व नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे छह वृद्धियों और छह हानियोंके क्रमसे अवस्थित हैं। और इसका सबूत यह है कि नीचेके बन्धस्थान छह प्रकारकी वृद्धिको लिये हुए अवस्थित हैं। तथा इस बन्धस्थानसे नीचे अन्य बन्धस्थानोंका अभाव नहीं है; क्योंकि सबसे विशुद्ध और संयमके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि आदिके होनेवाला बंध इससे नीचे देखा जाता है। उसका खुलासा इस प्रकार है—संयमके अभिमुख और सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी जो जघन्य स्थिति बांधी जाती है, उसके कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण विशुद्धिस्थान होते हैं। पुनः यहां सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि स्थानसे बंधनेवाले अनुभागस्थान असंख्यात लोक षट्स्थान रूपसे होते हैं। तथा वहां पर होनेवाले जघन्य अनुभागबन्धस्थानके ऊपर उसीका उत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थान अनन्तगुणा है। पुनः

१. ता० प्रतौ -छट्ठाणप (स) रूवेण, आ० प्रतौ -छट्ठाणपरूवेण इति पाठः ।

चरिमसमयजहण्णविसोहिट्ठाणेण वज्झमाणजहण्णाणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । तस्सेवुक्कस्साणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । पुणो तस्सेव दुचरिमसमयमिच्छादिट्ठिस्स सव्वुक्कस्सविसोहिट्ठाणेण वज्झमाणजहण्णाणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । तस्सेवुक्कस्साणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । पुणो तस्सेव दुचरिमसमयसव्वजहण्णविसोहिट्ठाणेण वज्झमाणजहण्णाणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । तस्सेव उक्कस्साणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । एवं तिचरिमादिसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालमणंतगुणसरूवेणोदारेदव्वं जाव सत्थाणमिच्छादिट्ठिपढमसमओ त्ति । पुणो असण्णिपंचिंदिय-चउरिंदिय-तेइंदिय-बेइंदिय-बादरेइंदिएसु च अंतोमुहुत्तकालमणेणेव विहाणेण ओदारेदव्वं । पुणो सव्वविसुद्धचरिमसमयसुहुमअपज्जत्तयस्स सव्वुक्कस्सविसोहिट्ठाणेण वज्झमाणजहण्णाणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । तस्सेवुक्कस्साणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । तस्सेव मंदविसोहिट्ठाणेण वज्झमाणजहण्णाणुभागट्ठाणमणंतगुणं । तस्सेवुक्कस्साणुभागवंधट्ठाणमणंतगुणं । एवं दुचरिमसमयप्पहुडि अणंतगुणक्कमेण ओदारेदव्वं जाव सुहुमसत्थाणजहण्णसंतसमाणवंधट्ठाणे त्ति । तेण फद्दयंतराणि छव्विहाए वड्ढीए अवट्ठिदाणि त्ति णव्वदे ।

उसी संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयवर्ती जघन्य विशुद्धिस्थानसे वंधनेवाला अनुभागबन्धस्थान अनन्तगुणा है। उसीका उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । पुनः द्विचरम समयवर्ती उसी मिथ्यादृष्टिके सबसे उत्कृष्ट विशुद्धिस्थानसे वंधनेवाला जघन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । उसीका उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । पुनः द्विचरम समयवर्ती उसी मिथ्यादृष्टिके सबसे जघन्य विशुद्धिस्थानसे वंधनेवाला जघन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । उसीका उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । इसी प्रकार त्रिचरम आदि समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर स्वस्थान मिथ्यादृष्टिके प्रथम समय पर्यन्त ये अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणे रूपसे उतारनाचाहिए। पुनः असंज्ञिपञ्चेन्द्रिय, चौइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, दोइन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियोंमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक इसी क्रमसे उतारना चाहिए। पुनः सर्वविशुद्ध चरम समयवर्ती सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवके सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिस्थानसे वंधनेवाला जघन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । उसीका उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । उसी सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवके मन्द विशुद्धिस्थानसे वंधनेवाला जघन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । उसीका उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । इसी प्रकार द्विचरम समयसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवके स्वस्थान जघन्य सत्त्वस्थानके समान वन्धस्थान पर्यन्त अनन्तगुणित क्रमसे उतारना चाहिए । इससे जाना जाता है कि स्पर्धकोंका अन्तर छह प्रकारकी वृद्धिरूपसे अवस्थित है ।

विशेषार्थ—स्पर्धकोंमें परस्परमें अन्तर पाया जाता है यह वात तो पहले वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकका कथन करते हुए वतलाई ही है । यदि स्पर्धकोंमें अन्तर न होता तो स्पर्धक अनेक नहीं होते । अन्तर होनेसे ही पृथक् स्पर्धककी रचना होती है और वह अन्तर अविभागप्रतिच्छेदोंको लेकर होता है । जहाँ तक एक एक अविभागप्रतिच्छेद अधिकवाले परमाणु पाये जाते हैं वहाँ तक एक स्पर्धक होता है । उसके वाद एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक परमाणु नहीं पाया जाता किन्तु अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद अधिकवाले परमाणु पाये जाते हैं । बस वहींसे दूसरा स्पर्धक प्रारम्भ हो जाता है, अतः जघन्य स्पर्धकका अन्तर सबसे कम होता है और जघन्य स्पर्धकसे

§ ५८७. संपहि परूवणा पमाणं सेढी अवहारो भागाभागं अप्पाबहुअं चेदि एदेहि छहि अणियोगद्दारेहि सुहुमजहण्णट्ठाणपरमाणूणं परूवणा कीरदे। तं जहा— जहण्णियाए वग्गणाए अत्थि कम्मपदेसा। विदियाए वग्गणाए अत्थि कम्मपदेसा। एवं णेदव्वं जाव उक्कस्सवग्गणे त्ति। परूवणा गदा।

§ ५८८. जहण्णियाए वग्गणाए कम्मपदेसा केत्तिया? अणंता अभवसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाणंतिमभागमेत्ता। एवं णेदव्वं जाव उक्कस्सवग्गणे त्ति।

§ ५८९. सेढिपरूवणा दुविहा—अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा चेदि। तत्थ अणंतरोवणिधाए जहण्णियाए वग्गणाए कम्मपदेसा बहुआ। विदियाए वग्गणाए कम्मपदेसा विसेसहीणा। एवं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्सिया वग्गणा त्ति। भागहारो पुण अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागमेत्तो। एवमणंतरोवणिधा गदा।

§ ५९०. जहण्णियाए वग्गणाए कम्मपदेसेहिंतो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तमद्धाणं गंतूण कम्मपदेसा दुगुणहीणा होंति। एवमवट्ठिदमद्धाणं

उत्कृष्ट स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा है। किन्तु इसमें एक दूसरा पक्ष भी है और वह यह है कि चूँकि स्पर्धकान्तर छह प्रकारकी हानि और छह प्रकारकी वृद्धिको लिए हुए होता है, अतः स्पर्धकान्तरोंमें अल्पबहुत्व नहीं किया जा सकता। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्पर्धकका अन्तर थोड़ा है और अमुकका अनन्तगुणा, क्योंकि हानि वृद्धि होनेसे उसमें घटती और बढ़ती हो सकती है। तथा उनमें हानि-वृद्धि होती है यह बात इससे स्पष्ट है कि सूक्ष्म निगोदिया जीवके उक्त बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसे नीचे अन्य भी बन्धस्थान पाये जाते हैं और वे बन्धस्थान छह प्रकारकी वृद्धिको लिए हुए हैं। जैसा कि मूलमें संयमके अभिमुख सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवसे लेकर सर्वविशुद्ध चरिमसमयवर्ती सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवके होनेवाले अनुभागबन्धको उत्तरोत्तर अनन्तगुणा अनन्तगुणा बतलाकर स्पष्ट किया है।

§ ५८७. अब प्ररूपणा, प्रमाण, श्रेणी; अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व इन छह अनुयोगद्वारोंसे सूक्ष्म जीवके जघन्य अनुभागस्थानके परमाणुओंका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—जघन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश हैं। दूसरी वर्गणामें कर्मप्रदेश हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिए। प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५८८. जघन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश कितने हैं? अनन्त हैं जो अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इस प्रकार उत्कृष्टवर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिए।

§ ५८९. श्रेणि प्ररूपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परंपरोपनिधा। उनमेंसे अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश बहुत हैं। दूसरी वर्गणामें कर्मप्रदेश विशेष हीन हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त कर्मप्रदेश विशेषहीन विशेषहीन होते हैं। भागहारका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है। अर्थात् इस भागहारका भाग जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंमें देनेसे जो लब्ध आवे उतने हीन कर्मप्रदेश दूसरी वर्गणामें हैं। इस प्रकार अनन्तरोपनिधाका कथन समाप्त हुआ।

§ ५९०. जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्थान जानेपर कर्मप्रदेश दूने हीन अर्थात् आधे होते हैं। इस प्रकार

गंतूण दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव चरिमगुणहाणि त्ति। तं जहा—अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतिमभागमेत्तं णिसेगभागहारं विरलेदूण जहण्णवग्गणकम्मपदेसेसु समखंडं कादूण दिण्णेसु एक्केक्कस्स रूवस्सं वग्गणाविसेसपमाणं पावदि। पुणो जेणेत्थ एगेगवग्गणविसेसो वग्गणं पडि हायमाणो गच्छदि तेण णिसेगभागहारस्स अद्धमेत्तं गंतूण जहण्णवग्गणपदेसेहिंतो तदित्थवग्गणपदेसा दुगुणहीणा होंति। पुणो पढमगुणहाणिपढमवग्गणभागहारेणेव विदियगुणहाणिपढमवग्गणापदेसेसु खंडिदेसु तत्थतणवग्गणविसेसो होदि। णवरि पढमगुणहाणिवग्गणविसेसादो विदियगुणहाणिवग्गणविसेसो दुगुणहीणो, पुव्विल्लविहज्जमाणदव्वं पेक्खिदूण संपहि विहज्जमाणदव्वस्स दुभागत्तादो। एत्थ वि भागहारस्स अद्धं गंतूण दुगुणहाणी होदि। एवं णेदव्वं जाव चरिमवग्गणे त्ति।

अन्तिम गुणहानिके प्राप्त होने तक अवस्थित अध्वान जाने पर कर्मप्रदेश आधे आधे होते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण निषेकभागहारका विरलन करके उसके ऊपर जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंके समान खण्ड करके देनेपर एक एक अंकके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण प्राप्त होता है। यतः यहाँ पर वर्गणाके प्रति एक एक वर्गणाविशेष घटता जाता है अतः निषेकभागहारका आधा प्रमाण जानेपर जघन्य वर्गणाके प्रदेशोंसे वहां पर स्थित वर्गणाके प्रदेश दूने हीन होते हैं। उसके बाद प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणाके भागहारसे ही दूसरी गुणहानिकी प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंमें भाग देनेपर वहांका वर्गणाविशेष आता है। इतना विशेष है कि प्रथम गुणहानिके वर्गणाविशेषसे दूसरी गुणहानिका वर्गणाविशेष दूना हीन है, क्योंकि पहले जिस द्रव्यमें भाग दिया गया था उससे अब जिस द्रव्यमें भाग दिया गया है वह द्रव्य आधा है। यहां भी भागहारका आधा प्रमाण जानेपर दूनी हानि होती है। इस प्रकार अन्तिम वर्गणा पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ—सूक्ष्म निगोदिया जीवका जो जघन्य बन्धस्थान है उसके परमाणुओंका कथन करनेके लिए छह अनुयोगस्थान कहे हैं। उनमेंसे श्रेणि अनुयोगद्वारका कथन अंकसंदृष्टिसे इस प्रकार समझना चाहिए। अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण निषेकभागहारका प्रमाण १६ है और जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका परिमाण ५१२ है। निषेकभागहार १६ का विरलन करके उसके ऊपर जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंके १६ खण्ड करके एक एकके ऊपर देनेसे एक एक रूपके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण आता है। यथा—

३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

इसीको दूसरे प्रकारसे यूँ कह सकते हैं कि जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेश ५१२ में निषेकभागहार १६ का भाग देनेसे ३२ लब्ध आता है और यही प्रत्येक वर्गणामें विशेष अर्थात् चयका प्रमाण होता है। अर्थात् प्रत्येक वर्गणामें ३२, ३२ परमाणु कम होते जाते हैं। तथा निषेकभागहार १६ का आधा ८ होता है, अतः जब प्रत्येक वर्गणामें ३२, ३२ परमाणु कम होते जाते हैं तो आठ स्थान जानेपर आगेकी वर्गणामें जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे आधे कर्मपरमाणु पाये जायेंगे यह स्वाभाविक ही है। जैसे ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८ ये आठ स्थान जानेपर २५६ कर्म परमाणु नवीं वर्गणामें आते हैं जो कि प्रथम वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे आधे हैं। जिस प्रकार प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणा ५१२ में निषेकभागहार १६ का भाग देनेसे एक एक वर्गणाका ३२ चय आया था उसी प्रकार दूसरी गुणहानिकी प्रथम वर्गणाके कर्मपरमाणु २५६ में

§ ५९१. एत्थ तिण्णि अणियोगद्दारिणि—परूवणा पमाणमप्पाबहुअं चेदि। परूवणाए अत्थि णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ एगपदेसगुणहाणिअद्धाणं च। [परूवणा गदा।]

§ ५९२. णाणापदेसगुणहाणिसलागाओ एगपदेसगुहाणिअद्धाणं च अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तं होदि। पमाणपरूवणा गदा।

§ ५९३. सव्वत्थोवाओ णाणापदेसगुणहाणिसलागाओ। एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमणंतगुणं। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागमेत्तो।

एवं सेढिपरूवणा गदा।

§ ५९४. पढमाए वग्गणाए कम्मपदेसपमाणेण सव्ववग्गणकम्मपदेसा केवडिएण कालेण अवहिरिज्जंति? अणंतेण कालेण अवहिरिज्जंति। एवं णेदव्वं जाव चरिम-

निषेकभागहार १६ का भाग देनेसे एक एक वर्गणाके प्रति चयका प्रमाण १६ आता है। यह चय पहलेके प्रमाणसे आधा है, क्योंकि पहले भाज्यराशिका प्रमाण ५१२ था और अब २५६ है। यहाँ भी निषेकभागहारका आधा अर्थात् आठ स्थान जानेपर कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आधा रह जाता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। यथा—

प्रथम गुणहानि	२ गुणहानि	३ गुणहानि	४ गुणहानि	५ गुणहानि	चरम गुणहानि
२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१८६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६

इस प्रकार जघन्य स्थानकी प्रथम वर्गणासे लेकर चरम वर्गणा पर्यन्त कर्मपरमाणुओंका प्रमाण जानना चाहिए।

§ ५९१. इसका कथन करनेके लिये भी तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। प्ररूपणाकी अपेक्षा नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर शलाकाएँ हैं और एकप्रदेश-गुणहानिअध्वान है। प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५९२. नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाएं और एकप्रदेशगुणहानिआयाम अभव्य राशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५९३. नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाएँ सबसे थोड़ी हैं। उनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर अनन्तगुणा है? गुणकारका प्रमाण कितना है? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकारका प्रमाण है।

इस प्रकार श्रेणिप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५९४. पहली वर्गणामें जितने कर्मप्रदेश हैं उतने प्रमाणसे यदि सब वर्गणाओंके कर्मप्रदेशोंका अपहार किया जाय तो कितने कालमें किया जा सकता है? अनन्त कालमें उनका

वग्गणे त्ति । अधवा दिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जंति[1] ।

§ ५९५. तदो विदियाए वग्गणाए कम्मपदेसपमाणेण सव्ववग्गणकम्मपदेसा केवचिरेण कालेण[2] अवहिरिज्जंति ? सादिरेयदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जंति । तं जहा—पढमवग्गणाकम्मपदेसपमाणेण सव्ववग्गणाकम्मपदेसपिंडे कदे दिवड्ढगुणहाणिमेत्तपढमवग्गणाओ होंति । संपहि विदियादिवग्गणावहारकाले इच्छिज्जमाणे दिवड्ढगुणहाणिं विरलेदूण सव्वदव्वं समखंडं कादूण दिण्णे एक्केक्कस्स रूवस्स पढमवग्गणपमाणं पावदि । पुणो विदियवग्गणपमाणेण अवहिरिदुमिच्छामो त्ति हेट्ठा णिसेगभागहारं विरलेदूण पढमवग्गणाए समखंडं कादूण दिण्णाए एक्केक्कस्स रूवस्स वग्गणविसेसपमाणं पावदि । पुणो एत्थ एगरूवधरिदवग्गणविसेसपमाणेण उवरिमविरलणरूवं पडि ट्ठिदपढमवग्गणासु अवणिदे अवणिदसेसे दिवड्ढगुणहाणिमेत्तविदियवग्गणाओ होंति । अवणिदवग्गणविसेसा वि दिवड्ढगुणहाणिमेत्ता होंति । पुणो एदे वि तप्पमाणेण कस्सामो । तं जहा—रूवूणणिसेगभागहारमेत्तवग्गणविसेसे घेत्तूण जदि एगविदिय-

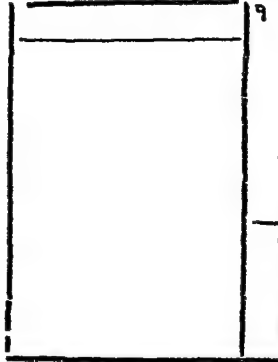
अपहार किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्तिम वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये। अथवा डेढ़ गुणहानिस्थानान्तर कालके द्वारा उनका अपहार हो सकता है।

विशेषार्थ—अपहारकालको सरल रूपसे समझनेके लिये अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—सब वर्गणाओंके कर्मप्रदेशोंका प्रमाण ४९१५२; गुणहानिका प्रमाण ६४; डेढ़गुणहानि ९६; दो गुणहानि ६४×२=१२८; प्रथम वर्गणा ५१२; वर्गणाविशेषका प्रमाण दो गुणहानि अथवा निषेकभागाहारसे भाजित प्रथम वर्गणा ५१२÷१२८=४। पहली वर्गणाके कर्मप्रदेश ५१२ से यदि सब वर्गणाओंके कर्मप्रदेश ४९१५२ का अपहार किया जाय तो डेढ़ गुणहानि कालमें उनका अपहार हो सकता है ४९१५२÷५१२=९६=६४×१½ अर्थात् डेढ़ गुणहानि।

§ ५९५. अनन्तर दूसरी वर्गणामें जितने कर्मप्रदेश हैं उतने प्रमाणसे सब वर्गणाओंके कर्मप्रदेशोंका अपहार कितने कालमें होता है ? कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि स्थानान्तर कालके द्वारा उनका अपहार होता है। उसका खुलासा इस प्रकार है—प्रथम वर्गणामें जितने कर्मप्रदेश हैं उतने प्रमाणसे समस्त वर्गणाओंके कर्मप्रदेशोंके पिण्ड करने पर डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाएँ होती हैं। अब द्वितीय आदि वर्गणाओंका अपहारकाल लाना इष्ट होनेपर डेढ़ गुणहानिका विरलन करके सब द्रव्यके समान खण्ड करके प्रत्येकके ऊपर देनेपर एक एक अंकके प्रति प्रथम वर्गणाका प्रमाण आता है। पुनः द्वितीय वर्गणाके प्रमाणसे अपहार करनेकी इच्छा है इसलिए नीचे निषेकभागहारका विरलन करके प्रत्येकके ऊपर सम खण्ड करके प्रथम वर्गणाके देनेपर एक एक रूपके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण आता है। पुनः यहां एक अंकके प्रति प्राप्त वर्गणाविशेषके प्रमाणको उपरिम विरलनके प्रत्येक एक पर स्थित प्रथम वर्गणामेंसे घटा देनेपर डेढ़ गुणहानिप्रमाण द्वितीय वर्गणाएँ होती हैं और घटाये गये वर्गणाविशेष भी डेढ़ गुणहानि प्रमाण होते हैं। पुनः इन्हें भी द्वितीय वर्गणाके प्रमाणसे करते हैं। उसका खुलासा इस प्रकार है—एक कम निषेकभागहार प्रमाण वर्गणाविशेषोंको लेकर यदि एक द्वितीय वर्गणाका प्रमाण

१. ता० प्रतौ कालंतरेण अविहिरिज्जंति इति पाठः। २. ता० प्रतौ केवचिरं कालेण इति पाठः।

वग्गणपमाणं लब्भदि तो दिवड्ढगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसेसु केत्तियं विदियवग्गणपमाणं लभामो त्ति फलगुणिदिच्छाए पमाणेणोवट्टिदाए जं लद्धं तं दिवड्ढगुणहाणीए पक्खित्ते सादिरेयदिवड्ढगुणहाणिमेत्तो विदियणिसेगभागहारो होदि। अथवा दिवड्ढगुणहाणिमेत्तं



[1] पढमवग्गणाखेत्तं ठविय पुणो एगवग्गणविसेसविक्खंभ-दिवड्ढगुणहाणिआयाममेत्तफालिमवणिदे सेसखेत्तं दिवड्ढायामं विदियवग्गणविक्खंभमेत्तं होदूण चेट्ठदि। पुणो तं फालिं घेत्तूण विदियवग्गणविक्खंभस्सुवरिं तिरिच्छेण पादिय ठविदे दिवड्ढायामपमाणं विदियवग्गणविक्खंभं ण पावदि। पुणो केत्तियमेत्तेण पावदि त्ति भणिदे गुणहाणिअद्धरूवूणमेत्तवग्गणविसेसखेत्तं जदि होदि तो पावदि। पक्खेवरूवं पि एगं लब्भदि। ण च एत्तियखेत्तमत्थि तेण सादिरेयदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि त्ति सिद्धं।

आता है तो डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंमें द्वितीय वर्गणाओंका कितना प्रमाण प्राप्त होता है ऐसा त्रैराशिक करने पर फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे डेढ़ गुणहानिमें मिला देनेपर कुछ अधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण द्वितीयवर्गणाका भागहार होता है। अथवा डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाके क्षेत्रको स्थापित करके पुनः एक वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़ी और डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बी फालिको निकाल देनेपर शेष क्षेत्र डेढ़ गुणहानि लम्बा और द्वितीय वर्गणाप्रमाण चौड़ा होकर स्थित रहता है। पुनः उस फालिको लेकर द्वितीय वर्गणाके विष्कम्भके ऊपर तिरछे रूपसे स्थापित करने पर वह डेढ़ गुणहानि लम्बा होकर द्वितीय वर्गणाके विष्कम्भको नहीं प्राप्त होता है। पुनः कितने मात्रसे प्राप्त होता है ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि यदि वर्गणाविशेषका क्षेत्र एक कम अर्द्ध गुणहानिप्रमाण और होता तो प्राप्त होता और प्रक्षेपरूप भी एक प्राप्त होता किन्तु इतना क्षेत्र नहीं है अतः कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि स्थानान्तर कालके द्वारा अपहार होता है यह सिद्ध हुआ।

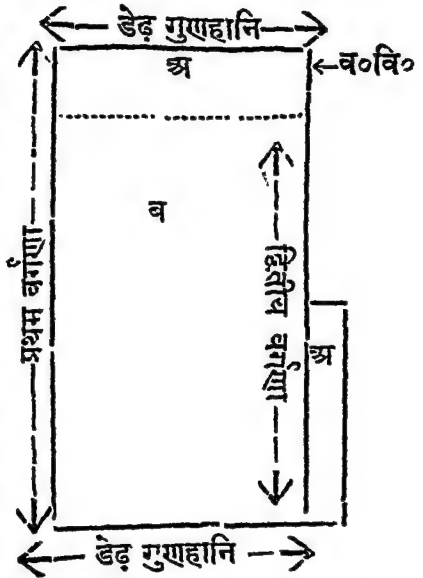
विशेषार्थ—प्रथम वर्गणाके प्रमाणसे द्वितीय वर्गणाका प्रमाण एक वर्गणाविशेष हीन होता है, अतः द्वितीय वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका प्रमाण ५१२–४=५०८ है। इससे सब वर्गणाओंके कर्मप्रदेशों का अपहार करने पर ४९१५२÷५०८=९६$\frac{३८४}{५०८}$ कुछ अधिक डेढ गुणहानि प्रमाण अपहार काल होता है। डेढ़ गुणहानि ९६ का विरलन करके, सब द्रव्य ४९१५२ के समान खंड करके प्रत्येकके ऊपर देने पर प्रथम वर्गणा ५१२ आती है—$\frac{५१२}{१}$ $\frac{५१२}{१}$ $\frac{५१२}{१}$ $\frac{५१२}{१}$ ......९६ बार। निषेकभागाहार १२८ का विरलन करके प्रत्येकके ऊपर सम खंड करके प्रथम वर्गणाके देनेपर

---

१. ता० आ० प्रत्योः [आकृति] इत्याकारेणोपलभ्यते।

§ ५९६. तदियवग्गणपमाणेण अवहिरिज्जमाणे दोफालिमेत्ता वग्गणविसेसा होंति। ताओ दोफालीओ आयामेण संधिदे तिण्णिगुणहाणिमेत्ता वग्गणविसेसा होंति। पुणो ते तदियवग्गणपमाणेण अवहिरिज्जमाणे दुरूवूणवेगुणहाणिमेत्तवग्गण-विसेसखेत्तं घेत्तूण पुव्वखेत्तस्सुवरिं ठविदे एगं भागहाररूवमहियं लब्भदि। पुणो

एक एकके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण आता है—$\frac{४}{१}\ \frac{४}{१}\ \frac{४}{१}\ \frac{४}{१}$ ....१२८ बार।
इस वर्गणाविशेषको उपरिम विरलन पर स्थित डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाओंमेंसे घटा देने पर (५१२–४) ९६=५०८×९६ डेढ़ गुणहानि प्रमाण द्वितीय वर्गणाएँ होती हैं। घटाये गये वर्गणाविशेष भी डेढ़ गुणहानिप्रमाण होते हैं ५१२×९६–५०८×९६=४×९६। यदि एक कम निषेकभागहार (१२८–१)=१२७ वर्गणाविशेषोंकी (१२७×४) एक द्वितीय वर्गणा होती है तो डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषों (९६×४) की $\frac{९६\times४\times१}{१२७\times४}=\frac{३८४}{५०८}$ द्वितीय वर्गणा होती है। $\frac{३८४}{५०८}$ को डेढ़ गुणहानि ९६ में मिला देने पर कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि ९६ $\frac{३८४}{५०८}$ $=\frac{४९१५२}{५०८}$ द्वितीय वर्गणाका भागाहार होता है। अब क्षेत्रकी अपेक्षा इस भागाहारको सिद्ध करते हैं—डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बा और प्रथम वर्गणाप्रमाण चौड़ा क्षेत्र स्थापित करके उसमें से एक वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़े और डेढ़ गुणहानि प्रमाण लम्बे "अ" क्षेत्रको फालिरूपसे अलग करने पर शेष "व" क्षेत्र डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बा और द्वितीय वर्गणाप्रमाण चौड़ा होकर स्थित रहता है। पुनः द्वितीय वर्गणाके विष्कम्भके उपर तिरछे रूपसे उस फालिरूप "अ" क्षेत्रको स्थापित करनेपर द्वितीय वर्गणाका विष्कम्भ पूरा नहीं प्राप्त होता। उसमें एक कम अर्ध गुणहानिप्रमाण वर्गणा विशेषोंकी कमी रहती है। क्योंकि "अ" फालिका प्रमाण डेढ़गुणहानि ९६ प्रमाण लम्बा और एक वर्गणाविशेष ४ प्रमाण चौड़ा=९६×४ है और द्वितीय वर्गणाका प्रमाण ५०८=१२७×४ है। (१२७×४)–(९६×४)=३१×४ अर्थात् द्वितीय वर्गणा पूरी होनेमें एक कम अर्ध गुणहानि ($\frac{६४}{२}$–१=३१) प्रमाण वर्गणाविशेष (४) की कमी है। यदि



एक कम अर्धगुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेष और होते तो एक द्वितीय वर्गणा पूरी हो जाती। परन्तु इतना यहाँ नहीं है, अतः सब द्रव्यको द्वितीय वर्गणाके प्रमाणसे करनेके लिए वह साधिक डेढ़ गुणहानिसे अपहृत होता है यह कहा है।

§ ५९६. समस्त वर्गणाओंके कर्मप्रदेशोंका तृतीय वर्गणाके प्रमाणके द्वारा अपहार करने पर दो फालीमात्र वर्गणाविशेष होते हैं। उन दो फालियोंको आयामके साथ जोड़ देने पर तीन गुणहानि प्रमाण वर्गणाविशेष होते हैं। पुनः उन तीन गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंको तृतीय वर्गणाके प्रमाणसे अपहृत करने पर; दो कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेष क्षेत्रको

दुरूवाहियगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसखेत्तमहियमत्थि। तम्हि तदियवग्गणपमाणेण कीरमाणे तप्पमाणं ण पूरेदि, चदुरूवूणगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसाणमभावादो। तेण सादिरेयरूवाहियदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि त्ति सिद्धं।

§ ५९७. संपहि चउत्थवग्गणपमाणेण सव्वदव्वे अवहिरिज्जमाणे सादिरेयदुरूवाहियदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि। तं जहा—दिवड्ढगुणहाणिमेत्तविक्खंभतिण्णिवग्गणविसेसमेत्तखेत्ते अवणिदे अवसेसखेत्तं दिवड्ढगुणहाणिविक्खंभेण चउत्थवग्गणआयामेण अवचिट्ठदि। पुणो अवणिदतिण्णिफालीओ तप्पमाणेण कस्सामो—तिरूवूणवेगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसु एगा चउत्थवग्गणा होदि त्ति अद्धवंचमगुणहाणिमेत्तवग्गणाविसेसेसु वेचउत्थवग्गणाओ सादिरेयाओ होंति तिण्णि ण पूरेंति,

ग्रहण करके पहिले क्षेत्र पर रखने पर भागाहारमें एक रूपकी अधिकता प्राप्त होती है। पुनः दो अधिक गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेष क्षेत्र अधिक है उसे तृतीय वर्गणाके प्रमाणसे करने पर उसके प्रमाणको पूरा नहीं करता, क्योंकि चार कम गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है। अत: सातिरेक एक अधिक डेढ़ गुणहानि स्थानन्तर कालके द्वारा वह अपहृत होता है यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—तृतीय वर्गणाका प्रमाण (५०४) प्रथम वर्गणाके प्रमाण (५१२) से दो वर्गणा विशेष (२×४) कम होता है। पूर्वोक्त प्रकारसे प्रथम वर्गणाप्रमाण चौड़ा और डेढ़ गुणहानि प्रमाण लम्बा क्षेत्र स्थापित करके उसमेंसे एक एक वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़ी और डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बी दो फालियोंको अलग करने पर शेष क्षेत्र तृतीय वर्गणाप्रमाण चौड़ा और डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बा (५०४×९६) स्थित रहता है। पुनः उन दो फालियोंको आयामके साथ जोड़नेसे (१½ गुणहानि वर्गणाविशेष + १½ गुणहानि वर्गणाविशेष) तीन गुणहानि वर्गणाविशेष होते हैं (६४×३×४) = १९२×४। इसको तृतीय वर्गणा (५०४ = १२६×४) के प्रमाणसे करने पर एक तृतीय वर्गणा और दो अधिक गुणहानि (६४+२=६६) वर्गणाविशेष प्रमाण क्षेत्र शेष रह जाता है (१९२×४−१२६×४ = ६६×४)। इस शेष क्षेत्र (६६×४) की पूरी तृतीय वर्गणा नहीं होती, क्योंकि (१२६×४ − ६६×४ = ६०×४) चार कम गुणहानिप्रमाण (६४ − ४ = ६०) वर्गणाविशेष (४) की कमी है। अतः तृतीय वर्गणाका अपहार काल कुछ विशेष एक अधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण है $९६ + १ + \frac{६६}{१२६} = ९७\frac{६६}{१२६}$, $\frac{४९१५२}{५०४} = ९७\frac{६६}{१२६}$।

§ ५९७. अब चतुर्थ वर्गणाके प्रमाणके द्वारा समस्त द्रव्यको अपहृत करने पर दो अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक स्थानान्तर कालके द्वारा अपहृत होता है। उसका खुलासा इस प्रकार है—डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बे और तीन वर्गणाविशेष प्रमाण चौड़े क्षेत्रको अलग करने पर शेष क्षेत्र डेढ़ गुणहानि प्रमाण लम्बा और चतुर्थ वर्गणाप्रमाण चौड़ा अवस्थित रहता है। फिर अलगकी हुई तीन फालियोंको चतुर्थ वर्गणाके प्रमाणसे करते हैं—यदि तीन कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी एक चतुर्थ वर्गणा होती है तो साढे चार गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी चतुर्थ वर्गणाएं कुछ अधिक दो होती हैं, तीन पूरी तीन नहीं होतीं; क्योंकि

१ ता० प्रतौ कस्सामो त्ति रूवूण- इति पाठः।

णववग्गणविसेसूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसाणमभावादो। तेण सादिरेयदुरूवाहिय-दिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि त्ति सिद्धं।

§ ५६८. पंचमवग्गणपमाणेण अवहिरिज्जमाणे सादिरेयतिरूवाहियदिवड्ढगुण-हाणिट्ठाणंतरेण कालेण सव्वदव्वमवहिरिज्जदि। दिवड्ढखेत्तम्मि पंचमवग्गणपमाणायद-दिवड्ढगुणहाणिविक्खंभखेत्ते अवणिदे उव्वरिदछगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसेसु सादिरेय-तिण्णिपंचमवग्गणाणमुवलंभादो। चत्तारि रूवाणि ण पूरंति, सोलसवग्गणविसेसेहि ऊणदोगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसाणमभावादो।

नौ वर्गणाविशेष कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है, अतः दो अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक स्थानान्तर कालके द्वारा इसका अपहार होता है यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—चौथी वर्गणा ५०० से समस्त द्रव्य ४९१५२ का अपहरण करने पर $\frac{४९१५२}{५००}$ $९८\frac{१५२}{५००} = ९८\frac{३८}{१२५}$ अर्थात् दो अधिक डेढ़ गुणहानि (९६+२=९८) से कुछ अधिक $\frac{३८}{१२५}$ अपहारकाल प्राप्त होता है। पूर्वोक्त डेढ़ गुणहानिप्रमाण (९६) लम्बे और प्रथम वर्गणाप्रमाण (५१२) चौड़े क्षेत्र में से डेढ़ गुणहानि प्रमाण (९६) लम्बे और तीन वर्गणाविशेष (३×४) प्रमाण चौड़े क्षेत्रको अलग करनेपर शेष क्षेत्र डेढ़ गुणहानिप्रमाण (९६) लम्बा और चतुर्थ वर्गणा (५००) प्रमाण चौड़ा अवस्थित रहता है। यदि तीन कम दो गुणहानि (६४×२−३=१२५) वर्गणाविशेष (४) की एक चतुर्थ वर्गणा (५००) प्राप्त होती है तो अलग ग्रहण किये गये क्षेत्र (डेढ़ गुणहानि×३×४=साढ़े चार गुणहानि×४=$\frac{९}{२}$×६४×४) की कुछ अधिक दो चौथी वर्गणाएँ प्राप्त होती हैं $\frac{९}{२}×६४×४×१ ÷ १२५×४ = \frac{३२×९×४}{१२५×४} = २\frac{३८}{१२५}$)। चतुर्थ वर्गणा पूरी तीन नहीं होतीं, क्योंकि पूरी तीन होनेमें नौ कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणा विशेषोंकी कमी है (३×१२५×४ − ३२×९×४ = ८७×४ = ९६ − ९×४)। अतः समस्त द्रव्य को चौथी वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह दो अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है।

§ ५६८. पाँचवीं वर्गणाके प्रमाणसे अपहृत करने पर समस्त द्रव्य तीन अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक स्थानान्तर कालके द्वारा अपहृत होता है। डेढ़ गुणहानि प्रमाण क्षेत्रमें से पाँचवीं वर्गणाप्रमाण आयामवाले और डेढ़ गुणहानिप्रमाण विस्तारवाले क्षेत्रको अलग करने पर शेष रहे छह गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंमें पाँचवीं वर्गणाएँ साधिक तीन प्राप्त होती हैं। पूरी चार नहीं प्राप्त होतीं; क्योंकि सोलह वर्गणाविशेष कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणा-विशेषोंका अभाव है।

विशेषार्थ—पाँचवीं वर्गणा (४९६) के प्रमाणसे समस्त द्रव्य (४९१५२) को अपहृत करने पर तीन अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक काल प्राप्त होता है ($\frac{४९१५२}{४९६} = ९९\frac{१२}{१२४}$)। क्षेत्र की अपेक्षा डेढ़ गुणहानि प्रमाण (९६) लम्बे और चार वर्गणा विशेष प्रमाण चौड़े (४×४) क्षेत्रको अलग करनेपर शेष क्षेत्र पाँचवीं वर्गणाप्रमाण (४९६) चौड़ा और डेढ़ गुणहानि

§ ५९९. संपहि छट्ठवग्गणपमाणेण सव्वदव्वे अवहिरिज्जमाणे सादिरेयतिण्णि-रूवाहियदिवड्ढगुणहाणिमेत्तकालेण अवहिरिज्जदि । दिवड्ढगुणहाणिमेत्तपढमवग्गणासु छट्ठवग्गणपमाणे अवणिदे अवणिदसेसअद्धट्ठमगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसेसु[1] सादिरेय-तिण्हं रूवाणमुवलंभादो । चत्तारि रूवाणि ण पूरंति, वीसवग्गणविसेसहीणअद्धगुणहाणि-वग्गणविसेसाणमभावादो ।

§ ६००. संपहि सत्तमवग्गणपमाणेण सव्वदव्वे अवहिरिज्जमाणे सादिरेयचदु-रूवाहियदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि । दिवड्ढगुणहाणिमेत्तपढम-वग्गणासु सत्तमवग्गणाए अवणिदाए तत्थुव्वरिदणवगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसेसु

प्रमाण (९६) लम्बा रहता है । अलग किये हुए क्षेत्र (डेढ़ गुणहानि $१\frac{१}{२}$ × ६४ × ४ × ४ = ६ × ६४ × ४) में से पाँचवीं वर्गणा पूरी चार (४९६ × ४ = १२४ × ४ × ४) प्राप्त नहीं होतीं, क्योंकि (१२४ × ४ × ४ – ६ × ६४ × ४ = ११२ × ४ = २ × ६४ – १६ × ४ = १२८ – १६ × ४) सोलह कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है, इसलिए समस्त द्रव्यको पाँचवीं वर्गणाके प्रमाणसे करनेपर वह तीन अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है ।

§ ५९९. अब छटी वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करने पर वह तीन अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है । डेढ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाओंमेंसे छटी वर्गणाके प्रमाणको अलग करने पर अलग किये गये क्षेत्र साढ़े सात गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंमें छटी वर्गणाएँ कुछ अधिक तीन प्राप्त होती हैं । पूरी चार नहीं प्राप्त होतीं, क्योंकि वीस वर्गणाविशेष कम अर्द्ध गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है ।

विशेषार्थ—छठवीं वर्गणा (४९२) से समस्त द्रव्य ४९१५२ का अपहरण करनेपर तीन अधिक डेढ़ गुणहानि (९६ + ३ = ९९) से कुछ अधिक काल आता है $\frac{४९१५२}{४९२} = ९९\frac{१११}{१२३}$ । पूर्वोक्त प्रकारसे डेढ़ गुणहानि लम्बे और पाँच वर्गणाविशेष प्रमाण चौड़े क्षेत्रको अलग करनेपर छठवीं वर्गणाप्रमाण (४९२) चौड़ा और डेढ़ गुणहानिप्रमाण (९६) लम्बा क्षेत्र शेष रहता है । अलग किए हुए साड़े सात गुणहानि वर्गणाविशेष प्रमाण ($१\frac{१}{२}$ गुणहानि × ५ वर्गणाविशेष = $७\frac{१}{२}$ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेष = $\frac{१५}{२}$ × ६४ × ४) क्षेत्रमें कुछ अधिक तीन छटी वर्गणाएँ प्राप्त होती हैं ($\frac{१५}{२}$ × ६४ × ४ = ३ × १२३ × ४ + १११ × ४) । छठवीं वर्गणा पूरी चार नहीं प्राप्त होतीं, क्योंकि वीस कम अर्ध गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है (४ × १२३ × ४ – $\frac{१५}{२}$ × ६४ × ४ = १२ × ४ = $\frac{६४}{२}$ – २० × ४ । अतः सब द्रव्यको छठवीं वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह तीन अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है ।

§ ६००. अब सप्तम वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करनेपर वह कुछ विशेष चार अधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण काल द्वारा अपहृत होता है । डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाओंमेंसे सातवीं वर्गणाके अलग करने पर वहां शेष रहे नौ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंमें

---

1. ता० आ० प्रत्योः -मेत्तवग्गणासु इति पाठः ।

सादिरेयचदुरूवोवलंभादो। पंचरूवाणि ण पूरेंति, तीसवग्गणविसेसूणएगगुणहाणिमेत्त-वग्गणविसेसाणमभावादो।

§ ६०१. संपहि अट्ठमवग्गणपमाणेण सव्वदव्वे अवहिरिज्जमाणे सादिरेयपंच-रूवाहियदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि। पढमवग्गणविक्खंभदिवड्ढ-गुणहाणिआयदखेत्तम्मि अट्ठमवग्गणविक्खंभदिवड्ढगुणहाणिआयदखेत्ते अवणिदे उव्व-रिदसत्तफालीसु सादिरेयपंचट्ठमवग्गणपमाणुप्पत्तीदो। छअट्ठमवग्गणाओ ण उप्पज्जंति, बादालीसवग्गणविसेसूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसाणमभावादो।

सातवीं वर्गणाऐं कुछ अधिक चार प्राप्त होती हैं। पूरी पाँच नहीं प्राप्त होतीं, क्योंकि तीस वर्गणा विशेष कम एक गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है।

विशेषार्थ—सातवीं वर्गणाके प्रमाण (४८८=१२२×४) से समस्त द्रव्य ४९१५२ का अपहरण करने पर चार अधिक डेढ़ गुणहानि (९६+४=१००) से कुछ अधिक काल आता है। $\frac{४९१५२}{४८८} = १००\frac{८८}{१२२}$। डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बे और प्रथम वर्गणाप्रमाण चौड़े क्षेत्रमें से डेढ़ गुणहानि लम्बे और छह वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़े अथवा ($१\frac{१}{२}$×६=९) नौ गुण-हानि वर्गणाविशेषप्रमाण क्षेत्रको अलग करने पर डेढ़ गुणहानि लम्बा और सातवीं वर्गणा प्रमाण चौड़ा (९६×४८८) क्षेत्र शेष रहता है। अलग किये हुए क्षेत्र (९×६४×४) में सातवीं वर्गणाऐं कुछ अधिक चार प्राप्त होती हैं (९×६४×४=४८८×४+८८×४)। पाँचवां अङ्क पूरा नहीं होता, क्योंकि तीस वर्गणाविशेष कम गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है (५×४८८−९×६४×४=३४×४=६४×४−३०×४), इसलिए सब द्रव्यको सातवीं वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह चार अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है।

§ ६०१. अब आठवीं वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करने पर वह कुछ विशेष पाँच अधिक डेढ़ गुणहानि स्थानान्तर कालके द्वारा अपहृत होता है। प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारवाले और डेढ़ गुणहानिप्रमाण आयामवाले क्षेत्रमेंसे आठवीं वर्गणाप्रमाण विस्तारवाले और डेढ़ गुणहानिप्रमाण आयामवाले क्षेत्रको अलग करने पर, शेष रही सात फालियोंमें आठवीं वर्गणा कुछ अधिक पाँच उत्पन्न होती हैं। आठवीं वर्गणा छह उत्पन्न नहीं होतीं, क्योंकि बियालीस वर्गणाविशेष कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है।

विशेषार्थ—आठवीं वर्गणा (४८४=१२१×४) से समस्त द्रव्य ४९१५२ को अपहृत करने पर कुछ विशेष पाँच अधिक डेढ़ गुणहानि (९६+५=१०१ से कुछ अधिक) काल प्राप्त होता है $\frac{४९१५२}{४८४} = १०१\frac{६७}{१२१}$। डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बे और आठवीं वर्गणाप्रमाण चौड़े क्षेत्रमेंसे डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बे और आठवीं वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़े क्षेत्रको अलग करने पर शेष रहे सात वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़े और डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बे क्षेत्र (९६×७×४) में आठवीं वर्गणा कुछ अधिक पाँच उत्पन्न होती हैं (९६×७×४=५×४८४+६७×४)। छठा अङ्क पूरा नहीं होता, क्योंकि बियालीस वर्गणाविशेष कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है (६×४८४−९६×७×४=५४×४=$\overline{९६×४}$−४२×४), अतः सब द्रव्यको आठवीं

§ ६०२. णवमवग्गणपमाणेण सव्वदव्वे अवहिरिज्जमाणे केवचिरेण कालेण अवहिरिज्जदि ? सादिरेयछरूवाहियदिवड्ढगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि। कारणं चिंतिय वत्तव्वं।

§ ६०३. संपहि का वग्गणा दोगुणहाणिपमाणेण अवहिरिज्जदि ? पढमगुणहाणीए अद्धं गंतूण जा ट्ठिदा सा अवहिरिज्जदि। पढमवग्गणविक्खंभं चत्तारि फालीओ काऊण तत्थेगफालिं घेत्तूण गुणहाणिअद्धपमाणेण आयामेण खंडिय तीसु चदुब्भागखंडेसु समयाविरोहेण ढोइदे चदुब्भागूणपढमवग्गणविक्खंभवेगुणहाणिआयदखेत्तुप्पत्तिदंसणादो। एत्तो उवरिमखेत्तविण्णासो तेरासियकमो च जाणिय वत्तव्वो जाव जहण्णट्ठाणचरिमवग्गणे त्ति, विसेसाभावादो।

एवमवहारो गदो।

वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह पाँच अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है।

§ ६०२. नौवीं वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्य अपहृत होने पर वह कितने कालके द्वारा अपहृत होता है ? कुछ विशेष छह रूप अधिक डेढ़ गुणहानिप्रमाण कालके द्वारा अपहृत होता है। कारण जान कर कहना चाहिए।

विशेषार्थ—नौवीं वर्गणा (४८० = १२० × ४) से समस्त द्रव्य ४९१५२ को अपहृत करने पर छह रूप अधिक डेढ़ गुणहानि (९६ + ६ = १०२) से कुछ अधिक काल प्राप्त होता है $\frac{४९१५२}{४८०} = १०२\frac{४८}{१२०}$। सातवाँ अङ्क पूरा नहीं होता, क्योंकि चौबीस वर्गणाविशेष कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है (७ × ४८० − ९६ × ८ × ४ = ७२ × ४ = ९६ × ४ − २४ × ४)। इसीप्रकार दसवीं, ग्यारहवीं, वारहवीं आदि वर्गणाओंका अपहार काल लाना चाहिये।

§ ६०३. अब कौनसी वर्गणा दो गुणहानिप्रमाण कालसे सब द्रव्यके अपहृत होने पर आती है ? प्रथम गुणहानिका अर्ध भाग स्थान जाकर जो वर्गणा स्थित है वह सब द्रव्यके अपहृत होनेपर आती है। प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारकी चार फालियां करके, उनमेंसे एक फाली ग्रहण कर गुणहानिके अर्धभागप्रमाण आयामसे उसके खण्ड कर, उस चतुर्थ भागके तीन खण्डों को नियमानुसार मिला देनेपर चौथा भाग कम प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारवाला और दो गुणहानि आयामवाला क्षेत्र उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है। इससे आगेका क्षेत्रविन्यास और त्रैराशिक क्रम जघन्य स्थानकी अन्तिम वर्गणाके प्राप्त होने तक जानकर कहना चाहिये, क्योंकि कोई विशेषता नहीं है।

विशेषार्थ—गुणहानि (६४) का आधा (३२) स्थान जाकर जो वर्गणा (३८४) प्राप्त होती है। उससे समस्त द्रव्य (४९१५२) को अपहृत करने पर दो गुणहानि (६४ × २ = १२८) काल प्राप्त होता है $\frac{४९१५२}{३८४} = १२८$। प्रथम वर्गणाप्रमाण (५१२) चौड़े और डेढ़ गुणहानि

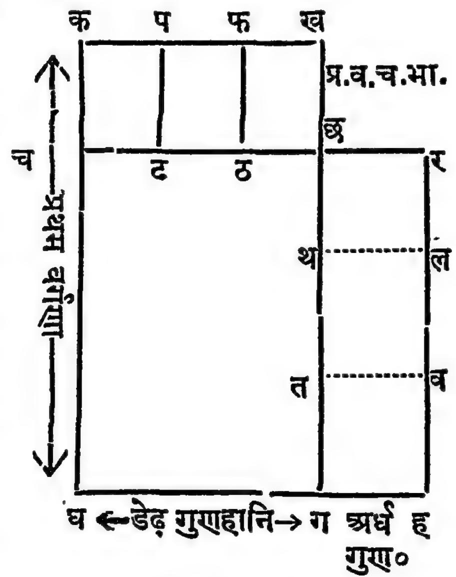
§ ६०४. भागाभागं जहण्णियाए वग्गणाए कम्मपदेसा सव्ववग्गणकम्मपदेसाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो। एवं णेदव्वं जाव चरिमवग्गणे त्ति।

भागाभागं गदं।

§ ६०५. अप्पाबहुअं—सव्वत्थोवा उक्कस्सियाए वग्गणाए कम्मपदेसा ६। जहण्णाए वग्गणाए कम्मपदेसा अणंतगुणा ५१२। को गुणगारो ? किंचूणण्णोण्ण-

---

प्रमाण (९६) लम्बे क्षेत्र घ क ख ग में से प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारका एक चौथा भाग प्रमाण क च चौड़ा और डेढ़ गुणहानि लम्बा क्षेत्र च क ख छ के लम्बाईकी अपेक्षा अर्ध गुणहानि प्रमाण (३२) लम्बे तीन खण्ड क प ट च, प फ ठ ट, फ ख छ ठ को रेखा छ ग की दाईं ओर इस प्रकार स्थापित करो कि रेखा च ट जो अर्ध गुणहानि (३२) लम्बी है वह रेखा घ ग की सीध में दाईं तरफ बढ़कर ग ह का रूप धारण कर ले और रेखा क च जो प्रथम वर्गणाका चौथा भाग है वह रेखा ग ख पर पड़कर 'त' स्थान तक पहुँच जाय। रेखा ट प रेखा ह व का और रेखा क प रेखा त व का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार क्षेत्र च क प ट की वजाय क्षेत्र ग ह व त बन जाता है। इसी प्रकार



क्षेत्र ट प फ ठ की रेखा ट ठ को अर्ध गुणहानिप्रमाण (३२) लम्बी रेखा त व पर रखकर रेखा ट प को रेखा त ख पर रखनेसे प्रथम वर्गणाके एक चौथाई भाग स्थान थ तक जाती है। अब क्षेत्र ट प फ ठ की वजाय क्षेत्र त थ ल व बन जाता है। इसी प्रकार रेखा ठ छ को रेखा थ ल पर रखनेसे, और रेखा ठ फ को रेखा थ ख पर विन्दु थ से छ तक पहुँचा देनेसे क्षेत्र ठ फ ख छ की बजाय क्षेत्र थ छ र ल बन जाता है। इससे रेखा घ ग जो डेढ़ गुणहानि प्रमाण लम्बी थी, उसमें अर्ध गुणहानि लम्बी रेखा ग ह के मिल जानेसे रेखा घ ह दो गुणहानि प्रमाण लम्बी हो जाती है और प्रथम वर्गणाप्रमाण रेखा घ क में से एक चौथाई प्रथम वर्गणा प्रमाण रेखा क च कम हो जानेसे रेखा घ च तीन चौथाई प्रथम वर्गणाप्रमाण रह जाती है। इस प्रकार नवीन क्षेत्र घ च र ह दो गुणहानिप्रमाण लम्बा और चौथा भाग कम प्रथम वर्गणा प्रमाण चौड़ा बन जाता है जिसका क्षेत्रफल क्षेत्र घ क ख ग के बरावर है। प्रथम वर्गणाकी तीन चौथाई भागप्रमाण यही वह वर्गणा है जो समस्त द्रव्यको दोगुणहानिसे अपहृत करने पर आती है।

इस प्रकार अपहारकाल समाप्त हुआ।

§ ६०४. भागाभाग—जघन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश सब वर्गणाओंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इस प्रकार चरम वर्गणा पर्यन्त जानना चाहिए।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

§ ६०५. अब अल्पबहुत्व कहते हैं—उत्कृष्ट वर्गणामें कर्मप्रदेश सबसे थोड़े हैं ९। जघन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश अनन्तगुणे हैं ५१२। गुणकारका प्रमाण क्या है ? कुछ कम

ण्भत्थरासी अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागो। अजहण्णअणुक्कस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा अणंतगुणा ५७७९। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागो किंचूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तो वा। अजहण्णियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ५७८८। केत्तियमेत्तेण? उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण। अणुक्कस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६२९१। के० मेत्तेण? उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसूणजहण्णवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण। सव्वासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६३००। के० मेत्तेण? उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण।

एवमेसा परूवणा जहण्णाणुभागस्स कदा।

§ ६०६. जदि एदस्स ट्ठाणस्स चरिमफद्दयचरिमवग्गणाए एगो वग्गो चेव जहण्णाणुभागट्ठाणं होदि तो तं मोत्तूण अवसेसवग्ग-वग्गणा-फद्दयपदेसाणं परूवणा असंबद्धिया, जहण्णट्ठाणपरूवणाए अजहण्णट्ठाणपरूवणाणुववत्तीदो त्ति? ण, एदं

अन्योन्याभ्यस्तराशि गुणकारका प्रमाण है जो अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश अनन्तगुणे हैं ५७७९। गुणकार कितना है? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण कुछ कम डेढ़ गुणहानि मात्र गुणकारका प्रमाण है। अजघन्य वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ५७८८। कितने अधिक हैं? उत्कृष्ट वर्गणाके जितने कर्मप्रदेश हैं उतने अधिक हैं। अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ६२९१। कितने अधिक हैं? उत्कृष्ट वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे हीन जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशप्रमाण अधिक हैं। सब वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ६३००। कितने अधिक हैं? उत्कृष्ट वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं।

विशेषार्थ—पहले विशेषार्थमें सब वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण अङ्कसंदृष्टिसे ६३०० बतला आये हैं तथा प्रत्येक वर्गणामें उनका बटवारा करके प्रत्येक वर्गणाके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण भी बतला आये हैं। उस बटवारेके अनुसार सबसे प्रथम वर्गणामें, जो कि जघन्य वर्गणा है, ५१२ कर्मपरमाणु हैं और सबसे अन्तिम वर्गणामें, जो कि उत्कृष्ट वर्गणा है, ९ कर्मपरमाणु हैं अतः जघन्य और उत्कृष्टके सिवाय शेष वर्गणाओंमें कितने परमाणु हैं? इस प्रश्नका सरल उत्तर यह है कि जघन्य वर्गणा और उत्कृष्ट वर्गणाके परमाणुओंको सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे घटा देना चाहिए। यथा—५१२+९=५२१। ६३००–५२१=५७७९ इतने शेष वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आता है। इसी तरह सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे जघन्य वर्गणाके परमाणुओंको कम करनेसे ६३००–५१२=५७८८ अजघन्य वर्गणाओंके परमाणुओंका प्रमाण आता है। तथा सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे उत्कृष्ट वर्गणाके परमाणुओंको घटा देनेसे ६३००–९=६२९१ अनुत्कृष्ट वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आता है। इस प्रकार उत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य–अनुत्कृष्ट, अजघन्य और अनुत्कृष्ट वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंकी संख्या जान लेने पर उनमें अल्पबहुत्व लगा लेना चाहिए।

इस प्रकार जघन्य अनुभागकी यह प्ररूपणा हुई।

§ ६०६. शंका—यदि इस अनुभागस्थानके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाका एक वर्ग ही जघन्य अनुभागस्थान है तो उसके सिवा शेष वर्गों, वर्गणाओं और स्पर्धकोंके प्रदेशोंका कथन करना असंगत है, क्योंकि जघन्य स्थानकी प्ररूपणामें अजघन्य स्थानकी प्ररूपणा नहीं बन सकती।

जहण्णट्ठाणं केवलं ण होदि, किंतु एवंविहवग्ग-वग्गणा-फद्दयपदेसाविणाभावि त्ति जाणावणट्ठं कयपरूवणाए जहण्णट्ठाणपरूवणत्तं पडि विरोहाभावादो। संपहि एद जहण्णट्ठाणं सव्वजीवरासिमेत्तरूवेहि खंडिय तत्थ एगखंडं घेत्तूण जहण्णट्ठाणं पडिरासिय तत्थ एदम्मि पक्खेवे पक्खित्ते विदियमणुभागट्ठाणं होदि। णेदं घडदे, एवंविहस्स अणुभागट्ठाणस्स बंधादो घादादो वा उप्पत्तीए अणुववत्तीदो। ण ताव बंधादो उप्पज्जदि, सरिसधणियअणंतपरमाणूहि हेट्ठिमाणंतवग्गणा-फद्दयपदेसाविणाभावीहि विण एक्कस्सेव परमाणुस्स बंधागमणविरोहादो। ण च कम्ममि परमाणू अत्थि, अणंताणंत-परमाणुसमुदयसमागमेण तत्थ एगेगवग्गणसमुप्पत्तीदो। ण च एक्किस्से वग्गणाए वि बंधो अत्थि, अणंताणंतवग्गणाहि विणा एगसमयपबद्धाणुववत्तीदो। ण च वज्झमाण-कम्मक्खंधम्मि अप्पिदेगपरमाणुं मोत्तूण अवसेसकम्मपदेसा पुव्विल्लअणुभागट्ठाणम्मि सरिसधणिया होदूण अच्छंति, अणंतापुव्ववग्ग--वग्गणा--फद्दएहि विणा अणुभाग-वड्ढीए अणुववत्तीदो। ण च घादेण वि उप्पज्जदि, अणंतवग्ग-वग्गणा-फद्दयाणं घादे कदे तत्थ एगपरमाणुस्स हेट्ठिमएगवग्गाणुभागादो सव्वजीवरासिपडिभागाविभागपडिच्छेदेहिं अब्भहियस्स अवट्ठाणुववत्तीदो। तम्हा एसा अणुभागवड्ढी ण जुज्जदे ? एत्थ परिहारो

समाधान—नहीं, क्योंकि यह जघन्य अनुभागस्थान अकेला नहीं होता है, किन्तु इस प्रकारके वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और प्रदेशोंका अविनाभावी होता है यह बतलानेके लिये पूर्वमें की गई प्ररूपणामें जघन्य अनुभागस्थानके कथनके प्रति कोई विरोध नहीं है।

अब इस जघन्य स्थानके सब जीवराशिप्रमाण खण्ड करो और उनमेंसे एक खण्ड लेकर जघन्य स्थानको प्रतिराशि बनाकर उसमें इस प्रक्षेपके प्रक्षिप्त कर देनेपर दूसरा अनुभागस्थान होता है।

शंका—यह दूसरा अनुभागस्थान घटित नहीं होता है, क्योंकि इस प्रकारका अनुभाग-स्थान न तो बंधसे ही उत्पन्न होता है और न घातसे ही उत्पन्न होता है। बंधसे तो उत्पन्न होता ही नहीं, क्योंकि नीचेकी अनन्त वर्गणा, स्पर्धक और प्रदेशोंके अविनाभावी समान धनवाले अनन्त परमाणुओंके बिना अकेले एक ही परमाणुका बंधके लिए आगमन माननेमें विरोध आता है। तथा कर्ममें एक परमाणु है भी नहीं, क्योंकि वहां अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदाय समागमसे एक एक वर्गणाकी उत्पत्ति होती है। शायद कहा जाय कि एक वर्गणाका ही बन्ध होता है सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्तानन्त वर्गणाओंके बिना एक समयप्रबद्ध नहीं बनता। शायद कहा जाय कि बंधनेवाले कर्मस्कन्धमें विवक्षित एक परमाणुको छोड़कर शेष सब कर्मप्रदेश पहलेके अनुभागस्थाममें समान धनवाले होकर रहते हैं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्त अपूर्व वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकोंके बिना अनुभागकी वृद्धि नहीं हो सकती, अतः इस प्रकारके अनुभागस्थानकी बंधसे तो उत्पत्ति हो नहीं सकती और न घातसे ही उत्पत्ति होती है, क्योंकि अनन्त वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकोंका घात करने पर वहां अधस्तन एक वर्गणाके अनुभागसे सर्व जीवराशिको प्रतिभाग बनाकर अविभागप्रतिच्छेदोंसे अधिक एक परमाणुका अवस्थान पाया जाता है, अतः यह अनुभाग वृद्धि ठीक नहीं है।

वुच्चदे—बंधेण ताव एदस्स हाणस्स उप्पत्ती ण होदि त्ति जं भणिदं तण्ण घडदे, जहण्णहाणादो अणंतवग्ग-वग्गणा-फद्दएहि अब्भहियसमयपबद्धम्मि अण्णाणुभागहाणुप्पत्तीए विरोहाभावादो। ण च एगो वग्गो वग्गणा फद्दयं वा एगसमयपबद्धो होदि, अणब्भुवगमादो। ण च एगो परमाणू गहणमागच्छदि, अणंतपरमाणुसमुदयसमागमेण विणा कम्मइयजहण्णवग्गणाए वि अणुप्पत्तीदो। कथं पुण तस्स समयपबद्धस्स फद्दयरचणा कीरदे, एगसमयपबद्धम्मि जदि वि परमाणू णत्थि तो वि बुद्धीए पुध कादूण परमाणु त्ति संकप्पिय एगट्ठपुंजं करिय णिसेगविण्णासक्कमो वुच्चदे—

§ ६०७. तं जहा—हेट्ठिमहाणवग्गाणुभागेहि सरिसधणियवग्गे सव्वे घेत्तूण तेसिं सव्वेसिं पि हेट्ठा चेव रयणा कायव्वा, हेट्ठिमहाणदो उवरिमरयणाए अप्पाओग्गत्तादो। पुणो उव्वरिदपरमाणूणमुवरि फद्दयरयणाए कदाए विदियहाणमुप्पज्जदि। पुव्विल्लं हाणं पेक्खिदूण सव्वजीवरासिणा खंडिदेगखंडमेत्ताविभागपडिच्छेदाणमेत्थ अब्भहियाणमुवलंभादो। तं जहा—दव्वट्ठियणयजहण्णहाणं चरिमफद्दयचरिमवग्गणेगवग्गसण्णिदं सव्वजीवरासिणा खंडिय तत्थ एगखंडं घेत्तूण विरलिय जहण्णपक्खेवफद्दयसलागाणं समखंडं करिय दिण्णे एक्केक्कस्स रूवस्स पक्खेवजहण्णफद्दयपमाणं

समाधान–इस शङ्काका समाधान करते है—बंधसे इस अनुभागस्थानकी उत्पत्ति नहीं होती यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानकी अपेक्षा समयप्रबद्धमें अनन्त वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकोंसे अधिक अन्य अनुभागस्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है। तथा, एक वर्ग, वर्गणा अथवा स्पर्धक एक समयप्रबद्ध होता है ऐसा भी नहीं है, क्योंकि हमने ऐसा माना नहीं है। और न यही मानते हैं कि एक परमाणुका ग्रहण होता है, क्योंकि अनन्त परमाणुओंके समुदाय समागमके विना कर्मोंकी एक जघन्य वर्गणा भी नहीं उत्पन्न होती। ऐसी अवस्थामें यह प्रश्न हो सकता है कि उस समयप्रबद्धमें स्पर्धक रचना किस प्रकार की जाती है इसका उत्तर यह है कि यद्यपि एक समयप्रबद्धमें एक परमाणु नहीं है अर्थात् वह स्कन्धरूप होता है तो भी बुद्धिके द्वारा उसे पृथक् करके उसमें परमाणुकी कल्पना करके उनका पुंज करके निषेक रचना क्रमका कथन करते हैं—

§ ६०७. वह इस प्रकार है—नीचेके अनुभागस्थानके वर्गमें जितना अनुभाग है उस अनुभागके समान अनुभागवाले सब वर्गोंको लेकर उन सबकी नीचे ही रचना करनी चाहिये, क्योंकि नीचेके स्थानसे ऊपरकी रचना करनेके अयोग्य है। पुनः शेष बचे हुए परमाणुओंकी उसके ऊपर स्पर्धक रचना करने पर दूसरा स्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि पहलेके अनुभागस्थानकी अपेक्षा इस अनुभागस्थानमें पहलेके अनुभागस्थानके सर्व जीवराशि प्रमाण खण्डोंमेंसे एक खण्ड प्रमाण अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाये जाते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा जघन्य स्थानरूप अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गके सर्व जीवराशि प्रमाण खण्ड करके उनमेंसे एक खण्डको लेकर विरलन करे और उस विरलनराशिके प्रत्येक एक पर जघन्य प्रक्षेपरूप स्पर्धकोंकी शलाकाओंके समान खण्ड करके देनेपर प्रत्येक एकके प्रति जघन्य प्रक्षेपस्पर्धकका प्रमाण आता है।

---

१. ता० आ० प्रत्योः परमाणदो त्ति इति पाठः।

पावदि । कुथमेदस्स पक्खेवजहण्णफद्दयववएसो ? पडिरासीकयजहण्णट्ठाणे एदम्मि पक्खित्ते पक्खेवजहण्णफद्दयं समुप्पज्जदि त्ति कारणे कज्जुवयारादो । एसो एगखंडाणुभागो पक्खेवजहण्णफद्दयचरिमवग्गणेगवग्गसमुप्पत्तिणिमित्तो कधं पक्खेवजहण्णफद्दयसमुप्पत्तीए कारणं ? ण, एदम्हादो हेट्ठिमअविभागपडिच्छेदेहि जहण्णफद्दयसमुप्पत्तीए अदंसणादो । दंसणे वा जहण्णफद्दयब्भंतरे अणंताणि जहण्णफद्दयाणि होज्ज ? ण च एवं, अव्ववत्थावत्तीदो । ण च सरिसधणियाणुभागा जहण्णफद्दयस्स उप्पायया, एगोलीअणुभागसमाणत्तणेण तत्थ पविट्ठाणं पुधकज्जकारित्तविरोहादो । ण च एगोलीअणुभागा हेट्ठिमा तदुप्पायया, तदणुभागाविभागपडिच्छेदसंखाए एत्थेव पयदाणुभागे उवलंभादो । ण च पयदाणुभागादो अहिओ अणुभागो अत्थि जेण तस्स फद्दयसण्णा होज्ज । तदो सगंतोक्खित्तसयलवग्ग-वग्गणाणुभागत्तादो एदं चेव जहण्णफद्दयं । एत्थ वड्ढिदाणुभागो[1] चेव जहण्हफद्दयस्सुप्पत्तिणिमित्तमिदि घेत्तव्वं । एदम्मि पक्खेवजहण्णफद्दए जहण्णपक्खेवफद्दयसलागविरलणाए विदियरूवोवरि[2] ट्ठिदजहण्णफद्दयं घेत्तूण पक्खित्ते पक्खेवस्स विदियफद्दयमुप्पज्जदि । एदम्मि पडिरासीकयम्मि तदियरूवधरिदे पक्खित्ते पक्खेवस्स

शंका—इसकी प्रक्षेप जघन्य स्पर्धक संज्ञा क्यों है ?

समाधान—प्रतिराशिरूप जघन्य अनुभागस्थानमें इसे प्रक्षिप्त करने पर प्रक्षेप जघन्य स्पर्धककी उत्पत्ति होती है, इसलिये कारणमें कार्यका उपचार करके इसकी प्रक्षेप जघन्य स्पर्धक संज्ञा रखी है.।

शंका—यह एक खण्डरूप अनुभाग प्रक्षेप जघन्य स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गकी उत्पत्तिमें कारण है, अतः यह प्रक्षेप जघन्य स्पर्धककी उत्पत्तिमें निमित्त कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इससे अधस्तन अविभागप्रतिच्छेदोंके द्वारा जघन्य स्पर्धककी उत्पत्ति नहीं देखी जाती । यदि देखी जाय तो जघन्य स्पर्धकके भीतर भी अनन्त जघन्य स्पर्धक हो जाँय । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है । शायद कहा जाय कि सदृश धनवाले अनुभाग जघन्य स्पर्धकको उत्पन्न करते हैं, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि एक पंक्तिमें अनुभागोंके समान होनेसे उसमें प्रविष्ट हुए वे पृथक् पृथक् कार्य नहीं कर सकते हैं । शायद कहा जाय कि एक पंक्तिमें रहनेवाले नीचेके अनुभाग उसके उत्पादक हैं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि उन अनुभागोंके अविभागप्रतिच्छेदोंकी संख्या यहाँ प्रकृत अनुभागमें पाई जाती है । और प्रकृत अनुभागसे अधिक अनुभाग है नहीं, जिससे उसकी स्पर्धक संज्ञा हो जाय । अतः अपने भीतर समस्त वर्ग और वर्गणाओंके अनुभागको निक्षिप्त कर लेनेके कारण यही जघन्य स्पर्धक है और यहां पर बढ़ा हुआ अनुभाग ही जघन्य स्पर्धककी उत्पत्तिमें निमित्त है ऐसा स्वीकार करना चाहिये । इस प्रक्षेप जघन्य स्पर्धकमें जघन्य प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंके विरलनके दूसरे अंकके ऊपर स्थित जघन्य स्पर्धकको लेकर मिला देने पर प्रक्षेपका दूसरा स्पर्धक उत्पन्न होता है । प्रतिराशिरूप इसमें विरलनके तीसरे अंकके

१. आ० प्रतौ जहण्णफद्दयमेत्तवड्ढिदाणुभागो इति पाठः । २. ता० प्रतौ विदिय [स] रूवोवरि, आ० प्रतौ विदियसरूवोवरि इति पाठः ।

तदियं फद्दयमुप्पज्जदि। एवमेदेण कमेण विरलणमेत्तखंडेसु पविट्ठेसु विदियमणुभाग-ट्ठाणमुप्पज्जदि, जहण्णट्ठाणे सव्वजीवेहि खंडिदे तत्थ एगखंडमेत्ताणुभागस्स तत्तो एत्थ अब्भहियस्स उवलंभादो।

§ ६०८. एक्कम्मि कम्मपरमाणुम्मि ट्ठिदाविभागपडिच्छेदाणमणुभागट्ठाण-वग्ग-

ऊपर स्थित जघन्य स्पर्धकको मिला देनेपर प्रक्षेपका तीसरा स्पर्धक उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस क्रमसे विरलन प्रमाण खण्डोंके प्रविष्ट होनेपर दूसरा अनुभागस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि जघन्य स्थानके सब जीवराशि प्रमाण खण्ड करने पर उनमेंसे एक खण्ड प्रमाण अनुभाग इस दूसरे अनुभागस्थानमें अधिक पाया जाता है।

विशेषार्थ—अब अनुभागस्थानकी स्पर्धक रचनाको बतलाते हैं। पहले बतला आये हैं कि जघन्य स्थानके ऊपर छह प्रकारकी वृद्धियां होती हैं और यह भी बतला आये हैं कि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग वार पहली वृद्धिके हो जाने पर आगेकी वृद्धि होती है तथा संदृष्टिके द्वारा उसे समझा भी आये हैं। और यह भी बतला आये हैं कि सबसे प्रथम अनन्तभागवृद्धिमें अनन्तका प्रमाण उतना ही लेना चाहिए जितना जीवराशिका प्रमाण है। अत: जघन्य स्थानमें जीवराशिका भाग देकर जो लब्ध आए उसे उसी जघन्य स्थानमें जोड़ देनेसे अनन्तभागवृद्धि युक्त दूसरा अनुभागस्थान होता है। किन्तु एक एक अनुभागस्थानमें अनेक स्पर्धक होते हैं यह पहले बतला चुके हैं और वहां पर स्पर्धक रचनाको बतलाना प्रधान लक्ष्य है, अत: उसके बतलानेके लिए हमें इसे फैलाना होगा। जघन्य अनुभागस्थानमें अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक होते हैं, अत: उसकी स्पर्धक शलाकाका प्रमाण अभव्य राशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण होता है। इस प्रमाणसे जघन्य अनुभागस्थानमें भाग देने पर एक स्पर्धकका प्रमाण आता है। जघन्य स्थानसे दूसरे अनुभागस्थानमें ये स्पर्धक अधिक होते हैं। इन बढ़े हुए स्पर्धकोंको वृद्धि स्पर्धक या प्रक्षेप स्पर्धक कहते हैं। इन स्पर्धकोंका जितना प्रमाण है उसका विरलन करो और जघन्य स्थानसे दूसरे अनुभागस्थानमें जितना अनुभाग अधिक है—अर्थात् जघन्य स्थानमें जीवराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आया उतना—उस अनुभागके समान भाग करके प्रत्येक प्रक्षेप स्पर्धकपर एक एक भाग दे दो। यह एक एक भाग प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण होता है, अर्थात् इन भागोंको जघन्य स्थानके अन्तिम स्पर्धकके ऊपर जोड़नेसे प्रक्षेप स्पर्धक या वृद्धि स्पर्धकका प्रमाण आता है। जैसे—जघन्य स्थानका प्रमाण ६५५३६ है और जीवराशिका प्रमाण ४ है। ४ से ६५५३६ में भाग देनेसे लब्ध १६३८४ आता है। इस १६३८४ को ६५५३६ में जोड़नेसे ८१९२० दूसरे अनुभागस्थानका प्रमाण होता है, किन्तु यह १६३८४ प्रमाण अनेक स्पर्धकोंमें विभाजित है और उन स्पर्धकोंका प्रमाण चार है अत: चारका विरलन करके १ १ १ १ इनके ऊपर १६९८४ के चार समान भाग करके प्रत्येकके ऊपर देनेसे ४०९६,४०९६ प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण होता है, इस प्रक्षेप स्पर्धकके प्रमाण ४०९६को जघन्य स्थान ६५५३६में जोड़ देनेसे ६९६३२ जघन्य प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण आता है। इस प्रक्षेप जघन्य स्पर्धकके ऊपर दूसरे विरलन रूपपर अर्थात् एक पर स्थित ४०९६ को जोड़ देनेसे दूसरे प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण आता है। इसी प्रकार विरलन प्रमाण जितने खण्ड हैं एक एक करके उन सबको जोड़ देनेपर ८१९२० दूसरे अनुभागस्थानका प्रमाण होता है। इस दूसरे अनुभागस्थानमें सबसे जघन्य अनुभाग स्थान में जीवराशिका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आता है उतना अनुभाग अधिक पाया जाता है।

§ ६०८. **शंका**—एक कर्म परमाणुमें स्थित अविभागप्रतिच्छेदोंका अनुभागस्थान, वर्ग,

वग्गणा-फद्दयववएसा चत्तारि वि कथं संगच्छंते ? ण, एक्कम्मि जीवपयत्थे इंद-पुरंदरादि-सण्णाणमुवलंभादो। अप्पिदजीवम्मि ट्ठिदपरमाणुपोग्गलाविभागपडिच्छेदेहिंतो अहियत्त-विवक्खाए एदेसिमेगपरमाणुधरिदाविभागपडिच्छेदाणमणुभागट्ठाणसण्णा। सेसपर-माणुअविभागपडिच्छेदेहिंतो सरिसासरिसत्तविवक्खाहि विणा तम्हि चेव विवक्खिदे तस्सेव वग्गववएसो। सरिसधणियविवक्खाए वग्गणववएसो। सव्वजीवेहि अणंतगुणमंत-रिय अविभागपडिच्छेदुत्तरकमेण गंतूण पुणो सव्वजीवेहि अणंतगुणाविभागपडिच्छे-दुल्लंघणपाओग्गत्तविवक्खाए तस्सेव फद्दयसण्णा त्ति। ण तत्थ चदुण्हं णामाणं पउत्ती विरुज्झदे। जदि एक्कम्मि कम्मपरमाणुम्मि ट्ठिदअविभागपडिच्छेदाणं ट्ठाणसण्णा इच्छिज्जदि तो एक्कम्हि ट्ठाणे अणंताणि अणुभागट्ठाणाणि होंति, अणंताणं सरिसधणिय-परमाणूणं तत्थुवलंभादो त्ति ? ण, सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिट्ठिदिचरिमणिसेगम्मि अणंताणंतकम्मट्ठिदिप्पसंगादो। एगपरमाणुट्ठिदीदो सेसपरमाणुट्ठिदीणं भेदाभावादो तत्थ अण्णासिं ट्ठिदीणमग्गहणं चे एत्थ वि तो क्खहि तेणेव कारणेण अण्णेसिमग्गहणमिदि किण्ण घेप्पदे ? जदि एवं तो जोगस्स वि ट्ठाणपरूवणा एवं चेव किण्ण कीरदे ?

वर्गणा और स्पर्धक ये चारों संज्ञाएँ कैसे घटित होती हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक ही जीव पदार्थमें इन्द्र और पुरन्दर आदि संज्ञाएँ पाई जाती हैं। उसी प्रकार उक्त संज्ञाएँ भी जाननी चाहिए। विवक्षित जीवमें स्थित पुद्गल परमाणुओंके अविभागप्रतिच्छेदोंसे अधिकपनेकी विवक्षा करनेपर एक परमाणुमें पाये जानेवाले इन अविभाग-प्रतिच्छेदोंकी अनुभागस्थान संज्ञा है। शेष परमाणुओंके अविभागप्रतिच्छेदोंसे सदृशता और असदृशताकी विवक्षा न करके केवल उसी एक परमाणुकी विवक्षा करने पर उसीकी वर्ग संज्ञा है। सदृश धनवालोंकी विवक्षा करने पर उसकी वर्गणा संज्ञा है। प्रथम आदि स्पर्धककी अन्तिम वर्गणासे द्वितीयादि स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका अन्तर अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा सब जीवराशिसे अनन्तगुणा है। अतः सब जीवराशिसे अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेदोंके उलंघनकी योग्यताकी विवक्षा करनेपर उसकी स्पर्धक संज्ञा है। अतः एक परमाणुमें चारों संज्ञाओंकी प्रवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—यदि एक कर्मपरमाणुमें स्थित अविभागप्रतिच्छेदोंकी स्थान संज्ञा मानते हो तो एक स्थानमें अनन्त अनुभागस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि वहां समान अविभागप्रतिच्छेदोंके धारक अनन्त परमाणु पाये जाते हैं।

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा कहने पर सत्तर कोड़ीकोड़ी सागरकी स्थितिवाले अन्तिम निषेकमें अनन्तानन्त कर्मस्थितियोंका प्रसंग प्राप्त होता है।

शंका—एक परमाणुकी स्थितिसे शेष परमाणुओंकी स्थितिमें कोई भेद नहीं है, अतः वहां अन्य स्थितियोंका ग्रहण नहीं किया जाता ?

समाधान—तो यहां पर भी उसी कारणसे अन्यका ग्रहण नहीं किया ऐसा क्यों नहीं मानते हो।

शंका—यदि ऐसा है तो योगस्थानका कथन भी इसी प्रकार क्यों नहीं करते ?

ण, तत्थ वि एदेणेव कमेण जोगट्ठाणपरूवणाए कयत्तादो। जदि एवं तो एगजीवपदेसुक्कस्सजोगाविभागपडिच्छेदाणं जोगट्ठाणसण्णा पावदि त्ति णासंकणिज्जं, कम्मक्खंधादो कम्मपदेसाणं व जीवादो जीवपदेसाणमपुधभावेण सव्वजीवपदेसजोगाविभागपडिच्छेदाणमेगजोगट्ठाणत्तं पडि विरोहाभावादो। कम्मक्खंधादो कम्मपदेसा पुधभूदा णत्थि त्ति सव्वे कम्मक्खंधाविभागपडिच्छेदे घेत्तूण एगमणुभागट्ठाणमिदि किण्ण वुच्चदे? ण, कम्मखंधादो भेदं गच्छंताणं कारणवसेण संजोगमागयाणं परमाणूणं खंधेण सह एयत्तविरोहादो।

§ ६०९. एदस्स विदियाणुभागट्ठाणस्स पदेसरचणा पुव्वं व कायव्वा। किंतु चिराणसंतकम्मस्स पदेसविण्णासो वट्टमाणबंधपदेसविण्णासेण सरिसो ण होदि, उवरिमपक्खेवफद्दयाणं पढमफद्दयआदिवग्गणाए हेट्ठिमवग्गणपदेसेहिंतो असंखेज्जगुणहीणपदेसत्तादो। अथवा सव्वत्थ गोवुच्छायारेणेव पदेसा चेट्ठंति, उक्कड्डिदपदेसाणं तत्थ सुण्णट्ठाणे वज्झमाणपदेसेहि सह समयाविरोहेण विण्णासं करिय अवसेसपदेसाणं सव्वत्थ गोवुच्छायारेण विण्णासविहाणादो।

§ ६१०. एवं विदियट्ठाणपरूवणं काऊण संपहि तदियट्ठाणपरूवणा कीरदे।

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां भी इसी क्रमसे योगस्थानका कथन किया है।

शंका—यदि ऐसा है तो एक जीवके एक प्रदेशमें होनेवाले उत्कृष्ट योगके अविभागप्रतिच्छेदोंकी भी योगस्थान संज्ञा प्राप्त होती है।

समाधान—ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिए; क्योंकि जैसे कर्मस्कन्धसे कर्मपरमाणु भिन्न हैं, वैसे जीवसे जीवके प्रदेश भिन्न नहीं हैं, अतः जीवके सब प्रदेशोंमें होनेवाले योगके अविभागप्रतिच्छेदोंका एक योगस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—कर्मस्कन्धसे कर्मप्रदेश भिन्न नहीं हैं, अतः कर्मस्कन्धके सब अविभागप्रतिच्छेदोंका एक अनुभागस्थान होता है ऐसा क्यों नहीं कहते?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मप्रदेश कर्मस्कन्धसे भिन्न हैं किन्तु निमित्तके वशसे संयोगको प्राप्त हो गये हैं, अतः उनका स्कन्धके साथ अभेद नहीं हो सकता।

§ ६०९. इस द्वितीय अनुभागस्थानकी प्रदेश रचना भी पहलेके समान करनी चाहिए, किन्तु जिस क्रमसे वर्तमानमें बंधनेवाले प्रदेशोंकी रचना होती है पहलेके सत्तामें स्थित प्रदेशोंकी रचना उस क्रमसे नहीं होती, क्योंकि ऊपरके प्रक्षेप स्पर्धकोंके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें अधस्तन वर्गणाके प्रदेशोंसे असंख्यातगुणे हीन प्रदेश पाये जाते हैं। अथवा सर्वत्र गोपुच्छके आकारसे ही प्रदेश स्थित रहते हैं, क्योंकि उत्कर्षणको प्राप्त हुए प्रदेशोंकी शून्य स्थानमें बंधनेवाले प्रदेशोंके साथ यथाविधि रचना करके बाकीके प्रदेशोंकी सर्वत्र गोपुच्छरूपसे ही स्थापना होनेका विधान है।

§ ६१०. इस प्रकार द्वितीय अनुभागस्थानका कथन करके अब तीसरे अनुभागस्थानका

---

१. ता० आ० प्रत्योः जीवदेसाणं पुधभावेण इति पाठः।

तं जहा—सव्वजीवेहि विदियट्ठाणे भागे हिदे जं लद्धं तम्मि तं चेव पडिरासिय पक्खित्ते तदियमणुभागट्ठाणं होदि। पुव्विल्लट्ठाणंतरादो एदं[1] ट्ठाणंतरमणंतभागब्भहियं, जहण्णट्ठाणादो अणंतभागब्भहियविदियट्ठाणं सव्वजीवेहि खंडिदूण तत्थेगखंडस्स वड्ढिदत्तादो। पुव्विल्लपक्खेवफद्दयंतरादो संपहियट्ठाणपक्खेवफद्दयंतरं अणंतभागब्भहियं, एत्थतणफद्दयसलागाहि विहज्जमाणरासिस्स पुव्विल्लविहज्जमाणरासिं पेक्खियूण अणंतभागब्भहियत्तादो। पुव्विल्लपक्खेवफद्दयसलागाहिंतो संपहियपक्खेवफद्दयसलागा सरिसा, एक्काए वि फद्दयसलागाए वड्ढिदाए फद्दयंतरस्स पुव्विल्लपक्खेवफद्दयंतरादो अणंतभागहीणत्तप्पसंगादो। सेसं पुव्वं व वत्तव्वं। एवं तदियट्ठाणपरूवणा गदा।

§ ६११. संपहि चउत्थट्ठाणुप्पत्तिं भणिस्सामो। तं जहा—तदियट्ठाणादो दोपक्खेवेसु एगपिसुलेसु च अवणिदे [सु] अवणिदसेसं जहण्णट्ठाणं होदि। पुणो सव्वजीवरासिणा जहण्णट्ठाणे सपिसुलदोपक्खेवेसु[2] च ओवट्टिदेसु जं लद्धं तं घेत्तूण तदियट्ठाणं पडिरासिय तत्थ पक्खित्ते चउत्थट्ठाणमुप्पज्जदि। एत्थतणट्ठाणंतरं विदियतदियट्ठाणंतरादो अणंतभागब्भहियं, विहज्जमाणरासिस्स पुव्विल्लविहज्जमाणरासी पेक्खिदूण अणंतभागब्भहियत्तादो। पुव्विल्लपक्खेवफद्दयंतरादो एत्थतणपक्खेवफद्दयंतरं

कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—दूसरे अनुभागस्थानमें सब जीवराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीको प्रतिराशि करके उसमें मिला देने पर तीसरा अनुभागस्थान होता है। पहलेके अनुभाग स्थानान्तरसे यह अनुभागस्थानान्तर अनन्तवाँ भाग अधिक है, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक द्वितीय अनुभागस्थानके सर्व जीवराशिप्रमाण खण्ड करके उनमें से एक खण्डकी इसमें वृद्धि हुई है तथा पहलेके प्रक्षेप स्पर्धककान्तरसे साम्प्रतिक स्थानका प्रक्षेपस्पर्धकान्तर अनन्तवां भाग अधिक है, क्योंकि पहले जिस राशिमें भाग दिया गया था उस राशिकी अपेक्षा यहाँकी शलाकाओंसे भाजितकी जानेवाली राशि अनन्तवां भाग अधिक है। तथा पहलेके प्रक्षेप स्पर्धककी शलाकाओंसे वर्तमान प्रक्षेप स्पर्धककी शलाका समान हैं, क्योंकि यदि उससे इसमें एक भी शलाका अधिक मानी जायगी तो पहलेके प्रक्षेप स्पर्धकान्तरसे वर्तमान स्पर्धकान्तरके अनन्तभाग हीन होनेका प्रसंग प्राप्त होगा। शेष बातें पहलेकी तरह कहनी चाहिए। इस प्रकार तीसरे अनुभागस्थानका कथन समाप्त हुआ।

§ ६११. अब चौथे अनुभागस्थानकी उत्पत्तिको कहते हैं। वह इस प्रकार है—तीसरे अनुभागस्थानमेंसे दो प्रक्षेप और एक पिशुलके घटाने पर जो शेप रहता है वह जघन्य स्थान होता है। पुनः सब जीवराशिका जघन्य स्थानमें और पिशुल सहित दो प्रक्षेपोंमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे लेकर तीसरे अनुभागस्थानको प्रतिराशि करके उसमें जोड़ देनेपर चौथा अनुभागस्थान उत्पन्न होता है। इस अनुभागस्थानका अन्तर दूसरे और तीसरे अनुभागस्थानके अन्तरसे अनन्तवाँ भाग अधिक है, क्योंकि यहां पर जिस राशिमें भाग दिया गया है वह राशि पहलेकी विभज्यमान राशिसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है। पहलेके प्रक्षेप स्पर्धकके अन्तरसे इस अनुभागस्थानके प्रक्षेप स्पर्धकका अन्तर अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है। तथा इस स्थानकी

१. ता० प्रतौ एवं (दं) आ० प्रतौ एवं इति पाठः। २. ता० प्रतौ जहण्णट्ठाणेसु पिसुलदोपक्खेवेसु इति पाठः।

अणंतभागब्भहियं, पुव्विल्लपक्खेवफद्दयसलागाओ पेक्खिदूण एत्थतणपक्खेवफद्दय-सलागाओ सरिसाओ, फद्दयंतराणं विसेसाहियत्तण्णहाणुववत्तीदो। एवं णेदव्वं जाव अणंतभागवड्डिट्ठाणं कंडयस्स चरिमट्ठाणे त्ति। एदाणि अणुभागट्ठाणाणि बंधेण विणा उक्कड्डणाए ण उप्पज्जंति, बंधे अणुभागसंतसमाणे तत्तो ऊणे वा संते उक्कड्डिदफद्दयाणं संतफद्दएहिंतो अणंतभागब्भहियाणमणुवलंभादो। बंधादो उक्कड्डणादो च अणुभागट्ठाणे णिप्पण्णे संते बंधादो चेव णिप्पण्णमिदि किमट्ठं वुच्चदे ? ण, उक्कड्डणाए बंधायत्ताए बंधसरूवाए बंधे चेव अंतब्भावादो।

प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ पहलेके प्रक्षेपस्पर्धक शलाकाओंके बराबर हैं। यदि शलाकाएँ समान न होतीं तो पहलेके प्रक्षेप स्पर्धकान्तरसे इस स्थानका प्रक्षेप स्पर्धकान्तर अनन्तवें भागप्रमाण अधिक न होता। इस प्रकार काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानोंके अन्तिम स्थान पर्यन्त स्थानोंकी उत्पत्तिका यह क्रम ले जाना चाहिए। ये अनुभागस्थान बंधके विना उत्कर्षणके द्वारा नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सत्तामें विद्यमान अनुभागके समान अथवा उससे कम बंधके होनेपर उत्कर्षित स्पधक सत्तामें विद्यमान स्पर्धकोंसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक नहीं पाये जाते हैं।

शंका—अनुभागस्थानके बन्धसे और उत्कर्षणसे निष्पन्न होने पर वह बन्धसे ही निष्पन्न हुआ है ऐसा क्यों कहा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कर्षण बंधके अधीन है और बंध स्वरूप है, अतः उसका बंधमें ही अन्तर्भाव होता है।

विशेषार्थ—पहले जिस प्रकार जघन्य स्थानकी प्रदेश रचना कही है उसी प्रकार दूसरे अनुभागस्थानकी भी प्रदेशरचना समझनी चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि सत्तामें स्थित कर्मपरमाणुओंको छोड़ कर नवीन बन्धको प्राप्त हुए परमाणुओंकी प्रदेश रचना, जिन परमाणुओं में अनुभाग बढ़ाया गया है उन परमाणुओंके साथ कहनी चाहिये। किन्तु सत्ता में स्थित कर्मपरमाणुओंकी प्रदेशरचना नहीं होती, क्योंकि बन्धकालमें जिस क्रमसे उनकी रचना होती है, उत्कर्षण और अपकर्षणके होनेसे उस क्रमसे वे अवस्थित नहीं रह पाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बन्धको प्राप्त हुए निषेकोंकी प्रदेशरचना तत्काल हो जाती है और वह गोपुच्छाकार रूपसे होती है, अर्थात् जैसे गायकी पूंछ क्रमसे घटती हुई होती है वैसे ही निषेकोंकी रचना भी एक एक चय घटते क्रमसे होती है। किन्तु यह रचना बराबर ऐसी ही नहीं बनी रहती, आगे जब उन निषेकोंमें अनुभाग घटता या बढ़ता है तो रचित निषेकोंके क्रममें व्यतिक्रम हो जाता है, अतः बन्धकालमें पहलेसे सत्तामें स्थित परमाणुओंकी निषेकरचनाका निषेध किया है और दोनोंमें अन्तर बतलाया है। अब इस दूसरे अनुभागस्थानके नवकबन्धकी प्रदेशरचनाको कहते हैं—समयप्रबद्धमें जघन्य अनुभागस्थानसे अधिक अनुभागवाले जितने परमाणु हों उनको पृथक् स्थापित करो और जघन्य स्थानके समान अनुभागवाले शेष सब परमाणुओंको लेकर उनकी रचना करो। रचना करने पर वे सब परमाणु जघन्य अनुभाग-स्थानकी जघन्य वर्गणासे लेकर उसीकी उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त स्थित हो जाते हैं। उसके बाद अधिक अनुभागवाले परमाणुओंको लो, उनका प्रमाण अनन्त है उनमेंसे जघन्य प्रक्षेप स्पर्धक प्रमाण परमाणुओंको लेकर जघन्य स्थानके अन्तिम स्पर्धकके ऊपर उनकी स्थापना करो। ऐसा करनेसे प्रथम प्रक्षेप स्पर्धक उत्पन्न होता है। पुनः उनमेंसे द्वितीय स्पर्धकप्रमाण परमाणुओंको प्रथम प्रक्षेप स्पर्धकके ऊपर अन्तराल देकर स्थापित करनेसे द्वितीय स्पधक उत्पन्न होता है। इस

प्रकार पुनः पुनः परमाणुओंको लेकर तब तक स्पर्धक रचना करनी चाहिये जब तक पृथक् स्थापित किये गये परमाणु समाप्त हों। इस प्रकार दूसरे अनुभागस्थानकी स्पर्धक रचना जाननी चाहिये। यह अनन्तभागवृद्धियुक्त प्रथम स्थान है, अर्थात् जघन्य अनुभागस्थानको सर्व जीव राशिसे भाजित करके जो लब्ध आवे उतना अधिक है। इस दूसरे अनुभागस्थानको सर्व जीव राशिसे भाजित करके जो लब्ध आवे उसे दूसरे अनुभागस्थानमें जोड़ देनेसे तीसरा अनुभाग-स्थान होता है। जैसे अंकसंदृष्टिसे दूसरे अनुभागस्थानका प्रमाण ८१९२० आया था उसमें जीवराशिके कल्पित प्रमाण ४ से भाग देकर लब्ध २०४८० को जोड़ देनेसे तीसरे अनुभाग-स्थानका प्रमाण १०२४०० आता है, यह अनन्तभागवृद्धि युक्त दूसरा स्थान है। पहलेके स्थानके अन्तरसे इस स्थानका अन्तर अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है। अर्थात् पहलेके स्थानका अन्तर ८१९२० − ६५५३६ = १६३८४ है और इस स्थानका अन्तर १०२४०० − ८१९२० = २०४८० है। अतः पहलेके स्थानके अन्तरसे यदि अनन्तका प्रमाण ४ कल्पना किया जाय तो इस स्थानका अन्तर अनन्तवें भागप्रमाण अधिक होता है। तथा दूसरे अनुभागस्थानके प्रक्षेप स्पर्धकके अन्तरसे इस तीसरे अनुभागस्थानके प्रक्षेप स्पर्धकका अन्तर भी अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि पहलेकी विभज्यमान राशिसे इस स्थानकी विभज्यमान राशि अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है। अर्थात् दूसरे अनुभागस्थानकी विभक्त की जानेवाली राशिका प्रमाण अंकसंदृष्टिसे ८१९२० है और इस तीसरे स्थानकी विभक्त की जानेवाली राशिका प्रमाण १०२४०० है, अतः उससे इसका प्रमाण अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है। तथा प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ दोनों स्थानोंकी बराबर बराबर हैं, क्योंकि सभी अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ परस्परमें समान हैं। असंख्यातभागवृद्धि युक्त स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ परस्परमें समान हैं। संख्यातभागवृद्धि युक्त स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ भी परस्परमें समान हैं। इसी प्रकार संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ भी परस्परमें समान जाननी चाहिए। यदि स्पर्धक शलाकाओंको परस्परमें समान न माना जायगा तो अनन्तवें भागप्रमाण अधिकपना नहीं बन सकेगा। इसका खुलासा इस प्रकार है—रूपाधिक सर्व जीवराशिसे अपने अनन्तरवर्ती नीचेके अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थानमें भाग देनेपर स्थानका अन्तर आता है। उस अन्तरको स्पर्धक शलाकाओंसे भाजित करने पर स्पर्धकान्तर आता है। इसी प्रकार उस स्थानमें समस्त जीवराशिसे भाग देनेपर ऊपरके स्थानका अन्तर आता है। उसे स्थानान्तरमें ऊपरकी स्पर्धक शलाकाओंसे भाग देनेपर ऊपरका स्पर्धकान्तर आता है। जैसे तीसरे स्थानके अनन्तरवर्ती नीचेके दूसरे स्थानका प्रमाण अंकसंदृष्टिसे ८१९२० है। उसमें एक अधिक जीवराशिके कल्पित प्रमाण ४+१=५ का भाग देनेपर १६३८४ आता है। यह नीचेका स्थानान्तर है। अर्थात् जघन्य अनुभागस्थान ६५५३६ में और दूसरे अनुभागस्थान ८१९२० में १६३८४ का अन्तर है। इस अन्तरमें कल्पित स्पर्धक शलाका ४ का भाग देनेपर ४०९६ स्पर्धकान्तर आता है। तथा उसी दूसरे स्थान ८१९२० में सर्व जीवराशि ४ का भाग देनेसे २०४८० ऊपरके स्थानान्तरका प्रमाण आता है। अर्थात् तीसरे अनुभागस्थान १०२४०० और दूसरे अनुभाग-स्थान ८१९२० में २०४८० का अन्तर है। इसी २०४८० में स्पर्धक शलाका ४ का भाग देनेसे ५१२० ऊपरके स्पर्धकान्तरका प्रमाण आता है। यह स्पर्धकान्तर पहलेके स्पर्धकान्तर ४०९६ से अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि ४०९६ में अनन्तके कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे १०२४ लब्ध आता है। इस लब्धको ४०९६+१०२४ जोड़नेसे ५१२० स्पर्धकान्तरका प्रमाण होता है। अब पहलेकी स्पर्धक शलाकासे ऊपरके स्थानकी स्पर्धक शलाकाएँ यदि एक अधिक हों तो भी यतः पहलेके भागहारसे ऊपरके स्थानके स्पर्धकान्तरका भागहार अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है

§ ६१२. पुणो अंगुलस्स असंखे०भागमेत्तकंडयपमाणेसु अणंतभागवड्ढिट्ठाणेसु जं चरिममणंतभागवड्ढिट्ठाणं तम्मि असंखेज्जलोगेहि भागे हिदे जं लद्धं तम्हि तत्थेव पक्खित्ते पढममसंखेज्ज[1]भागवड्ढिट्ठाणमुप्पज्जदि। एदस्स ट्ठाणंतरं हेट्ठिमअणंतभागवड्ढिट्ठाणंतरादो अणंतगुणं। को गुणगारो? सव्वजीवाणमसंखे०भागो। तेसिं को पडिभागो? असंखेज्जा लोगा। हेट्ठिमफद्दयंतरादो एत्थतणफद्दयंतरमणंतगुणं। गुणगारो जाणिय वत्तव्वो। हेट्ठिमट्ठाणाणं पक्खेवफद्दयसलागेहिंतो एदस्स पक्खेवफद्दयसलागाओ असंखे०भागेण अब्भहियाओ। एदं कुदो णव्वदे? असंखेज्जभागब्भहियट्ठाणाणं

अतः नीचेके स्पर्धकान्तरसे ऊपरका स्पर्धकान्तर अनन्तवें भागप्रमाण हीन होगा। किन्तु ऐसा नहीं है अतः सब प्रक्षेपोंकी स्पर्धक शलाकाएँ सजाति प्रक्षेपोंकी स्पर्धक शलाकाओंके समान ही होती हैं। इस तीसरे अनुभागस्थानको समस्त जीवराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें जोड़ देनेसे चौथा अनुभागस्थान होता है। जैसे तीसरे अनुभागस्थानका प्रमाण अंकसंदृष्टिसे १०२४०० है। इसमें जीवराशिके कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे लब्ध २५६०० आता है। इसे उसमें जोड़ देनेसे १०२४००+२५६००=१२८००० चौथे स्थानका प्रमाण होता है। यह चौथा अनुभागस्थान अपने पूर्ववर्ती तीसरे अनुभागस्थानसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है। उतना ही दोनों स्थानोंमें अन्तर है। इस अन्तरमें स्पर्धक शलाकाओंसे भाग देनेपर स्पर्धकान्तर होता है। यह स्पर्धकान्तर भी पहलेके स्पर्धकान्तरसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि दोनों स्थानोंकी स्पर्धक शलाकाएँ समान हैं। इस चौथे अनुभागस्थानमें सर्व जीवराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें जोड़ देनेसे पांचवाँ अनुभागस्थान होता है। यहां पर भी स्थानान्तर और स्पर्धकान्तरका क्रम पहलेकी तरह समझ लेना चाहिये। इस प्रकार जघन्य अनुभागस्थानके ऊपर काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होते हैं। ये स्थान बंधसे उत्पन्न होते हैं, उत्कर्षणसे नहीं उत्पन्न होते, क्योंकि जब अनुभागबन्ध सत्तामें स्थित अनुभागसे कम होता है या उसके समान होता है तब उत्कर्षणको प्राप्त हुए स्पर्धकोंका अनुभाग सत्तामें स्थित स्पर्धकोंके अनुभागसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक नहीं हो सकता। यद्यपि बन्धके समय उत्कर्षण भी होता है, इसलिए अनुभागस्थानोंकी उत्पत्ति बन्ध और उत्कर्षण दोनोंसे कही जा सकती है परन्तु इन्हें बन्धस्थान ही कहा जाता है, क्योंकि उत्कर्षण बन्धके अधीन है, बन्धके बिना उत्कर्षण नहीं होता इसलिये उसका बन्धमें ही अन्तर्भाव कर लिया है।

§ ६१२. पुनः अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण स्थानोंके समुदायको एक काण्डक कहते हैं। अतः अंगुलके असंख्यातवें भाग काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानोंमें जो अन्तिम अनन्तभागवृद्धि स्थान है उसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसी स्थानमें जोड़ देने पर पहला असंख्यातभागवृद्धि स्थान उत्पन्न होता है। इस स्थानका अन्तर नीचेके अनन्तभागवृद्धि स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है। गुणकार क्या है? यहां गुणकारका प्रमाण सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है। उसका प्रतिभाग क्या है? प्रतिभाग असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा नीचेके स्पर्धकान्तरसे इस स्थानकास्प र्धकान्तर अनन्तगुणा है? गुणकारका प्रमाण जानकर कहना चाहिये। नीचेके स्थानोंके प्रक्षेप स्पर्धकोंकी शलाकाओंसे इस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं।

१. ता० प्रतौ पढम (मा) संखेज्ज- आ० प्रतौ पढमसंखेज्ज- इति पाठः।

पक्खेवफद्दयसलागाओ हेट्ठिमट्ठाणपक्खेवफद्दयसलागाहिंतो असंखे०भागब्भहियाओ। संखे०भागवड्ढिट्ठाणपक्खेवस्स फद्दयसलागाओ हेट्ठिमट्ठाणपक्खेवफद्दयसलागाहिंतो संखे०भागब्भहियाओ। संखेज्जगुणवड्ढिट्ठाणपक्खेवफद्दयसलागाओ संखेज्जगुणाओ। असंखेज्जगुणवड्ढिट्ठाणपक्खेवफद्दयसलागाओ असंखेज्जगुणाओ[1]। अणंतगुणवड्ढिट्ठाण पक्खेवफद्दयसलागाओ अणंतगुणाओ त्ति सुत्ताविरुद्धवक्खाणादो णव्वदे। जदि एवं तो हेट्ठिमअणंतभागवड्ढिट्ठाणाणं कंडयमेत्ताणं पक्खेवफद्दयसलागाओ अण्णोण्णं पेक्खियूण अणंतभागब्भहियाओ किण्ण जादाओ? ण, तत्थ पच्चक्खेण बहुत्तुवलंभादो।

§ ६१३. असंखेज्जभागवड्ढिट्ठाणं सव्वजीवरासिणा खंडिय तत्थ एगखंडं घेत्तूण पडिरासीकयअसंखेज्जभागवड्ढिट्ठाणे पक्खित्ते तदुवरिमअणंतभागवड्ढिट्ठाणं होदि। हेट्ठिमअसंखेज्जभागवड्ढिट्ठाणंतरादो एदं ट्ठाणंतरमणंतगुणहीणं। तत्थतणफद्दयंतरादो वि एत्थतणफद्दयंतरमणंतगुणहीणं; तत्थतणपक्खेवफद्दयसलागाहिंतो एत्थतणपक्खेवफद्दय-सलागाओ विसेसहीणाओ। एत्थ कारणं जाणिय वत्तव्वं। पुणो असंखे०भागवड्ढि-ट्ठाणादो उवरिमअणंतभागवड्ढिट्ठाणं सव्वजीवेहि खंडिय तत्थ लद्धेगखंडे तत्थेव पक्खित्ते अण्णमणंतभागवड्ढिट्ठाणमुप्पज्जदि। एवं णेदव्वं जाव कंडयमेत्ताणमणंत-

---

शंका—यह कैसे जाना?

समाधान—असंख्यातभागवृद्धिरूप स्थानोंकी प्रक्षेपस्पर्धक शलाकाएँ नीचेके स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। संख्यातभागवृद्धिको लिये हुए स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ नीचेके स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे संख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। संख्यातगुणवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ संख्यातगुणी हैं। असंख्यातगुणवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ असंख्यातगुणी हैं और अनन्तगुणवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ अनन्तगुणी हैं। इस सूत्रसे अविरुद्ध व्याख्यानसे जाना।

शंका—यदि ऐसा है तो नीचेके काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ परस्परमें एक दूसरेकी अपेक्षा अनन्तवें भागप्रमाण अधिक क्यों नहीं हुई?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनमें प्रत्यक्षसे बहुत्व पाया जाता है।

§ ६१३. असंख्यातभागवृद्धि स्थानको सब जीवराशिसे खण्डित करके उनमेंसे एक खण्ड लेकर उसे प्रतिराशीकृत असंख्यातभागवृद्धि स्थानमें जोड़ देनेपर असंख्यातभागवृद्धि स्थानसे आगेका अनन्तभागवृद्धि स्थान होता है। नीचेके असंख्यातभागवृद्धि स्थानके अन्तरसे इस स्थानका अन्तर अनन्तगुणा हीन है। उस स्थानके स्पर्धकके अन्तरसे इस स्थानके स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा हीन है। उस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे इस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ विशेष हीन हैं। यहां कारण जानकर कहना चाहिये। पुनः असंख्यातभागवृद्धिस्थानसे ऊपरके अनन्तभागवृद्धिस्थानके सब जीवराशि प्रमाण खण्ड करके उनमेंसे एक खण्ड लेकर उसे उसी अनन्तभागवृद्धिस्थानमें जोड़ देनेपर दूसरा अनन्त-

---

१. ता० प्रतौ असंखेज्जगुणहीणाओ इति पाठः।

भागवड्डिट्ठाणाणं चरिमअणंतभागवड्डिट्ठाणे त्ति। एत्थ ट्ठाणंतर–फद्दयंतर–पक्खेव-फद्दयसलागाणं संखाणं परूवणा जहा पढमअणंतभागवड्डिट्ठाणकंडए कदा तहा कायव्वा, अविसेसादो।

§ ६१४. पुणो कंडयस्स चरिममणंतभागवड्डिट्ठाणमसंखेज्जलोगेहि खंडिय तत्थेग-खंडे तत्थेव पक्खित्ते विदियमसंखेज्जभागवड्डिट्ठाणमुप्पज्जदि। एत्थ पक्खेवफद्दयसलाग-पमाणस्स ट्ठाणंतर-फद्दयंतराणं पमाणस्स य परूवणा पुव्वं व कायव्वा। एवं णेदव्वं जाव कंडयमेत्ताणमसंखेज्जभागवड्डीणं चरिमअसंखेज्जभागवड्डिट्ठाणं ति। तदुवरि पुव्वं व अणंतभागवड्डिट्ठाणाणं कंडयं गंतूण संखेज्जभागवड्डिट्ठाणं होदि। एदस्स ट्ठाणंतर-मणंतभागवड्डिट्ठाणंतरेहिंतो अणंतगुणं हेट्ठिमअसंखेज्जभागवड्डिट्ठाणंतरेहिंतो असंखेज्जगुणं। संखेज्जभागवड्डिट्ठाणपक्खेवफद्दयसलागाओ हेट्ठिमअणंतभागवड्डि-असंखे० भागवड्डिट्ठाणाणं पक्खेवफद्दयसलागाहिंतो संखे० भाग० भहियाओ। जहा ट्ठाणंतराणि तहा फद्दयंतराणि वि वत्तव्वाणि। एवं कंडय०भहियकंडयवग्गमेत्ताणि अणंतभागवड्डिट्ठाणाणि कंडयमेत्त-असंखेज्जभागवड्डिट्ठाणाणि च उवरिं गंतूण विदियं संखेज्जभागवड्डिट्ठाणं होदि। एव-मेदेण कमेण कंडयमेत्ताणि संखेज्जभागवड्डिट्ठाणाणि उप्पाएदव्वाणि। तत्तो उवरि एगं

भागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह क्रम काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानोंमें अन्तिम अनन्तभागवृद्धिस्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये। अर्थात् उत्पन्न हुए अनन्त-भागवृद्धिस्थानके जीवराशिप्रमाण खण्ड करके उनमेंसे एक खण्डको लेकर उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेसे आगेका स्थान उत्पन्न होता है आदि। यहाँ पर भी नीचेके स्थानसे ऊपरके स्थानका अन्तर, नीचेके स्पर्धकसे ऊपरके स्पर्धकका अन्तर और उसकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंकी संख्याका कथन जैसा प्रथम अनन्तभागवृद्धिस्थान काण्डकमें किया है वैसा ही करना चाहिये, दोनोंके कथनमें कोई अन्तर नहीं है।

§ ६१४. पुनः काण्डकके अन्तिम अनन्तभागवृद्धि स्थानके असंख्यात लोक प्रमाण खण्ड करके उनमेंसे एक खण्ड लेकर उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेपर दूसरा असंख्यातभागवृद्धि स्थान उत्पन्न होता है। यहाँ पर भी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंके प्रमाणका तथा नीचेके स्थानसे इस स्थानके अन्तर और नीचेके स्पर्धकसे इस स्थानके स्पर्धकके अन्तरके प्रमाणका कथन पहलेकी तरह कर लेना चाहिये। इस प्रकार इस क्रमको काण्डकप्रमाण असंख्यातभाग वृद्धिस्थानोंके अन्तिम असंख्यातभागवृद्धि स्थान पर्यन्त ले जाना चाहिये। अन्तिम असंख्यातभागवृद्धि स्थानके ऊपर पहलेकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानोंके होनेपर संख्यातभागवृद्धि स्थान होता है। इस स्थानका अन्तर अनन्तभागवृद्धि स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है तथा नीचेके असंख्यातभागवृद्धि स्थानके अन्तरसे असंख्यातगुणा है। संख्यातभागवृद्धि स्थान-की प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ नीचेके अनन्तभागवृद्धि और असंख्यातभागवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे संख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। जैसे स्थानोंके अन्तरका कथन किया है वैसे ही स्पर्धकोंका अन्तर भी कहना चाहिये। इस प्रकार एक काण्डक और काण्डकके वर्गप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थान तथा काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धि-स्थानोंके होनेपर दूसरा संख्यातभागवृद्धि स्थान होता है। इस प्रकार इस क्रमसे काण्डकप्रमाण

संखे०भागवड्ढिट्ठाणविसयं गंतूण पढमसंखेज्जगुणवड्ढी[1] उप्पज्जदि। एदिस्से ट्ठाणंतरं हेट्ठिमअणंतभागवड्ढिट्ठाणंतरेहिंतो अणंतगुणं संखेज्जभागवड्ढि-असंखेज्जभागवड्ढिट्ठाणंतरेहिंतो असंखेज्जगुणं। तेसिं तिण्हं पक्खेवफद्दयंतरादो एदस्स ट्ठाणस्स पक्खेवफद्दयंतरमणंतगुणमसंखे०गुणं च। तेसिं चेव पक्खेवफद्दयसलागाहिंतो एत्थतणपक्खेवफद्दयसलागाओ संखेज्जगुणाओ। कुदो एदं णव्वदे? आइरियाणं सुत्ताविरुद्धवयणादो। एवं समयाविरोहेण कंडयमेत्तेसु संखेज्जगुणवड्ढिट्ठाणेसु गदेसु पुणो संखेज्जगुणवड्ढिविसयं गंतूण असंखेज्जगुणवड्ढी होदि। को एत्थ गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। हेट्ठिमाणंतभागवड्ढिट्ठाणे असंखेज्जेहि लोगेहि गुणिदे असंखेज्जगुणवड्ढी होदि त्ति भणिदं होदि। वड्ढिदाणुभागे हेट्ठिमाणंतभागवड्ढिट्ठाणं पडिरासिय पक्खित्ते असंखेज्जगुणवड्ढिट्ठाणं होदि। भागहारा इव सव्वेसु गुणगारा वड्ढीए[2] चेव होंति त्ति कुदो णव्वदे? अणंतगुणवड्ढी काए परिवड्ढीए परिवड्ढिदा? सव्वजीवेहिं त्ति वेयणासुत्तादो। पुव्वमवट्ठिदअणुभागो वि वड्ढी चेव तेण विणा संपहि वड्ढिदअणुभागेणेव अण्णस्स ट्ठाणस्सु-

संख्यातभागवृद्धिस्थान उत्पन्न करने चाहिये। इससे ऊपर एक संख्यातभागवृद्धिस्थानके अन्तभू त स्थानोंके होनेपर पहला संख्यातगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इसका स्थानान्तर अधस्तन अनन्तभागवृद्धिस्थानान्तरसे अनन्तगुणा है और संख्यातभागवृद्धि तथा असंख्यातभागवृद्धिस्थानोंके अन्तरसे असंख्यातगुणा है। उक्त तीनों स्थानोंके प्रक्षेप स्पर्धकोंके अन्तरसे इस स्थानके प्रक्षेप स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा और असंख्यातगुणा है। उन तीनों स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे इस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ संख्यातगुणी हैं।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना?

समाधान—आचार्योंके सूत्रसे अविरुद्ध वचनोंसे जाना।

इस प्रकार आगमके अविरुद्ध काण्डकप्रमाण संख्यातगुणवृद्धिस्थानोंके बीतने पर पुनः एक संख्यातगुणवृद्धिस्थानके अन्तभू त स्थानोंको बिताकर असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है।

शंका—इस असंख्यातगुणवृद्धिस्थानमें गुणकारका प्रमाण क्या है?

समाधान—असंख्यात लोक। आशय यह है कि इस स्थानके नीचेके अनन्तभागवृद्धिस्थानको असंख्यात लोकसे गुणा करने पर असंख्यातगुणवृद्धि होती है।

अधस्तन अनन्तभागवृद्धिस्थानको प्रतिराशि करके उसमें बढ़े हुए अनुभागके जोड़ देनेसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है।

शंका—सब स्थानोंमें भागहारोंके समान गुणकार वृद्धिके अनुसार ही होते हैं यह कैसे जाना?

समाधान—अनन्तगुणवृद्धि किस वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुई है? सर्व जीवराशिरूप गुणवृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुई है इस वेदनाखण्डके सूत्रसे जाना।

शंका—पहलेका अवस्थित अनुभाग भी वृद्धिस्वरूप ही है, क्योंकि उसके विना वर्तमानमें बढ़े हुए अनुभागसे ही अन्य स्थानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती?

1. ता० आ० प्रत्योः पढमासंखेज्जगुणवड्ढी इति पाठः। 2. ता० आ० प्रत्योः गुणगार वड्ढीए इति पाठः।

प्पत्तीए अभावादो त्ति ? सच्चमेदं, किंतु ण चिराणाणुभागो एत्थ घेप्पदि, वड्डि-णिमित्ताणुभागेण विणा वड्डिअणुभागेण चेव एत्थ अहियारादो। तं पि कुदो णव्वदे ? वड्डिं पडुच्च भागहार-गुणगारपरूवणण्णहाणुववत्तीदो। हेट्ठिमअणंतभागवड्डिट्ठाणंतरादो असंखेज्जगुणवड्डिट्ठाणंतरमणंतगुणं सेसवड्डिट्ठाणंतरेहिंतो असंखे०गुणं। अणंतभाग-वड्डिपक्खेवफद्दयंतरादो एदस्स फद्दयंतरमणंतगुणं।

§ ६१५. एदमसंखेज्जगुणवड्डिट्ठाणं सव्वजीवेहि खंडिय जं लद्धं तम्मि तत्थेव पक्खित्ते उवरिममणंतभागवड्डिट्ठाणं होदि। हेट्ठिमअसंखेज्जगुणवड्डिट्ठाणंतरादो एदस्स ट्ठाणंतरमणंतगुणहीणं। तस्स पक्खेवफद्दयंतरादो वि एदस्स फद्दयंतरमणंतगुणहीणं। असंखेज्जगुणवड्डीए हेट्ठिमअणंतभागवड्डिकंडयस्स ट्ठाणंतरादो एदं ट्ठाणंतरमसंखे०-गुणं। तत्थतणफद्दयंतरादो वि एत्थतणफद्दयंतरमसंखेज्जगुणं। एवं जाणिदूण समया-विरोहेण णेदव्वं जाव कंडयमेत्ताणि असंखेज्जगुणवड्डिट्ठाणाणि समुप्पण्णाणि त्ति।

§ ६१६. पुणो अवरमेगमसंखेज्जगुणवड्डिविसयं गंतूण जं चरिमसुव्वंकट्ठाण-मवट्ठिदं तम्मि रूवाहियसव्वजीवरासिणा गुणिदे पढममट्ठंकट्ठाणमुप्पज्जदि। एदस्स ट्ठाणंतरं पुव्विल्लासेसट्ठाणंतरेहिंतो अणंतगुणं। एदस्स फद्दयंतरं पि पुव्विल्लासेस-

---

समाधान—उक्त कथन सत्य है, किन्तु यहाँ पर चिरकालके अनुभागका ग्रहण नहीं करते, क्योंकि यहाँ पर वृद्धिमें कारणभूत अनुभागके विना केवल वृद्धिप्राप्त अनुभागका ही अधिकार है।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि वृद्धिमें कारणभूत अनुभागके बिना वृद्धिप्राप्त अनुभागका ही अधिकार न होता तो वृद्धिकी अपेक्षा भागहार और गुणकारका कथन नहीं बन सकता था।

अधस्तन अनन्तभागवृद्धिस्थानके अन्तरसे असंख्यातगुणवृद्धिस्थानका अन्तर अनन्त-गुणा है तथा शेष वृद्धिस्थानोंके अन्तरसे असंख्यातगुणा है। अनन्तभागवृद्धिके प्रक्षेप स्पर्धकके अन्तरसे इस स्थानके स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा है।

§ ६१५. इस असंख्यातगुणवृद्धिस्थानमें सब जीवराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेपर ऊपरका अनन्तभागवृद्धिस्थान होता है। अधस्तन असंख्यातगुणवृद्धि-स्थानके अन्तरसे इस स्थानका अन्तर अनन्तगुणा हीन है। उसके प्रक्षेप स्पर्धकके अन्तरसे भी इस स्थानके स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा हीन है। असंख्यातगुणवृद्धिके अधस्तन अनन्तभाग-वृद्धिकाण्डकके स्थानान्तरसे इस स्थानका अन्तर असंख्यातगुणा है। उसके स्पर्धकान्तरसे भी इस स्थानका स्पर्धकान्तर असंख्यातगुणा है। इस प्रकार काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धि-स्थानोंकी उत्पत्ति होने तक इस क्रमको जानकर आगमानुसार ले जाना चाहिये।

§ ६१६. इस प्रकार काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिस्थानोंकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् एक अन्य असंख्यातगुणवृद्धिस्थानके अन्तर्भूत वृद्धियोंमें जो अन्तिम अनन्तभागवृद्धिस्थान आता है उसे एक अधिक समस्त जीवराशिसे गुणा करने पर पहला अष्टांकस्थान उत्पन्न होता है। इस स्थानका अन्तर पहलेके सब स्थानोंके अन्तरसे अनन्तगुणा है। इसका स्पर्धकान्तर भी

फद्दयंतरादो अणंतगुणं। कारणं चिंतिय वत्तव्वं।

§ ६१७. पक्खेवसलागाओ सव्वासु वड्डीसु अभवसिद्धिएहि अणंतगुण-सिद्धाणंतिमभागमेत्ताओ। सगसगफद्दयसलागाहि वड्ढिदअणुभागे भागे हिदे सव्वत्थ फद्दयंतरुप्पत्ती वत्तव्वा। एवमेगस्स बंधसमुप्पत्तियछट्ठाणस्स जहा परूवणा कदा तहा अवसेसअसंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणं अट्ठंकेण विणा पच्छिल्लपंचट्ठाणाणं च परूवणा कायव्वा।

एवमेसा बंधसमुप्पत्तियट्ठाणपरूवणा कदा।

पहलेके समस्त स्पर्धकान्तरसे अनन्तगुणा है। इसका कारण विचार कर कहना चाहिये।

§ ६१७. सब वृद्धियोंमें प्रक्षेप शलाकाएँ अभव्यराशिसे अनन्तगुणी और सिद्धराशिके अनन्तवें भागमात्र हैं। बढ़े हुए अनुभागमें अपनी अपनी स्पर्धक शलाकाओंका भाग देनेपर सर्वत्र स्पर्धकान्तरकी उत्पत्ति कहनी चाहिये। इस प्रकार जिस क्रमसे एक बन्धसमुत्पत्तिक षट्स्थानका कथन किया है उसी क्रमसे असंख्यात लोकप्रमाण समस्त षट्स्थानोंका तथा अष्टांकके विना पीछेके पाँच स्थानोंका कथन कर लेना चाहिये।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागस्थानके ऊपर जो काण्डकप्रमाण अनन्तानुभागवृद्धिस्थान हुए थे उनमेंसे अन्तिम अनुभागवृद्धिस्थानमें असंख्यात लोकका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसे उसी अन्तिम अनुभागवृद्धिस्थानमें जोड़नेसे पहला असंख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस स्थानका अन्तर नीचेके स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है, क्योंकि समस्त जीवराशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेसे जो लब्ध आता है वही यहाँ गुणकार है।' इस असंख्यातभागवृद्धिरूप प्रक्षेपमें इस स्थानकी स्पर्धक शलाकाओंका भाग देनेपर जो लब्ध आता है वही यहाँ स्पर्धकान्तरका प्रमाण होता है। यह स्पर्धकान्तर नीचेके स्थानके स्पर्धकान्तरसे अनन्तगुणा है, क्योंकि नीचेके अनन्तभागवृद्धिस्थानकी स्पर्धक शलाकाओंसे रूपाधिक सर्व जीवराशिको गुणा करके गुणनफलसे अन्तिम अनन्तभागवृद्धिस्थानमें भाग देनेसे स्पर्धकान्तर होता है। अनन्तभागवृद्धिकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे असंख्यातभागवृद्धिकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ असंख्यातवें भाग अधिक हैं। उससे संख्यातभागवृद्धिकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ संख्यातवें भाग अधिक हैं। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। इसी प्रकार असंख्यातभागवृद्धिकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे असंख्यात लोकको गुणा करके गुणनफलसे अन्तिम अनन्तभागवृद्धिस्थानमें भाग देनेसे असंख्यातभागवृद्धिरूप प्रक्षेपका स्पर्धकान्तर होता है। नीचेके स्पर्धकान्तरसे ऊपरके स्पर्धकान्तरमें भाग देनेसे जो लब्ध आवे, नीचेसे ऊपरका स्पर्धकान्तर उतना ही गुणा होता है। इस असंख्यातभागवृद्धिस्थानसे ऊपर काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होते हैं। उनका कथन पहलेके अनन्तभागवृद्धिस्थानोंकी तरह जानना चाहिए। इतना विशेष है कि असंख्यातभागवृद्धिके स्पर्धकान्तरोंसे ऊपरके अनंतभागवृद्धिरूप प्रक्षेपोंके स्थानान्तर और स्पर्धकान्तर अनन्तगुणे हीन होते हैं, तथा नीचेके काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंके स्थानान्तर और स्पर्धकान्तरोंसे ऊपरके काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंके स्थानान्तर और स्पर्धकान्तर असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक होते हैं। इसका कारण यह है कि असंख्यातभागवृद्धिस्थानमें भागहारका प्रमाण जीवराशिका असंख्यातवां भाग है और अनन्तभागवृद्धिमें भागहारका प्रमाण समस्त जीवराशि है, अतः भागहारके प्रमाणमें अन्तर होनेसे उक्त अन्तर पड़ता है। जैसे यदि अन्तिम अनन्तानुभागवृद्धिस्थानका प्रमाण १६०००० कल्पना किया जावे तो उसमें असंख्यातके

§ ६१८. एदेसिं बंधट्ठाणाणं कारणभूदकसायुदयट्ठाणाणं पि अवट्ठाणक्कमो एरिसो चेव भागहार-गुणगारेहि ठाणसंखाए च भेदाभावादो। तेणेसा परूवणा अणुभागबंध-ज्झवसाणट्ठाणाणं पि णिरवयवा वत्तव्वा। एदाणि एवं विहाणेण परूविदबंधसमुप्पत्तिय-ट्ठाणाणि थोवाणि त्ति घेत्तव्वं।

❀ हदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि।

§ ६१९. एत्थ ताव हदसमुप्पत्तियट्ठाणाणं सरूवपरूवणं कस्सामो। कत्तो एदेसिं समुप्पत्ती? विसोहिट्ठाणेहिंतो? काणि विसोहिट्ठाणाणि? बद्धाणुभाग-

---

कल्पित प्रमाण दोका भाग देनेसे ८०००० आता है। यह स्थानान्तर नीचेके स्थानान्तरोंसे कई गुणा है। तथा असंख्यातभागवृद्धिस्थानके कल्पित प्रमाण १६००००+८००००=२४०००० में आगेका अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थान लानेके लिये जीवराशिके कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे लब्ध ६०००० आता है। यह स्थानान्तर नीचेके अनन्तभागवृद्धिस्थानोंके अन्तरसे अधिक है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। दूसरे काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंसे अन्तिम स्थानमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे इसी स्थानमें जोड़ देनेसे दूसरा असंख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस प्रकार काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान होते हैं। काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थानोंमेंसे जो अन्तिम असंख्यातभागवृद्धिस्थान है उसके ऊपर पहलेकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होते हैं। उनमेंसे अन्तिम अनन्तभाग-वृद्धिस्थानमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसे उसीमें जोड़ देनेसे पहला संख्यात-भागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इसके ऊपर काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होने पर असंख्यातभागवृद्धिस्थान है और काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थान होनेपर दूसरा संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस तरह काण्डकप्रमाण संख्यातभागवृद्धिस्थानोंके हो जानेपर ऊपर संख्यातभागवृद्धिस्थान विषयक अनन्तभागवृद्धिस्थानोंमें जो अन्तिम स्थान है उसमें उत्कृष्ट संख्यातका गुणा करनेसे जो लब्ध आवे उसे उसीमें जोड़ देनेसे पहला संख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। उक्त क्रमसे काण्डकप्रमाण संख्यातगुणवृद्धिस्थानोंके हो जाने पर, ऊपर संख्यातगुण-वृद्धिविषयक अनन्तभागवृद्धिस्थानोंमेंसे अन्तके स्थानमें असंख्यात लोकका गुणा करनेसे जो लब्ध आवे उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेसे पहला असंख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। इसी प्रकार आगेका विचार कर कथन करके षट्स्थानकी उत्पत्ति कहनी चाहिए। इस प्रकार बन्धसमुत्पत्तिक स्थानकी उत्पत्तिका सांगोपांग विचार किया।

इस प्रकार यह बन्धसमुत्पत्तिकस्थानका कथन हुआ।

§ ६१८. इन बन्धस्थानोंके कारणभूत कषायके उदयस्थानोंके भी अवस्थानका क्रम ऐसा ही है, क्योंकि दोनोंके भागहार, गुणकार और स्थानसंख्यामें कोई भेद नहीं है। अतः यह पूरा कथन अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंके विषयमें भी कहना चाहिये। इस प्रकार कहे गये ये बन्धसमुत्पत्तिक स्थान थोड़े हैं ऐसा सूत्रका अर्थ लेना चाहिये।

* उनसे हतसमुत्पत्तिक स्थान असंख्यातगुणे हैं।

§ ६१९ यहाँ अब हतसमुत्पत्तिकस्थानोंके स्वरूपका कथन करते हैं।

शंका—इन स्थानोंकी उत्पत्ति किनसे होती है?

समाधान—विशुद्धिस्थानोंसे।

संतस्स घादहेदुजीवपरिणामा। ताणि च असंखेज्जलोगमेत्ताणि छव्विहाए वड्ढीए अवट्ठिदाणि। एदेसिं सीसपडिबोहणट्ठं वामपासे रयणा कायव्वा। सुहुमणिगोदअपज्जत्तजहण्णाणुभागट्ठाणप्पहुडि जाव पज्जवसाणचरिमाणुभागबंधट्ठाणे त्ति ताव एदेसिमसंखेज्जलोगमेत्तबंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणमेगसेढियागारेण दाहिणपासे रयणा कायव्वा। एवं कादूण पुणो सिस्सपडिबोहणट्ठमणुभागबंधट्ठाणाणं घादणकमं भणिस्सामो। तं जहा—एगेण जीवेण सव्वुक्कस्सविसोहिट्ठाणपरिणदेण सव्वुक्कस्सअणुभागबंधट्ठाणे घादिदे चरिमअट्ठंकादो हेट्ठा अणंतगुणहीणं तत्तो हेट्ठिमबंधसमुप्पत्तियउव्वंकट्ठाणादो अणंतगुणं होदूण दोण्हं ट्ठाणाणं विच्चाले हदसमुप्पत्तियसण्णिदमणुभागट्ठाणमुप्पज्जदि। एदस्स ट्ठाणस्स पदेसविण्णासो जहा बंधट्ठाणाणं परूवेदो तहा परूवेदव्वो, पदेसविण्णासविवज्जासेण विणा तत्थतणअणुभागस्सेव थोवत्तविहाणादो। पुणो अण्णेण जीवेण दुचरिमविसोहिट्ठाणपरिणदेण पज्जवसाणउव्वंके घादिदे पुव्वुत्तरंकुव्वंकाणं विच्चाले पुव्वुप्पण्णघादट्ठाणस्सुवरिं अणंतभागब्भहियं होदूण विदियं हदसमुप्पत्तियट्ठाणमुप्पज्जदि। एत्थ, वड्ढीए भागहारो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागो। एदेण भागहारेण जहण्णट्ठाणे भागे हिदे जं लद्धं तम्हि तत्थेव पक्खित्ते विदियमणंतभागवड्ढिट्ठाणं होदि त्ति भावत्थो। एत्थ सव्वजीवरासी वड्ढिभागहारो त्ति किण्ण इच्छिदो?

शंका—विशुद्धिस्थान किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जीवके जो परिणाम बांधे गये अनुभागसत्कर्म के घातके कारण हैं उन्हें विशुद्धिस्थान कहते हैं।

वे विशुद्धिस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं और छह प्रकारकी वृद्धिको लिये हुए हैं। शिष्योंको समझानेके लिये इन स्थानोंकी रचना बाईं ओर करनी चाहिये और सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य अनुभागस्थानसे लेकर अन्तिम अनुभाग बन्धस्थान तक इन असंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक श्रेणिके आकारमें दाहिनी ओर रचना करनी चाहिये। ऐसा करके पुनः शिष्योंको समझानेके लिये अनुभागबन्धस्थानोंके घात करनेके क्रमको कहते हैं। वह इस प्रकार है—सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिस्थानसे परिणत हुए एक जीवके द्वारा सर्वोत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थानका घात किये जाने पर अन्तके अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन और उससे नीचेके बन्धसमुत्पत्तिक उर्वंकस्थानसे अनन्तगुणा होकर दोनों स्थानोंके बीचमें हतसमुत्पत्तिक नामका अनुभागस्थान उत्पन्न होता है। इस स्थानके प्रदेशोंकी रचना जैसी बन्धस्थानोंकी कही है उसी प्रकार कहनी चाहिये। क्योंकि प्रदेश रचना पलटे विना उसके अनुभागको ही कम कर दिया है। पुनः द्विचरम विशुद्धिस्थानसे परिणत हुए किसी अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उवक का घात किये जानेपर पूर्व उर्वंक और उत्तर उर्वंकके बीचमें पहले उत्पन्न हुए हतसमुत्पत्तिकस्थानके ऊपर अनन्तभाग अधिक दूसरा हतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न होता है। यहां पर हुई अनन्तभाग वृद्धिका भागहार अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है। इस भागाहारसे जघन्य स्थानमें भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी स्थानमें जोड़ देने पर दूसरा अनन्तभागवृद्धि स्थान होता है, यह उक्त कथनका भावार्थ है।

ण, कसायुदयट्ठाणाणं व विसोहिट्ठाणवड्ढिहाणीणमभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणंतिम भागं मोत्तूण गुणगारभागहाराणं सव्वजीवरासिपमाणत्तासंभवादो। ण च कारण-गुणगार-भागहारेहिंतो कज्जगुणगार-भागहाराणं पुधभावसंभवो, विरोहादो। पुणो अण्णेण जीवेण तिचरिमविसोहिट्ठाणपरिणएण चरिमुव्वंके घादिदे तदियमणंतभागवड्ढिट्ठाण-मुप्पज्जदि। पुणो अवरेण चदुचरिमविसोहिट्ठाणपरिणदेण पज्जवसाणुव्वंके घादिदे चउत्थमणंतभागवड्ढीए घादट्ठाणमुप्पज्जदि। एवं कंडयमेत्ताणि अणंतभागहीणविसोहि-ट्ठाणाणि हेट्ठा ओसरिय ट्ठिदअसंखेज्जभागहीणविसोहिट्ठाणपरिणएण चरिमुव्वंके घादिदे घादट्ठाणेसु कंडयमेत्तअणंतभागवड्ढीओ उवरि गंतूण पढममसंखेज्जभागवड्ढिट्ठाण-मुप्पज्जदि। एत्थ वड्ढिभागहारो असंखेज्जा लोगा। कुदो? सुत्ताविरुद्धगुरुवयणादो। एवं विलोमेण ट्ठिदएगेगविसोहिट्ठाणेण चरिमुव्वंके घादिदे असंखेज्जलोगमेत्ताणि हद-समुत्पत्तियट्ठाणाणि अप्पिदअट्ठंकुव्वंकाणं विचाले उप्पज्जंति। णवरि घादट्ठाणेसु घादघादट्ठाणेसु च सव्वजीवरासिगुणगारो भागहारो वे त्ति ण वत्तव्वं। कुदो? घाद-ट्ठाणे सव्वजीवरासिणा गुणिदे उक्कस्सबंधट्ठाणादो अणंतगुणघादट्ठाणसमुप्पत्तीदो। ण च बंधट्ठाणादो घादट्ठाणमणंतगुणं होदि, विरोहादो। एदेसिमसंखेज्जलोगमेत्तउव्वंक-

---

शंका—यहां पर वृद्धिका भागाहार सर्व जीवराशि है ऐसा क्यों नहीं माना?

समाधान—नहीं; क्योंकि कषायके उदयस्थानोंकी तरह विशुद्धिस्थानोंकी वृद्धि और हानि का गुणकार और भागहार अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाणको छोड़कर सर्वराशिप्रमाण नहीं बन सकता है। अर्थात् जैसे कषायके उदयस्थानोंकी वृद्धि-हानिका गुणकार और भागहार अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है वैसा ही विशुद्धिस्थानोंमें भी जानना चाहिये, क्योंकि कषाय उदयस्थान कारण हैं और विशुद्धि स्थान उनके कार्य हैं और कारणके गुणकार और भागहारोंसे कार्यके गुणकार और भागहार जुदे नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध है।

पुनः त्रिचरम विशुद्धिस्थानसे परिणत हुए किसी अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उर्वंकका घात किये जाने पर तीसरा अनन्तभागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। पुनः चतुःचरम विशुद्धि स्थानसे परिणत हुए अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उर्वंकका घात किये जाने पर अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए चतुर्थ घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार काण्डकप्रमाण अनन्तभाग हीन विशुद्धि स्थान नीचे उतरकर स्थित असंख्यात भाग हीन विशुद्धिस्थानसे परिणत हुए जीवके द्वारा अन्तिम उर्वंकका घात किये जाने पर घातस्थानोंमें काण्डकप्रमाण अनन्तभाग वृद्धियां ऊपर जाकर पहला असंख्यातभागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। यहां पर असंख्यातभागवृद्धिका भागहार असंख्यात लोक है, क्योंकि सूत्रके अविरुद्ध गुरुके ऐसे वचन हैं। इस प्रकार विलोमक्रमसे स्थित एक एक विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम उर्वंकका घात किये जानेपर विवक्षित अष्टांक और उर्वंकके वीचमें असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। इतना विशेष है कि घातस्थानोंमें और घातघातस्थानोंमें गुणकार और भागहारका प्रमाण सर्व जीवराशि है ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि घातस्थानको सर्व जीवराशिसे गुणा करने पर उत्कृष्ट बन्धस्थानसे अनन्तगुणे घातस्थानकी उत्पत्ति होती है। किन्तु बन्धस्थानसे घातस्थान अनन्तगुणा नहीं होता

चत्तारि-पंच-छ-सत्त-अट्ठंकाणं रूवूणछट्ठाणसहियाणं ट्ठाणंतरफद्दयंतरादीणं परूवणाए कीरमाणाए बंधट्ठाणभंगो। एवं चरिमुव्वंकमस्सिदूण एत्तियाणि चेव घादट्ठाणाणि उप्पज्जंति, उक्कस्सविसोहिट्ठाणप्पहुडि जाव जहण्णविसोहिट्ठाणे त्ति ताव सव्वविसोहिट्ठाणेहि चरिमुव्वंकं घादिय घादट्ठाणाणमुप्पाइदत्तादो। पुणो उक्कस्सविसोहिट्ठाणेण दुचरिमउव्वंके घादिदे हेट्ठा पुव्विल्लसव्वजहण्णघादट्ठाणादो हेट्ठा अणंतभागहीणं होदूण अण्णं घादट्ठाणमुप्पज्जदि। एत्थ हाणीए भागहारो रूवाहियसव्वजीवरासी। कुदो? एगेण परिणामेण घादे संते वि उक्कस्सउव्वंकादो दुचरिमउव्वंकस्स रूवाहियसव्वजीवरासिणा खंडिदेगखंडपरिहाणिदंसणादो। पुणो दुचरिमविसोहिट्ठाणेण दुचरिमअणुभागबंधट्ठाणे घादिदे अण्णं घादट्ठाणमणंतभागब्भहियं होदूण अपुणरुत्तमुप्पज्जदि। को एत्थ वड्ढिभागहारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागो, कारणाणुरूवकज्जसिद्धीए णाइयत्तादो। अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणं व अणुभागघादज्झवसाणट्ठाणाणं वड्ढिभागहारो गुणगारो च किण्ण होदि? ण, अणुभागवड्ढिहेदुपरिणामाणं घादहेउपरिणामाणं च सरिसत्तविरोहादो। एदं संपहि समुप्पण्णाणुभागघादट्ठाणमुवरिमपंतीए जहण्णघादट्ठाणेण सरिसं ण होदि, पुव्विल्लजहण्णट्ठाणाणं सव्व-

है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है। एक कम षट्स्थान सहित इन असंख्यात लोकप्रमाण उर्वंक, चतुरङ्क, पञ्चाङ्क, षष्ठाङ्क, सप्ताङ्क और अष्टाङ्कोंके स्थानान्तर और स्पर्धकान्तर आदिका कथन करने पर उनका भङ्ग बन्धस्थानोंके समान है। इस प्रकार अन्तिम उर्वंकके आश्रयसे इतने ही घातस्थान उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उत्पन्न विशुद्धिस्थानसे लेकर जघन्य विशुद्धिस्थान तक सब विशुद्धिस्थानोंसे अन्तिम उर्वंकको घात कर घातस्थानोंकी उत्पत्ति की जाती है। पुनः उत्कृष्ट विशुद्धिस्थानसे द्विचरम उर्वंकका घात करने पर नीचे पहलेके सर्व जघन्य घातस्थानसे नीचे अनन्तभाग हीन दूसरा घातस्थान उत्पन्न होता है। यहां हानिका भागहार एक अधिक सर्व जीवराशि है, क्योंकि एक परिणामसे घात होने पर भी उत्कृष्ट उर्वंकसे द्विचरम उर्वंकमें एक अधिक सर्व जीवराशिका भाग देने पर जो एक खण्ड लब्ध आता है इतनी हानि देखी जाती है। सारांश यह है कि अन्तिम उर्वंकसे द्विचरम उर्वंक उतना हीन है इसलिये इस घातस्थानकी हानिका भागहार रूपाधिक सर्व जीवराशि रखा है। पुनः द्विचरम विशुद्धिस्थानसे द्विचरम अनुभागबन्धस्थानका घात करने पर अनन्तवां भाग अधिक अन्य अपुनरुक्त घातस्थान उत्पन्न होता है।

शंका—यहां पर वृद्धिका भागहार कितना है?

समाधान—अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है, क्योंकि कारणके अनुरूप कार्यकी सिद्धिका होना उचित ही है।

शंका—अनुभागघाताध्यवसायस्थानोंकी वृद्धिके भागहार और गुणकार अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थानोंके भागहार और गुणकारके समान क्यों नहीं होते।

समाधान—नहीं, क्योंकि अनुभागकी वृद्धिके कारणभूत परिणामोंके और अनुभागके घात के कारणभूत परिणामोंके समान होनेमें विरोध है।

यह इस समय उत्पन्न हुआ अनुभागघातस्थान ऊपरकी पंक्तिमें जघन्य घातस्थानके समान

जीवरासिणा खंडिय तत्थेगखंडेणूणं संपहियजहण्णट्ठाणमभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतिमभागमेत्तभागहारेण खंडिय तत्थेगखंडेण अहियत्तादो। उवरिमपंतीए विदियघादट्ठाणेण वि सरिसं ण होदि, विहज्जमाणरासीणं अवहाररासीणं च सरिसत्ताभावादो।

§ ६२०. तम्हि चेवाणुभागबंधट्ठाणे तिचरिमअज्झवसाणट्ठाणेण घादिदे अण्णं घादट्ठाणमुप्पज्जदि। एदं पि अपुणरुत्तं। कारणं चिंतिय वत्तव्वं। एवमेदम्हि अणुभागबंधट्ठाणे घादिज्जमाणे वि असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि अपुणरुत्ताणि उप्पज्जंति, अणुभागघादहेदुपरिणामाणमसंखेज्जलोगपरिमाणत्तादो। पज्जवसाणअणुभागबंधट्ठाणे घादिज्जमाणे उप्पण्णअणुभागघादट्ठाणेहिंतो दुचरिमअणुभागबंधट्ठाणघादजणिदअणुभागट्ठाणाणि सरिसाणि, घादहेदुविसोहिट्ठाणाणं समाणत्तादो। पुणो तेणेव चरिमपरिणामेण तिचरिमउव्वंके घादिदे विदियपरिवाडीए उप्पण्णहदसमुप्पत्तियसव्वजहण्णट्ठाणादो हेट्ठा अणंतभागहीणं होदूण अण्णमपुणरुत्तट्ठाणमुप्पज्जदि। झीयमाणदव्वागमणं पडि को एत्थ भागहारो? रूवाहियसव्वजीवरासी। पुणो दुचरिमपरिणामेण तिचरिमउव्वंके घादिदे तदियपंतिजहण्णट्ठाणादो अणंतभागब्भहियं होदूण अण्णमपुणरुत्तट्ठाणमुप्पज्जदि। को एत्थ वड्ढिभागहारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो

नहीं है, क्योंकि पहलेका जघन्य स्थान सब जीवराशिका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना न्यून है और सांप्रतिक जघन्य स्थान अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण भागहारका भाग देने पर जो वहां एक भाग लब्ध आता है उतना अधिक देखा जाता है। तथा यह घातस्थान ऊपरकी पंक्तिमें स्थित दूसरे घातस्थानके भी समान नहीं है, क्योंकि भाज्य राशियां और भाजक राशियां समान नहीं हैं।

§ ६२०. उसी अनुभागबन्धस्थानका त्रिचरम अध्यवसायस्थानके द्वारा घात किये जाने पर अन्य घातस्थान उत्पन्न होता है। यह घातस्थान भी अपुनरुक्त है। इसके अपुनरुक्त होनेका कारण विचार कर कहना चाहिये। इस प्रकार इस अनुभागबन्धस्थानका भी घात किये जाने पर असंख्यात लोकप्रमाण अपुनरुक्त घातस्थान उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अनुभागके घातके कारणभूत परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। द्विचरम अनुभागबन्धस्थानके घातसे उत्पन्न अनुभागस्थान अन्तिम अनुभागबन्धस्थानके घातसे उत्पन्न अनुभागघातस्थानोंके बराबर ही होते हैं, क्योंकि घातके कारणभूत विशुद्धिस्थान दोनोंके समान हैं। पुनः उसी अन्तिम परिणामके द्वारा त्रिचरम उर्वंकका घात किये जाने पर दूसरी परिपाटीसे उत्पन्न होनेवाले सर्व जघन्य हतसमुत्पत्तिकस्थानसे नीचे अनन्तभागहीन होकर दूसरा अपुनरुक्तस्थान उत्पन्न होता है।

शंका—हीयमान द्रव्यका प्रमाण लानेके लिये यहां भागहारका प्रमाण क्या है?

समाधान—एक अधिक सर्व जीवराशि।

पुनः द्विचरम परिणामके द्वारा त्रिचरम उर्वंकका घात किये जाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है, जो कि तीसरी पंक्तिके जघन्यस्थानसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है।

शंका—यहां पर वृद्धिका भागहार क्या है?

सिद्धाणमणंतिमभागो । कुदो ? उक्कस्सघादज्झवसाणट्ठाणाणं पेक्खिदूण तत्तो अणंतर-हेट्ठिमघादज्झवसाणट्ठाणस्स अभव्वसिद्धिएहि अणंतगुणसिद्धाणमणंतभागमेत्त-भागहारेण खंडिदे तत्थेगखंडेण ऊणत्तादो। कुदो अपुणरुत्तदा ? भिण्णभागहारेहि ओवट्टिज्जमाणट्ठाणाणं सरिसत्ताभावादो। एवं तिचरिमाणुभागबंधट्ठाणे वि घादिज्जमाणे तदियपरिवाडीए अणुभागघादज्झवसाणट्ठाणमेत्ताणि अणुभागघादट्ठाणाणि अपुणरुत्ताणि उप्पादेदव्वाणि। एवं चदुचरिमाणुभागट्ठाणप्पहुडि जाव हेट्ठा रूवूणछट्ठाणमेत्तपंच-हाणिट्ठाणाणं चरिमट्ठाणे त्ति ताव घादिय ट्ठाणं पडि असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि अपुणरुत्ताणि उप्पादेदव्वाणि। एवं रूवूणछट्ठाणमेत्तअणुभागबंधट्ठाणाणि अस्सियूण एत्तियाणि चेव घादट्ठाणाणि उप्पज्जंति। पज्जवसाणाणुभागबंधट्ठाणं घादिय सेस-अट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु घादट्ठाणाणि किण्ण उप्पाइज्जंति ? ण, एवंविहगुरूवएसा-भावादो। जदि अट्ठंकुव्वंकाणं विच्चाले चेव घादट्ठाणाणमुप्पत्तिणियमो तो संखेज्जा-संखेज्जाणुभागबंधट्ठाणाणं घादेण ण होदव्वं ? ण, तेसु घादिज्जमाणेसु घादट्ठाणाणि मोत्तूण बंधट्ठाणाणं समुप्पत्तीदो। घादेणुप्पण्णाणं कथं बंधट्ठाणववएसो ? ण, बंधट्ठाण-

---

समाधान—अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण वृद्धिका भागहार है, क्योंकि उत्कृष्ट घाताध्यवसायस्थानकी अपेक्षा उससे अनन्तरवर्ती नीचेका घाताध्यवसायस्थान अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण भागहारका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आता है उतना कम है।

शंका—यह अपुनरुक्त कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, भिन्न भिन्न भागहारोंके द्वारा अपवर्तनको प्राप्त होनेवाले स्थान समान नहीं हो सकते।

इसी प्रकार त्रिचरम अनुभागबन्धस्थानका भी घात करने पर तीसरी परिपाटीसे अनुभागघाताध्यवसायस्थानोंकी संख्याके बराबर अपुनरुक्त अनुभागघातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। इसी प्रकार चतुःचरम अनुभागस्थानसे लेकर एक कम षट्स्थानमात्र पंच हानिस्थानोंके अन्तिम स्थान पर्यन्त घातिस्थानकी अपेक्षा असंख्यात लोक मात्र अपुनरुक्त घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। इस प्रकार एक कम षट्स्थानमात्र अनुभागबन्धस्थानोंकी अपेक्षा इतने ही घात-स्थान उत्पन्न होते हैं।

शंका—अन्तिम अनुभागबन्धस्थानका घात करके शेष अष्टांक और उर्वंकके बीचमें घातस्थान क्यों नहीं उत्पन्न किये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इस प्रकारका गुरुओंका उपदेश नहीं पाया जाता है ?

शंका—यदि अष्टांक और उर्वंकके बीचमें ही घातस्थानोंकी उत्पत्तिका नियम है, तो संख्यात और असंख्यात अनुभागबन्धस्थानोंका घात नहीं होना चाहिये।

समाधान—नहीं, क्योंकि उनका घात होनेपर घातस्थानोंकी उत्पत्ति न होकर बन्ध-स्थानोंकी उत्पत्ति होती है।

शंका—जो स्थान घातसे उत्पन्न होते हैं उन्हें बन्धस्थान कैसे कहा जा सकता है ?

मेवे त्ति घादेणुप्पण्णाणं पि बंधट्ठाणववएससिद्धीदो। संपहि अण्णेगो जीवो जो एग-छट्ठाणेणूणअसंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणधारओ तेण उक्कस्सपरिणामट्ठाणपरिणदेण संपहिय-चरिमउव्वंके घादिदे दुचरिमअट्ठंकस्स हेट्ठदो अणंतगुणहीणं तत्तो हेट्ठिमअणंतगुणहीण-उव्वंकट्ठाणादो अणंतगुणं होदूण अण्णं हदसमुप्पत्तियट्ठाणमुप्पज्जदि। पुणो दुचरिम-परिणामट्ठाणेण तम्मि चेव चरिमउव्वंके घादिदे विदियमणंतभागवड्ढिघादट्ठाणमुप्पज्जदि। पुणो तिचरिमादिविसोहिट्ठाणेहि तम्मि चेव चरिमउव्वंके घादिज्जमाणे परिणाम-ट्ठाणमेत्ताणि चेव हदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि उप्पज्जंति। किं पमाणाणि घादट्ठाण-हेदुपरिणामट्ठाणाणि ? रूवूणछट्ठाणब्भहियअसंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणपमाणाणि। पुणो दुचरिमुव्वंके तेहि चेव परिणामट्ठाणेहि पुव्वविहाणेण परिवाडीए घादिदे एत्थ वि परि-णामट्ठाणमेत्ताणं घादट्ठाणाणं पंती अपुणरुत्ता पुव्विल्लघादट्ठाणपंतीए हेट्ठदो उप्पज्जदि। पुणो तेहि चेव परिणामट्ठाणेहि पुव्वविहाणेण तिचरिमुव्वंके घादिदे एत्थ वि अणुभाग-घादज्झवसाणट्ठाणमेत्ताणि चेव हदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि विदियपंतीए हेट्ठदो पंतिया-गारेण उप्पज्जंति। एवं रूवूणछट्ठाणमेत्तेसु अणुभागबंधट्ठाणेसु घादिज्जमाणेसु रूवूण-छट्ठाणमेत्ताओ अणुभागघादज्झवसाणट्ठाणपमाणायदाओ घादट्ठाणपंतीओ उप्पज्जंति। एवमसंखेज्जलोगमेत्तबंधसमुप्पत्तियअट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु घादज्झवसाणट्ठाणपमाणा-

---

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्धस्थान ही हैं इसलिए घातसे उत्पन्न हुए स्थानोंकी भी बन्धस्थान संज्ञा सिद्ध होती है।

अब एक ऐसा जीव लो जो एक षट्स्थानसे कम असंख्यात लोकमात्र स्थानोंका धारक है। उत्कृष्ट परिणामस्थानसे युक्त उस जीवने साम्प्रतिक अन्तिम उर्वंकका घात किया है। घात करने पर उसके अन्य हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है जो द्विचरम अष्टांकसे नीचे अनन्तगुणा हीन और उससे नीचेके अनन्तगुणे हीन उर्वंकस्थानसे अनन्तगुणा होता है। पुनः द्विचरम परिणाम-स्थानसे उसी अन्तिम उर्वंकका घात किये जाने पर अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए दूसरा घातस्थान उत्पन्न होता है। पुनः त्रिचरम आदि विशुद्धिथानोंसे उसी अन्तिम उर्वंकका घात किये जाने पर परिणामस्थानोंकी संख्याके बराबर ही हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं।

शंका—घातस्थानोंके कारणभूत परिणामस्थानोंका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक कम षट्स्थान अधिक असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंका जितना प्रमाण है उतना है।

§ ६२३. पुनः पूर्व विधानके अनुसार क्रमवार उन्हीं परिणामस्थानोंसे द्विचरम उर्वंकका घात किये जाने पर यहां भी पहले कहे गये घातस्थानोंकी पंक्तिसे नीचे परिणामस्थानप्रमाण घातस्थानोंकी अपुनरुक्त पंक्ति उत्पन्न होती है। पुनः पूर्व विधानके अनुसार उन्हीं परिणामस्थानोंसे त्रिचरम उर्वंकका घात किये जाने पर यहां भी दूसरी पंक्तिसे नीचे पंक्तिरूपसे अनुभागघाताध्यव-सायस्थानप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार एक कम षट्स्थानप्रमाण अनुभागबन्धस्थानोंके घाते जाने पर एक कम षट्स्थानप्रमाण अनुभागघाताध्यवसायस्थानप्रमाण लम्बी घातस्थानपंक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक

यदाओ रूवूणछट्ठाणमेत्ताओ हदसमुप्पत्तियट्ठाणपंतीओ पादेक्कमुप्पादेदव्वाओ। णवरि सुहुमणिगोदअपज्जत्तबंधसमुप्पत्तियजहण्णसंतट्ठाणादो उवरि संखेज्जअट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु हदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि ण उप्पज्जंति। कुदो? साहावियादो। को सहावो? अंतरंगं कारणं। ण च एस णाओ अप्पसिद्धो, उक्कस्साणुभागघादहाणीदो तस्सेवुक्कस्सिया वड्ढी विसेसाहिया त्ति एवमादीसु एदस्स संववहारस्स पसिद्धिदंसणादो। अणुभागस्स उक्कस्सिया हाणी थोवा। तस्सेवुक्कस्सिया वड्ढी विसेसाहिया त्ति णव्वदे महाबंध-कसायपाहुडसुत्तेहिंतो। एत्थ पुण संखेज्जट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु हदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि णत्थि त्ति परूवयसुत्तेण विणा सहाओ दुरहिगम्मो त्ति। एत्थ परिहारो वुच्चदे। सव्वत्थोवा हाणी। वड्ढी विसेसाहिया त्ति जं सुत्तं तं कमाकमवड्ढि-हाणीओ अस्सिदूण जेणावट्ठिदं तेण दोण्हं पि अत्थाणमेदं चेव सुत्तं ति घेत्तव्वं। अक्कमवड्ढि-हाणीसु पसिद्धं सुत्तं एत्थ वि होदि त्ति कुदो णव्वदे? सुत्ताविरुद्धआइरिय-वयणादो। अट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु व अणंतभागवड्ढि-हाणि-असंखे०भागवड्ढि-हाणि-संखे०भागवड्ढि--हाणि--संखे०गुणवड्ढि-हाणि--असंखेज्जगुणवड्ढि--हाणीणं विचालेसु हद-

---

अष्टांक और उर्वंकके अन्तरालोंमें हतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी घाताध्यवसायस्थानप्रमाण लम्बी और संख्यामें एक कम षट्स्थानप्रमाण अलग-अलग पंक्तियाँ उत्पन्न करनी चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके बन्धसमुत्पत्तिक जघन्य सत्त्वस्थानसे ऊपर संख्यात अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

शंका—स्वभाव किसे कहते हैं?

समाधान—अन्तरंग कारणको स्वभाव कहते हैं। शायद कहा जाय कि यह जो उपपत्तिकी गई है कि संख्यात अष्टांक और उर्वंकके बीचमें स्वभावसे ही हतसमुत्पत्तिकस्थान नहीं उत्पन्न होते हैं, यह असिद्ध है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अनुभागघातकी उत्कृष्ट हानिसे उसीकी उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक होती है इत्यादिमें इस व्यवहारकी प्रसिद्धि देखी जाती है।

शंका—अनुभागकी उत्कृष्ट हानि थोड़ी है। उसीकी उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक है यह बात महाबन्धसे और कषायपाहुड़के चूर्णिसूत्रसे जानी जाती है। किन्तु यहां तो संख्यात अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें हतसमुत्पत्तिकस्थान नहीं होते हैं ऐसा कथन करनेवाला कोई सूत्र नहीं है, अत: उसके विना स्वभावका जानना कष्टसाध्य है।

समाधान—इस शंकाका समाधान करते हैं—हानि सबसे स्तोक है, वृद्धि उससे विशेष अधिक है यह सूत्र यत: क्रम और अक्रमसे होनेवाली वृद्धि और हानिको लिये हुए अवस्थित है, अत: दोनों ही अर्थोंके सम्बन्धमें यही सूत्र है ऐसा मानना चाहिये।

शंका—जो सूत्र अक्रमसे होनेवाली वृद्धि और हानिके अर्थमें प्रसिद्ध है वही सूत्र यहां भी लगता है यह कैसे जाना?

समाधान—सूत्रसे अविरुद्ध आचार्य वचनोंसे जाना।

शंका—अष्टांक और उर्वंकके बीचकी तरह अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि, असंख्यात-भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यात-

समुप्पत्तियट्ठाणाणि णत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? एत्थेव कसायपाहुडे अणुभागसंकमो णाम अत्थाहियारो, तत्थ चउवीसअणियोगद्दारेसु सभुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढीसु समत्तेसु पुणो अणुभागट्ठाणपरूवणं कुणदि—एत्तो ट्ठाणाणि कादव्वाणि। जहा संतकम्मट्ठाण-परूवणा कदा संकमट्ठाणपरूवणा कायव्वा। उक्कस्सए अणुभागवंधट्ठाणे एगं संतकम्मं तमेगं संकमट्ठाणं। दुचरिमे अणुभागवंधट्ठाणे एवमेव। एवं ताव जाव पच्छाणुपुव्वीए पढममणंतगुणहीणबंधट्ठाणमपत्तं ति। पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे जं चरिममणंतगुणं वंधट्ठाणं तस्स हेट्ठा अणंतरमणंतगुणहीणं एदम्मि अंतरे असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि। ताणि संतकम्मट्ठाणाणि। ताणि चेव संकमट्ठाणाणि। तदो पुणो वंधट्ठाणाणि च संकमट्ठाणाणि च ताव तुल्लाणि जाव पच्छाणुपुव्वीए विदियमणंतगुणहीणं वंधट्ठाणं। विदियस्स अणंतगुणहीणवंधट्ठाणस्स उवरिल्ले अंतरे असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि। एवमणंतगुणहीणवंधट्ठाणस्स उवरिल्ले अंतरे असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्ठाणाणि भवंति णत्थि अण्णम्हि कम्हि वि त्ति एदम्हादो विउलगिरिमत्थयत्थवड्ढमाणदिवायरादो विणिग्गमिय गोदम-लोहज्ज-जंबुसामियादि-आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं पाविय गाहासरूवेण परिणमिय अज्जमंखु-णागहत्थीहिंतो जइवसहायरियमुवणमिय चुण्णिसुत्तायारेण परिणददिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे। एदाणि हदसमुप्पत्तिय-

गुणहानि, असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके अन्तरालोंमें हतसमुत्पत्तिकस्थान नहीं होते यह कैसे जाना ?

समाधान—इसी कसायपाहुडमें अनुभागसंक्रम नामका अर्थाधिकार है। उसमें भुजकार, पदनिक्षेप और वृद्धि अधिकारके साथ साथ चौबीस अनुयोगद्वारोंके समाप्त होनेपर अनुभाग-स्थानका कथन इस प्रकार है—अब संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये। जिस प्रकार अनुभागसत्कर्मस्थानोंका कथन किया है उसी प्रकार संक्रमस्थानोंका भी कथन करना चाहिये। उत्कृष्ट बन्धस्थानमें एक सत्कर्म है वह एक संक्रमस्थान है। द्विचरम अनुभागबन्धस्थानमें भी इसी प्रकार पश्चादानुपूर्वीके क्रमसे तब तक ले जाना चाहिये जब तक प्रथम अनन्तगुणहीन बन्धस्थानको नहीं प्राप्त हुआ है। पूर्वानुपूर्वीसे गिनने पर जो अन्तिम अनन्तगुण बन्धस्थान और उससे नीचे अनन्तर अनन्तगुणहीन बन्धस्थान है इस बीचमें असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान उत्पन्न होते हैं। ये सत्कर्मस्थान हैं और ये ही संक्रमस्थान हैं। इसके बाद पश्चादानुपूर्वीसे दूसरे अनन्तगुणहीन बन्धस्थान पर्यन्त बन्धस्थान और संक्रमस्थान बराबर हैं। दूसरे अनन्तगुणहीन बन्धस्थानके ऊपरके अन्तरमें असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान होते हैं। इस प्रकार अनंतगुणहीन बन्धस्थानके ऊपरके अन्तरमें असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान होते हैं अन्यमें नहीं होते, इस प्रकार विपुलाचलके ऊपर स्थित भगवान महावीररूपी दिवाकरसे निकल कर गौतम, लोहाय, जम्बूस्वामी आदि आचार्य परम्परासे आकर, गुणधराचार्यको प्राप्त होकर वहां गाथा-रूपसे परिणमन करके पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ती आचार्यके द्वारा आचार्य यतिवृषभको प्राप्त होकर उक्त चूर्णिसूत्ररूपसे परिणत हुई दिव्यध्वनिरूपी किरणसे जाना जाता है।

ट्ठाणाणि बंधसमुप्पत्तियट्ठाणेहिंतो असंखेज्जगुणाणि । को गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। बंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणि अंगुलस्स असंखे०भागेणोवट्टिय लद्धे असंखे०लोगेण गुणिदे हदसमुप्पत्तियट्ठाणाणंप माणुप्पत्तीदो ।

ये हतसमुत्पत्तिक स्थान बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातगुणे होते हैं। यहाँ पर गुणकारका प्रमाण क्या है? असंख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि वन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंको अंगुलके असंख्यातवें भागसे भाजित करके जो लब्ध आता है उसे असंख्यात लोकसे गुणित करने पर हतसमुत्पत्तिक स्थानोंकी संख्या उत्पन्न होती है ।

विशेषार्थ—वन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करके हतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते हैं। जो अनुभागस्थान वन्धसे उत्पन्न होते हैं उन्हें बन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। सत्तामें स्थित अनुभागका घात करनेपर जो स्थान उत्पन्न होते हैं उनमेंसे भी कुछ स्थान वध्यमान अनुभाग स्थानके समान होते हैं वे वन्धसमुत्पत्तिक स्थान कहे जाते हैं। किन्तु जो अनुभागस्थान घातसे ही उत्पन्न होते हैं वन्धसे उत्पन्न नहीं होते उन्हें हतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। ये हतसमुत्पत्तिक स्थान वन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातगुणे होते हैं। उनका कथन इस प्रकार है—सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य अनुभागस्थानसे लेकर उत्कृष्ट अनुभागस्थान तकके असंख्यात लोकप्रमाण वन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक पंक्ति दाहिनी ओर रक्खो और वन्ध स्थानोंके अनुभागका घात करने में कारण, जघन्य परिणामस्थानसे लेकर उत्कृष्ट परिणाम स्थान तकके जो असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं, उन्हें बाईं ओर रखो। एक जीवने सर्वोत्कृष्ट घातपरिणामस्थानके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थानका घात किया। ऐसा करनेसे अन्तिम अनन्तगुणवृद्धि स्थान रूप अष्टांक और उससे अनन्तरवर्ती नीचेके उर्वंक इन दोनोंके बीचमें हत-समुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है जो कि उस अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन और उक्त उर्वंकसे अनन्तगुणा अनुभागवाला होता है। यह समुत्पत्तिकस्थान सवसे जघन्य होता है, क्योंकि सर्वोत्कृष्ट परिणामोंके द्वारा घाता जाकर उत्पन्न होता है। दूसरे एक जीवने उत्कृष्ट विशुद्धिस्थान से नीचेके द्विचरिम विशुद्धिस्थानके द्वारा ऊपरके उर्वंकका घात किया। ऐसा करने पर अष्टांक और उर्वंकके बीचमें पहलेके उत्पन्न हुए हतसमुत्पत्तिकस्थानसे ऊपर दूसरा हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। यह स्थान पहलेके जघन्य स्थानसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है। अर्थात् अभव्य-राशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण भागहारसे जघन्य हतसमुत्पत्तिकस्थानमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसी जघन्य स्थानमें जोड़ देनेपर दूसरा अनुभागस्थान होता है। पहले वन्धस्थानमें भागहार और गुणकार अनन्तप्रमाण सर्व जीवराशि वतला आये हैं और यहां हतसमुत्पत्तिकस्थानमें उसका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण वतलाया है। इसका कारण यह है कि घातस्थानोंकी उत्पत्तिके कारण जो विशुद्धिस्थान हैं उनमें भी गुणकार और भागहारका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भाग ही है, अतः कारणके गुणकार और भागहारसे कार्य जो घातस्थान हैं उनका गुणकार और भागहार जुदा नहीं हो सकता। तथा यदि अनन्तका प्रमाण सर्व जीवराशि ही माना जावे तो उससे घातस्थानको गुणा करनेपर अष्टांकसे अनन्तगुणा घातस्थान होगा, किन्तु अष्टांकसे ऊपर घात-स्थानकी उत्पत्तिका निषेध है। सभी घातस्थान अष्टांक और उर्वंकके बीचमें उत्पन्न होते हैं ऐसा शास्त्रोंका कथन है। अस्तु, किसी अन्य तीसरे जीवके द्वारा उक्त द्विचरिम विशुद्धिस्थानके नीचेके त्रिचरम विशुद्धिस्थानके द्वारा उसी अन्तिम उर्वंकका घात किये जानेपर तीसरा हतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न होता है। शायद कोई कहे कि एक अन्तिम उर्वंकसे अनेक हतसमुत्पत्तिक स्थान कैसे

उत्पन्न हो सकते हैं तो इसका यह समाधान है कि घातके कारण परिणामोंके भेदसे घात होकर शेष बचे अनुभागमें भेद हो जाता है, अतः घातस्थान अनेक बन जाते हैं। किसी अन्य चौथे जीवके द्वारा उक्त विशुद्धिस्थानके नीचेके चतुश्चरिम विशुद्धिस्थानके द्वारा उक्त अन्तिम उर्वंकका घात किये जाने पर चौथा अनन्तभागवृद्धि युक्त घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार पंचचरिम, और षट्चरिम आदि विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम उर्वंकका घात करते करते तब तक हतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक सर्व जघन्य विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम उर्वंकका घात हो। इस प्रकार असंख्यात लोक षट्स्थानप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान होते हैं। बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अन्तिम उर्वंकको लेकर अन्तिम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें हतसमुत्पत्तिकस्थान इतने ही उत्पन्न होते है अधिक नहीं,क्योंकि कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। इन स्थानोंकी उत्पत्तिके कारण हैं—छह प्रकारकी वृद्धिको लिये हुए विशुद्धिस्थान। उनसे विशुद्धिस्थानप्रमाण ही स्थान उत्पन्न होते हैं। इसके बाद अन्तिम विशुद्धस्थानके द्वारा अन्तिम द्विचरम उर्वंकका घात किये जाने पर सर्व जघन्य स्थानसे नीचे अनन्तभागहीन होकर दूसरा अपुनरुक्त हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। ऊपरके स्थानको रूपाधिक सर्व जीवराशिसे भाजित करनेपर जो लब्ध आता है उतना यह स्थान ऊपरके स्थानसे हीन होता है, क्योंकि उत्कृष्ट उर्वंकसे द्विचरम उर्वंक भी इतना ही हीन है और दोनोंका घात समान परिणामके द्वारा हुआ है अतः इससे जो स्थान उत्पन्न होते हैं, उनमें भी उतना ही अन्तर होना चाहिये। पुनः द्विचरम परिणामके द्वारा उसी द्विचरम उर्वंकका घात किये जानेपर दूसरा घातस्थान उत्पन्न होता है। इसी प्रकार त्रिचरम आदि विशुद्धिस्थानोंसे द्विचरम उर्वंकका घात करनेपर परिणामों के बराबर ही घातस्थान उत्पन्न होते हैं। यह घातस्थानोंकी दूसरी पंक्ति हुई। इसी प्रकार उक्त परिणामस्थानोंके द्वारा त्रिचरम उर्वंक, चतुश्चरम उर्वंक, पंचचरम उर्वंक आदि उर्वंकोंका घात कर करके घातस्थानोंकी तीसरी, चौथी, पाँचवीं आदि पंक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट आदि सब परिणामोंके द्वारा शेष बन्धस्थानोंका भी घात करके घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। ऐसा करनेसे घातस्थानोंकी चौड़ाई षट्स्थानप्रमाण और लम्बाई विशुद्धिस्थानप्रमाण होती है। इस प्रकर उत्पन्न हुए सब स्थान अपुनरुक्त ही होते हैं, क्योंकि उनमें समानता होनेका कोई कारण ही नहीं है। यथा—पहली पंक्तिके पहले स्थानमें रूपाधिक सर्व जीवराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतना उस स्थानसे दूसरी पंक्तिका पहला स्थान हीन है और दूसरी पंक्तिके पहले स्थानमें अभव्य राशिसे अनन्तगुणे या सिद्धराशिके अनन्तवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना दूसरी पंक्तिके पहले स्थानसे दूसरा स्थान अधिक है। इस प्रकार सभी पंक्तियोंके दूसरे स्थान परस्परमें असमान हैं। इसीसे सभी पंक्तियोंके सब स्थानोंमें असमानताका विचार कर लेना चाहिये। अब द्विचरम अष्टांकसे नीचे और उसके अनन्तरवर्ती नीचेके उर्वंकसे ऊपर दोनों बन्धस्थानोंके बीचमें उत्पन्न होनेवाले घातस्थानोंको कहते हैं। एक जीवने उत्कृष्ट परिणामके द्वारा एक षट्स्थानहीन उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका घात किया। ऐसा करनेसे द्विचरम अष्टांकसे नीचे अनन्तगुणा हीन होकर और उसीके नीचेके उर्वंकसे ऊपर अनन्तगुणा होकर हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। पुनः द्विचरम परिणामस्थानके द्वारा उसी अन्तिम उर्वंकका घात करने पर दूसरा अनन्तभागवृद्धि युक्त घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार यहाँ पर भी पहले विधानके अनुसार त्रिचरम आदि विशुद्धिस्थानोंके द्वारा उसी अन्तिम उर्वंकका घात करके परिणामस्थानोंकी संख्याके बराबर घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। फिर अन्तिम परिणामके द्वारा द्विचरम बन्धस्थानका घात करने पर अन्य घातस्थान उत्पन्न होता है जो पहलेके जघन्य स्थानसे अनन्तगुणा हीन होता है। पुनः द्विचरम परिणामके द्वारा

* हदहदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि ।

§ ६२१. एवं घादट्ठाणपरूवणं कादूण संपहि हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणं परूवणं कस्सामो। तं जहा—पुव्वविहाणेण जहण्णविसोहिट्ठाणप्पहुडि जाव उक्कस्सविसोहिट्ठाणे त्ति ताव एदासिमसंखेज्जलोगमेत्तघादहेदुविसोहिछट्ठाणाणमेगसेढिआगारेण रयणं कादूण पुणो एदेसिं दक्खिणपासे सुहुमणिगोदअपज्जत्तजहण्णाणुभागबंधट्ठाणप्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्तबंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणं च एगसेढिआगारेण रचणं कादूण पुणो सुहुमणिगोदअपज्जत्तजहण्णट्ठाणादो उवरि संखेज्जछट्ठाणअट्ठंकुव्वंकाणमंतराणि मोत्तूण सेसासेसछट्ठाणाणमट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु असंखे०लोगमेत्ताणं हदसमुप्पत्तियट्ठाणाणं च पादेक्कमेगसेढियागारेण रचणं काऊण पुणो चरिमबंधसमुप्पत्तियअट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालिमअसंखे०लोगमेत्तहदसमुप्पत्तियछट्ठाणाणं च पादेक्कमेगचरिमउव्वंके उक्कस्स-

---

उसी द्विचरम बन्धस्थानका घात करने पर अन्य घातस्थान उत्पन्न होता है जो पहलेके स्थानसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक होता है। इस प्रकार सब परिणामोंके द्वारा द्विचरम, त्रिचरम आदि अनुभागबन्धस्थानोंका घात करके अष्टांक और उर्वंकके बीचमें घातस्थानोंकी षट्स्थान पंक्तियाँ उत्पन्न करनी चाहिये। इस प्रकार द्विचरम अष्टांक और उससे नीचेके उर्वंकके बीचमें घातस्थानोंका कथन किया। अब दो षट्स्थानहीन अनुभागबन्धस्थानका घात करके त्रिचरम अष्टांक और उससे नीचेके उर्वंकके बीचमें घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। ऐसा करनेसे त्रिचरम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें उत्पन्न होनेवाले असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंका कथन समाप्त होता है। इसी प्रकार चतुश्चरम, पंचचरम आदि असंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें पूर्व-पश्चिम लम्बा और दक्षिण-उत्तर चौड़ा असंख्यात लोकमात्र घातस्थानोंका पटल उत्पन्न होता है। सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य स्थानके ऊपर संख्यात बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंको छोड़कर ऊपरके असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें ये घातस्थान उत्पन्न होते हैं, सबमें नहीं। और यह बात इसी कसायपाहुडके अनुभागसंक्रम नामक प्रकरणमें आये हुए चूर्णिसूत्रोंसे जानी जाती है। इस प्रकार हतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन जानना चाहिये।

* हतहतसमुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणे हैं।

§ ६२१. इस प्रकार घातस्थानोंका कथन करके अब हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—पहले कही गई विधिके अनुसार जघन्य विशुद्धिस्थानसे लेकर उत्कृष्ट विशुद्धिस्थान पर्यन्त घातके कारण इन असंख्यात लोकप्रमाण विशुद्धि युक्त षट्स्थानोंकी एक पंक्तिके रूपमें रचना करो। पुनः उनके दक्षिण भागमें सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य अनुभागबन्धस्थानसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक पंक्तिके रूपमें रचना करो। पुनः सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य स्थानसे ऊपर संख्यात षट्स्थानोंके अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंको छोड़कर बाकीके सब षट्स्थानोंके अष्टांक और उर्वंकोंके प्रत्येक अन्तरालमें असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक पंक्तिके रूपमें रचना करो। पुनः अन्तिम बन्धसमुत्पत्तिक अष्टांक और उर्वंकके मध्यवर्ती असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिक षट्स्थानोंके प्रत्येक एक उर्वंकका उत्कृष्ट परिणामस्थानसे घात किये जाने पर,

परिणामट्ठाणेण घादिदे चरिमअट्ठंकादो हेट्ठा अणंतगुणहीणं तस्सेव हेट्ठिमउव्वंकट्ठाणादो अणंतगुणं होदूण दोण्हं पि अंतरे पढमं हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणमुप्पज्जिदि । पुणो अणंतभागहीणदुचरिमविसोहिट्ठाणेण तम्मि चेव उक्कस्साणुभागे घादिदे पुव्वुप्पण्णट्ठाणादो उवरि अणंतभागब्भहियं होदूण विदियं हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणमुप्पज्जदि । एवं जत्तियाणि विसोहिट्ठाणाणि अत्थि तेहि सव्वेहि वि णाणाजीवे अस्सिदूण चरिमउव्वंके घादिदे चरिमअट्ठंकुव्वंकाणं विचाले परिणामट्ठाणमेत्ताणि हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि उप्पज्जंति । पुणो सव्वविसोहिट्ठाणेहि दुचरिमउव्वंके घादिदे सव्वजहण्णहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणादो हेट्ठा अणंतभागहीणट्ठाणमादिं कादूण विसोहिट्ठाणमेत्ताणि हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि उप्पज्जंति । एवं तिरूवूणछट्ठाणब्भंतरतिचरिमादिसव्वट्ठाणेसु परिवाडीए सव्वविसोहिट्ठाणेहि घादिदेसु विसोहिट्ठाणआयामरूवूणछट्ठाणविक्खंभमेत्ताणि हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि उप्पण्णाणि होंति। एवं दुचरिम-तिचरिम-चदुचरिमादिअट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि उप्पादेदव्वाणि जाव सव्वहदसमुप्पत्तियअट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसुप्पण्णाणि त्ति । एवं चरिमबंधसमुप्पत्तियअट्ठंकुव्वंकाणमंतरे अवट्ठिदअसंखेज्जलोगमेत्तहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणमसंखेज्जलोगमेत्तअट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु रूवूणछट्ठाणविक्खंभाणि विसोहिट्ठाणायदाणि हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदराणि समुप्पण्णाणि होंति । पुणो पच्छाणुपुव्वीए ओदरिदूण बंधसमुप्पत्तियदुचरिमअट्ठंकुव्वंकाणमंतरे अवट्ठिदअसंखेज्जलोगमेत्तहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणमट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु सव्वेसु

चरम अष्टांकसे नीचे अनन्तगुणा हीन और उसीके नीचेके उर्वंक स्थानसे अनन्तगुणा होकर दोनोंके बीचमें पहला हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। पुनः अनन्तभागहीन द्विचरम विशुद्धिस्थानसे इसी उत्कृष्ट अनुभागके घाते जानेपर पूर्व उत्पन्न हुए स्थानसे ऊपर अनन्तभागवृद्धिको लिए हुए दूसरा हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा जितने विशुद्धिस्थान हैं उन सभीसे अन्तिम उर्वंकका घात किये जानेपर अन्तिम अष्टांक और उर्वंकके बीच में परिणामस्थानोंकी संख्याके बराबर ही हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। पुनः सब विशुद्धिस्थानोंसे द्विचरम उर्वंकका घात किये जानेपर सबसे जघन्य हतहतसमुत्पत्तिकस्थानसे नीचे अनन्तभागहीन स्थानसे लेकर विशुद्धिस्थानोंकी संख्याके बराबर हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार तीन कम षट्स्थानोंके अन्तवर्ती त्रिचरम आदि सब स्थानोंके एक एक करके सर्वविशुद्धिस्थानोंके द्वारा घाते जाने पर विशुद्धिस्थान प्रमाण लम्बे और एक कम षट्स्थानप्रमाण चौड़े हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते है। इस प्रकार द्विचरम, त्रिचरम, चतुःचरम आदि अष्टांक और उर्वंकके बीचमें तब तक हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक सब हतसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोके बीचमें स्थान उत्पन्न हों। इस प्रकार अन्तिम बन्धसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकके बीचमें स्थित असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानोंके असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें एक कम षट्स्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हतहतसमुत्पत्तिकस्थान प्रतर उत्पन्न होते हैं। पुनः क्रमसे पश्चादानुपूर्वीसे उतर कर, बन्धसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी द्विचरम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें स्थित असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी सब अष्टांक

वि रूवूणछट्ठाणविक्खंभविसोहिपमाणायदहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदराणि एवं चेव उप्पादेदव्वाणि। पुणो हेट्ठा ओसरिदूण बंधसमुप्पत्तियतिचरिमअट्ठंकुव्वंकाणमंतरे अवट्ठिदरूवूणछट्ठाणविक्खंभविसोहिट्ठाणपमाणायदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदरस्स असंखेज्जलोगमेत्तअट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु रूवूणछट्ठाणविक्खंभविसोहिट्ठाणपमाणायदहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदराणि वि एवं चेव उप्पादेदव्वाणि। एवं बंधसमुप्पत्तियचदुचरिमअट्ठंकुव्वंकाणमंतरमादिं कादूण हेट्ठा अप्पडिसिद्धबंधसमुप्पत्तियअट्ठंकुव्वंकंतरमंतं कादूण अवट्ठिदसव्वअट्ठंकुव्वंकाणमंतरेसु रूवूणछट्ठाणविक्खंभेण विसोहिट्ठाणायामेण संट्ठिदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदराणमसंखेज्जलोगमेत्तअट्ठंकुव्वंकंतरेसु रूवूणछट्ठाणविक्खंभविसोहिट्ठाणायदहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदराणि अव्वामोहेण उप्पादेदव्वाणि। जहा बंधसमुप्पत्तियट्ठाणाणं हेट्ठिमसंखेज्जट्ठंकुव्वंकाणमंतरेसु घादट्ठाणाणं पडिसेहो कदो तहा एत्थ हेट्ठिमसंखेज्जाणं घादट्ठाणट्ठंकुव्वंकाणमंतरेसु घादघादट्ठाणाणि ण उप्पज्जंति त्ति पडिसेहो ण कायव्वो, बंधट्ठाणेसु पवत्तणसहावस्स पडिसेहस्स घादट्ठाणेसु पउत्तिविरोहादो।

एवं हदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपरूवणा कदा।

और उर्वंकोंके बीचमें, एक कम षट्स्थानप्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हतहतसमुत्पत्तिकस्थानरूपी प्रतर इसी प्रकार उत्पन्न करने चाहिये। पुनः नीचेकी ओर उतर कर बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी त्रिचरम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें स्थित एक कम षट्स्थानप्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हतसमुत्पत्तिकस्थानरूपी प्रतरके असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें एक कम षट्स्थानप्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंके प्रतर भी इसी प्रकार उत्पन्न करने चाहिये। इस प्रकार बन्धसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी चतुःचरम अष्टांक और उर्वंकके अन्तरसे लेकर नीचे अप्रतिसिद्ध बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकके अन्तर पर्यन्त अष्टांक और उर्वंकके सब अन्तरालोंमें एक कम षट्स्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे जो हतसमुत्पत्तिकस्थानरूपी प्रतर स्थित हैं उनके असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें एक कम षट्स्थानप्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंके प्रतर भ्रान्ति रहित होकर उत्पन्न करने चाहिये। जैसे बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंके नीचेके संख्यात अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालमें घातस्थानोंके होनेका निषेध किया है वैसे ही यहां नीचेके संख्यात घातस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें घातघातस्थान नहीं उत्पन्न होते हैं ऐसा निषेध नहीं करना चाहिये; क्योंकि जिस प्रतिषेधकी प्रवृत्ति स्वभावसे ही बन्धस्थानोंमें होती है उसकी घातस्थानोंमें प्रवृत्ति होनेमें विरोध आता है। अर्थात् घातस्थानोंके सब अष्टांक और उर्वंक सम्बन्धी अन्तरालोंमें घातघातस्थान उत्पन्न करने चाहिये।

विशेषार्थ—अब हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते हैं। जघन्य विशुद्धिस्थानसे लेकर उत्कृष्ट विशुद्धिस्थान पर्यन्त असंख्यात लोकप्रमाण जो विशुद्धिस्थान घाते गये अनुभागसे शेष बचे अनुभागके घातके कारण हैं उनकी एक पंक्ति रूपसे रचना करो और उनकी दाहिनी

§ ६४३. संपहि तदियवारहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणं परूवणं कस्सामो। बंध-समुप्पत्तियचरिमअट्ठंकुव्वंकाणं विच्चाले संट्ठिदरूवूणछट्ठाणविक्खंभविसोहिट्ठाणपमाणायदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदरस्स असंखेज्जलोगमेत्तअट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु रूवूणछट्ठाण-विक्खंभेण विसोहिट्ठाणपमाणायमेण अवट्ठिदअसंखेज्जलोगमेत्तहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपद-राणमसंखेज्जलोगमेत्तअट्ठंकुव्वंकाणं विच्चालेसु रूवूणछट्ठाणविक्खंभविसोहिट्ठाणपमा-

और सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य स्थानसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंकी एक पंक्ति रूपसे रचना करो। फिर सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य स्थानसे ऊपरके संख्यात पट्स्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंको छोड़कर उसके बादके असंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें असंख्यात लोक-प्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी रचना करो। अब अन्तिम बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिक षट्स्थान सम्बन्धी अन्तिम उर्वंकका उत्कृष्ट परिणामसे घात करने पर अष्टांक और उर्वंकके बीचमें पहला हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होता है जो अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन होता है और उसके नीचेके उर्वंकसे अनन्तगुणा होता है। पुनः उत्कृष्ट परिणामसे अनन्तगुणे हीन द्विचरम परिणामस्थानके द्वारा उसी अन्तिम उर्वंकका घात करने पर दूसरा हतहतसमुत्पत्तिकस्थान होता है। यह स्थान पहले स्थानसे अनन्तवें भाग अधिक अनुभागवाला होता है, क्योंकि पहलेके विशुद्धिस्थानसे अनन्तवें भाग हीन दूसरे विशुद्धिस्थानके द्वारा घाता गया है। इस प्रकार जितनी जितनी हानिसे युक्त परिणाम स्थानके द्वारा अन्तिम उर्वंकका घात किया जाता है उतने उतने अधिक अनुभागवाला हतहत-समुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार करने पर अन्तिम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें परिणामस्थानोंकी संख्याके बराबर ही हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। पुनः उत्कृष्ट परिणामस्थानके द्वारा द्विचरम उर्वंकका घात करने पर दूसरी पंक्तिका पहला हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होता है। यह स्थान सबसे जघन्य हतहतसमुत्पत्तिकस्थानसे अनन्तवें भाग हीन होता है। इस प्रकार इस अनुभागस्थानका घात करके परिणामस्थानोंकी संख्याके बराबर हतहत-समुत्पत्तिक स्थान पहलेकी तरह उत्पन्न कर लेने चाहिये। पुनः उसी उत्कृष्ट परिणामस्थानके द्वारा त्रिचरम उर्वंकका घात करने पर दूसरी पंक्तिके जघन्य स्थानसे अनन्तवें भाग हीन तीसरी पंक्तिका पहला स्थान होता है। इस प्रकार इस पंक्तिमें भी परिणामस्थानोंकी संख्याके बराबर ही हतहतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न होते हैं। इस तरह द्विचरम आदि हतसमुत्पत्तिक स्थानोंको क्रमसे घात कर परिणामस्थान प्रमाण हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होते हैं। इन स्थानोंका पटल भी षट्स्थान प्रमाण चौड़ा और परिणामस्थान प्रमाण लम्बा होता है।

इस प्रकार हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन किया।

§ ६२५. अब तीसरी बार हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते हैं। बन्धसमुत्पत्तिक-स्थान सम्बन्धी अन्तिम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें स्थित, एक कम पट्स्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थान प्रमाण लम्बे हतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी प्रतरके असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें एक कम षट्स्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थान प्रमाण लम्बे रूपसे स्थित असंख्यातप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थानरूप प्रतरोंके असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उर्वंकोंके अन्तरालोंमें एक कम षट्स्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे

णायदहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणपदराणमसंखेज्जलोगमेत्ता समुप्पत्ती परूवेदव्वा। एवं सेस-बंधसमुप्पत्तियअट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु ट्ठिदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि घादिय घादट्ठाणाणं परूवणाए कदाए घादट्ठाणाणं तदियपरिवाडीए परूवणा समत्ता होदि। एवमुप्पण्णुप्पण्ण-घादट्ठाणट्ठंकुव्वंकाणं विचालेसु घादट्ठाणाणि ताव उप्पादेदव्वाणि जाव संखेज्जाओ परिवाडीओ गदाओ त्ति। एत्तो उवरि घादट्ठाणाणि ण उप्पज्जंति त्ति तं कुदो णव्वदे? सुत्ताविरुद्धाइरियवयणादो। एदाणि सव्वहदहदसमुप्पत्तियट्ठाणाणि हदसमुप्पत्तियट्ठाणे-हिंतो असंखेज्जगुणाणि। को गुणगारो? असंखेज्जा लोगा। एवं मिच्छत्तस्स ट्ठाण-परूवणा कदा।

असंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थानरूपी प्रतरोंकी उत्पत्तिका कथन करना चाहिये। इस प्रकार शेष बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बधी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें स्थित हतसमुत्पत्तिकस्थानों का घात करके घातस्थानोंकी प्ररूपणा करने पर तीसरी परिपाटीसे घातस्थानोंका कथन समाप्त होता है। इस प्रकार पुनः पुनः उत्पन्न हुए घातस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें तब तक घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक संख्यात परिपाटियां समाप्त हों।

शंका—संख्यात परिपाटियां समाप्त होनेपर घातस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं यह कैसे जाना जाता है।

समाधान—सूत्रके अविरुद्ध आचार्य वचनोंसे जाना जाता है।

ये सब हतहतसमुत्पत्तिकस्थान हतसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातगुणे हैं। गुणकारका प्रमाण क्या है? असंख्यात लोक है। अर्थात् हतहतसमुत्पत्तिकस्थान हतसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातलोकगुणे हैं। इस प्रकार मिथ्यात्व प्रकृतिके स्थानोंका कथन किया।

विशेषार्थ—अब हतहतसमुत्पत्तिक स्थानोंका कथन दूसरी परिपाटीसे करते हैं। बन्ध-समुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अन्तिम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें असंख्यात लोकप्रमाण हत-समुत्पत्तिकस्थान होते हैं। तथा हतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अन्तिम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें असंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थान होते हैं। प्रथम परिपाटीसे उत्पन्न हतहत-समुत्पत्तिक स्थान सम्बन्धी अन्तिम अष्टांक और उर्वंकके बीचमें दूसरी परिपाटीसे असंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होते हैं। इसी प्रकार इन्हीं स्थानोंके द्विचरम, त्रिचरम, चतुश्चरम, पंचचरम आदि हतहतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें दूसरी परिपाटीसे असंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न करने चाहिये। इस प्रकार प्रथम परिपाटीसे उत्पन्न हुए हतहतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें दूसरी परिपाटीसे हतहतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न करने चाहिये। ऐसा करनेसे हतहत-समुत्पत्तिकस्थानोंकी दूसरी परिपाटी समाप्त होती है। दूसरी परिपाटीसे उत्पन्न हुए हतहतसमु-त्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें फिर भी असंख्यात लोकप्रमाण हतहत-समुत्पत्तिकस्थानोंको तीसरी परिपाटीसे उत्पन्न करने पर हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी तीसरी परिपाटी समाप्त होती है। इस प्रकार अनन्तर उत्पन्न हुए अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें तब तक घातघातस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक संख्यात परिपाटियां हों। किन्तु अन्तिम घात-घातस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वंकोंके बीचमें घातघातस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि सबसे अन्तिम घातघातस्थानोंका घात नहीं होता। और यह बात आचार्य वचनोंसे जानी

❀ सोलसकसाय-णवणोकसायाणं मिच्छत्तस्सेव तिविहा ट्ठाणपरूवणा कायव्वा ।

§ ६४३. विसेसाभावादो ।

§ ६४४. संपहि एदेण सुत्तेण देसामासिएण सूचिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा—लदासमाणजहण्णफद्दयप्पहुडि जाव दारुसमाण-देसघादिउक्कस्सफद्दए त्ति ताव एदाणि अभवसिद्धिएहि अणंतगुण-सिद्धाणमणंतिम-भागमेत्तफद्दयाणि घेत्तूण सम्मत्तस्स एगमुक्कस्साणुभागट्ठाणं होदि । पुणो अपुव्वकरणे पढमाणुभागखंडए घादिदे विदियमणुभागट्ठाणं होदि । एवं पढमाणुभागकंडयप्पहुडि जाव अट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मं चेट्ठदि त्ति ताव एदम्मि अंतरे अणुभागकंडयघाद-मस्सिदूण संखेज्जसहस्साणुभागट्ठाणाणि लब्भंति, दुचरिमादिफालीओ अस्सिदूण अणु-भागट्ठाणुप्पत्तीए अभावादो । पुणो अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मप्पहुडि जाव एगा ट्ठिदी एग-समयकाला ताव एदम्मि अंतरे अंतोमुहुत्तमेत्ताणि अणुभागट्ठाणाणि लब्भंति, सम्मत्तस्स एत्थ अणुसमयओवट्टणाए उवलंभादो । का अणुसमयओवट्टणा ? उदय-उदया-वलियासु पविस्समाणट्ठिदीणमणुभागस्स उदयावलियवाहिरट्ठिदीणमणुभागस्स य समयं

जाती है कि घातस्थानोंकी संख्यात परिपाटियाँ वीत जाने पर सबसे अन्तमें घातसे जो अनुभाग शेष रहता है उसका पुनः घात नहीं होता । इस प्रकार सबसे थोड़े वन्धसमुत्पत्तिकस्थान हैं, उनसे असंख्यातगुणे हतसमुत्पत्तिकस्थान हैं और उनसे भी असंख्यातगुणे हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होते हैं। ये स्थान मिथ्यात्व प्रकृतिके अनुभागको लेकर कहे गये हैं ।

※ सोलह कषाय और नव नोकषायोंके तीन प्रकारके स्थानोंका कथन मिथ्यात्वकी ही तरह करना चाहिये ।

§ ६२६. क्योंकि दोनोंके कथनमें कोई भेद नहीं है ।

§ ६२७. अब इस सूत्रके द्वारा देशामर्शकरूपसे सूचित सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके स्थानोंका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है–लतासमान जघन्य स्पर्धकसे दारु समान उत्कृष्ट देशघाती स्पर्धक पर्यन्त अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें-भाग मात्र स्पर्धकोंको लेकर सम्यक्त्व प्रकृतिका एक उत्कृष्ट अनुभागस्थान होता है। पुनः अपूर्वकरणमें प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर दूसरा अनुभागस्थान होता है। इस प्रकार प्रथम अनुभागकाण्डकसे लेकर जब तक आठ वर्ष प्रमाण स्थितिकी सत्ता रहती है तब तक इस अन्तरमें अनुभागकाण्डकघातकी अपेक्षा संख्यात हजार अनुभागस्थान प्राप्त होते हैं; क्योंकि द्विचरम आदि फालियोंकी अपेक्षा अनुभागस्थानकी उत्पत्ति नहीं होती। पुनः आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर जब तक एक समयकी स्थिति रहती है तब तक इस अन्तरमें अन्तर्मुहूर्त मात्र अनुभागस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि यहां सम्यक्त्व प्रकृतिकी प्रति समय अपवर्तना पाई जाती है।

शंका–प्रति समय अपवर्तना किसे कहते हैं ?

समाधान–उदय और उदयावलिमें प्रवेश करनेवाली स्थितियोंके अनुभागका तथा

पडि अणंतगुणहीणकमेण घादो। एवं सम्मत्तस्स अंतोमुहुत्तमेत्ताणि चेव अणुभागट्ठाणाणि होंति। मिच्छत्ताणुभागे पढमसमयउवसमसम्मादिट्ठिम्मि असंखेज्जलोगमेत्तपरिणामेहि सम्मत्तसरूवेण संकामिज्जमाणे असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणाणि सम्मत्तस्स किण्ण लब्भंति ? ण, तत्थ अणुभागविसेसुप्पत्तिणिमित्तपरिणामाणमभावादो। तं पि कुदो णव्वदे ? सम्मत्तस्स अंतोमुहुत्ताणि चेव अणुभागट्ठाणाणि होंति त्ति भणंताइरिएहिंतो। सम्माइट्ठिम्मि मिच्छत्ते सम्मत्तस्सुवरि संकममाणे अणुभागट्ठाणाणं वियप्पा किण्ण लब्भंति ? ण, मिच्छत्ताणुभागे सम्मत्ताणुभागसरूवेण परिणममाणे पोराणाणुभागं मोत्तूण अणुभागवड्ढिहाणीणमणुवलंभादो। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं। णवरि एदस्स संखेज्जसहस्समेत्ताणि चेव अणुभागट्ठाणाणि होंति। कंडयघादेण विणा अणुसमयओवट्टणाए अणुभागट्ठाणाणमणुवलंभादो।

एवमणुभागे त्ति जं पदं तस्स अत्थपरूवणा समत्ता।

उदयावलिसे बाहरकी स्थितियोंके अनुभागका जो प्रतिसमय अनन्तगुणहीन क्रमसे घात होता है उसे प्रतिसमय अपवर्तना कहते हैं।

इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके अन्तर्मुहूर्तमात्र ही अनुभागस्थान होते हैं।

शंका–उपशम सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें असंख्यात लोकमात्र परिणामोंके द्वारा मिथ्यात्वका अनुभाग सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे संक्रमण करता है। ऐसी अवस्थामें सम्यक्त्वके असंख्यात लोकमात्र स्थान क्यों नहीं होते ?

समाधान–नहीं, क्योंकि उस समय अनुभागविशेषकी उत्पत्तिमें निमित्तभूत परिणाम नहीं होते।

शंका–यह कैसे जाना ?

समाधान–सम्यक्त्व प्रकृतिके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही अनुभागस्थान होते हैं ऐसा कथन करने वाले आचार्योंसे जाना।

शंका–सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वका सम्यक्त्व प्रकृतिमें संक्रमण होने पर अनुभागस्थानोंके विकल्प क्यों नहीं पाये जाते।

समाधान–नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके अनुभागके सम्यक्त्वके अनुभागरूपसे परिणमन करने पर पुराने अनुभागको छोड़ कर अनुभागकी वृद्धि अथवा हानि नहीं पाई जाती है। अर्थात् पुराना ही अनुभाग रहता है, न वह घटता है और न बढ़ता है।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका भी कथन करना चाहिये। इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके संख्यात हजारमात्र ही अनुभागस्थान होते हैं, क्योंकि काण्डकघातके विना प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा अनुभागस्थान नहीं होते हैं।

इस प्रकार गाथामें आये हुए 'अनुभाग' पदका व्याख्यान समाप्त हुआ।

अनुभागविभक्ति समाप्त।

अणुभागविहत्ती समत्ता

१ अणुभागविहत्तिचुण्णिसुत्ताणि

[१]एत्तो अणुभागविहत्ती दुविहा—मूलपयडिअणुभागविहत्ती चेव उत्तरपयडि-अणुभागविहत्ती चेव। एत्तो मूलपयडिअणुभागविहत्ती भाणिदव्वा।

[२]उत्तरपयडिअणुभागविहत्तिं वत्तइस्सामो। पुव्वं गमणिज्जा इमा परूवणा। सम्मत्तस्स पढमं देसघादिफद्दयमादिं कादूण जाव चरिमदेसघादिफद्दगं ति एदाणि फद्दयाणि। [३]सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादिआदिफद्दयमादिं कादूण दारुअसमाणस्स अणंतभागे णिट्ठिदं। [४]मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जम्हि सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं णिट्ठिदं तदो अणंतरफद्दयमाढत्ता उवरि अप्पडिसिद्धं। [५]वारसकसायाणमणुभागसंतकम्मं सव्वघादीणं दुट्ठाणियमादिफद्दयमादिं कादूण उवरि-मप्पडिसिद्धं। चदुसंजलण-णवणोकसायाणमणुभागसंतकम्मं देसघादीणमादिफद्दयमादिं कादूण उवरि सव्वघादि त्ति अप्पडिसिद्धं।

[६]तत्थ दुविधा सण्णा—घादिसण्णा ट्ठाणसण्णा च। [७]ताओ दो वि एक्कदो णिज्जंति। मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं सव्वघादी दुट्ठाणियं। [८]उक्कस्सय-मणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चदुट्ठाणियं। [९]एवं वारसकसाय-छण्णोकसायाणं। [१०]सम्मत्तस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादी एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा। [११]सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादी दुट्ठाणियं। एक्कं चेव ट्ठाणं। [१२]चदुसंजलणाणमणुभाग-संतकम्मं सव्वघादी वा देसघादी वा एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा चउट्ठाणियं वा। इत्थिवेदस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादी दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा चउट्ठाणियं वा। [१३]मोत्तूण खवगचरिमसमयइत्थिवेदयं उदयणिसेगं। तस्स देसघादी एगट्ठाणियं। [१४]पुरिसवेदस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं देसघादी एगट्ठाणियं। [१५]उक्कस्साणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चदुट्ठाणियं। णवुंसयवेदस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं सव्वघादी दुट्ठाणियं। [१६]उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चउट्ठाणियं। णवरि खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादी एगट्ठाणियं।

---

(१) पृ० २। (२) पृ० १२६। (३) पृ० १३०। (४) पृ० १३१। (५) पृ० १३२। (६) पृ० १३५। (७) पृ० १३६। (८) पृ० १३९। (९) पृ० १४२। (१०) पृ० १४३। (११) पृ० १४४। (१२) पृ० १४६। (१३) पृ० १४८। (१४) पृ० १४९। (१५) पृ० १५०। (१६) पृ० १५१।

[1]एगजीवेण सामित्तं। मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? [2]उक्कसाणुभागं बंधिदूण जाव ण हणदि। ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा। [3]असंखेज्जवस्साउएसु मणुस्सोववादियदेवेसु च णत्थि। [4]एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? दंसणमोहक्खवगं मोत्तूण सव्वस्स उक्कस्सयं।

[5]मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? सुहुमस्स। [6]हदसमुप्पत्तियकम्मेण अण्णदरो एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा सुहुमो वा बादरो वा पज्जत्तो वा अपज्जत्तो वा जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ होदि। [7]एवमट्ठकसायाणं। सम्मत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स। [8]सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? अवणिज्जमाणए अपच्छिमे अणुभागकंडए वट्टमाणस्स। [9]अणंताणुबंधीणं जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? पढमसमयसंजुत्तस्स। [10]कोधसंजलणस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमयअसंकामयस्स। [11]एवं माण-मायासंजलणाणं। लोभसंजलणस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स। [12]इत्थिवेदस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स। पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? [13]पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स चरिमसमयअसंकामयस्स। [14]णवुंसयवेदयस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स। [15]छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणयस्स।

णिरयगदीए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? असण्णिस्स हदसमुप्पत्तियकम्मेण आगदस्स जाव हेट्ठा संतकम्मस्स बंधदि ताव। [16]एवं बारसकसायणवणोकसायाणं। सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स। [17]सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं णत्थि। [18]अणंताणुवंधीणमोघं। एवं सव्वत्थ णेदव्वं।

[19]कालाणुगमेण। मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? [20]जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अणुक्कस्साणुभागसंतकम्मं केवचिरं कालादो

(१) पृ० १५७। (२) पृ० १५८। (३) पृ० १५९। (४) पृ० १६०। (५) पृ० १६१। (६) पृ० १६३। (७) पृ० १६४। (८) पृ० १६५। (९) पृ० १६६। (१०) पृ० १६८। (११) पृ० १७१। (१२) पृ० १७२। (१३) पृ० १७३। (१४) पृ० १७४। (१५) पृ० १७५। (१६) पृ० १७७। (१७) पृ० १७८। (१८) पृ० १७९। (१९) पृ० १८५। (२०) पृ० १८६।

होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । [1]एवं सोलस-कसाय-णवणोकसायाणं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । [2]उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरे-याणि । [3]अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मिओ केचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

[4]मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? [5]जहण्णुक्क-स्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं सम्मामिच्छत्त-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं । सम्मत्त-अणंताणु-वंधि-चदुसंजलण-तिण्णिवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।

[6]अंतरं । मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । [7]सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहापयडि अंतरं ।

[8]जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? मिच्छत्तअट्ठकसाय-अणंताणुवंधीणं च मोत्तूण सेसाणं णत्थि अंतरं । [9]मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणु-भागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? [10]जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । अणंताणुवंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । [11]उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

[12]णाणाजीवेहि भंगविचओ । [13]तत्थ अट्ठपदं । जे उक्कस्साणुभागविहत्तिया ते अणुक्कस्साणुभागस्स अविहत्तिया । जे अणुक्कस्साणुभागस्स विहत्तिया ते उक्कस्सअणु-भागस्स अविहत्तिया । जेसिं पयडी अत्थि तेसु पयदं, अकम्मे अव्ववहारो । एदेण अट्ठ-पदेण । [14]सव्वे जीवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे अविहत्तिया । [15]सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च । सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च । अणु क्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया । सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च । [16]सिया विहत्तया च अविहत्तिया च । एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-वज्जाणं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया । [17]एवं तिण्ण भंगा । अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे अविहत्तिया । एवं तिण्णि भंगा ।

---

(१) पृ० १८७ । (२) पृ० १८८ । (३) पृ० १८९ । (४) पृ० १९२ । (५) पृ० १९३ । (६) पृ० २०१ । (७) पृ० २०२ । (८) पृ० २०६ । (९) पृ० २०८ । (१०) पृ० २०९ । (११) पृ० २१० । (१२) पृ० २१३ । (१३) पृ० २१४ । (१४) पृ० २१५ । (१५) पृ० २१६ । (१६) पृ० २१७ । (१७) पृ० २१८ ।

[1]णाणाजीवेहि कालो। मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं। [2]सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा।

[3]मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा। सम्मत्त-अणंताणुबंधिचत्तारि-चदुसंजलण--तिवेदाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण एगसमओ। [4]उक्कस्सेण संखेज्जा समया। णवरि अणंताणुबंधीणमुक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। सम्मामिच्छत्त-छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

[5]णाणाजीवेहि अंतरं। मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। [6]एवं सेसकम्माणं। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि अंतरं।

[7]जहण्णाणुभागकम्मंसियंतरं णाणाजीवेहि। मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं णत्थि अंतरं। सम्मत्त--सम्मामिच्छत्त--लोभसंजलण--छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण छम्मासा। [8]अणंताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। इत्थि-णवुंसयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि। [9]तिसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं।

[10]अप्पाबहुअमुक्कस्सयं जहा उक्कस्सबंधो तहा। [11]णवरि सव्वपच्छा सम्मामिच्छत्तमणंतगुणहीणं। [12]सम्मत्तमणंतगुणहीणं।

जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियदंडओ। सव्वमंदाणुभागं लोभसंजलणस्स अणुभागसंतकम्मं। मायासंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। [13]माणसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। कोधसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। [14]पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। [15]इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। [16]णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। सम्मा-

---

(१) पृ० २३३। (२) पृ० २३४। (३) पृ० २३६। (४) पृ० २३७। (५) पृ० २४१ (६) पृ० २४२। (७) पृ० २४४। (८) पृ० २४५। (९) पृ० २४६। (१०) पृ० २५६। (११) पृ० २५८। (१२) पृ० २५९। (१३) पृ० २६०। (१४) पृ० २६१। (१५) पृ० २६२ (१६) पृ० २६३।

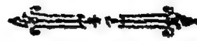
मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । अणंताणुबंधिमाणजहण्णाणुभागो अणंतगुणो । [1]कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । लोभस्स जहण्णओ अणुभागो विसेसाहिओ । [2]हस्सस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । [3]रदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । दुगुंछाए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । भयस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । [4]सोगस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । अरदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । अपच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । [5]मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । पच्चक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

[6]णिरयगईए जहण्णयमणुभागसंतकम्मं । सव्वमंदाणुभागं सम्मत्तं । सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । [7]अणंताणुबंधिमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । सेसाणि जधा सम्मादिट्ठीए बंधे तधा णेदव्वाणि ।

[8]जधा बंधे भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढीओ तहा संतकम्मे वि कायव्वाओ ।

[9]संतकम्मट्ठाणाणि तिविहाणि—बंधसमुप्पत्तियाणि हदसमुप्पत्तियाणि हदहदसमुप्पत्तियाणि । [10]सव्वत्थोवाणि बंधसमुप्पत्तियाणि । [11]हदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि । [12]हदहदसमुप्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि । [13]सोलसकाय-णवणोकसायाणं मिच्छत्तस्सेव तिविहा ट्ठाणपरूवणा कायव्वा ।

एवमणुभागे त्ति जं पदं तस्स अत्थपरूवणा समत्ता ।



(१) पृ० २६४ । (२) पृ० २६५ । (३) पृ० २६६ । (४) पृ० २६७ । (५) पृ० २६८ (६) पृ० २६९ । (७) पृ० २७० । (८) पृ० २७२ । (९) पृ० ३३० । (१०) पृ० ३३२ । (११) पृ० ३८० । (१२) पृ० ३९१ । (१३) पृ० ३९६ ।

२ अवतरण-सूची

३ ऐतिहासिक नामसूची

४ भौगोलिक नामसूची

५ ग्रन्थनामोल्लेख

६ चूर्णिसूत्रगत-शब्दसूची

७ जयधवलागत-विशेषशब्दसूची